रसूल हमज़ातोव · मेरा दाग़िस्तान

मेरा दाग़िस्तान

रसूल हमज़ातोव

मेरा दाग़िस्तान

रसूल हमज़ातोव

अनुवादक
डॉ. मदनलाल मधु

रादुगा प्रकाशन, मास्को

अनुक्रम

खंड – एक

'मेरा दाग़िस्तान' और उसके लेखक
भूमिका के स्थान पर और भूमिकाओं के बारे में
इस पुस्तक का कैसे जन्म हुआ और यह कहाँ लिखी गई
इस पुस्तक के भाव और नाम के बारे में
इस पुस्तक का रूप और इसे कैसे लिखा जाए
भाषा
विषय
विधा
शैली
इस पुस्तक की इमारत । विषय-वस्तु
प्रतिभा
काम
सचाई । साहस
संशय

खंड – दो

दो पुस्तकों के बीच का विराम
आग पिता, पानी माँ
घर
दागिस्तान के तीन खजाने
इनसान
पहाड़ी उकाब
जनगण
हाजी-मुरात का सिर
मातृभाषा
सारस
शब्द
गीत
शामिल की माँ का गीत
जमालुद्दीन का गाना
पुस्तक

" मेरा दाग़िस्तान " और उसके लेखक

दाग़िस्तानी पहाड़ों की गहराई में, विस्तृत वन-प्रांगन के छोर पर त्सादा नामक एक अवार पहाड़ी गाँव है। इस गाँव में एक घर है, जो अपने दाएँ-बाएँ के पड़ोसी घरों से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। उसकी वैसी ही समतल छत है, छत पर वैसा ही छत को समतल करने के लिए पत्थर का रोलर है, वैसा ही फाटक है और वैसा ही छोटा-सा आँगन है। मगर इसी छोटे-से पहाड़ी घर, इसी कठोर, यानी पाषाणी नीड़ से दो कवियों के नाम उड़कर संसार में बहुत दूर-दूर तक जा पहुँचे। पहला नाम है दाग़िस्तान के जन-कवि हमजात त्सादासा का और दूसरा दाग़िस्तान के जन-कवि रसूल हमज़ातोव का।

इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं कि बुजुर्ग पहाड़ी कवि के परिवार में पनपते हुए लड़के को कविता से प्यार हो गया और वह खुद भी कविता रचने लगा। मगर कवि बन जानेवाले कवि के बेटे ने अपनी ख्याति की सीमा बहुत दूर-दूर तक फैला दी। बुजुर्ग हमजात ने अपने जीवन में जो सबसे लंबी यात्रा की, वह थी दाग़िस्तान से मास्को तक।

मगर रसूल हमज़ातोव, जो बहुजातीय सोवियत संस्कृति के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, दुनिया के लगभग सभी देशों में हो आए हैं।

यों तो रसूल हमज़ातोव की जीवनी में कोई खास बात नहीं है। दाग़िस्तानी स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र के त्सादा गाँव में 1923 में रसूल हमज़ातोव का जन्म हुआ। आरानी के हाई स्कूल और बूयनाक्स्क के अवार अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालय में शिक्षा पाई। वे अध्यापक रहे, अवार थियेटर और जनतंत्रीय समाचार-पत्र के संपादक मंडल में उन्होंने काम किया। रसूल हमज़ातोव की पहली कविता 1937 में प्रकाशित हुई।

मास्को के साहित्य-संस्थान में रसूल हमज़ातोव के प्रवेश को उनके सृजनात्मक जीवन का नव युगारंभ मानना चाहिए। वहाँ उन्हें न केवल मास्को के प्रमुखतम कवि अध्यापकों के रूप में मिले, बल्कि मित्र, कला-पथ के संगी-साथी भी प्राप्त हुए। इसी संस्थान में उन्होंने अपने पहले अनुवादक पाए या शायद यह कहना अधिक सही होगा कि अनुवादकों ने उन्हें पा लिया। यहीं उनकी अवार कविताएँ रूसी काव्य में भी एक तथ्य बनीं।

तब से अब तक मखचकला में मातृभाषा में और मास्को में रूसी में उनके लगभग चालीस कविता-संग्रह निकल चुके हैं। अब बहुत दूर-दूर तक उनका नाम रोशन हो चुका है, वे लेलिन पुरस्कार और दाग़िस्तान के जन-कवि की उपाधि से सम्मानित हो चुके हैं और दुनिया की अनेक भाषाओं में उनकी कविताएँ अनूदित हो चुकी हैं।

हाँ, अब रसूल हमज़ातोव ने पहली गद्य-पुस्तक लिखी है। पहले से यह माना जा सकता था कि इस क्षेत्र में भी रसूल की प्रतिभा अपनी मौलिकता लिए हुए ही सामने आएगी और उनका गद्य सामान्य उपन्यास या लघु-उपन्यास जैसा नहीं होगा। वास्तव में ऐसा ही हुआ। फिर भी इस गद्य की विशिष्टताओं का कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है।

रसूल हमज़ातोव तो मानो अपनी भावी पुस्तक की प्रस्तावना लिखते हैं। वे बताते हैं कि यह पुस्तक कैसी होनी चाहिए, किस विधा में लिखी जाए, इसका क्या शीर्षक होगा, इसकी भाषा-शैली, रूपक-प्रणाली और विषय-वस्तु क्या हो। रसूल हमज़ातोव की यह पुस्तक पढ़कर कोई भी

पाठक निश्चय ही यह पूछ सकता है - 'यह तो प्रस्तावना हुई और स्वयं पुस्तक कहाँ है?' मगर पाठक का ऐसा पूछना ठीक नहीं होगा। बहुत आसानी से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भावी पुस्तक के बारे में चिंतन वास्तव में लिखने का एक ढंग ही है। धीरे-धीरे और अनजाने ही पुस्तक की 'प्रस्तावना' मातृभूमि, उसे प्यार करनेवाले बेटे के रवैये, कवि के दिलचस्प और कठिन कर्तव्य, उससे कुछ कम कठिन और कम दिलचस्प न होनेवाले नागरिक के कर्तव्य से संबंधित अपने में संपूर्ण और सार-गर्भित पुस्तक का रूप ले लेती है।

पुस्तक आत्म-कथात्मक है। कहीं-कहीं तो वह आत्म-स्वीकृति का रूप ले लेती है। उसमें निश्छलता है, काव्यात्मक सरसता है। इसमें जहाँ-तहाँ लेखक का प्यारा-प्यारा मजाक, मैं तो कहूँगा, शरारतीपन बिखरा हुआ है। संक्षेप में, वह बिल्कुल वैसी ही है, जैसा उसका लेखक। इस पुस्तक के बारे में केंद्रीय समाचार-पत्र में प्रकाशित एक लेख को बहुत उचित ही 'जीवन की प्रस्तावना' शीर्षक दिया गया था।

'मेरा दाग़िस्तान' पुस्तक में पाठक को अनेक अवार कहावतें और मुहावरे मिलेंगे, खुशी से उमगते या गम में डूबे हुए बहुत-से ऐसे किस्से मिलेंगे, जिनका लेखक को या तो स्वयं अनुभव हुआ, या जो जन-स्मृति के भंडार में सुरक्षित हैं, और इसी भाँति जीवन और कला के बारे में वे परिपक्व चिंतन भी पा सकेंगे। इस किताब में भलाई की बहुत-सी बातें हैं, जनसाधारण और मातृभूमि के प्रति प्रेम से ओत-प्रोत है यह।

पाठकों को संबोधित करते हुए रसूल हमज़ातोव ने अपने कृतित्व के बारे में यह लिखा है, 'ऐसे भी लोग हैं, जिनकी अतीत-संबंधी स्मृतियाँ बड़ी दुखद और कटु हैं। ऐसे लोग वर्तमान और भविष्य की भी इसी रूप में कल्पना करते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जिनकी अतीत-संबंधी स्मृतियाँ बड़ी मधुर और सुखद हैं। उनकी कल्पना में वर्तमान और भविष्य भी मधुर होते हैं। तीसरी किस्म के लोगों की स्मृतियाँ सुखद और दु:खद, मधुर और कटु भी होती हैं। वर्तमान और भविष्य-संबंधी उनके विचारों में विभिन्न भावनाएँ, स्वर-लहरियाँ और रंग घुले-मिले रहते हैं। मैं ऐसे ही लोगों में से हूँ।

'मेरी राहें हमेशा ही सीधी-सादी नहीं रहीं, हमेशा ही मेरे वर्ष चिंतामुक्त नहीं रहे। मेरे समकालीन, तुम्हारी ही तरह मैं भी अपने युग

की हलचल, दुनिया की उथल-पुथल और बड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं के भँवर में रहा हूँ। हर ऐसी घटना लेखक के दिल को मानो झकझोर डालती है। लेखक किसी घटना की खुशी और गम के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। वे बर्फ पर उभरनेवाले पद-चिह्न नहीं, बल्कि पत्थर पर की गई नक्काशी होते हैं। अब मैं अतीत के बारे में अपनी सारी जानकारी और भविष्य के बारे में अपने सभी ख्यालों को एक तार में पिरोकर तुम्हारे पास आ रहा हूँ, तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक देता हूँ और कहता हूँ - मेरे अच्छे दोस्त, यह मैं हूँ। मुझे अंदर आने दो।'

- ब्लादीमिर सोलोऊख़िन

मेरे घर की अगर उपेक्षा, कर तू जाए राही,
तुझ पर बादल-बिजली टूटें, तुझ पर बादल-बिजली!
मेरे घर से अगर दुखी मन, हो तू जाए राही,
मुझ पर बादल-बिजली टूटें, मुझ पर बादल-बिजली!

द्वार पर आलेख

अगर तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे,
तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसाएगा।

अबूतालिब

भूमिका के स्थान पर और भूमिकाओं के बारे में

जब आँख खुलती है,
तो बिस्तर से ऐसे लपककर मत उठो
मानो तुम्हें किसी ने डंक मार दिया हो।
तुमने जो कुछ सपने में देखा है,
पहले उस पर विचार कर लो।

मेरे ख्याल में तो यार-दोस्तों को कोई दिलचस्प किस्सा सुनाने या नया उपदेश देने के पहले खुद अल्लाह भी सिगरेट जलाता होगा, लंबे-लंबे कश खींचता और कुछ सोचता-विचारता होगा।

हवाई जहाज उड़ने से पहले देर तक शोर मचाता है, फिर सारा हवाई अड्डा लाँघकर उसे उड़ान भरने के मार्ग पर लाया जाता है, इसके बाद वह और भी जोर से शोर मचाता है, फिर खूब तेजी से दौड़ता है और यह सब करने के बाद ही उड़ता है।

हेलीकाप्टर दौड़ तो नहीं लगाता, मगर जमीन से ऊपर उठने के पहले वह भी देर तक शोर मचाता है, गड़गड़ाता है और तनावपूर्ण कँपकँपाहट के साथ देर तक खूब काँपता है।

केवल पहाड़ी उकाब ही चट्टान से एकबारगी आसमान में उड़ जाता है और आसानी से अधिकाधिक ऊपर चढ़ता हुआ छोटे-से बिंदु में बदल जाता है।

हर अच्छी किताब का ऐसा ही आरंभ होना चाहिए, लंबी-लंबी और ऊबभरी भूमिका के बिना। जाहिर है कि पास से भागे जाते साँड़ को अगर सींगों से पकड़कर हम काबू नहीं कर पाते, तो पूँछ से तो वह काबू में आने से रहा।

लीजिए, गायक ने पंदूर (तीन तारा) हाथ में लिया। मुझे मालूम है कि उसकी आवाज सुरीली है। मगर किसलिए वह गीत शुरू करने के पहले इतनी देर तक यों ही तारों को झनझनाता रहता है? कंसर्ट से पहले वक्तव्य, नाटक के पहले भाषण और उन ऊबभरी नसीहतों के बारे में भी मैं ऐसा ही कहूँगा, जो ससुर अपने दामाद को मेज पर बुलाकर फौरन जाम भरने के बजाय देता रहता है।

एक बार मुरीद अपनी-अपनी तलवारों की डींग हाँकने लगे। उन्होंने यह कहा कि कैसे बढ़िया इस्पात की की बनी हुई हैं उनकी तलवारें और कुरान की कैसी बढ़िया-बढ़िया कविताएँ उन पर खुदी हुई हैं। महान शामिल का नायब हाजी-मुराद भी मुरीदों के बीच उपस्थित था। वह बोला -

'चिनारों की ठंडी छाया में तुम किसलिए यह बहस कर रहे हो? कल पौ फटते ही लड़ाई होगी और तब तुम्हारी तलवारें खुद ही यह फैसला कर देंगी कि उनमें से कौन-सी बेहतर है।'

फिर भी मेरा यह ख्याल है कि अपनी कहानी शुरू करने से पहले अल्लाह मजे से सिगरेट के कश लगाता है।

फिर भी हमारे पहाड़ों में यह प्रथा है कि घुड़सवार पहाड़ी घर की दहलीज के पास ही घोड़े पर सवार नहीं होता। उसे घोड़े को गाँव से बाहर ले जाना होता है। शायद इसलिए ऐसा करना जरूरी होता है कि वह एक बार फिर इस बात पर गौर कर ले कि वह यहाँ क्या छोड़े जा रहा है औरे रास्ते में उसके साथ क्या बीतनेवाली है। काम-काज चाहे उसे कितनी ही जल्दी करने को मजबूर क्यों न करे, वह इतमीनान से सोचते हुए अपने घोड़े को सारे गाँव के छोर तक ले जाता है और तभी रकाबों को छुए बिना ही उछलकर जीन पर जा बैठता है, आगे को झुकता है और धूल के बादल में खो जाता है।

तो इसी तरह अपनी किताब के जीन पर सवार होने के पहले मैं सोचता हुआ धीरे-धीरे चल रहा हूँ। मैं घोड़े की लगाम थामे हुए उसके साथ-साथ जा रहा हूँ। मैं सोच रहा हूँ, मुँह से शब्द निकालने में देर कर रहा हूँ।

हकलानेवाले की जबान से ही नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्ति की जबान से भी शब्द रुक-रुककर निकल सकते हैं, जो अधिक उचित, अधिक आवश्यक और

बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों की खोज करता है। अपनी बुद्धिमत्ता से आश्चर्यचकित करने की तो मैं आशा नहीं करता, मगर हकला भी नहीं हूँ। मैं शब्द खोज रहा हूँ।

अबूतालिब ने कहा है कि पुस्तक की भूमिका तो वही तिनका है, जो अंधविश्वासी पहाड़िन पति का भेड़ का खाल का कोट ठीक करते हुए दाँतों तले दबाए रहती है। अगर वह तिनका दाँतों तले न दबाए रखे, तो जैसा कि माना जाता है, भेड़ की खाल का कोट कफन में बदल सकता है।

अबूतालिब ने यह भी कहा है कि मैं उस आदमी के समान हूँ, जो अँधेरे में ऐसे दरवाजे को खोज रहा है, जिसमें दाखिल हुआ जा सके, या उस आदमी के समान हूँ, जिसे दरवाजा तो मिल गया है, मगर जिसे यह विश्वास नहीं कि वह उसमें दाखिल हो सकता है या उसे उसमें दाखिल होना भी चाहिए या नहीं। वह दरवाजे पर दस्तक देता है - ठक, ठक।

'ए घरवालो, अगर तुम मांस उबालना चाहते हो, तो तुम्हारे उठने का वक्त हो गया!'

'ए घरवालो, अगर तुम्हें जई पीसनी है, तो मजे से सोए रहो, जल्दी करने की जरूरत नहीं है।'

'ऐ घरवालो, अगर तुम बूजा (एक तरह की बियर) पीने का इरादा रखते हो, तो पड़ोसी को बुलाना मत भूल जाना!'

ठक-ठक, ठक-ठक!

'तो क्या मैं अंदर आ जाऊँ, या मेरे बिना ही तुम्हारा काम चल जाएगा?'

बोलना सीखने के लिए आदमी को दो साल की जरूरत होती है, मगर यह सीखने के लिए कि जबान को बस में कैसे रखा जाए, साठ सालों की आवश्यकता होती है।

मैं न तो दो साल का हूँ और न साठ साल का। मैं दोनों के बीच में हूँ। फिर भी मैं शायद दूसरे बिंदु के निकट हूँ, क्योंकि मुझे अनकहे शब्द कहे जा चुके सभी शब्दों से अधिक प्यारे हैं।

वह पुस्तक जो मैंने अभी तक नहीं लिखी, लिखी जा जुकी सभी पुस्तकों से अधिक प्रिय है। वह सबसे ज्यादा प्यारी, वांछित और कठिन है।

नई किताब - यह तो वह दर्रा है, जिसमें मैं कभी नहीं गया, मगर जो मेरे सामने खुल चुका है, मुझे अपनी धुँधली दूरी की तरफ खींचता है। नई पुस्तक - यह तो

वह घोड़ा है, जिस पर मैंने अब तक कभी सवारी नहीं की, वह खंजर है, जिसे मैंने मन से नहीं निकाला।

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है, 'जरूरत के बिना खंजर को बाहर नहीं निकालो। अगर निकाल लिया है, तो मारो! ऐसे मारो कि घुड़सवार और घोड़ा, दोनों ही फौरन दूसरी दुनिया में पहुँच जाएँ।'

तुम्हारा कहना ठीक है, पहाड़ी लोगो!

फिर भी खंजर निकालने से पहले आपको इस बात का यकीन होना चाहिए कि उसकी धार खूब तेज है।

मेरी पुस्तक, बहुत सालों तक तुम मेरी आत्मा में जीती रही हो! तुम उस औरत, दिल की उस रानी के समान हो, जिसे उसका प्रेमी दूर से देखा करता है, जिसके सपने देखता है, मगर जिसे छूने का उसे सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि वह बिल्कुल नजदीक ही खड़ी रही है - बस, हाथ बढ़ाने की ही जरूरत थी, मगर मेरी हिम्मत न हुई, मैं झेंप गया, मेरे मुँह पर लाली दौड़ गई और मैं दूर हट गया।

पर अब यह सब खत्म हो चुका है। मैंने साहसपूर्वक उसके पास जाने और उसका हाथ अपने हाथ में लेने का निर्णय कर लिया है। झेंपू प्रेमी की जगह मैं साहसी और अनुभवी मर्द बनना चाहता हूँ। मैं घोड़े पर सवार होता हूँ, तीन बार चाबुक सटकारता हूँ - जो भी होना हो, सो हो!

फिर भी मैं अपने कड़वे देसी तंबाकू को कागज पर डालता हूँ, इतमीनान से सिगरेट लपेटता हूँ। अगर सिगरेट लपेटने में ही इतना मजा है, तो कश लगाने में कितना मजा होगा!

मेरी पुस्तक, तुम्हें शुरू करने से पहले मैं यह बताना चाहता हूँ कि कैसे तुमने मेरी आत्मा में रूप धारण किया। कैसे मैंने तुम्हारा नाम चुना। किसलिए मैं तुम्हें लिखना चाहता हूँ। जीवन में मेरे क्या उद्देश्य-लक्ष्य हैं।

मेहमान को मैं रसोईघर में जाने देता हूँ, जहाँ अभी भेड़ का धड़ साफ किया जा रहा है और अभी सीख-कबाब की नहीं, लहू और गर्म मांस की गंध आ रही है।

दोस्तों को मैं अपने पावन कार्य-कक्ष में ले जाता हूँ, जहाँ मेरी पांडुलिपियाँ रखी हैं, और मैं उन्हें उनको पढ़ने की इजाजत देता हूँ।

मेरे पिता जी चाहे यह कहा करते थे कि जो कोई पराई पांडुलिपियाँ पढ़ता है, वह दूसरों की जेब में हाथ डालनेवाले के समान है।

पिता जी यह भी कहा करते थे कि भूमिका थियेटर में तुम्हारे सामने बैठे चौड़े-चकले कंधों और साथ ही बड़ी टोपीवाले आदमी की याद दिलाती है। अगर वह टिककर बैठा रहे, दाएँ-बाएँ न हिले, तो भी गनीमत समझिए। दर्शक के नाते ऐसे आदमी से मुझे बड़ी असुविधा और आखिर झल्लाहट होने लगती है।

नोटबुक से। मुझ मास्को या रूस के दूसरे शहरों में अक्सर कवि सम्मेलनों में हिस्सा लेना पड़ता है। हॉल में बैठे लोग अवार भाषा नहीं जानते होते। शुरू में अशुद्ध उच्चारण के साथ में जैसे-तैसे रूसी भाषा में अपने बार में कुछ बताता हूँ। इसके बाद मेरे दोस्त, रूसी कवि, मेरी कविताओं का अनुवाद सुनाते हैं। मगर उनके शुरू करने के पहले आमतौर पर मुझसे मेरी मातृभाषा में एक कविता सुनाने का अनुरोध किया जाता है, 'हम अवार भाषा और कविता के संगीत का रस लेना चाहते हैं।' मैं सुनाता हूँ, मगर मेरा कविता-पाठ गाना शुरू होने के पहले पंदूर की झनझनाहट के सिवा और कुछ नहीं होता।

तो क्या मेरी किताब की भूमिका भी ऐसी ही नहीं है ?

नोटबुक से । मैं जब विद्यार्थी था, तो जाड़े का ओवरकोट खरीदने के लिए पिता जी ने मुझे पैसे भेजे। पैसे तो मैंने खर्च कर डाले और ओवरकोट नहीं खरीदा। जाड़े की छुट्टियों में वही हल्का-सा ओवरकोट पहने हुए, जिसे गर्मियों में पहनकर मैं मास्को पढ़ने आया था, दागिस्तान जाना पड़ा।

घर पर पिता जी के सामने मैं अपनी सफाई पेश करने लगा, तुरत-फुरत एक से एक बेतुका और बेसिर-पैर का क़िस्सा गढ़कर सुनाने लगा। जब मैं अपने ही ताने-बाने में पूरी तरह उलझ गया, तो पिता जी ने मुझे टोकते हुए कहा -

'रुको, रसूल। मैं तुमसे दो सवाल पूछना चाहता हूँ।'

'पूछिए।'

'ओवरकोट खरीदा?'

'नहीं।'

'पैसे खर्च कर दिए!'

'हाँ।'

'बस, अब सारी बात साफ हो गई। अगर दो लफ्जों में ही मामले का निचोड़ निकल सकता है, तो किसलिए तुमने इतने बेकार शब्द कहे, इतनी लंबी-चौड़ी भूमिका बाँधी?'

मेरे पिता जी ने मुझे ऐसी शिक्षा दी थी।

फिर भी बच्चा पैदा होते ही नहीं बोलने लगता। शब्द कहने से पहले वह अपनी तुतली भाषा में कुछ ऐसा बोलता है, जो किसी के पल्ले नहीं पड़ता। ऐसा भी होता है कि जब वह दर्द से रोता-चिल्लाता है, तो माँ के लिए भी यह जानना मुश्किल हो जाता है कि उसे किस जगह पर दर्द हो रहा है।

क्या कवि की आत्मा बच्चे की आत्मा जैसी नहीं होती ?

पिता जी कहा करते थे कि लोग जब पहाड़ों से भेड़ों के रेवड़ के आने का इंतजार करते हैं, तो सबसे पहले उन्हें हमेशा आगे-आगे आनेवाले बकरे के सींग दिखाई देते हैं, फिर पूरा बकरा नजर आता है और इसके बाद ही वे रेवड़ को देख पाते हैं।

लोग जब शादी के या मातमी जुलूस की राह देखते हैं, तो पहले तो उन्हें हरकारा दिखाई देता है।

गाँव के लोग जब हरकारे के इंतजार में होते हैं, तो पहले तो उन्हें धूल का बादल, फिर घोड़ा और उसके बाद ही घुड़सवार नजर आता है।

लोग जब शिकारी के लौटने की प्रतीक्षा में होते हैं, तो पहले तो उन्हें उसका कुत्ता ही दिखाई देता है।

इस पुस्तक का कैसे जन्म हुआ और यह कहाँ लिखी गई

छोटे बच्चे भी बड़े सपने देखते हैं।
पालने पर आलेख

अस्त्र, जिसकी केवल एक बार ही आवश्यकता पड़े,
जीवन भर अपने साथ रखना पड़ता है।

कविताएँ, जिन्हें जीवन भर दोहराया जाता है,
एक बार ही लिखी जाती हैं।

वसंत के दिनों में वसंत का एक पक्षी किसी गाँव में उड़ता हुआ आया। लगा सोचने कि बैठकर आराम करे। एक पहाड़ी घर की चौड़ी, समतल और साफ छत पर नजर पड़ी। छत पर उसे समतल करने के लिए पत्थर का रोलर है। पक्षी आसमान से नीचे उतरा और रोलर पर आराम करने बैठ गया। चुस्त पहाड़िन पक्षी को पकड़कर घर में ले गई। पक्षी ने देखा कि घर के सभी लोग उसके साथ अच्छे ढंग से पेश आते हैं और इसलिए वहीं रहने लगा। उसने धुएँ से काले हुए पुराने शहतीर पर ठोंके गए नाल में अपना घोंसला बना लिया।

क्या मेरी किताब के बारे में भी यही बात नहीं है?

कितनी ही बार मैंने अपने काव्य-गगन से नीचे, गद्य के समतल मैदान पर यह ढूँढ़ते हुए नजर डाली कि कहाँ बैठकर आराम करूँ...

नहीं, इस सिलसिले में उस हवाई जहाज से तुलना करना ज्यादा ठीक होगा, जिसे हवाई अड्डे पर उतरना है। लीजिए, मैं चक्कर काटता हूँ ताकि नीचे उतरने लगूँ। मगर बुरे मौसम के कारण हवाई अड्डेवाले मुझे ऐसा करने की इजाजत नहीं देते। बहुत बड़ा चक्कर काटने के बजाय मैं फिर से सीधी उड़ान भरता हुआ आगे उड़ने लगता हूँ और वांछित पृथ्वी फिर नीचे ही रह जाती है... अनेक बार ऐसा ही हो चुका है।

तो मैंने सोचा, इसका तो यही मतलब निकलता है कि कंकरीट का मजबूत आधार मेरी किस्मत में नहीं लिखा है। इसका तो यही अर्थ है कि मेरे पैरों को धरती पर अविराम चलते ही जाना होगा, मेरी आँखों को निरंतर पृथ्वी की नई जगहों को खोजते रहना होगा, मेरे हृदय को लगातार नए गीत रचने होंगे।

जिस तरह कोई हलवाहा आसमान में तैरते दूधिया बादल या तिकोन बनाकर उड़े जाते सारसों को देखते हुए अपनी सुध-बुध भूल जाता है, मगर कुछ ही क्षण बाद इस जादू से मुक्त हो अधिक उत्साह के साथ हल चलाने लगता है, उसी तरह मैं अधूरी छोड़ी गई अपनी लंबी कविता की ओर लौटा हूँ।

हाँ, मेरी कविता, मैं अंतरिक्ष से उसकी चाहे कितनी भी तुलना क्यों न करूँ, मेरे लिए वह मेरी ठोस जमीन थी, मेरा खेत थी, मेरा गाढ़ा पसीना थी। अब तक गद्य को मैंने बिल्कुल ही नहीं लिखा था।

तो एक दिन मुझे एक पैकेट मिला। पैकेट में उस पत्रिका के संपादक का पत्र था, जिसका मैं बहुत आदर करता हूँ। वैसे, आदर तो मैं संपादक का भी बहुत करता हूँ। हाँ, संपादक ने भी अपना पत्र 'आदरणीय रसूल' शब्दों के साथ शुरू किया था। कुल मिलाकर, गहरी पारस्परिक आदर भावना सामने आई।

पत्र को जब मैंने खोला, तो वह मुझे भैंस की उस खाल का-सा प्रतीत हुआ, जिसे पहाड़ी लोग अच्छी तरह सुखाने के लिए अपने घर की सपाट छत पर फैला देते हैं। अच्छी तरह सूख चुकी भैंस की खाल को घर में ले जाने के लिए जब तह लगाई जाती है, तो वह जितनी आवाज करती है, इसी तरह उस पत्र को पढ़ते समय उसके कागजों ने भी कुछ कम सरसराहट नहीं की। सिर्फ खाल की तेज नाक में खुजली-सी पैदा करनेवाली गंध नहीं थी। पत्र से किसी भी तरह की गंध नहीं आ रही थी।

खैर, तो संपादक ने यह लिखा था, 'हमारे संपादकमंडल ने अपनी पत्रिका के अगले कुछ अंकों में दागिस्तान की उपलब्धियों, शुभ कार्यों और सामान्य श्रम

दिवसों के बारे में सामग्री छापने का निर्णय किया है। यह आम मेहनतकशों, उनके साहसपूर्ण कार्यों, उनकी आशाओं-आकांक्षाओं की कहानी होनी चाहिए। यह कहानी होनी चाहिए तुम्हारे पहाड़ी प्रदेश के उज्ज्वल 'भविष्य' उसकी सदियों पुरानी परंपराओं की, मगर मुख्यतः यह कहानी होनी चाहिए उसके भव्य 'वर्तमान' की। हमने तय किया है कि ऐसी कहानी तुम ही सबसे बेहतर लिख सकते हो। इसके लिए विधा तुम अपनी पसंद के अनुसार चुन सकते हो - कहानी, लेख, रेखाचित्र, कुछ लघु शब्द चित्र - किसी भी रूप में लिख सकते हो। सामग्री 9-10 टाइप पृष्ठों की ही और 20-25 दिनों में पहुँच जाए। हमें तुम्हारे सहयोग की पूरी आशा है और तुम्हें पहले से ही धन्यवाद देते हैं...'

कभी वह जमाना था कि लड़की की शादी करते हुए उसकी सहमति नहीं ली जाती थी। बस, शादी कर दी जाती थी। या जैसे कि आजकल कहा जाता है, शादी का तथ्य उसके सामने रख दिया जाता था। मगर उन वक्तों में भी हमारे पहाड़ों में बेटे की रजामंदी के बिना कोई उसकी शादी करने की हिम्मत नहीं कर सकता था। सुनने में आया है कि किसी हीदातलीवासी ने एक बार ऐसा किया था। मगर मेरा सम्मानित संपादक क्या हीदातली गाँव का रहनेवाला है? मेरे लिए उसने ही सब कुछ तय कर लिया... मगर क्या मैंने नौ पृष्ठों और बाईस दिन की अवधि में अपने दागिस्तान के बारे में बताने का निर्णय किया है?

अपने लिए अपमानजनक इस पत्र को मैंने झल्लाहट में कहीं दूर फेंक दिया। मगर कुछ दिन बाद मेरे टेलीफोन की घंटी ऐसे लगातार बजने लगी, मानो वह टेलीफोन की घंटी न होकर अंडा देनेवाली मुर्गी हो। जाहिर है कि पत्रिका के संपादकीय कार्यालय का ही यह टेलीफोन था।

'सलाम, रसूल! हमारा खत मिला?'

'हाँ।'

'सामग्री का क्या हुआ?'

'सामग्री... मैं काम-काज में उलझा रहा... फुरसत नहीं मिली।'

'यह तुम क्या कह रहे हो, रसूल! भला ऐसा कैसे हो सकता है! हमारी पत्रिका की तो लगभग दस लाख प्रतियाँ छपती हैं। विदेशों में भी उसके पाठक हैं। पर यदि तुम सचमुच ही बहुत व्यस्त हो, तो हम कोई आदमी तुम्हारे पास भेज देते हैं। तुम अपने कुछ विचार और तफसीलें उसे बता देना, बाकी वह सब कुछ खुद

ही कर लेगा। तुम उसे पढ़कर, ठीक-ठाक करके उस पर अपने हस्ताक्षर कर देना। हमारे लिए तो मुख्य चीज तुम्हारा नाम है।'

'मेहमान को देखकर जो नाखुश हो, उसकी सारी हड्डियाँ टूट जाएँ। अगर कोई मेहमान के आने पर रोनी सूरत बनाए या नाक-भौंह चढ़ाए, तो उसके घर में न तो बड़े ही रहें, जो अक्लमंद नसीहत दे सकें और न छोटे ही रहें, जो उन नसीहतों को सुन सकें! ऐसा है मेहमानों के बारे में हम पहाड़ी लोगों का दृष्टिकोण। मगर खुदा के लिए कोई मददगार नहीं भेजिएगा। अपना साज मैं उसके बिना ही सुर में कर लूँगा। अपनी गागर का हत्था भी मैं खुद ही तैयार कर लूँगा। अगर पीठ पर खुजली होगी तो खुद मुझसे बेहतर तो कोई उसे नहीं खुजा सकेगा।'

बस, यहाँ हमारी बातचीत का अंत हो गया। वा सलाम, वा कलाम! मैंने एक महीने की छुट्टी ली और अपने जन्म-गाँव त्सादा चला गया।

त्सादा... सत्तर गर्म चूल्हे। निर्मल और ऊँचे आकाश में सत्तर चिमनियों से नीला धुआँ उठा करता है। काली धरती पर सफेद पहाड़ी घर हैं। गाँव, सफेद घरों के सामने हरे, समतल मैदान हैं। गाँव के पीछे चट्टानें ऊपर को उठती चली गई हैं। हमारे गाँव के ऊपर भूरी चट्टानों का ऐसा जमघट है मानो बालक नीचे, शादीवाले अहाते में झाँकने के लिए समतल छत पर इकट्ठे हुए हों।

त्सादा गाँव में आने पर मुझे पिता जी का वह खत याद हो आया, जो पहली बार मास्को देखने पर उन्होंने हमें लिखा था। यह समझ पाना मुश्किल था कि पिता जी ने अपने खत में किस जगह पर मजाक किया है और कहाँ संजीदगी से बात लिखी है। मास्को देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई थी -

'ऐसा लगता है कि यहाँ मास्को में खाना पकाने के लिए आग नहीं जलाई जाती, क्योंकि मुझे यहाँ अपने घरों की दीवारों पर उपले पाथनेवाली औरतें नजर नहीं आतीं, घरों की छतों के ऊपर अबूतालिब की बड़ी टोपी जैसा धुआँ नहीं दिखाई देता। छत को समतल करने के लिए रोलर भी नजर नहीं आते। मास्कोवासी अपनी छतों पर घास सुखाते हों, ऐसा भी नहीं लगता। पर यदि घास नहीं सुखाते, तो अपनी गायों को क्या खिलाते हैं? सूखी टहनियों या घास का गट्ठा उठाए एक भी औरत कहीं नजर नहीं आई। न तो कभी जुरने की झनक और न खंजड़ी की ढमक ही सुनाई दी है। ऐसा लग सकता है मानो जवान लोग यहाँ शादियाँ ही नहीं करते और ब्याह का धूम-धड़ाका ही नहीं होता। इस अजीब शहर की गलियों-सड़कों पर मैंने कितने भी चक्कर क्यों न लगाए, कभी एक बार

भी कोई भेड़ नजर नहीं आई। तो सवाल पैदा होता है कि जब कोई मेहमान आता है, तो मास्कोवाले क्या जिबह करते हैं! अगर भेड़ को जिबह करके नहीं, तो यार-दोस्त के आने पर वे कैसे उसकी खातिरदारी करते हैं! नहीं, ऐसी जिंदगी मुझे नहीं चाहिए। मैं तो अपने त्सादा गाँव में ही रहना चाहता हूँ, जहाँ बीवी से यह कहकर कि वह कुछ ज्यादा लहसुन डालकर खीनकाल बनाए, उन्हें जी भरकर खाया जा सकता है...'

मेरे पिता जी ने अपने जन्म-गाँव के मुकाबले में मास्को में और भी बहुत-सी खामियाँ खोज निकालीं। जाहिर है कि जब उन्होंने इस बात की हैरानी जाहिर की थी कि मास्को के घरों पर उपले नहीं पाथे हुए थे, तो मजाक किया था, मगर जब बड़े शहर के मुकाबले में अपने जन्म गाँव को तरजीह दी थी, तो उसमें मजाक नहीं था। वे अपने त्सादा को प्यार करते थे और उसके मुकाबले में दुनिया की सभी राजधानियों को ठुकरा देते।

प्यारे त्सादा! तो लो उस बहुत बड़ी दुनिया से मैं तुम्हारे पास आ गया हूँ, जिसमें मेरे पिता जी को ही इतनी ज्यादा खामियाँ नजर आई थीं। मैं घूम आया हूँ इस दुनिया में और बहुत-से अजूबे देखे हैं मैंने। इतनी ज्यादा खूबसूरती देखने को मिली कि आँखें यही तय न कर पाईं कि वे कहाँ टिकें। एक सुंदर मंदिर-मसजिद से मेरी नजर दूसरे मंदिर-मसजिद की तरफ भागती रही, एक खूबसूरत चेहरे से दूसरे खूबसूरत चेहरे की तरफ खिंचती रही। मगर मैं जानता था कि जो कुछ इस वक्त देख रहा हूँ, वह चाहे कितना ही खूबसूरत क्यों न हो, कल मुझे उससे भी ज्यादा खूबसूरती देखने को मिलेगी... दुनिया का तो कोई ओर-छोर ही न ठहरा।

भारत के पगोडा, मिस्र के पिरामिड, इटली के बाजीलिक मुझे माफ करें, अमरीका के राजमार्ग, पेरिस के बुलवार, इंग्लैंड के पार्क और स्विटजरलैंड के पहाड़ मुझे क्षमा करें, पोलैंड, जापान और रोम की औरतों से मैं माफी चाहता हूँ - मैं तुम सब पर मुग्ध हुआ, मगर मेरा दिल चैन से धड़कता रहा। अगर उसकी धड़कन बढ़ी भी, तो इतनी नहीं कि गला सूख जाता और सिर चकराने लगता।

पर अब जब मैंने चट्टान के दामन में बसे हुए इन सत्तर घरों को फिर से देखा है, तो मेरा दिल ऐसे क्यों उछल रहा है कि पसलियों में दर्द होने लगा है, आँखों के सामने अँधेरा छा गया है और सिर ऐसे चकराने लगा है मानो मैं बीमार या नशे में धुत्त होऊँ!

क्या दागिस्तान का छोटा-सा गाँव वेनिस, काहिरा या कलकत्ते से बढ़कर है? क्या लकड़ियों का गट्ठा उठाए पगडंडी पर जानेवाली अवार औरत स्कैंडिनोविया की ऊँचे कद और सुनहरे बालोंवाली सुंदरी से बढ़कर है?

त्यादा! मैं तुम्हारे खेतों में घूम रहा हूँ और सुबह की ठंडी शबनम मेरे थके हुए पैरों को धो रही है। पहाड़ी नदियों से भी नहीं चश्मों के पानी से मैं अपना मुँह धोता हूँ। कहा जाता है कि अगर पीना ही है, तो चश्मे से पियो। यह भी कहा जाता है - मेरे पिता जी ऐसा कहा करते थे - कि मर्द केवल दो ही हालतों में घुटनों के बल खड़ा हो सकता है - चश्मे से पानी पीने और फूल तोड़ने के लिए। त्सादा, तुम मेरे लिए चश्मे के समान हो। मैं घुटनों के बल होकर तुमसे अपनी प्यास बुझाता हूँ।

मैं एक पत्थर देखता हूँ और उस पर मुझे मानो पारदर्शी-सी एक छाया नजर आती है। यह मैं खुद ही हूँ, जैसा कि तीस साल पहले था। पत्थर पर बैठा हूँ और भेड़ें चरा रहा हूँ। मेरे सिर पर झबरीली टोपी है, हाथ में लंबा डंडा और पैरों पर धूल है।

पगडंडी देखता हूँ और उस पर भी मानो पारदर्शी छाया नजर आती है। यह भी मैं ही हूँ, जैसा कि तीस साल पहले था। किसी कारण पड़ोस के गाँव में गया था। शायद पिता जी ने मुझे भेजा था।

हर कदम पर खुद अपने से ही, अपने बचपन, अपने वसंतों, अपनी बरसातों, फूलों, पतझर में झड़े हुए पत्तों से मेरी मुलाकात होती है।

मैं कपड़े उतारकर चमकते हुए जल-प्रपात के नीचे खड़ा हो जाता हूँ। चट्टान के आठ उभरे भागों पर से उछलता हुआ वह टूट जाता है, फिर से अपने जलकणों को एकत्रित करता है और आखिर मेरे कंधों, हाथों, और सिर से टकराकर बिखर जाता है। पेरिस के 'शाही महल' होटल का नहाने का फव्वारा मेरे ठंडे जल-प्रपात की तुलना में प्लास्टिक का तुच्छ खिलौना-सा लगता है।

पहाड़ी नदी की बगलवाली धारा से बहकर आनेवाला पानी गर्म पत्थरों के बीच दिन भर में गर्म हो जाता है। लंदन के 'मेट्रोपोल' होटल का नीला-सा गुसलखाना मेरे पहाड़ी गुसलखाने के मुकाबले में मामूली तश्तरी-सी प्रतीत होता है।

हाँ, मुझे बड़े शहरों में पैदल घूमना पसंद है। मगर पाँच-छह लंबी सैरों के बाद शहर जाना-पहचाना-सा महसूस होने लगता है और वहाँ लगातार घूमते रहने की

इच्छा जाती रहती है।

मगर अपने गाँव की छोटी-सी सड़क पर मैं हजारवीं बार जा रहा हूँ, लेकिन मन नहीं भरा, उस पर जाने की इच्छा का अंत नहीं हुआ।

इस बार यहाँ आने पर मैं हर घर में गया। हर चूल्हे के पास, जहाँ आग जलती है, जहाँ अंगारे दहक रहे हैं या जहाँ कभी की राख ठंडी हो चुकी है, मैंने वक्त की ठंडी, सफेद राख से ढका हुआ अपना सिर झुकाया।

मैं उन पालनों के पास खड़ा रहा, जहाँ भावी पहाड़ी-पहाड़िनें हाथ-पाँव पटकते थे या जो खाली थे, मगर उनमें अभी गर्मी बाकी थी या जिनके कंबल और तकिये कभी के ठंडे हो चुके थे।

हर पालने के पास मुझे ऐसा लगा मानो मैं खुद ही उसमें लेटा हुआ हूँ और पहाड़ी पगडंडियाँ, रूस के चौड़े रास्ते और दूर-दराज के देशों के राजमार्ग और हवाई अड्डे, ये सब अभी आगे चलकर मेरे सामने आनेवाले हैं।

मैंने बच्चों के लिए लोरियाँ गाईं और वे मेरे सीधे-सरल गीत सुनकर मीठी नींद सो भी गए।

त्सादा के कब्रिस्तान में भी मैं घूमता रहा, जहाँ पुरानी कब्रों के करीब ही, जिन पर ऊँची-ऊँची घास उगी हुई थी, ऐसी नई कब्रें भी थी, जिनसे ताजा मिट्टी की गंध आ रही थी।

मातमपुरसी के लिए मैं घरों में जाकर चुपचाप बैठा रहा, शादियों में खूब खुशी से नाचा। बहुत-से ऐसे शब्द और किस्से सुने, जो अब तक नहीं सुन पाया था। बहुत कुछ ऐसा, जो मैं कभी जानता था और भूल गया था, अब मुझे फिर से याद हो आया, स्मृति की अतल और अँधेरी गहराइयों में से उभरकर ऊपर आ गया।

नया मैंने अपनी आँखों से देखा और पुराने की चर्चा सुनकर उसे याद किया और मेरे विचारों ने बड़े तकले के गिर्द लिपटे हुए रंग-बिरंगे धागों का-सा रूप लिया। मैंने मन-ही-मन उस बहुरंगे कालीन की कल्पना की, जो इन धागों से बुना जा सकता है।

कल तक लड़का था, नीड़ों से, पक्षी पकड़ा करता था
यारों को मैं संग लेकर,
नीली-नीली आँखोंवाला, प्यार उमड़कर जब आया
क्षण में बालिग हुआ मगर।

कल तक मान रहा था खुद को, वयस्क, बहुत समझा, सुलझा
मैं तो मानो आजीवन,
आया प्यार, और जब आकर, वह धीरे-से मुस्काया
पुनः हुआ लड़के-सा मन।

हाँ, मेरी लंबी प्रणय-कविता अधूरी ही है। प्रेमी और प्रेमिका। प्रेमी-यह तो मैं हूँ। मगर मेरी मुख्य नायिका है - मेरा प्यार। इस कविता को पूरा करना चाहिए। मगर मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे नाम अभी-अभी एक चिंताजनक तार आ गया है और इसलिए मुझे फौरन हवाई अड्डे की तरफ भागना चाहिए।

या ऐसा भी होता है कि पहाड़िन जब तड़के ही चूल्हे में आग जलाती है, तो पिछले दिन का बचा हुआ खाना गर्म करना चाहती है, जो परिवार के सभी लोगों के लिए भरपेट खाने को काफी होगा। मगर अचानक ही दहलीज पर मेहमान आ खड़ा होता है। अब पिछले दिन के खाने का पतीला आग पर से उतारना और ताजा खाना तैयार करना जरूरी हो जाता है।

या ऐसा भी होता है कि शादी के वक्त युवाजन अपने साथी और हमउम्र दूल्हे के करीब बैठ जाते हैं, मगर अचानक उन्हें उठना और स्थान खाली करना पड़ता है, क्योंकि कमरे में उनसे बड़ी उम्र के लोग आ जाते हैं।

या ऐसा भी होता है कि बैठक में बुजुर्ग जमा होते हैं और नजदीक ही बच्चे भी खेलते होते हैं। अचानक बच्चों को बैठक से बाहर भेज दिया जाता है, क्योंकि बुजुर्गों को आपस में कोई जरूरी सलाह-मशविरा करना होता है।

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं शिकारी हूँ, मछुआ हूँ, घुड़सवार हूँ : मैं ख्यालों का शिकार करता हूँ, उन्हें फाँसता हूँ, उन पर जीन कसता हूँ और उन्हें एड़ लगाता हूँ। मगर कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं हिरन हूँ, सामन मछली हूँ, घोड़ा हूँ और विचार, चिंतन, भावनाएँ मुझे खोजती हैं, मुझे फाँसती है, मुझ पर जीन कसती हैं और मेरा संचालन करती हैं।

हाँ, भावनाएँ और विचार ऐसे ही आते हैं जैसे पहाड़ों में बिन बुलाए और सूचना दिए बिना मेहमान आता है। मेहमान की तरह न तो उनसे छिपा जा सकता है, न बचकर कहीं भागना ही मुमकिन है।

हमारे यहाँ पहाड़ों में छोटे या बड़े, अधिक या कम महत्व रखनेवाले मेहमान नहीं होते। सबसे छोटा मेहमान हमारे लिए महत्व रखता है, क्योंकि वह मेहमान

है। सबसे छोटा मेहमान सबसे बुजुर्ग गृह-स्वामी से भी अधिक सम्मानित हो जाता है, यह पूछे बिना ही कि वह किस इलाके का रहनेवाला है, हम दहलीज पर ही मेहमान का स्वागत करते हैं, उसे आग के करीब आगेवाली जगह पर ले जाते हैं और गद्दी पर बैठाते हैं।

पहाड़ों में मेहमान हमेशा अप्रत्याशित ही आता है। मगर वह कभी भी अप्रत्याशित नहीं होता, उसके आने से हमें कभी हैरानी नहीं होती, क्योंकि हमें हमेशा, हर दिन और हर घड़ी उसका इंतजार रहता है।

इस किताब का ख्याल भी पहाड़ों के मेहमान की तरह ही मेरे दिमाग में आया।

या ऐसा भी होता है कि काहिली, करने-धरने को कुछ न होने के कारण कोई आदमी यह जाँचने के लिए कि पंदूर सुर में है या नहीं, उसे दीवार से उतारकर झनझनाने लगता है। मगर अचानक, बिल्कुल अप्रत्याशित ही कोई गीत दिमाग में आने लगता है, झंकार धुन का रूप लेने लगती है, सुर में बँधी ध्वनियाँ फैलने लगती हैं और वह आदमी गाने में ऐसे डूब जाता है कि उसे पता भी नहीं चलता कि कब रात बीत गई और कब भोर हो गया।

या ऐसा भी होता है कि नौजवान किसी छोटे-मोटे काम से पड़ोस के गाँव में जाता है और लौटता है काठी पर पीछे बैठी हुई बीवी के साथ।

प्यारे संपादक! आपने अपने पत्र में जो अनुरोध किया था, मैं उसे पूरा कर रहा हूँ। जल्द ही मैं दागिस्तान के बारे में किताब लिखना शुरू कर दूँगा। मगर सिर्फ इस बात की माफी चाहता हूँ कि आपने इसके लिए जितना वक्त दिया है, शायद उतने में इसे पूरा नहीं कर पाऊँगा। बहुत ही ज्यादा पगडंडियाँ मुझे लाँघनी होंगी और हमारे पहाड़ों में वे बहुत ही सँकरी और ढालू हैं।

मेरे पहाड़ बिना पालिश किए हीरों की तरह रहस्यपूर्ण ढंग से दूरी पर चमकते हैं। मेरे तेज घोड़े के सामने बहुत विस्तार है। वह आपके बताए हुए तंग दर्रे में नहीं दौड़ना चाहता।

अपने दागिस्तान को मैं आपके नौ-दस पृष्ठों में नहीं समेट सकता। हाँ, 'उपलब्धियों, शुभ कार्यों, सामान्य श्रम दिवसों', 'आम मेहनतकशों, उनके साहसपूर्ण कार्यों, उनकी आशाओं-आकांक्षाओं', 'पहाड़ी प्रदेश के उज्ज्वल 'भविष्य' और उसकी सदियों पुरानी परंपराओं, मगर मुख्यतः उसके भव्य 'वर्तमान' के बारे में' भी मैं सामग्री नहीं लिख पाऊँगा।

मेरी छोटी-सी लेखनी इतना बोझ उठाने में असमर्थ है। उसकी नोक पर लगी स्याही की बूँद मस्ती में बहती बड़ी नदियों, गरजते पहाड़ी जल-प्रपातों, दुनिया की किस्मत और किसी एक व्यक्ति के भाग्य को अपने में नहीं समेट सकती।

बड़ा परिंदा - ज्यादा खून, छोटा परिंदा - थोड़ा खून। जितना बड़ा परिंदा, उतना ही खून।

कहते हैं कि संयाग से ही किसी ने गुठली फेंक दी, संयाग से ही वह हिरन के सिर पर जा गिरी और लीजिए, हिरन के शानदार सींग उग आए।

कहते हैं कि अगर दुनिया में अली न होता, तो उम्र भी न होती। अगर दुनिया में रात न होती, तो सुबह कहाँ से आती!

कहते हैं -'उकाब, कहाँ जन्म हुआ तुम्हारा?'

'तंग दर्रे में।'

'कहाँ उड़े जा रहे हो उकाब?'

'ओर-छोरहीन आकाश में।'

इस पुस्तक के भाव और नाम के बारे में

जशन और खुशियों का ही तो
इस से भास सदा होता है,
कभी-कभी पर इस में कोई
गम भी, खतरा भी सोता है।
घंटे पर आलेख

पिता वीर थे और अंत तक
थामे रहे सत्य का दामन,
पुत्र यहाँ पर जो सोता है
चमकेगा ऐसा ही वह बन।

सिर के ऊपर लटक रहा है
इसके वीर पिता का खंजर,
कृत्य सुनाए जाते उनके
इसे लोरियों में गा-गाकर।
पालने पर आलेख

पहाड़ी आदमी को दो चीजों की रक्षा करनी चाहिए - अपनी टोपी और अपने नाम की। टोपी की रक्षा वही कर सकेगा, जिसके पास टोपी के नीचे सिर है। नाम की रक्षा वह कर सकेगा, जिसके दिल में आग है।

हमारे तंग-से पहाड़ी घर की छत में गोलियों के बहुत-से निशान हैं। मेरे पिता जी के दोस्तों ने पिस्तौलों से ये गोलियाँ चलाई थीं - आसपास के पहाड़ों में रहनेवाले उकाबों को यह पता लग जाना चाहिए कि उनके एक भाई ने जन्म लिया है, कि दागिस्तान में एक उकाब और बढ़ गया है।

जाहिर है कि पिस्तौल चलाने, गोली छोड़ने से बेटा पैदा नहीं हो सकता। मगर बेटे के जन्म की घोषणा करने के लिए तो हमेशा गोली पास में होनी ही चाहिए।

जब मैं पैदा हुआ और जब मेरा नाम रखा गया, तो मेरे पिता जी के दोस्त ने दो गोलियाँ चलाई - एक छत में दूसरी फर्श पर।

अम्माँ ने मुझे बताया कि मेरा नाम कैसे रखा गया। अपने घर में मैं तीसरा बेटा था। एक लड़की यानी मेरी बहन भी थी, मगर हम तो मर्दों का, बेटों का जिक्र कर रहे हैं।

जेठे बेटे का नाम तो उसके पैदा होने के बहुत पहले ही सारा गाँव जानता था। वह इसलिए कि उसे तो उसके स्वर्गवासी दादा का नाम दिया जाना चाहिए। गाँव के हर आदमी को यह याद था और इसलिए सभी यह कहते थे कि जल्दी ही हमजातोवों के घर में मुहम्मद पैदा होगा।

मेरे दादा के अहाते में कुत्ते-बिल्ली को छोड़कर कभी एक भी चौपाया नहीं आया था। शायद ही वे कभी कंबल ओढ़कर सोए हों, शायद ही उन्होंने कभी अंडरवीयर को जाना हो। दुनिया का कोई भी डॉक्टर इस बात की डींग नहीं मार सकता था कि उसने मेरे दादा मुहम्मद की डॉक्टरी जाँच की थी, उनके मुँह का मुआयना किया था, नब्ज देखी थी, कभी उन्हें लंबी-लंबी और कभी रुक-रुककर साँस लेने को मजबूर किया था या यह कि उनका जिस्म ही देखा था। इसी तरह हमारे गाँव में उनके जन्म और मृत्यु की सही तिथि भी किसी को मालूम नहीं थी। अगर एक अर्जी पर एतबार किया जाए, जो इसलिए लिखित थी कि मेरे पिता जी पर कुछ काली छाया पड़ सके, मेरे दादा मुहम्मद थोड़ी-सी अरबी भी जानते थे। मेरे पिता जी ने उन्हीं का नाम अपने जेठे बेटे, मेरे सबसे बड़े भाई को दिया।

मेरे पिता जी के एक चाचा भी थे, जिनका दूसरे लड़के के जन्म से कुछ ही पहले देहांत हुआ था। चाचा का नाम अखीलची था।

'लो, अखीलची ने नया जन्म ले लिया!' हमारे घर में जब दूसरे लड़के ने जन्म लिया, तो गाँववालों ने खुश होकर कहा। 'हमारे अखीलची का पुनर्जन्म हो गया। अगर उसके गरीब घर पर कौवा बैठे, तो मुसीबत नहीं, कोई खुशी ही लेकर

आए। हमारी यह तमन्ना है कि लड़का वैसा ही नेक आदमी बने, जैसा वह था, जिसका नाम उसे नसीब हुआ है।'

जब मुझे जन्म लेना था, तो पिताजी का न तो कोई ऐसा रिश्तेदार था और न ही दोस्त, जिसकी कुछ समय पहले मृत्यु हुई हो या जो पराये इलाके में कहीं गुम हो गया हो और जिसका नाम मुझे दिया जा सकता हो ताकि मैं दुनिया में उसकी वैसी ही इज्जत बनाए रख सकूँ।

जब मेरा जन्म हुआ, तो पिता जी ने मेरा नाम रखने की रसम अदा करने के लिए गाँव के सबसे बाइज्जत लोगों को अपने घर बुलाया। वे घर में आकर बड़े इतमीनान और शान से ऐसे बैठ गए मानो सारे मुल्क की किस्मत का ही फैसला करनेवाले हों। उनके हाथों में बालखारी के कुम्हारों की बनाई हुई बड़ी-बड़ी तोंदवाली सुराहियाँ थीं। जाहिर है कि इन सुराहियों में फेनिल बूजा था। सिर्फ सबसे बूढ़े, बर्फ की तरह सफेद सिर के बालों और दाढ़ीवाले बुजुर्ग, जो पैगंबर जैसे लगते थे, के हाथ ही खाली थे।

दूसरे कमरे से बाहर आकर मेरी अम्माँ ने मुझे इस बुजुर्ग के हाथों में सौंप दिया। मैं बुजुर्ग के हाथों में मचलता रहा और इस बीच अम्माँ ने कहा -

'तुमने कभी पंदूर तो कभी खंजड़ी हाथों में लेकर मेरी शादी में गाया था। बहुत ही अच्छे थे तुम्हारे गीत। मेरे बच्चे को हाथों में लिए हुए इस वक्त तुम कौन-सा गीत गाओगे!'

'ऐ देवी! पालना झुलाते हुए उसके लिए गीत तो गाओगी तुम, तुम उसकी माँ। इसके बाद उसके लिए गाएँ परिंदे और नदियाँ। तलवारें और पिस्तौलें भी उसे गाने सुनाएँ। सबसे अच्छा गीत उसे सुनाए उसकी दुल्हन।'

'तो इसका नाम रख दो। तुम इस वक्त इसे जो नाम दो, वह मैं, इसकी माँ, सारा गाँव और सारा दागिस्तान सुने।'

बुजुर्ग ने मुझे छत तक ऊँचा उठाया और कहा -

'लड़की का नाम सितारे की चमक या फूल की कोमलता जैसा होना चाहिए। मर्द के नाम में तलवार की टनकार और किताबों की अक्लमंदी को अमली शक्ल मिलनी चाहिए। किताबें पढ़ते हुए बहुत नाम जाने मैंने, तलवारों की टनकार में भी बहुत नाम सुने मैंने। मेरी किताब और मेरी तलवारें मेरे कान में अब 'रसूल' नाम फुसफुसाती हैं।'

पैगंबर जैसे लगनेवाले बुजुर्ग मेरे एक कान पर झुककर 'रसूल' फुसफुसाए। फिर उनहोंने मेरे दूसरे कान पर झुककर जोर से कहा, 'रसूल!' इसके बाद उन्होंने मुझे रोते हुए को मेरी माँ के हाथों में सौंप दिया और उसे तथा घर में बैठे सभी लोगों को संबोधित करते हुए कहा -

'तो यह है रसूल!'

घर में बैठे लोगों ने मूक सहमति से मेरे नाम की पुष्टि की। बड़े-बूढ़ों ने बूजा पीना शुरू किया और हर कोई हाथ से मूँछों को साफ करते हुए काँखा।

हर पहाड़ी को दो चीजों की रक्षा करनी चाहिए - टोपी और नाम की। टोपी बहुत भारी हो सकती है। नाम भी। ऐसा लगता है कि दुनिया को देखे-जाने और बहुत-सी किताबें पढ़े-गुढ़े पके बालोंवाले बुजुर्ग ने मेरे नाम में कोई अर्थ और उद्देश्य भर दिया था।

अरबी भाषा में रसूल का मतलब है - 'दूत' या अगर इससे भी अधिक सही तौर पर कहा जाए, तो 'प्रतिनिधि'। हाँ, तो किसका दूत या प्रतिनिधि हूँ मैं?

नोटबुक से । बेल्जियम। मैं संसार के कवि-समागम में भाग ले रहा हूँ। विभिन्न जातियों और देशों के प्रतिनिधि यहाँ जमा हैं। हर किसी ने मंच पर आकर अपनी जनता, जनता की संस्कृति, कविता, और भाग्य की चर्चा की। कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी थे - लंदन से आनेवाला हंगेरियाई, पेरिस से आनेवाला एस्तोनियाई, सान-फ्रांसिस्को से आनेवाला पोलैंडी... इसमें कोई कर ही क्या सकता है - किस्मत ने उन्हें अलग-अलग देशों, सागरों और पर्वतों, उनकी मातृभूमियों से दूर ले जाकर फेंक दिया है।

सबसे ज्यादा तो मुझे उस कवि ने हैरान किया, जिसने यह कहा -

'महानुभावो, आप अलग-अलग देशों से आकर यहाँ जमा हुए हैं। आप विभिन्न जातियों के प्रतिनिधि हैं। केवल मैं ही न तो किसी जाति और और न किसी देश का प्रतिनिधि हूँ। मैं सभी जातियों, सभी देशों का प्रतिनिधि हूँ, मैं कविता का प्रतिनिधि हूँ। हाँ, मैं कविता हूँ। मैं वह सूरज हूँ, जो सारी दुनिया को रोशनी देता है, मैं वह बारिश हूँ जो अपनी जाति का ध्यान किए बिना सारी पृथ्वी पर पानी बरसाती है, मैं वह पेड़ हूँ, जो पृथ्वी के हर हिस्से में समान रूप से फूलता-फलता है।'

वह ऐसा कहकर मंच से नीचे उतर गया। बहुतों ने तालियाँ बजाईं। मैंने सोचा, उसकी बात सही है, निश्चय ही हम कवि सारी दुनिया के लिए उत्तरदायी हैं,

मगर जिसे अपने पर्वतों से प्यार नहीं, वह सारी पृथ्वी का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। मुझे तो वह उस आदमी जैसा लगता है, जो अपना घर-घाट छोड़कर किसी दूसरी जगह चला जाए, वहाँ शादी कर ले और सास को माँ कहने लगे। मैं सासों के खिलाफ नहीं हूँ, मगर अपनी माँ को छोड़कर कोई दूसरी माँ नहीं हो सकती।

हर व्यक्ति को अपनी किशोरावस्था से ही यह समझना चाहिए कि वह अपनी जनता का प्रतिनिधि बनने के लिए इस दुनिया में आया है और उसे यह भूमिका निभाने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने को तैयार रहना चाहिए।

इनसान को नाम, टोपी और अस्त्र दिए जाते हैं, पालने के समय से ही उसे अपने प्यारे गीत सिखाए जाते हैं।

भाग्य मुझे कहीं भी क्यों न ले जा फेंके, हर जगह ही मैं अपने को उस धरती, उन पहाड़ों, उस गाँव का प्रतिनिधि अनुभव करता हूँ, जहाँ मैंने घोड़े पर जीन कसना सीखा। मैं हर जगह खुद को अपने दागिस्तान का विशेष संवाददाता मानता हूँ।

मगर अपने दागिस्तान में मैं समूची मानवजाति का विशेष संवाददाता, अपने सारे देश, यहाँ तक कि सारी दुनिया का प्रतिनिधि बनकर लौटता हूँ।

अपनी धरती के बारे में
कहना चाहा बहुत, नहीं कुछ भी कह पाया,
भरी खुरजियाँ संग लिए हूँ
हाय मुसीबत, मैं तो उनको खोल न पाया!

अपनी भाषा में दुनिया का
गाना चाहा गीत, मगर मैं गा न पाया,
लादे हूँ, संदूक पीठ पर
हाय मुसीबत, ताला पर न खुला-खुलाया!

पहाड़ी घर की समतल छत पर हम बैठ जाते हैं और मेरे गाँववाले मुझसे पूछने लगते हैं -

'दूर-दराज के मुल्कों में कही कोई हमारा हमवतन नहीं मिला?'

'दुनिया में हमारे पहाड़ों जैसे पहाड़ भी कहीं हैं?'

'अजनबी जगहों पर क्या तुम्हारा मन उदास हुआ, तुम्हें हमारे गाँव की याद आई?'

'दूसरे देशों में लोग हमारे बारे में जानते है या नहीं? उन्हें मालूम है कि इस दुनिया में हम भी रहते हैं?'

मैं उन्हें जवाब देता हूँ -

'अगर हम खुद ही ढंग से अपने को नहीं जानते, तो वे हमें कहाँ से जानेंगे। हम कुल दस लाख हैं। हम दागिस्तानी पहाड़ों की पथरीली मुट्ठी में मानो बंद हैं। दस लाख लोग हैं और चालीस जबानें बोलते हैं...'

'तो तुम ही हमारे बारे में बताओ - खुद हमें भी और सारी दुनिया में रहनेवाले दूसरे लोगों को भी। सदियों के दौरान खंजरों और तलवारों ने हमारी दास्तान लिखी है। इसे लोगों की भाषा में बदलकर लिख डालो। अगर तुम, जिसने त्सादा गाँव में जन्म लिया है, ऐसा नहीं करोगे, तो कोई दूसरा तो यह करने से रहा।

'अपने विचारों को चुने हुए घोड़ों के झुंड में एकत्रित कर लो। ऐसे झुंड में, जिसमें एक से एक तेज घोड़ा हो, घटिया घोड़ों का नाम-निशान भी न हो। तुम्हारे विचार डरे हुए घोड़ों या पहाड़ी बकरों के झुंड की तरह पृष्ठों पर सरपट दौड़ते हुए आएँ।

'अपने भावों को छिपाओ नहीं। छिपाओगे, तो बाद में भूल जाओगे कि उन्हें कहाँ रख दिया। कोई कंजूस भी कभी-कभी इसी तरह अपने गुप्त खजाने को भूल जाता और कंजूसी के कारण अपनी दौलत खो बैठता है।

'मगर अपने विचार दूसरों को भी नहीं दो। खिलौने की जगह बच्चे को कीमती साज तो नहीं देना चाहिए। बच्चा साज को या तो तोड़ देगा या खो देगा या फिर उससे अपने को जख्मी कर लेगा।

'अपने घोड़े की आदतों को खुद तुमसे ज्यादा अच्छी तरह और कोई नहीं जानता।'

मेरे पिता जी की पगडंडी का किस्सा । हमारे छोटे-से त्सादा और बड़े खूंजह गाँव के बीच मोटर सड़क है। खूंजह हलका केंद्र है। मेरे पिता जी आम रास्ते से नहीं, बल्कि अपनी बनाई पगडंडी से ही हमेशा खूंजह जाते थे। उन्होंने ही उस पगडंडी के निशान बनाए, उसे अपने पैरों से रौंदा और हर सुबह और हर शाम वे उस पर आते-जाते थे।

अपनी पगडंडी पर वे अद्भुत फूल ढूँढ़ लेते थे। वे उनका गुलदस्ता तो और भी अद्भुत बनाते थे।

जाड़े में वे पगडंडी के दोनों ओर ताजा गिरी बर्फ से लोगों, घोड़ों और घुड़सवारों की मूतियाँ बनाते। त्सादा और खूंजह के लोग बाद में इन आकृतियों को देखने आते।

वे गुलदस्ते कभी के मुरझा और सूख चुके, बर्फ से बनाई गई आकृतियाँ भी कभी की पिघल चुकीं। मगर दागिस्तान के फूल, मगर पहाड़ी लोगों का स्वरूप मेरे पिता जी की कविताओं में जिंदा है।

जब मैं किशोर था और मेरे पिता जी अभी जिंदा थे, तो एक बार मुझे खूंजह जाना पड़ा। मैं बड़े रास्ते से हट गया और मैंने उस पगडंडी पर जाना चाहा, जो मेरे अब्बा ने बनाई थी। एक बुजुर्ग पहाड़ी ने मुझे देखकर रोका और बोले -

'पिता की पगडंडी पिता के लिए ही रहने दो। अपने लिए दूसरी, अपनी पगडंडी ढूँढ़ लो।'

बुजुर्ग पहाड़ी की बात मानते हुए मैं नए मार्ग की खोज में चल दिया। मेरे गीतों की पगडंडी लंबी और टेढ़ी-मेढ़ी रही, मगर अपने गुलदस्ते के लिए अपने फूल चुनता हुआ मैं उस पर चल रहा हूँ।

इसी पगडंडी पर चलते हुए ही पहले पहल इस किताब का ख्याल मेरे दिमाग में आया।

इरादा बन गया - इसका मतलब है कि बिसमिल्ला हो जाए। बच्चा तो जरूर पैदा होगा, जरूरत तो है उसे सहेजने की, ठीक वैसे ही जैसे नारी अपने गर्भ को सहेजती है और फिर प्रसव-पीड़ा सहकर, पसीने से तर-बतर होकर बच्चे को जन्म देती है। किताब भी ऐसे ही लिखी जाती है।

मगर बच्चे का नाम तो उसके जन्म से पहले ही चुना जा सकता है। अपनी किताब को मैं क्या नाम दूँ? फूलों से मैं उसका नाम लूँ? या सितारों से? या दूसरी बुद्धिमत्तापूर्ण किताबों से चुनूँ?

नहीं, अपने घोड़े पर मैं पराया जीन नहीं कसूँगा। किसी दूसरी जगह से लिया गया नाम तो केवल उपनाम या लकब ही हो सकता है, नाम नहीं।

यह तो ऐसा ही है। पर यदि हम शीर्षक की खोज में होते हैं, तो पुस्तक की विषय-वस्तु, अपने सामने रखे गए लक्ष्य को ही उसका आधार बनाना चाहिए।

टोपी सिर के मुताबिक न कि इसके उलट, चुनी जाती है। पंदूर की लंबाई से ही उसके तारों की लंबाई तय होती है।

मेरा गाँव, मेरे पहाड़, मेरा दागिस्तान। बस, यही घोंसला है मेरे चिंतन, भावनाओं और कार्य-कलापों का। पंख निकलने पर इसी घोंसले से मैं उड़ा था। इसी घोंसले में मेरे सभी गीत जन्म लेते हैं। दागिस्तान - मेरा चूल्हा है, मेरा पालना है।

तो फिर देर तक सोचने की क्या जरूरत है? पहाड़ों में बेटे को अक्सर दादा का नाम दिया जाता है। मेरी किताब मेरा बच्चा होगी और मैं दागिस्तान का बेटा हूँ। इसका मतलब है कि उसका नाम हुआ '**दागिस्तान**'। भला इससे अधिक उचित, अधिक सुंदर और सही कोई दूसरा नाम भी हो सकता है?

कोई राजदूत किस देश का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी मोटर पर लगी झंडी से इसका पता चलता है। मेरी किताब - मेरा देश है। उसका नाम - झंडी है।

लेखक के विचार हर पृष्ठ पर, हर पंक्ति में, हर शब्द के लिए आपस में उलझते हैं। तो मेरे विचार भी किसी अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी में कार्य-सूची से आरंभ करके लगातार शब्दों की हाथापाई में उलझनेवाले मंत्रियों की तरह पुस्तक के नाम के बारे में बहस शुरू कर रहे हैं

तो एक मंत्री ने भावी पुस्तक को एक शब्द 'दागिस्तान' नाम देने का सुझाव पेश किया। दूसरे मंत्री को यह नहीं रुचा। अपने सामने कागज खोलते हुए उसने एतराज किया -

'यह नाम नहीं चलेगा। ठीक नहीं रहेगा। छोटी-सी किताब को भला सारे देश का नाम कैसे दिया जा सकता है? बाप की टोपी तो बच्चे के सिर पर नहीं रखी जा सकती, बच्चे का सिर ही उसमें गायब हो जाएगा।'

'क्यों ठीक नहीं रहेगा?' सुझाव देनेवाले मंत्री ने उसकी बात काटी। 'चाँद जब आसमान में तैरता है और सागर या नदी की चिकनी सतह पर प्रतिबिंबित होता है, तो उसके प्रतिबिंब को भी चाँद ही कहते हैं, न कि कुछ और। इस प्रतिबिंब के लिए क्या कोई दूसरा नाम गढ़ने की जरूरत है? हाँ, यह सही है कि एक किस्से में लोमड़ी भेड़िये को चाँद का प्रतिबिंब दिखाकर उसे यह विश्वास दिला देती है कि वह चर्बी का टुकड़ा है और भेड़िया बेवकूफ बनकर नदी में कूद पड़ता है। मगर लोमड़ी तो जानी-मानी धोखेबाज और मक्कार है।'

'नहीं चलेगा। ठीक नहीं रहेगा,' दूसरा मंत्री अपनी बात पर अड़ा रहा। 'दागिस्तान तो सबसे पहले भौगोलिक अर्थ का सूचक है। पर्वत, नदियाँ, दर्रे, सोते, यहाँ तक कि सागर भी। मुझसे तो जब कोई 'दागिस्तान' कहता है, तो सबसे पहले भौगोलिक मानचित्र ही मेरे सामने उभरता है।'

'जी नहीं!' मैंने दखल देते हुए कहा। 'मेरा दिल दागिस्तान से लबालब भरा हुआ है, मगर वह भौगोलिक मानचित्र नहीं है। मेरे दागिस्तान की भौगोलिक या दूसरी भी कोई सीमाएँ नहीं हैं। न ही मेरा दागिस्तान सुंदर, क्रमबद्ध रूप से एक सदी से दूसरी सदी की धारा में बहता है। मेरी किताब, अगर मैंने उसे कभी लिख लिया, तो वह दागिस्तान के बारे में पाठयपुस्तक जैसी नहीं होगी। मैं सदियों को घुला-मिला दूँगा, फिर ऐतिहासिक घटनाओं का सार, जनता और 'दागिस्तान' शब्द का निचोड़ निकाल लूँगा।'

ऐसा लग सकता है कि दागिस्तान सभी दागिस्तानियों के लिए एक जैसा है, समान है। फिर भी हर दागिस्तानी का अपना दागिस्तान है।

मेरा भी अपना दागिस्तान है। इस रूप में केवल मैं ही इसे देखता हूँ, केवल मैं ही जानता हूँ। दागिस्तान में मैंने जो कुछ देखा, जो कुछ अनुभव किया, मुझसे पहले के और मेरे साथ जीनेवाले सभी दागिस्तानियों ने जो कुछ अनुभव किया, गीतों और नदियों, कहावतों और चट्टानों, उकाबों और नालों, पहाड़ी पगडंडियों और यहाँ तक कि पहाड़ों की प्रतिध्वनि से भी मेरे अपने दागिस्तान का रूप बना है।

नोटबुक से । किस्लोवोद्स्क। कमरे में हम दो जने रहते हैं। एक मैं हूँ और दूसरा उज्बेक है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय हमें खिड़की में से एल्बुज की दोनों चोटियाँ नजर आती हैं।

मैं सोचता हूँ कि ये शामिल के दो मुरीदों, दो दोस्तों के घुटे हुए और जख्मों से भरे सिर जैसी हैं।

इसी वक्त मेरा उज्बेक साथी कहता है -

'दो सिरोंवाला यह पहाड़ मुझे बुखारा के सफेद बालोंवाले उस बुजुर्ग की याद दिलाता है, जो पुलाव की दो प्लेटें लिए जा रहा था और सुबह के वक्त घाटी के नजारे से मुग्ध होकर अचानक रुका और जहाँ-का-तहाँ बुत बना खड़ा रह गया।'

नोटबुक से। कलकत्ते में महान रवींद्रनाथ टैगोर के घर में मैंने एक पक्षी का चित्र देखा। ऐसा पक्षी पृथ्वी पर कहीं नहीं है और न कभी था ही। टैगोर की

आत्मा में उसका जन्म हुआ और वहीं वह रहा। वह उनकी कल्पना का परिणाम था। मगर, जाहिर है कि अगर टैगोर ने हमारी दुनिया के असली परिंदे न देखे होते, तो वे अपने इस अद्भुत पक्षी की भी कल्पना न कर पाते।

मेरा भी ऐसा ही अनूठा परिंदा है - मेरा दागिस्तान। तो इसलिए कि पुस्तक का नाम बिल्कुल सही हो, उसे 'मेरा दागिस्तान' कहना चाहिए। ऐसा इसलिए नहीं कि वह संपत्ति के रूप में मेरा है, बल्कि इसलिए कि उसके बारे में मेरी कल्पना दूसरे लोगों की कल्पना से भिन्न है।

सो तय हो गया। मुखावरण पर लिखा जाएगा '**मेरा दागिस्तान**'।

मंत्रियों की सभा में कुछ देर तक खामोशी रही, किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। मगर अचानक तीसरा मंत्री, जो अभी तक चुपचाप बैठा रहा था, अपनी जगह से उठकर मंच की तरफ चल दिया।

'मेरा दागिस्तान। मेरे पर्वत। मेरी नदियाँ। कुछ बुरा नहीं है इसमें। केवल युवावस्था, विद्यार्थी जीवन के दिनों में ही होस्टल में रहना अच्छा होता है। बाद में आदमी का अपना कमरा या अपना फ्लैट होना चाहिए। 'मेरा चूल्हा' - इतना कहना ही काफी नहीं है, चूल्हे में आग भी होनी चाहिए। 'मेरा पालना'- इतना कहने से ही काम नहीं चलता, पालने में बच्चा भी होना चाहिए। 'मेरा दागिस्तान'- इतना कहना ही काफी नहीं, इन शब्दों की तह में कोई विचार - दागिस्तान का भाग्य, उसका आज का दिन भी होना चाहिए। दागिस्तान के कवि सुलेमान स्ताल्स्की अपनी सूझबूझ के लिए विख्यात हैं। वे उस बात को समझते थे, जो मैं अब कहना चाहता हूँ। उन्होंने कहा है, 'मैं न तो लेजगीन, न दागिस्तानी और न काकेशियाई कवि हूँ। मैं सोवियत कवि हूँ। मैं इस समूचे विराट देश का स्वामी हूँ।' तो ऐसा कहा है पके बालोंवाले अक्लमंद सुलेमान ने। मगर तुम एक ही रट लगाए जा रहे हो - मेरा गाँव, मेरे पर्वत, मेरा दागिस्तान। ऐसा सोचा जा सकता है कि तुम्हारे लिए दागिस्तान से ही सारी दुनिया का आरंभ और अंत होता है। मगर क्या क्रेम्लिन से ही दुनिया की शुरुआत नहीं हुई? यही है, जो मुझे किताब के तुम्हारे नाम में महसूस नहीं होता। तुमने सीना तो बना दिया, मगर उसमें धड़कता हुआ दिल रखना भूल गए। तुमने आँखें तो बना दीं, मगर उसमें धड़कता हुआ दिल रखना भूल गए। तुमने आँखें तो बना दीं, मगर उनमें भावों की चमक पैदा करना भूल गए। ऐसी निर्जीव आँखे अंगूरों के समान होती हैं।'

मंच से ऐसी बढ़िया उपमा देकर यह तीसरा मंत्री मोटी-मोटी और बड़ी गंभीर पुस्तकों के उद्धरणोंवाला कागजों का पुलिंदा बगल में दबाकर बड़ी शान से अपनी सीट की तरफ चल दिया। साथ ही उसने दूसरों की तरफ ऐसे देखा मानो उसके शब्दों के बाद वे उसी तरह कुछ न कह सकते हों, जैसा कि जज के फैसले के बाद होता है।

मगर इसी वक्त सभा में भाग लेनेवाला एक अन्य मंत्री भागकर मंच पर आ खड़ा हुआ। वह जिंदादिल, खुशमिजाज और दूसरों के मुकाबले में कुछ कम उम्र भी था। उसने अपना भाषण दूसरों की तरह नहीं, बल्कि कविता से आरंभ किया-

जब तक कोई बैठा है, हम जान न पाएँ
लंगड़ा है वह, या कि नहीं है वह लंगड़ा,
जब तक कोई सोता है, हम जान न पाएँ
अंधा है वह, या कि नहीं है वह अंधा,
जब तक कोई खाता है, हम जान न पाएँ
बुजदिल है वह, या कि वीर है बहुत बड़ा,
जब तक कोई चुप रहता, हम जान न पाएँ
सच्चा है वह या कि झूठ उसका धंधा।

'तो मैं यह कहना चाहता हूँ,' उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'निश्चय ही जब कोई विचार हो, तो अच्छा रहता है, विशेषकर ऐसा विचार, जिसका मुझे पहलेवाले वक्ता ने उल्लेख किया है। मगर कुछ ज्यादा विचारोंवाले साथी भी तो होते हैं। ऐसे लोगों से तो केवल विचार को ही हानि पहुँचती है। मैं इत्तला गाँव के एक ऐसे ही मिखाईल की याद दिलाना चाहता हूँ...'

सभा में चूँकि हर वक्ता के लिए समय निर्धारित नहीं किया गया था, इसलिए भाषणकर्ता ने प्रसंगवश हमें अपने मिखाईल का किस्सा भी सुना दिया।

खूंजह हलका पार्टी कमिटी में मिखाईल ग्रिगोरियेविच हुसैनोव साईस का काम करता था। दरअसल, वह मिखाईल नहीं, मुहम्मद था। गृह-युद्ध के दिनों में किसी दूसरी जगह रहा और अपने जन्म-स्थान पर मुहम्मद नहीं, बल्कि मीशा बनकर लौटा। मतलब यह कि उसने अपना दागिस्तानी नाम बदल लिया। उसके बूढ़े बाप ने तब इस नवजात मीशा से कहा -

'तुम्हारी माँ तुम्हारा मातम मनाए! बेशक मैंने तुम्हें मुहम्मद नाम दिया था, फिर भी यह तुम्हारा नाम है और तुम उसके साथ जैसा भी चाहो, बर्ताव करने का हक

रखते हो। मगर मेरे साथ ऐसा बर्ताव करने की इजाजत तुम्हें किसने दी? हसन को ग्रिगोरी में बदलने का हक तुम्हें किसने दिया? मैं तुम्हारा बाप हूँ, अभी जिंदा हूँ! और हसन ही रहना चाहता हूँ!'

गृह-युद्ध में भाग लेनेवाला अटल रहा। वह मिखाईल ग्रिगोरियेविच ही बना रहा और इसी उपाधि के साथ खूंजह हलका पार्टी कमिटी में साईसी करता रहा।

उसकी समझ-बूझ के घोड़े बहुत कम और कमजोर थे, मगर वह अपने को अत्यधिक विचारवान व्यक्ति मानता था और सभी जगह इसकी चर्चा करता था। बहुत से लोग उसे विचारों का सबसे उत्साहशील संघर्षकर्ता भी मानने लगे।

एक बार हमारे उस्ताद हाजी की इसलिए मलामत की गई कि उसके दूर के रिश्ते का एक भाई शायद कोई शाहजादा था। उस्ताद हाजी ने अपने पार्टी-फार्म में यह नहीं लिखा था।

पार्टी की इस मलामत की वजह से भारी मन लिए हाजी धीरे-धीरे अपने बातलाहीच गाँव जा रहा था। रास्ते में हलका पार्टी कमिटी का साईस मिखाईल ग्रिगोरियेविच उससे आ मिला। हाजी ने उससे अपनी मुसीबत का जिक्र किया।

'मलामत तो बहुत कम है तुम्हारे लिए! पार्टी से निकाल दिया जाना चाहिए था। तुम कैसे पार्टीवाले हो, कैसे कम्युनिस्ट हो? असली कम्युनिस्ट को तो जहाँ जरूरी था, खुद ही सब कुछ लिख देना चाहिए था... बेशक वह दूर के रिश्ते का ही नही, सगा भाई, सगी बहन या सगा बाप ही क्यों न होता...'

उस्ताद ने नजर ऊपर उठाई, मिखाईल ग्रिगोरियेविच की तरफ देखा और कहा -

'सही तौर पर ही तुम्हें अत्यधिक विचारवान माना जाता है। हैरानी होती है कि कैसे तुमने दागिस्तान के सभी पर्वतों को अब तक समतल नहीं कर दिया। सीधे खड़े पर्वतों की तुलना में समतल स्थान अधिक 'विचारपूर्ण' और सुगम-सरल होते हैं। पर खैर तुम जैसों से बात करना बेकार है।'

यद्यपि दोनों को एक ही गाँव जाना था, तथापि हाजी सड़क छोड़कर पासवाली पगडंडी पर हो लिया।

'कहाँ चल दिए तुम?' मिखाईल ग्रिगोरियेविच को आश्चर्य हुआ।

'तुम्हें इससे क्या मतलब है - हमारा रास्ता एक नहीं है।'

'मगर मैं तो कम्युनिज्म की तरफ जा रहा हूँ। अगर तुम इसकी उल्टी दिशा में जाना चाहते हो, तो...'

'कम्युनिज्म की तरफ भी मैं तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहता। देखेंगे कि हममें से कौन वहाँ जल्दी पहुँचता है।'

यह किस्सा खत्म करके वक्ता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा -

एक कवि ने चरवाहे के बारे में ऐसी कविता लिखी है -

> लो, पहाड़ों में कुहासा छँट गया है
> रास्ता है साफ, अब उज्ज्वल,
> कम्युनिज्म में, रे गड़रिये
> तू सभी भेड़ें, लिए चल।

या फिर विचारों के ऐसे ही एक दूसरे दीवाने ने हलका पार्टी कमिटी को यह अर्जी लिख भेजी - 'मेरे सारे प्रयासों, यहाँ तक कि शारीरिक जोर-जबर्दस्ती के बावजूद मेरी पत्नी पर्याप्त लगन के साथ 'कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का संक्षिप्त इतिहास' नहीं पढ़ती। वैचारिक शिक्षा में सहायता देने के उद्देश्य से मैं हलका कमिटी से अपनी पत्नी पर प्रभाव डालने का अनुरोध करता हूँ।'

या फिर दागिस्तान के लेखक संघ के दरवाजे पर एक बार यह भयानक घोषणा दिखाई दी - 'गहरी सैद्धांतिक तैयारी के बिना तुम्हें इस दरवाजे को लाँघने का अधिकार नहीं है।'

मशहूर बुजुर्ग शायर अबूतालिब गफूरोव किसी काम से लेखक-संघ जा रहे थे, मगर यह चेतावनी पढ़कर लौट गए।

या फिर बहुजातीय नगर, मखचकला में ईसाइयों, मुसलमानों और यहूदियों के अलग-अलग कब्रिस्तान हैं। जनतंत्र से सक्रिय कार्यकर्ताओं की बैठक में एक अत्यधिक विचारवान साथी ने अपने भाषण में यह कहा -

'हम जातियों के बीच मैत्री सुदृढ़ करने के लिए हर दिन अथक संघर्ष कर रहे हैं। मगर फिर भी हमारे यहाँ कितने ही अलग-अलग कब्रिस्तान हैं। अब एक साझा कब्रिस्तान बनाने का वक्त आ गया है। उसके नाम के बारे में भी सोचा जा सकता है। मिसाल के तौर पर 'एक ही परिवार के बच्चे' यानी कुछ ऐसा ही... उदाहरण के लिए, मेरे माँ-बाप भगवान को मानते थे, उसकी पूजा करते थे। भला मैं, जो 1937 से पार्टी का सदस्य हूँ, एक ही कब्रिस्तान में उनके साथ कैसे लेट

सकता हूँ। नहीं, बहुत पहले से ही हमारे शहर में अधिक ऊँचे वैचारिक स्तर पर कब्रिस्तान बनाया जाना चाहिए था।'

कहते हैं कि कुछ ही समय पहले वह बेचारा चल बसा और नया काब्रिस्तान नहीं देख पाया।

'इसलिए मैं यह कहता हूँ' आवाज ऊँची करते हुए मंत्री ने अपनी बात जारी रखी, 'मेरा दागिस्तान - यह तो जैसे टोपी है। अधिक महत्वपूर्ण क्या है, टोपी या सिर! मैं आपको यह किस्सा सुनाता हूँ कि तीन शिकारियों ने कैसे एक भेड़िये का शिकार करना चाहा।

शिकारी का सिर था या नहीं! तीन शिकारियों को यह पता चला कि गाँव से थोड़ी ही दूर दर्रे में एक भेड़िया छिपा हुआ है। उन्होंने उसे खोजने और मार डालने का फैसला किया। कैसे उन्होंने उसका शिकार किया, लोग अलग-अलग ढंग से यह बात सुनाते हैं। मुझे तो बचपन से यह किस्सा इस तरह याद है।

शिकारियों से बचने के लिए भेड़िया गुफा में जा छिपा। उसमें जाने का एक ही, और वह भी बहुत तंग रास्ता था- सिर तो उसमें जा सकता था, मगर कंधे नहीं। शिकारी पत्थरों के पीछे छिप गए, अपनी बंदूकें उन्होंने गुफा के मुँह की तरफ तान लीं और भेड़िये के बाहर आने का इंतजार करने लगे। मगर लगता है कि भेड़िया भी कुछ मूर्ख नहीं था। वह आराम से वहाँ रहा। मतलब यह कि हार उसकी होगी, जो बैठे-बैठे और इंतजार करते-करते पहले ऊब जाएगा।

एक शिकारी ऊब गया। उसने किसी-न-किसी तरह गुफा में घुसने और वहाँ से भेड़िये को निकालने का फैसला किया। गुफा के मुँह के पास जाकर उसने उसमें अपना सिर घुसेड़ दिया। बाकी दो शिकारी देर तक अपने साथी की तरफ देखते और हैरान होते रहे कि वह आगे रेंगने या फिर सिर बाहर निकालने की ही कोशिश क्यों नहीं करता। आखिर वे भी इंतजार करते-करते तंग आ गए। उन्होंने शिकारी को हिलाया-डुलाया और तब उन्हें इस बात का यकीन हो गया कि उसका सिर नहीं है।

अब वे यह सोचने लगे - गुफा में घुसने के पहले उसका सिर था या नहीं? एक ने कहा कि शायद था, तो दूसरा बोला कि शायद नहीं था।

सिर के बिना धड़ को वे गाँव में लाए, लोगों को घटना सुनाई। एक बुजुर्ग ने कहा, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि शिकारी भेड़िये के पास गुफा में घुसा,

वह एक जमाने से ही, यहाँ तक कि पैदाइश से ही सिर के बिना था। बात को साफ करने के लिए वे उसकी विधवा हो गई बीवी के पास गए।

'मैं क्या जानूँ कि मेरे पति का सिर था या नहीं? सिर्फ इतना ही याद है कि हर साल वह अपने लिए नई टोपी का आर्डर देता था।'

विचार तो शब्दों में नही, काम में होना चाहिए। वह स्वयं पुस्तक में होना चाहिए, न कि मुखावरण से चिल्लाए। वह शब्द, जो भाषण के अंत में कहा जा सकता है, उसे शुरू में ही कहने की जरूरत नहीं होती।

नवजात शिशु की छाती पर अक्सर गंडा-ताबीज लटका दिया जाता है ताकि उसकी जिंदगी आराम-चैन से कटे, वह बीमार न हो, उसे दुख-मुसीबतों का सामना न करना पड़े। हम इस बहस में नहीं पड़ेंगे कि गंडे-तावीज से कोई फायदा होता है या नहीं, मगर इतना सभी जानते हैं कि उसे कमीज के नीचे पहना जाता है, उसकी बाहर नुमाइश नहीं की जाती।

हर किताब में ऐसा ही गंडा-तावीज होना चाहिए, जिसका लेखक को पता हो, जिसके बारे में पाठक अनुमान लगाए, मगर जो कमीज के नीचे छिपा हो।

या फिर जब उर्बेच बनाया जाता है, तो उसमें थोड़ा-सा शहद मिला दिया जाता। शहद मीठा और सुगंधित पेय में बदल जाता है, मगर उसे न तो देखा और न छुआ जा सकता है।

या फिर बंबई में एक ऐसा बाग है, जो हमेशा हरा-भरा रहता है। इर्द-गिर्द खुश्की और बेहद गर्मी के बावजूद वह न तो कभी मुरझाता है और न सूखता है। मामला यह है कि बाग के नीचे किसी को भी नजर न आनेवाली झील है, जो वृक्षों को ठंडी, प्राणदायी नमी प्रदान करती है।

विचार वह पानी नहीं है, जो शोर मचाता हुआ पत्थरों पर दौड़ लगाता है, छींटे उड़ाता है, बल्कि वह पानी है, जो अदृश्य रूप से मिट्टी को नम करता है और पेड़-पौधों की जड़ों को सींचता है।

'इसका क्या मतलब निकला है!' उछलकर खड़े होते और मेज पीटते हुए उस मंत्री ने चिल्लाकर कहा, जो किताबों और उद्धरणों से घिरा हुआ था। 'इसका मतलब यह निकलता है कि टोपी को सफेद पगड़ी, लाल फीते या पाँच नोकोंवाले सितारे-किस चीज से सजाया जाता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता? इसका तो यह मतलब निकलता है कि आदमी छाती पर लाल तमगा लगाता है या काली सलीब, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता? आपके मुताबिक तो सिर्फ नेक दिल का

होना ही काफी है। तानूस्सी गाँव के हसन की तरह एक आदमी को एक साथ गोनोह में अध्यापक, गीनवचूतल में युवा कम्युनिस्ट संघ का सेक्रेटरी और खूंजह में मुल्ला नहीं होना चाहिए। किताब पर भी यही बात लागू होती है। नहीं, नहीं, हरगिज नहीं! विचार - यह तो झंडा है और उसे नजर से नहीं छिपाना चाहिए। उसे ऊँचा उठाकर ऐसे ले जाना चाहिए कि सभी लोग देखें और उसके पीछे चलें।'

'अहा! जो तुम्हारे शब्दों का विरोध करे, उसकी बीवी उसे दगा दे,' अपेक्षाकृत युवा मंत्री ने फिर से कहना शुरू किया, 'मगर तुम ऐसे करना चाहते हो कि झंडा अलग हो और उसे देखनेवाले लोग अलग हों। मतलब यह कि विचार लोगों की आत्माओं और हृदयों से अलग जिएँ। तुम उन्हें दो अलग-अलग घोड़ा-गाड़ियों अगर अचानक अलग-अलग दिशा में चल दीं, तो? तुम कहते हो कि आदमी को न तो अवार, न दागिस्तानी, बल्कि सिर्फ सोवियत होना चाहिए। मगर मिसाल के लिए, मैं अपने को अवार, दागिस्तान का बेटा, और साथ ही सोवियत संघ का नागरिक अनुभव करता हूँ। क्या ये भावनाएँ एक दूसरी का विरोध करती हैं?'

जैसा कि सभी जानते हैं, क्रेम्लिन से दुनिया शुरू होती है। मैं भी इससे सहमत हूँ। मगर मेरे लिए इसके अलावा दुनिया का आरंभ मेरे चूल्हे, मेरे पहाड़ी घर की दहलीज, मेरे गाँव से भी होता है। क्रेम्लिन और गाँव, कम्युनिज्म के विचार और मातृभूमि की भावना-पक्षी के दो पंख हैं, मेरे पंदूर के दो तार हैं।

'तो फिर एक टाँग पर भचककर चलने की क्या जरूरत है? तब किताब का दूसरा नाम भी सोचना चाहिए ताकि वह उसका आंतरिक सार अभिव्यक्त करे।'

मैंने उसे हर जगह तलाश किया। भारत की यात्रा करते हुए मैं दागिस्तान के बारे में सोचता रहा। उस देश की पुरातन संस्कृति, उसके दर्शन में मुझे किसी रहस्यपूर्ण कंठ की ध्वनियाँ सुनाई दीं। मगर मेरे लिए मेरे दागिस्तान की ध्वनि सर्वथा वास्तविक है और वह तो पृथ्वी पर बहुत दूर तक भी सुनाई देती है। कभी वह वक्त भी था, जब वीरान दर्रे और नंगी चट्टानें ही 'दागिस्तान' शब्द को प्रतिध्वनित करती थीं। अब वह सारे देश, सारी दुनिया में गूँजता है और करोड़ों दिलों में उसकी प्रतिध्वनि होती है।

नेपाल के बौद्धमठों में, जहाँ बाईस स्वास्थ्यप्रद धाराएँ बहती हैं, मैंने दागिस्तान के बारे में सोचा। मगर नेपाल अभी तराशा हुआ हीरा नहीं है और मैं अपने

दागिस्तान से उसकी तुलना नहीं कर सकता था, क्योंकि दागिस्तान का हीरा तो कई शीशे काट चुका है।

अफ्रीका में भी मैंने दागिस्तान के बारे में सोचा। तब मुझे ऐसे खंजर की याद आई, जो म्यान से केवल एक-चौथाई बाहर निकाला गया हो। दूसरे देशों - कनाडा, इंग्लैंड, स्पेन, मिस्र, जापान में भी मैं दागिस्तान के बारे में सोचता रहा - उनके साथ दागिस्तान की समानता या भिन्नता खोजता रहा।

युगोस्लाविया की यात्रा करते हुए एक बार मैं एड्रियाटिक सागर के तटवर्ती, अद्भुत दुब्रोव्निक नगर में जा पहुँचा। इस नगर में घर और सड़कें दर्रों और चट्टानों, अनेक उभारों और समतल स्थानों से मिलती-जुलती हैं। घर के दरवाजे कभी-कभी तो चट्टान को तोड़कर बनाए गए गुफाद्वार जैसे लगते हैं। मगर मध्ययुगीन और उनसे भी अधिक प्राचीन घरों की बगल में ही आधुनिक मकान भी बन रहे हैं।

हमारे दरबंद शहर की भाँति सारे नगर के गिर्द एक दीवार है। इसी दीवार पर मैं तंग, खड़े रास्तों और पथरीली सीढ़ियों से चढ़ा। सारी दीवार के साथ-साथ समान फासले पर पथरीली मीनारें खड़ी हैं। हर मीनार में दो कठोर आँखों की तरह दो सूराख हैं। ये मीनारें बड़ी लगन और वफादारी से खिदमत करनेवाले किसी इमाम के मुरीदों के समान लगती हैं।

दीवार पर रेंगते हुए मैं मीनारों के भीतर बने सूराखों में से झाँकना चाहता था। मैंने फौरन ऐसा किया होता, मगर वहाँ यात्रियों की भीड़ लगी थी और मैं सूराखों के करीब न जा सका। दूर से सूराखों के बीच से मुझे आसमानी रंग के छोटे-छोटे टुकड़ों की ही झलक मिली। ये टुकड़े सूराखों जितने और सूराख हथेली के बराबर थे।

आखिर जब मैंने नजदीक जाकर सूराख के साथ अपना चेहरा सटाया, तो जनवरी महीने की धूप में हहराता हुआ विराट सागर देखकर दंग रह गया। वह बड़ा प्यारा-सा था, क्योंकि एड्रियाटिक सागर फिर भी दक्षिणी सागर है, और साथ ही वह बड़ा बेचैन था, क्योंकि आखिर तो जनवरी का महीना था। सागर आसमानी नहीं, रंग-बिरंग था। वह अपनी लहरों को तटवर्ती चट्टानों पर फेंकता था, वे तोप का सा धमाका करती हुई चट्टानों से टकरातीं और वापिस लौट जातीं। सागर में जहाज तैर रहे थे और उनमें से प्रत्येक हमारे गाँव के बराबर था।

मैं अभी भी यात्रियों के पीछे खड़ा था और विराट संसार पर नजर डाल लेने के लिए पंजों पर उचका हुआ था। आखिर खिड़की के पास जाकर उसे अच्छी तरह देख लेने के बाद मुझे फिर से दागिस्तान का ध्यान हो आया।

दागिस्तान भी तो अपनी बारी के इंतजार में पीछे ही खड़ा रहा था, वह भी तो अपने पंजों पर उचका रहा था और आगे खड़े खुशकिस्मतों की चौड़ी पीठें उसके लिए भी तो बाधा बनी रही थीं। अब उसने किले की दीवार की छोटी-सी खिड़की में से मानो सारी दुनिया को देख लिया है। विराट संसार में वह खुद घुल-मिल गया है, अपने रस्म-रिवाजों, तौर-तरीकों, गीतों और अपनी गरिमा को उसने उसका अंग बना दिया है।

दागिस्तान के बारे में अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए विभिन्न कवियों ने विभिन्न समयों में विभिन्न उपमाएँ ढूँढ़ीं। दर्द भरे गायक महमद ने दागिस्तान की जातियों के बारे में यह कहा था कि वे पहाड़ी नदियों के समान हैं, जो लगातार घुल-मिलकर एक धारा बन जाना चाहती हैं, मगर ऐसा नहीं कर पातीं और हरेक अलग-अलग ही बहती जा रही है। उन्होंने यह भी कहा है कि दागिस्तान की जातियाँ उन्हें तंक दर्रे के फूलों की याद दिलाती हैं, जो एक-दूसरे की तरफ झुकते हैं, मगर गले नहीं लग पाते। मगर क्या दागिस्तान की जातियाँ अब एक पहाड़ी धारा नहीं बन गई, उन्होंने एक गुलदस्ते का रूप नहीं ले लिया?

बातीराई ने कहा है कि जिस तरह गरीब आदमी भेड़ की खाल का अपना फटा-पुराना कोट किसी कोने में फेंक देता है, उसी तरह टुकड़े-टुकड़े हुआ दागिस्तान पहाड़ी दर्रों में फेंक दिया गया है।

दागिस्तान का इतिहास पढ़ने के बाद मेरे पिता जी ने दागिस्तान की तुलना सींग के उस जाम से की थी, जिसे पीने के वक्त शराबी एक-दूसरे की तरफ बढ़ाते जाते हैं।

मैं किससे तुम्हारी तुलना करूँ, मेरे दागिस्तान? तुम्हारे भाग्य, तुम्हारे इतिहास के बारे में अपने विचार व्यक्त करने के लिए कौन-सी उपमा ढूँढ़ूँ? शायद बाद में मुझे बेहतर और अधिक जँचते हुए शब्द मिल जाएँ, मगर आज तो मैं यही कहता हूँ - 'संसार के महान महासागर की ओर छोटी खिड़की।' या अधिक संक्षिप्त रूप से - 'महान महासागर में खुलनेवाली छोटी खिड़की।'

तो साथी मंत्रियो, यह है दूसरा नाम उस किताब का, जो मैं लिखने जा रहा हूँ। मैं यह समझता हूँ कि दूसरे देश मेरे दागिस्तान के पड़ोसी भी अपने बारे में ऐसा

ही कह सकते हैं। इसमें क्या बुरी बात है, बेशक उसके हमनाम भी हों।

तो लीजिए '**मेरा दागिस्तान**' है मेरी टोपी और 'महान महासागर में खुलनेवाली छोटी खिड़की' है उस पर लगा हुआ सितारा।

मैंने अपना दो तारोंवाला पंदूर सुर कर लिया है और मैं उसे बजाने को तैयार हूँ। सिलाई करने के लिए तैयार व्यक्ति की भाँति मैंने सूई में धागा डाल दिया है।

मेरे मंत्रियों ने किताब का नाम स्वीकार कर लिया, उसी तरह जैसे अंतरराष्ट्रीय सभा में मंत्रीगण आखिर तो कार्य-सूची को स्वीकार कर लेते हैं।

ऐसा भी होता है कि दो भाई बड़े प्यार से एक ही घोड़े पर सवार होकर जाते हैं। ऐसा भी होता है कि एक नौजवान दो घोड़ों को एक ही लगाम से पानी पिलाने ले जाता है।

अबूतालिब ने कहा है कि टोपी तो उसने लेव तोलस्तोय जैसी खरीद ली, मगर वैसा सिर कहाँ खरीदेगा?

कहते हैं कि नाम तो उसका अच्छा है, मगर वह बड़ा होकर खुद कैसा आदमी बनेगा?

इस पुस्तक का रूप और इसे कैसे लिखा जाए

पड़ा रहेगा सदा म्यान में जो खंजर
जंग उसे लग जाएगा,
पड़ा रहेगा वीर अगर सोता घर में
वह तो तोंद फुलाएगा।
खंजर पर आलेख

डाल दिया है धागा मैंने सूई में
पर मैं जाने कैसा कोट बनाऊँगा?
तार कसे, कर लिया उन्हें सुर में मैंने
पर मैं जाने कैसा गाना गाऊँगा?

मेरे बेचैन, मेरे वफादार घोड़े के नाल अच्छी तरह लगे हुए हैं। मैंने खुद उसकी हर टाँग उठाकर नालों की मजबूती जाँच ली है। मैंने अपने हाथों से उस पर जीन रखा है, उसकी पेटी कसी है। उँगलियाँ भी मुश्किल से पेटी के नीचे जाती हैं। घोड़े पर अच्छी तरह और बढ़िया ढंग से जीन कसा गया है।

मेरे पिता जी से कुछ-कुछ मिलते-जुलते बुजुर्ग ने मुझे लगामें पकड़ाईं। चंचल आँखोंवाली छोटी-सी लड़की ने मेरी तरफ चाबुक बढ़ा दिया। पड़ोस की पहाड़िन पानी से भरी हुई गागर लिए जान-बूझकर सामने की ओर मेरे नजदीक से गुजरी। इस तरह उसने मेरी शुभ यात्रा की कामना की।

गाँव में जिस किसी के पास से भी मेरा घोड़ा गुजरा, उसी ने मुझे यह कहा, 'तुम्हारा सफर कामयाब रहे!'

गाँव के छोर पर युवा पहाड़िन ने खिड़की में जलता हुआ लैंप रख दिया। इस तरह उसने मुझसे यह कहा -

'इस खिड़की, इस रोशनी को नहीं भूलना। जब तक तुम लौटोगे नहीं, यह लैंप जलता रहेगा। दूर के रास्ते में, कठिन और बुरे मौसम में रातों और सालों के दौरान यह तुम्हें रोशनी देगा। लंबे सफर से थक-हारकर जब तुम अपने गाँव के करीब पहुँचोगे, तो यही सबसे पहले तुम्हें अपनी चमक दिखाएगा। इस खिड़की और इस रोशनी को याद रखना।

अपने प्यारे गाँव को एक बार फिर से देखने के लिए मैं मुड़ता हूँ। घर की छत पर मुझे माँ दिखाई देती है। वह सीधी और एकाकी खड़ी है। वह अधिकाधिक छोटी होती जाती है - चपटी छत की आड़ी रेखाओं में सीधा बिंदु-सा लग रही है। आखिर, अगले मोड़ के बाद पहाड़ मेरे गाँव के सामने आ जाता है और मुड़कर देखने पर पहाड़ के सिवा मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं देता है।

सामने भी मुझे पहाड़ ही दिखाई दे रहा है। मगर मुझे मालूम है कि उसके पीछे बहुत बड़ी दुनिया है। दूसरे गाँव हैं, बड़े नगर हैं, महासागर हैं, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे हैं और किताबें हैं।

दागिस्तान की प्यारी धरती के रास्ते पर घोड़े के नाल बज रहे हैं। सिर के ऊपर पहाड़ों की चोटियों से पथराया हुआ-सा आकाश है। कभी वह धूप से चमक उठता है, कभी उस पर सितारे जगमगा उठते हैं, कभी वह बादलों से ढक जाता है और कभी पृथ्वी को बारिश से धो देता है।

रुक जाओ, ऐ घोड़े मेरे, रुक जाओ
नहीं अभी मैंने मुड़कर, पीछे देखा,
प्यारा-प्यारा गाँव हमारा रहा वहाँ
धुँधली पड़ती जाती अब जिसकी रेखा।

सरपट उड़ते जाओ तुम घोड़े मेरे
क्यों हम देखें मुड़-मड़कर?
भाई, दोस्त मिलेंगे हमको वहीं सभी
हम जा निकलें, जहाँ, जिधर।

किधर जा रहा हूँ मैं? कैसे मैं अपना सही रास्ता चुनूँ? कैसे कई किताब लिखूँ?

नोटबुक से । अब दागिस्तान में युवाजन हमारी राष्ट्रीय पोशाकें नहीं पहनते। वे मास्को, त्बिलिसी, ताशकंद, दुशंबे और मिन्स्कवासियों की तरह पतलून, कोट, बुशर्ट और कमीज के साथ टाई पहनते हैं।

गानों-नाचों की कलाकार मंडलियाँ ही अब राष्ट्रीय पोशाकें पहनती हैं। हाँ, शादी के मौके पर किसी को पुरानी पोशाक पहने देखा जा सकता है। अगर कभी कोई दागिस्तानी ढंग के कपड़े पहनना चाहता है, तो दोस्तो, जान-पहचान के लोगों से या किराये पर कपड़े लेता है। अपनी दागिस्तानी पोशाक तो उसके पास होती नहीं। थोड़े में, अगर यह न कहा जाए कि राष्ट्रीय पोशाक गायब हो गई है, तो यह कहा जा सकता है कि गायब हो रही है।

मगर बात यह है कि कुछ कवियों की कविताओं का राष्ट्रीय रूप भी गायब होता जा रहा है और वे उस पर गर्व भी करते हैं।

मैं भी यूरोपीय सूट पहनता हूँ, मैं भी पिता जी का चेर्केसी कोट नहीं पहनता। मगर अपनी कविताओं को आकृतिहीन सूट नहीं पहनाना चाहता। मैं चाहता हूँ कि मेरी कविताओं का हमारा, दागिस्तानी रूप ही हो।

मैं भला क्या हूँ! कुछ ही दशाब्दियों का जीवन मिला है मुझे। ये दशाब्दियाँ ऐसे वक्त में आ गई, जब सभी लोग पतलून, बूट और कोट पहने घूमते हैं। कविताओं का अपना जीवन होता है। उनकी जन्म-मरण की अपनी अवधियाँ होती हैं। अपनी कविताओं के बारे में मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। मुमकिन है कि वे मेरे बाद जिंदा न रहें।

मास्को में मैंने बलूत का एक पुराना पेड़ देखा। कहते हैं कि रौद्र इवान ने उसे रोपा था। इसका मतलब यह है कि जब तक वह बड़ा होता रहा, शुरू में लोग बोयारों की पोशाकों, इसके बाद वास्कटें और पाउडर लगे विग, फिर ऊँचे टोप और काले फ्राककोट, इसके पश्चात बुद्योन्नी टोपियाँ तथा चमड़े की जाकटें, फिर साधारण कोट और चौड़ी मोहरीवाले पतलून और इसके बाद तंग पतलून पहनते रहे... और बलूत मानो लोगों से यह कहता रहा कि अगर आपके करने को और कुछ नहीं, तो वहाँ नीचे भागकर जाइए, अपने कपड़े बदल आइए। मेरे जिम्मे तो अपना काम है - सूरज की किरणों को लोकना और उन्हें मजबूत बजती हुई लकड़ी और उन बीजों में बदलना, जिनसे ऐसे ही जानदार वृक्ष जन्म लेते हैं।

पहाड़ों में कहा जाता है कि पोशाक से आदमी का पता चलता है और घोड़े से सूरमा का। यह कहावत सुनने में तो बढ़िया लगती है, मगर मुझे अनुचित-सी प्रतीत होती है। चीते की खाल पहने हुए आदमी का बहादुर होना लाजिमी नहीं। कभी-कभी इस्पाती कवच के नीचे भी बुजदिल का दिल हो सकता है।

कारण कि अनेक बार सुंदरता की वजह से मरे द्वारा चुने हुए तरबूज के सफेद और फीका निकल आने पर मुझे गुद्दी खुजलानी पड़ी है।

कारण कि एक बार कोई ऊनसूकूलवासी अपनी प्रेमिका को नमदे के लबादे में लपेटकर उड़ा ले गया, मगर जब लबादा उतारा, तो प्रेमिका की जगह पोपले मुँहवाली उसकी नानी सामने दिखाई दी।

कारण कि अबूतालिब ने मुझे सुनाया कि कैसे एक बार उन्हें दूर के गाँव में शादी पर बुलाया गया और वहाँ वे जुरना बजाते रहे। शादी धूम-धड़ाके से होती रही। गाँव के सामनेवाले मैदान में तीन दिन तक जुरना झनझनाता रहा, ढोल ढमकता रहा, वायलिन दर्दीली तानें सुनाती रही, हार्मोनियम बजता रहा और गीत गूँजते रहे। जैसा कि दागिस्तान में कहा जाता है, 'ढम-ढम भी थी और छम-छम भी', यानी सुनने को भी कुछ था और खाने-पीने को भी। सारा गाँव शादी में आया और बच्चे से बूढ़े तक हर कोई थोड़ा-बहुत नाचा भी।

शादी के तीसरे दिन चौधरी के कहने पर ऐलान करनेवाले ने ऊँची आवाज में यह घोषणा की कि अब दूल्हा और दुलहन नाचने के लिए मैदान में निकलेंगे। तीन दिनों के दौरान दूल्हे को तो सभी ने देखा था, मगर दुलहन सारा वक्त दुपट्टा ओढ़े बैठी रही थी। तीन दिन अबूतालिब उसकी बढ़िया पोशाकों को देखता रहा था। उसकी भड़कीली पोशाकें शायद काकेशियाई कविता-संग्रह के रंग-बिरंगे मुखावरण की याद दिलाती रही थीं।

दुलहन जब उठी और नाच के घेरे में आई, तो उसके शरीर की काठी से अबूतालिब कुछ चौंके। मोटापे की दृष्टि से तो राजकीय साहित्य प्रकाशन-गृह द्वारा प्रकाशित किर्गीज महाकाव्य 'मानास' भी उसका क्या मुकाबला कर सकता था। दुलहन चेहरे से पर्दा हटाने को तैयार हुई; सभी बुत-से बन गए और अबूतालिब ने भी अपनी साँस रोक ली। लीजिए, दुलहन ने दुपट्टा हटाया यानी वह क्षण आया, जिसका तीन दिन से इंतजार हो रहा था...

दुलहन की एक आँख खूंजह को देख रही थी, तो दूसरी बोतलीख को। गुस्से से एक-दूसरी से रूठी हुई आँखों के बीच बहुत लंबी और भद्दी-सी नाक टिकी हुई

थी।

अबूतालिब का दिल उदास हो गया। इसके बाद वे न तो जुरना बजा पाए और न ही उनका कुछ खाने को मन हुआ। उन्हें शादी के जशन से जाना पड़ा।

मेरे ख्याल में अबूतालिब ने कुछ बढ़ा-चढ़ाकर यह किस्सा सुनाया था।

फिर भी अच्छी सज्जा बुरी किताब को नहीं बचा सकती। उसका सही मूल्यांकन करने के लिए उस पर से पर्दा हटाना जरूरी है।

कारण कि एक ऐसा भी साल था, जब पहाड़ी नारियों की स्थिति और उनके साथ पुरुषों के व्यवहार का सवाल उचित ऊँचे स्तर पर और 'उग्रतम रूप' में उठाया गया था।

उस साल पति अपनी पत्नी को एक भी भला-बुरा शब्द कहने की जुर्रत नहीं कर सकता था। मामूली घरेलू झगड़े पर भी पति को पार्टी हलका कमिटी में बुलाकर डाँट पिलाई जाती थी। इसलिए कि किसी तरह का शिकवा-शिकायत न हो, सबसे पहले तो हलका पार्टी कमिटी के सभी कर्मचारियों की एक-एक करके मलामत की गई। उसी साल पहाड़ी औरतों की अक्सर कांग्रेसें हुईं, जिनमें मनमाने ढंग से इतने शब्द कहे गए, जितने बाद की सारी कांग्रेसों में नहीं कहे गए होंगे।

उसी साल इतवारों को एक लंबी-चौड़ी औरत बाजारों में गैर-कानूनी माल बेचने के लिए आने लगीं। मिलीशियामैन उसे टोकते हुए डरता था कि कहीं स्वतंत्र और समानाधिकारी पहाड़ी औरत के साथ कोई ज्यादती न हो जाए। मगर फिर भी तीसरे इतवार को उसने सहमते-सहमते इस पहाड़ी औरत को चेतावनी दे दी और पाँचवें इतवार को - जो भी होना हो, सो हो! - उसे हिरासत में लेकर थाने ले जाने का फैसला किया।

मिलीशियामैन जब तक उसे सड़क पर से अपने साथ ले जाता रहा, सभी तरफ से उस पर उँगलियाँ उठती रहीं और हैरान होते रहे कि स्वतंत्र और दासता मुक्त हुई पहाड़ी नारी को हिरासत में लेने की उसे हिम्मत ही कैसे हुई।

वहाँ, बाजार के भीड़-भड़क्के में इस माल बेचनेवाली औरत को अच्छी तरह देख पाना मुश्किल था, मगर अब कई चीजें, जैसे कि स्कर्ट के नीचे से झाँकते हुए बहुत ही बड़े-बड़े जूते मिलीशियामैन का ध्यान आकर्षित करने लगे।

'हाँ, यहाँ जरूर दाल में कुछ काला है!' मिलीशियामैन ने सोचा और औरत के मुँह पर से दुपट्टा हटा दिया। हैरानी से उभरी-उभरी आँखों और चट्टान पर उगी

कँटीली झाड़ी जैसी मूँछोंवाले जवान मर्द का चेहरा मिलीशियामैन के सामने था।

कुछ कलाकार भी, जिनमें प्रतिभा, सब्र और आत्म-सम्मान की कमी होती है, अपना माल बेचने के लिए पराये कपड़े पहन लेते हैं, बाहरी रूप की चमक-दमक से विचारों की दुर्बलता को छिपाते हैं। मगर यदि पेट में चूहे कूद रहे हों, तो बाँकपन से फर की टोपी ओढ़ने में क्या तुक है?

ऐसे ही लकड़ी का बना हुआ खंजर चाहे कितना ही सुंदर क्यों न हो, उससे तो चूजे को भी नहीं काटा जा सकता। वह तो सिर्फ इसी लायक है कि बारिश की धार को काट ले।

ऐसे ही गुड़ियों की शादी करने से बच्चे पैदा नहीं होते। ऐसे ही जब लड़के की सुन्नत करनी होती है, तो उसे हंस का पंख दिखाया जाता है। मगर ऐसा तो सिर्फ धोखा देने के लिए किया जाता है। हंस के पंख से सुन्नत नहीं हो सकती, इसके लिए तेज चाकू की जरूरत होती है।

मगर पाठक बच्चे नहीं है कि उनकी आँखों में धूल झोंकी जाए और मैं अभिनेता नहीं हूँ कि म्यान में, चाहे वह असली और सोने का मुलम्मा चढ़ी हो, दफ्ती का खंजर डाले फिरूँ।

बेशक यह सही है कि म्यानों की भी जरूरत होती है - उनके बिना खंजरों को जंग लग जाता है। म्यान अगर सुंदर हों, तो अच्छा ही है;

बेशक यह सही है कि जब कोई सूरमा धावे में कोई कीमती चीज लेकर लौटता है, तो बीवी घोड़े की गर्दन पर रेशमी रूमाल बाँधती है;

बेशक यह सही है कि बहुत ही बढ़िया विचार के लिए बहुत ही प्राणहीन भाषा तो ऐसे ही है, जैसे मेमने के लिए भेड़िया;

बेशक यह सही है कि मजबूत-से-मजबूत छकड़ा ऊबड़-खाबड़ रास्ते में धचके खा सकता है और खड्ड में भी गिर सकता है;

बेशक यह सही है कि गधे का साज घोड़े की पीठ की शोभा नहीं बढ़ा सकता और बढ़िया घोड़े का जीन गधे की पीठ पर शोभा नहीं देगा।

यहाँ मैं आपको एक बालखारीवासी और उसकी बूढ़ी घोड़ी का किस्सा सुनाता हूँ।

एक बालखारीवासी और उसकी बूढ़ी घोड़ी का किस्सा।

एक बार बालखारीवासी ने अपनी बेचारी बूढ़ी घोड़ी पर गमले, गागरें, सुराहियाँ और रकाबियाँ लादीं और चल दिया उन्हें गाँवों में बेचने।

एक अवार गाँव में उस दिन घुड़दौड़ों का जशन था। जोशीले जवान अपने और भी ज्यादा जोशीले घोड़ों पर इस गाँव की तरफ जा रहे थे। जवान भी बढ़िया थे और घोड़े भी। जवान भी सुडौल और सुंदर थे और उनके घोड़े और भी ज्यादा सुडौल और सुंदर थे। जवानों की आँखों में दिलेरी और शोखी की चमक थी और घोड़ों की आँखों में बेचैनी की।

घुड़सवार एक कतार में खड़े होने शुरू हो गए थे कि अचानक शांत बालखारीवासी अपनी बूढ़ी घोड़ी पर उसी मैदान में सामने आ गया। बालखारीवासी ऊँघता-सा लगता था और उसकी घोड़ी तो जैसे चलते-चलते ही सोती जाती थी। जवान लोगों ने बालखारीवासी से मजाक करना शुरू किया।

'आओ, तुम भी हमारे साथ घुड़दौड़ में शामिल हो जाओ!'

'लाओ, तुम्हारी बूढ़ी घोड़ी को भी तेज घोड़ों में शामिल कर लें।'

'भला यह तुम्हारी बूढ़ी घोड़ी क्यों न हमारे तेज घोड़ों से हाड़ करें?'

'हमारे साथ दौड़ाओ इसे, वरना हमारे घोड़ों के नाल कौन समेटेगा।'

इन सभी मजाकों के जवाब में बालखारीवासी ने अपनी घोड़ी से चुपचाप मिट्टी के बर्तन, गागरें-सुराहियाँ और रकाबियाँ उतारनी शुरू कीं। बड़े इतमीनान से उसने अपनी चीजों का ढेर लगाया, इतमीनान से घोड़ी पर सवार हुआ और जवानों के करीब अपनी घोड़ी ले जाकर खड़ी कर दी।

जवानों के घोड़े अपने सुमों से जमीन खोद रहे थे, अपनी टाँगों को ऊपर उठाकर पिछली टाँगों पर खड़े हो रहे थे, जब कि बालखारीवासी की घोड़ी सिर झुकाए ऊँघ रही थी।

तो घुड़दौड़ शुरू हुई, जोशीले घोड़े बवंडर की तरह भाग चले। धूल का बादल उड़ा और इसी बादल में, उसके सिर पर बालखारीवासी की घोड़ी भी भाग चली। घुड़दौड़ का एक चक्कर, दूसरा और फिर तीसरा चक्कर खत्म हुआ। सभी घोड़ों को थकते हुए देख रहे थे, पहले तो वे पसीने से तर-ब-तर हुए, फिर उन पर झाग उभरा और वह गोलों के रूप में गर्म धूल में गिरने लगे। तेज घोड़ों की टाँगें मानो अधिकाधिक बेजान होती जाती थीं, उनकी रफ्तार धीमी पड़ती जाती थी। जवान अपने घोड़ों पर चाहे कितने ही चाबुक बरसाते, चाहे जूतों की कितनी ही एड़ियाँ मारते, पर किसी भी तरह तो घोड़े अधिक तेज नहीं दौड़ते थे। सिर्फ

बालखारीवासी की बूढ़ी घोड़ी ही पहले की तरह दौड़ती जाती थी - न तेज, न धीमे, पहले तो वह सबसे पीछेवाले घोड़ों से आगे निकली, फिर आगेवाले घोड़ों के बराबर हुई और बाद में, आखिरी दसवें चक्कर में, उनसे भी आगे निकल गई।

इनाम का शानदार रूमाल बालखारीवासी की बूढ़ी घोड़ी की झुकी हुई गर्दन पर बाँधना पड़ा। बालखारीवासी बड़े इतमीनान से अपनी घोड़ी को मिट्टी के बर्तनों के ढेर के पास ले गया, उन्हें लादा और आगे चल दिया।

घुड़दौड़ों के मुकाबले में ऐसी घटनाएँ साहित्य में कहीं अक्सर होती हैं।

नोटबुक से। जो कविताएँ आसानी से लिखी गई थीं, उन्हें पढ़ना कठिन होता है। जो कविताएँ मुश्किल से लिखी गई थीं, उन्हें पढ़ना आसान होता है। कविता का रूप और भाव - ये तो मानो पोशाक और व्यक्ति होते हैं। अगर आदमी भला, समझदार और नेक हो, तो वह अपने अनुरूप ही कपड़े भी क्यों न पहने। अगर आदमी का चेहरा सुंदर हो, तो उसके भाव भी क्यों न सुंदर हों।

अक्सर ऐसा होता है कि सुंदर नारियाँ समझदार नहीं होतीं और अगर वे बहुत समझदार होती हैं, तो सुंदर नहीं होतीं। कला-कृतियों के साथ भी ऐसा ही होता है।

मगर सुंदर और समझदार नारियाँ भी होती हैं। वास्तव में प्रतिभाशाली कवियों की किताबों के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है।

एक मआलीवासी ने कहा था - 'हमारे गाँव की तरफ आनेवाला व्यक्ति जैसे ही दर्रे में दिखाई देता है, वैसे ही मैं यह जान जाता हूँ कि वह अच्छा या बुरा आदमी है।'

एक कूबाचीवासी ने कहा था - 'सोना या चाँदी खुद अपने में कोई महत्व नहीं रखते। जरूरत तो इस बात की है कि कारीगर के हाथ सोने के हों।'

साधारण मिट्टी से ही तो
बनें गागरें, अद्भुत, सुंदर,
जैसे साधारण शब्दों में
कविता चमके निखर, सँवर कर।

गागर पर आलेख

पंद्रह हजार से अधिक दिन मैं इस दुनिया में जी चुका हूँ। बहुत-से रास्तों पर मैं आ-जा चुका हूँ। हजारों लोगों से मेरी मुलाकात हो चुकी है। जैसे बरसात या बर्फ

पिघलने के वक्त बहुत-सी पहाड़ी धाराएँ बह चलती हैं, वैसे ही मेरी अनुभूतियाँ असंख्य हैं। मगर उन्हें कैसे सूत्रबद्ध करूँ ताकि वे किताब का रूप ले सकें? उसे लिखना तो वैसी ही बात है जैसे कि घाटी में चौड़ी और गहरी धारा बनाना। मगर यह तो आधा ही काम होगा। जरूरत तो इस बात की है कि सभी पहाड़ी धाराएँ मिलकर इस बड़ी धारा में बहें। कैसे मैं यह करूँ? जीवन की जानकारी के अलावा और क्या जानना जरूरी है? साहित्य की सैद्धांतिक जानकारी? कविता लिखने के बजाय इस बारे में ज्यादा सोचना ठीक नहीं कि कविता लिखी कैसे जाए।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि ऐसी साहित्यिक शैलियाँ और धाराएँ नहीं हैं, जिनसे मुझे प्यार हो। मेरे प्यारे लेखक, चित्रकार और कलाकार हैं।

नोटबुक से। साहित्य-संस्थान में एक अवार से परीक्षा के समय यह पूछा गया कि यथार्थवाद और रोमानवाद में क्या अंतर है? अवार ने इस विषय की किताब तो शायद पढ़ी नहीं थी, मगर जवाब देना जरूरी था। उसने सोचा और प्रोफेसर को यह जवाब दिया -

'जब हम उकाब को उकाब कहते हैं, तो वह यथार्थवाद होता है, और जब मुर्गे को उकाब कहते हैं तो रोमानवाद।'

प्रोफेसर हँस पड़े और मेरे अवार बंधु को पास कर दिया।

जहाँ तक मेरा संबंध है, तो मैं तो शुरू से ही घोड़े को घोड़ा, गधे को गधा, मुर्गे को मुर्गा और मर्द को मर्द कहने की कोशिश करता हूँ।

नोटबुक से। सुविख्यात रवींद्रनाथ टैगोर के एक भाई थे, वे भी लेखक थे। वे भारतीय साहित्य में बंगाली शैली के अनुगामी थे। रवींद्रनाथ तो खुद एक शैली, पूरी एक साहित्यिक धारा थे और दोनों भाइयों के बीच यही अंतर था।

रवींद्रनाथ की आत्मा में अपना एक पक्षी था, जो दूसरे पक्षियों से बिल्कुल भिन्न था और उनके पहले जिसका कभी अस्तित्व नहीं रहा था। उन्होंने कला-क्षेत्र में उसे स्वतंत्रता से उड़ान भरने दी और सभी ने देखा कि यह रवींद्रनाथ टैगोर का पक्षी है।

यदि चित्रकार अपने पक्षी को मुक्त उड़ान भरने के लिए छोड़ देता है और वह दूसरे, अपने जैसे पक्षियों के झुंड में घुल-मिल जाता है, तो इसका यह मतलब होता है कि वह चित्रकार नहीं है। इसका यह अर्थ निकलता है कि वह अपना, असाधारण और अद्भुत पक्षी नहीं, बल्कि मामूली गौरेया उड़ाता है और अब कोई

भी उसकी गौरैया को दूसरों की, बेशक सुंदर हों, फिर भी गौरैया ठहरीं, अलग से नहीं पहचान पाता।

खुद आग जलाने के लिए आदमी का अपना चूल्हा होना चाहिए। किसी दूसरे के घोड़े पर सवार होनेवाले को देर-सबेर उससे उतरना और उसे उसके मालिक को सौंप देना होगा। पराये विचारों पर जीन नहीं कसिए, अपने लिए अपने विचार खोजिए।

मैं साहित्य की पंदूर और लेखक की उसके तारों से तुलना करने का साहस करता हूँ। हर तार की अपनी आवाज, अपनी गूँज होती है, मगर मिलकर वे मधुर संगीत पैदा करते हैं।

अवार जाति के पंदूर के सिर्फ दो तार होते हैं। मेरे पिता जी के बारे में कहा जाता था कि अवार साहित्य के पंदूर पर उन्होंने एक तार और जोड़ दिया है।

मैं अपना भी एक तार जोड़ना चाहता हूँ, जिसकी झंकार दूसरों से अलग हो। प्राचीन अवार साज का मैं एक और तार बनना चाहता हूँ।

मैं उन शिकारियों जैसा नहीं होना चाहता, जो बाजार से हिरन खरीद लेते हैं और घर आकर यह कहते हैं कि खुद मारकर लाए हैं।

या ऐसा भी होता है कि यह अफवाह फैल जाती है कि मानो किसी दर्रे में एक शिकारी ने बहुत बड़े पहाड़ी बकरे को गोली का निशाना बनाया है। सभी शिकारी जल्दी से इसी खुशकिस्मत दर्रे की तरफ भाग खड़े होते हैं। इसी बीच पहला शिकारी किसी दूसरी जगह पर एक बहुत बड़े भालू को मार गिराता है। शिकारियों का दल उधर भागता है, जबकि बढ़िया शिकारी किसी तीसरी जगह पर बड़ा-सा चीता मार डालता है... तो सवाल पैदा होता है कि असली शिकारी कौन है? वह जो खुद शिकार करता है या वे जो उसके पीछे-पीछे भागते हैं? ऐसों को तो दूसरे के फंदे से शिकार निकालते हुए भी शर्म नहीं आती।

वे मुझे कुछ दूसरे लेखकों की याद दिलाते हैं। ऐसा करना तो उचित नहीं, जैसा कि मेरे एक परिचित ने किया। कोर्नेई इवानोविच चुकोव्स्की से जान-पहचान होने के बाद वह ऐसे जाहिर करता था मानो अबूतालिब को जानता ही न हो।

सागर तक पहुँच जानेवाली, अपने सामने असीम नीला विस्तार देखने और उस महान नीलिमा में घुल-मिल जानेवाली नदिया को ऊँचे पहाड़ों में उस चश्मे को नहीं भूल जाना चाहिए, जिससे धरती पर उसका पथ आरंभ हुआ। उस

पथरीले, सँकरे, ऊबड़-खाबड़ और टेढ़े-मेढ़े रास्ते को भी नहीं भूल जाना चाहिए, जो उसे तय करना पड़ा।

हाँ, मैं पहाड़ी नदिया हूँ। मैं अपने स्त्रोत, अपने चश्मे, अपने पथरीले पेटे को प्यार करता हूँ। मैं प्यार करता हूँ उन धुँधले दर्रों को, जिनमें से मेरा पानी बहता है, उन चट्टानों को, जिन पर से वह रुपहले जल-प्रपातों में गिरता है, उन शांत समतल स्थानों को, जहाँ वह इर्द-गिर्द के पहाड़ों, आकाश और आकाश के सितारों को प्रतिबिंबित करता हुआ गहराई में जमा होता है और फिर से पहले धीरे-धीरे बहने लगता है और बाद में अपनी गति तेज कर देता है।

मगर मैं यह नहीं कहता हूँ कि मेरे लिए सिर्फ दर्रे की काफी होंगे। मैं बहता जा रहा हूँ - इसका मतलब है कि मेरे सामने लक्ष्य है। मुझे केवल पूर्वानुभूति ही नहीं होती - मैं सागर के असीम विस्तार को देख रहा हूँ, उसे जानता हूँ।

मैं अकेला ही तो ऐसा नहीं हूँ। यह कहना ज्यादा सही होगा कि चूँकि सारे दागिस्तान का दृष्टि-क्षेत्र विस्तृत हो गया है, इसीलिए मेरा भी। इन सालों और दशाब्दियों के दौरान हमारे कब्रिस्तानों की ही नही, जीवन और दुनिया के बारे में हमारे दृष्टिकोणों की सीमाएँ भी विस्तृत हुई हैं।

मैं अवार कवि हूँ। मगर अपने दिल में मैं केवल अवारिस्तान, केवल दागिस्तान, केवल सारे देश के लिए ही नहीं, बल्कि सारी पृथ्वी के लिए नागरिक के उत्तरदायित्व को अनुभव करता हूँ। यह बीसवीं सदी है। इसमें सिर्फ ऐसे ही जिया जा सकता है।

मुझे बताया गया। मेरे जन्म के फौरन बाद मेरे पिता जी को नौकरी के सिलसिले में अस्थायी रूप से हारादारीह गाँव में जाना पड़ा। पिता जी के घोड़े के साथ दो सफरी थैले, दो खुरजियाँ लटकी हुई थीं। एक में तो हमारा घरेलू सामान था - कपड़े-लत्ते, बचा-खुचा आटा, दलिया, चर्बी और किताबें, दूसरे थैले में से मेरा सिर बाहर झाँक रहा था।

इस सफर के बाद मेरी माँ सख्त बीमार हो गई। हम जिस गाँव में पहुँचे, वहाँ एक ऐसी गरीब और एकाकी औरत मिल गई, जिसका बच्चा उन्ही दिनों चल बसा था। वही मुझे अपना दूध पिलाने लगी। वह मेरी धाय, मेरी दूसरी माँ बन गई।

तो इस तरह दुनिया में दो नारियाँ हैं, जिनका मैं ऋणी हूँ। मेरी उम्र चाहे कितनी ही लंबी क्यों न हो और इन नारियों के लिए चाहे मैं कुछ भी क्यों न करूँ, उनके

नाम पर कोई भी कारनामा न कर दिखाऊँ, उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो पाऊँगा। बेटा अपना ऋण कभी नहीं चुका पाता।

इन दो नारियों में से एक तो मेरी माँ है, जिसने मुझे जन्म दिया, सबसे पहले मुझे पालने में झुलाया, पहली लोरी गाई और दूसरी... वह भी मेरी माँ है, जिसने मुझे अपनी छाती का दूध पिलाकर मौत के मुँह से बचाया, जिसकी बदौलत मुझमें जिंदगी की गर्मी आई और मैं मौत की तंग पगडंडी से जिंदगी के बड़े रास्ते पर आ गया।

मेरी जनता, मेरे छोटे-से देश, मेरी हर किताब की भी दो माताएँ हैं।

मेरी पहली माँ है - मेरी मातृभूमि दागिस्तान। मेरा यहाँ जन्म हुआ, यहाँ मैंने पहले पहल अपनी मातृभाषा सुनी, उसे सीखा और वह मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गई। यहीं मैंने पहले पहल अपनी जनता के गीत सुने और खुद पहला गीत गाया। यहीं मैंने पहले पहल पानी और रोटी को चखा। नुकीली-तीखी चट्टानों पर चढ़ते हुए बचपन में कितनी ही बार मुझे चोटें लगीं, मगर मेरी मातृभूमि के पानी और जड़ी-बूटियों ने मेरे सभी घावों को अच्छा कर दिया। पहाड़ी लोगों का कहना है कि ऐसी कोई भी तो बीमारी नहीं है, जिसके इलाज के लिए हमारे यहाँ पहाड़ी जड़ी-बूटियाँ न हों।

मेरी दूसरी माँ है - महान रूस, मास्को। उसने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी, मुझे पंख दिए, मुझे बड़े रास्ते पर पहुँचाया, असीम क्षितिज दिखाए, सारी दुनिया को मेरे सामने उभारा।

बेटे के रूप में मैं दोनों माताओं का ऋणी हूँ। मेरे पहाड़ी घर की दीवार पर दो कालीन-चित्र लटके हुए हैं। एक चित्र है महमूद का और दूसरा - पुश्किन का। ब्लोक के रचना-खंडों में, जिनसे पीटर्सबर्ग की दूधिया रातों की ठंडी साँसों की अनुभूति होती है, ऊँची अवार चरागाहों के अंगारों से दहकते हुए अनेक रंगों के फूल रखे हैं।

दो माताएँ - ये तो जैसे दो पंख हैं, दो हाथ, दो आँखें, दो गीत हैं। दो माताओं के हाथों ने मेरा सिर सहलाया है और जरूरत होने पर मेरे कान भी खींचे हैं। दोनों माताओं ने मेरे पंदूर पर एक-एक तार लगाया है। उन्होंने मुझे जमीन से, मेरे गाँव से ऊपर उठाया और उनके कंधों पर से मैंने दुनिया में बहुत कुछ देखा, जिसे अगर वे मुझे ऊपर न उठातीं, तो मैं कभी न देख पाता। जिस तरह उड़ता हुआ उकाब यह नहीं जानता कि कौन-सा पंख उसके लिए अधिक जरूरी और

मूल्यवान है, उसी तरह मुझे भी यह मालूम नहीं है कि कौन-सी माँ मेरे लिए अधिक मूल्यवान है।

पहले पहाड़ी लोग जड़ी-बूटियों और पानी से अपनी सभी बीमारियों का इलाज करते थे। नीम हकीमों पर भी विश्वास था उन्हें। हाँ, ऐसे नीम हकीम भी थे, जिनकी लोग-बाग अभी तक चर्चा करते हैं। ये नीम हकीम सिर दर्द का इलाज करने के लिए काली भेड़ काटने को मजबूर करते थे।

हर अवार यह जानता है कि भूरी या सफेद भेड़ की तुलना में काली भेड़ का मांस अधिक रसीला और जायकेदार होता है। नीम हकीम उसी वक्त उतारी गई भेड़ की खाल को बीमार के सिर के गिर्द लपेट देता और उसे ऐसे ही बैठने को मजबूर करता। मांस वह अपने साथ ले जाता।

ऐसे नीम हकीमों का तो हम अब जिक्र नहीं करेंगे। मगर अच्छे लोक-वैद्य और अच्छी देसी दवाइयाँ भी थीं।

एक बार मेरे पिता जी मास्को के क्रेम्लिन अस्पताल में थे। वहाँ उन्हें दागिस्तान की जड़ी-बूटियों और पानी का ध्यान हो आया और उन्होंने अपने बेटों से बूत्सरा पर्वत के छोटे-से सोते का पानी लाने का अनुरोध किया।

बेटों के लिए पिता के शब्द कानून होते हैं। वे दागिस्तान पहुँचे, बूत्सरा पर्वत पर चढ़े, वहाँ सोता ढूँढ़ा और क्रेम्लिन अस्पताल में बीमार पड़े हुए अवार कवि के लिए वहाँ से पानी लाए।

पिता जी ने पानी पिया और मानो उन्हें कुछ चैन मिला। वे तो स्वस्थ भी हो गए। मगर उन्हें यह मालूम नहीं था कि उसी दिन उन्हें विदेश से लाई गई किसी दवाई की सुइयाँ भी लगाई जाने लगी थीं।

संभव है कि वे केवल विश्व चिकित्सा विज्ञान द्वारा तैयार की गई दवाइयों से ही स्वस्थ न होते। संभव है कि केवल अवार जल, हमारी जातीय लोक-औषधि से ही उन्हें स्वास्थ्य-लाभ न होता। किंतु दोनों दवाइयों से वे सेहतमंद हो गए।

साहित्य में भी ऐसा ही होना चाहिए। उसके स्रोत हैं - मातृभूमि, अपनी जनता, मातृ-भाषा। मगर हर सच्चे लेखक की चेतना अपनी जाति की सीमाओं से कहीं अधिक विस्तृत होती है। सारी मानव-जाति, समूची दुनिया की समस्याएँ उसे बेचैन करती हैं, उसके दिल-दिमाग में जगह पाती हैं।

चलता राही जब मंजिल को
संग भला वह लेता क्या?
रोटी लेता, मदिरा लेता...
इनकी मगर जरूरत क्या?

हम आदर-सत्कार करेंगे
सिर आँखों पर, आनेवाले!
रोटी तुम्हें पहाड़िन देगी
और पहाड़ी मदिरा ढाले।

चलता राही जब मंजिल को
संग भला वह लेता क्या?
खंजर तेज साथ में लेता...
उसकी मगर जरूरत क्या?

यहाँ पहाड़ों में स्वागत है
किंतु अगर कोई दुश्मन,
कहीं घात में होगा, उसका
हम छलनी कर देंगे, तन।

चलता राही जब मंजिल को
संग भला वह लेता क्या?
गीत साथ में अपने लेता...
उसकी मगर जरूरत क्या?

गीत यहाँ अद्भुत से अद्भुत
उनका कोई नहीं शुमार,
फिर भी चाहो तो संग ले लो
उसमें नहीं जरा भी भार।

यदि डाक्टर से लेखक की तुलना की जाए, तो उसे सदियों की जानी-परखी लोक-औषधियों और विश्व विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का उपयोग करने में

समर्थ होना चाहिए।

यदि पद-यात्री से लेखक की तुलना की जाए, तो किसी दूसरी जाति का मेहमान बनते हुए उसे अपनी धरती के गीतों को हृदय में सहेजकर ले जाना चाहिए, किंतु उन गीतों के लिए भी अपने हृदय में स्थान निकाल लेना चाहिए, जो उसे वहाँ सुनाए जाएँगे।

उसके अपने लोग उसे विदा करते हैं, दूसरे उसका स्वागत करते हैं और गीत सभी जातियों के पास होते हैं।

हमारे गाँवों में जब पहले व्याख्यानदाता और भाषणकर्ता आने लगे, तो केलेब गाँव की नारियाँ व्याख्यानदाता की ओर पीठ करके बैठती थीं ताकि वह उनके चेहरे न देख सके। मगर व्याख्यान के बाद जब गायक सामने आता और गाने लगता, तो नारियाँ गाने का आदर करते हुए पूर्वाग्रहों को ताक पर रखकर गायक की तरफ मुँह कर लेतीं। इतना ही नहीं, वे तो मुँह से पर्दा भी हटा लेतीं।

कोई ऐसा दिन, कोई ऐसा मिनट भी नहीं होता, जब मेरी आत्मा में उस गीत का स्पंदन न हो, उस गीत की गूँज सुनाई न दे, जो मेरी माँ ने मेरे पालने पर झुककर गाया था। यही गीत, मेरे सभी गीतों का पालना है। यह वह तकिया है, जिस पर मैं अपना थका हुआ सिर टिकाता हूँ। वह घोड़ा है, जो मुझे सभी जगह लिए घूमता है। यह वह चश्मा है, जो मेरी प्यास बुझाता है, वह चूल्हा है, जो मुझे गर्माता है और इसी की गर्मी मैं जीवन में अपने साथ लिए घूमता हूँ।

पर साथ ही मैं शूकूम जैसा नहीं बनना चाहता, जो बड़ा और तगड़ा बालक हो जाने पर भी माँ का दूध पिए बिना नहीं रह सकता था और इसलिए उसकी छाती की ओर लपकता था। ऐसों के बारे में कहा जाता है - 'जिस्म साँड का, दिमाग बछड़े का।'

आजकल हम तरह-तरह की प्रश्नावलियों के उत्तर लिखने के आदी हो चुके हैं। अपने जीवन में न जाने कितने ऐसे प्रश्न-पत्र भर चुका हूँ मैं! एक भी प्रश्न-पत्र में मैंने मातृभूमि के प्रति प्यार का प्रश्न नहीं देखा। मगर इसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि ऐसा प्यार दुनिया के लोगों में है ही नहीं।

दूसरी तरफ, प्रश्न-पत्र में केवल 'सोवियत संघ का नागरिक' लिख देना ही काफी नहीं है, व्यक्ति को वास्तव में वैसा होना भी चाहिए। 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य' लिख देना ही पर्याप्त नहीं है, अर्थ में वैसा बनना भी

चाहिए। 'मातृभाषा-अवार' लिख देना ही काफी नहीं, वास्तव में ही यह मातृभाषा होनी चाहिए, इसके प्रति वफादार रहने का साहस होना चाहिए।

जगह-जगह के मेहमानो, मेरे यहाँ आइए, मेरे पास तरह-तरह के गीत लाइए! भाइयों-बहनों की तरह आइए, मैं सभी का स्वागत करूँगा, सभी को अपने दिल में जगह दे सकूँगा!

अगर कोई पहाड़ी आदमी किसी दूसरी जाति की नारी को जीन पर अपने पीछे बैठाए हुए खूंजह में लौटता था, तो ऐसे आदमी को तिरस्कार की नजर से देखा जाता था, गाँव के बड़े-बूढ़े उसकी इस हरकत की लानत-मलामत करते थे। मगर अब तो बूढ़े-जवान, सभी इस चीज के आदी हो चुके हैं। किसी भी दूसरी जाति की नारी से किसी अवार की शादी को कलंक नहीं माना जाता। अब केवल एक ही विवाह की भर्त्सना की जाती है - प्रेमहीन विवाह की।

क्या यह सच नहीं है कि फूल जितने भी विविधतापूर्ण होंगे, उनका उतना ही ज्यादा खूबसूरत गुलदस्ता बनेगा। आकाश में जितने ज्यादा तारे होंगे, वह उतना ही ज्यादा जगमगाएगा। इंद्रधुनष इसीलिए तो सुंदर लगता है कि पृथ्वी के सभी रंगों को अपने में समेट लेता है।

अफ्रीका में मैंने एक अद्भुत, एक असाधारण फूल देखा। इस फूल की हर पंखुड़ी का अपना अलग रंग होता है। हर पंखुड़ी की अपनी सुगंध, अपना नाम है। संक्षेप में, डंडी पर एक बढ़िया, तैयार गुलदस्ता पनपता है, मगर फिर भी वह एक ही फूल होता है।

मैं यह चाहता हूँ कि मेरी अवार पुस्तक उस अद्भुत अफ्रीकी फूल जैसी हो, ताकि हर कोई उसमें अपना कुछ प्रिय, कुछ निकटवर्ती देख पा सके।

लीजिए, मैं वे सभी चीजें जिनसे ऐसी पुस्तक बननी चाहिए, अपने सामने रख लेता हूँ। कूबाची के अच्छे कारीगर की तरह हर चीज मेरे नजदीक रखी है। उसके पास होते हैं - चाँदी, सोना, काटनेवाले औजार, हथौड़ियाँ, छेनियाँ, ठप्पे और खाके। मेरे पास हैं - मातृभाषा, जीवन का अनुभव, लोगों के चित्र और चरित्र, गीतों की धुनें, इतिहास की समझ, न्याय भावना, प्यार, मातृभूमि का प्राकृतिक सौंदर्य, अपने पिता की स्मृति, अपनी जनता का अतीत और भविष्य... मेरे हाथों में स्वर्ण-पिंड हैं। मगर मेरे हाथ भी सोने के हैं या नहीं? मुझमें काफी प्रतिभा, काफी कारीगरी भी होगी।

मैं क्या करूँ कि मेरा गीत जीते-जागते, पंख फड़फड़ाते पक्षी की तरह आपकी हथेली में रखा जा सके, कि वह प्यार की भाँति ही आमंत्रण और पूर्वसूचना के बिना आपके दिलों में उतर जाए?

मेरी मेज पर जो कुछ मेरे सामने रखा है, मैं फिर से उस पर नजर डालता हूँ...

कहते हैं कि उस जवान की बीवी उसे छोड़ जाए, जिसके पास घोड़ा नहीं।

ऐसा भी कहते हैं कि उस जवान की बीवी भी उसे छोड़ जाए, जिसके पास घोड़े का जीन या चाबुक नहीं है।

कहते हैं कि उकाब को घास और गधे को मांस नहीं खिलाइए।

कहते हैं कि अगर दीवारें मजबूत नहीं हैं, तो सुंदर मकान भी गिर सकता है।

कहते हैं कि मुर्गी को मादा उकाब होने का सपना आया, चट्टान से उड़ी और पंख तोड़ लिए।

छोटे-से सोते ने यह सपना देखा कि वह बड़ा दरिया है, बालू में वह चला और वहीं सूख गया।

भाषा

बच्चा यहाँ अरे, रोता है, हँसता है
मुँह से लेकिन शब्द नहीं कह सकता है
आएगा, वह दिन भी आखिर आएगा
कौन, किसलिए जग में आया, सबको यह बतलाएगा।

पालने पर आलेख

दुनिया में अगर शब्द न होता,
तो वह वैसी न होती, जैसी अब है।

संसार की सृष्टि के एक सौ बरस पहले
कवि का जन्म हुआ।

भाषा-ज्ञान के बिना कविता रचने का
निर्णय करनेवाला व्यक्ति उस पागल के समान है,
जो तैरना न जानते हुए
तूफानी नदी में कूद पड़ता है।

कुछ लोग इसलिए नहीं बोलते हैं कि उनके दिमाग में महत्वपूर्ण विचारों का जमघट होता है, बल्कि इसलिए कि उनकी जबान खुजलाती है। कुछ लोग इसलिए काव्य-रचना नहीं करते हैं कि उनके हृदयों में प्रबल भावनाएँ उमड़ती-घुमड़ती होती हैं, बल्कि इसलिए कि... वास्तव में यह कहना भी मुश्किल है कि

क्यों वे अचानक कविता रचने लगते हैं। उनकी कविताओं की गूँज भेड़ की कच्ची खाल की थैली में डाले गए अखरोटों की नीरस सरसराहट के समान होती है।

ये लोग अपने इर्द-गिर्द देखना और पहले इस चीज पर नजर नहीं डालना चाहते कि दुनिया में क्या हो रहा है। वे उन समस्वरों, गीतों और धुनों को सुनना और जानना नहीं चाहते, जिनसे यह दुनिया भरपूर है।

यह पूछा जाता है कि आदमी को आँखें, कान और जबान किसलिए दिए गए है? किसलिए आदमी की दो आँखें और दो कान हैं, मगर जबान एक है? इसका कारण यह है कि जबान से एक भी शब्द दुनिया के सामने निकालने के पहले दो आँखों को देखना और दो कानों को सुनना चाहिए।

जबान से निकला हुआ शब्द तो तंग और खड़ी पहाड़ी पगडंडी से खुले मैदान में उतर आनेवाले घोड़े के समान ही है। पूछा जा सकता है कि क्या उस शब्द को दुनिया में भेजना ठीक होगा, जो दिल में से होकर नहीं आया?

महज शब्द नाम की कोई चीज नहीं है। वह या तो शाप है या बधाई, सुंदरता है या पीड़ा, गंदगी है या फूल, झूठ है या सच, प्रकाश है या अंधकार।

अपने बीहड़, विकट क्षेत्र में सुना कभी यह
हम पापी जन के हित केवल शब्द रचा संसार,
कैसी है बस, गूँज शब्द की?
पूजा जैसी? या कि कसम-सी? या आदेश, पुकार?

इस दुनिया की रक्षा को हम डटते हैं
घायल दुनिया, सभी बुराइयों से जर्जर,
हमें शब्द दो-पूजा का हो, या उसमें संकल्प छिपा हो
बेशक हो अभिशाप, मगर वह दुनिया की दे रक्षा कर!

मेरे एक दोस्त ने एक बार कहा था, अपने शब्द का मैं खुद मालिक हूँ, चाहूँ तो उसे पूरा करूँ, चाहूँ तो न पूरा करूँ। मेरे दोस्त के लिए तो शायद ऐसा ही ठीक रहे, मगर लेखक को तो अपने शब्दों, अपने वचनों-शापों का स्वामी होना चाहिए। एक ही चीज के लिए वह दो बार तो कसमें नहीं खा सकता। वैसे, जो अक्सर कसमें खाता है, मेरे ख्याल में वह महज झूठा होता है।

अगर इस किताब की तुलना कालीन से की जाए, तो मैं अवार भाषा के रंग-बिरंगे धागों से उसे बुन रहा हूँ। अगर इसे भेड़ की खाल का कोट मान लिया जाए, तो अवार भाषा के मजबूत धागों से मैं इस खाल की सिलाई कर रहा हूँ।

सुनने में आता है कि बहुत-बहुत पहले अवार भाषा में बहुत ही थोड़े शब्द थे। 'स्वतंत्रता', 'जीवन', 'साहस', 'मैत्री', 'नेकी' जैसी अवधारणाओं को एक ही शब्द या अर्थ की दृष्टि से एक-दूसरे से अत्यधिक मिलते-जुलते शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे लोग बेशक यह कहते रहें कि हमारी छोटी-सी जाति की भाषा समृद्ध नहीं। मगर मैं तो अपनी भाषा में जो चाहूँ, वही कह सकता हूँ और अपने विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मुझे किसी दूसरी भाषा की जरूरत नहीं।

दागिस्तान में लाक नाम की एक बहुत छोटी जाति है। लगभग पचास हजार लोग लाक भाषा बोलते हैं। इससे अधिक सही गिनती करना कठिन होगा, क्योंकि वहाँ बच्चे भी हैं, जो अभी बोलना नहीं सीखे और ऐसे लोग भी हैं, जो अपनी पिताओं की जबान भूल चुके हैं।

लाकों की संख्या तो थोड़ी है, फिर भी दुनिया के बहुत-से हिस्सों में उनसे मुलाकात हो सकती है। पथरीली जमीन पर गरीबी की जिंदगी ने उन्हें दुनिया भर में भटकने के लिए मजबूर किया। वे सभी बहुत अच्छे कारीगर, बढ़िया मोची, सुनार और कलईसाज हैं। कुछ गीत गाते हुए जहाँ-तहाँ भटकते फिरा करते थे। दागिस्तान में ऐसा कहा जाता है - 'तरबूज को सावधानी से काटना, कहीं उसमें से लाक उछलकर न बाहर आ जाए।'

किसी लाक बेटे को परदेस भेजते हुए उसकी माँ यह हिदायत करती थी - 'शहरी तश्तरी में दलिया खाते समय यह देख लेना कि दलिए के नीचे हमारा कोई लाक तो नहीं है।'

यह किस्सा सुनाया जाता है। किसी बड़े शहर, मास्को या लेनिनग्राद में एक लाक घूम रहा था। अचानक उसे दागिस्तानी पोशाक पहने एक आदमी दिखाई दिया। उसे तो जैसे अपने वतन की हवा का झोंका-सा महसूस हुआ, बातचीत करने को मन ललक उठा। बस, भागकर हमवतन के पास गया और लाक भाषा में उससे बात करने लगा। इस हमवतन ने उसकी बात नहीं समझी और सिर हिलाया। लाक ने कुमीक, फिर तात और लेजगीन भाषा में बात करने की कोशिश की... लाक ने चाहे किसी भी जबान में बात करने की कोशिश क्यों न

की, दागिस्तानी पोशाक में उसका हमवतन बातचीत को आगे न बढ़ा सका! चुनांचे रूसी भाषा का सहारा लेना पड़ा। तब पता चला कि लाक की अवार से मुलाकात हो गई थी। अवार अचानक ही सामने आ जानेवाले इस लाक को भला-बुरा कहने और शर्मिंदा करने लगा -

'तुम भी कैसे दागिस्तानी हो, कैसे हमवतन हो, अगर अवार भाषा ही नहीं जानते! तुम दागिस्तानी नहीं मूर्ख ऊँट हो।'

इस मामले में मैं अपने अवार भाई के पक्ष में नहीं हूँ। बेचारे लाक को भला-बुरा कहने का उसे कोई हक नहीं था। अवार भाषा की जानकारी हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उसे अपनी मातृभाषा, लाक भाषा आनी चाहिए। वह तो दूसरी कई भाषाएँ भी जानता था, जबकि अवार को वे भाषाएँ नहीं आती थीं।

अबूतालिब एक बार मास्को में थे। सड़क पर उन्हें किसी राहगीर से कुछ पूछने की आवश्यकता हुई। शायद यही कि मंडी कहाँ है। संयोग से कोई अंग्रेज ही उनके सामने आ गया। इसमें हैरानी की तो कुछ बात नहीं, मास्को की सड़कों पर तो विदेशियों की कुछ कमी नहीं है।

अंग्रेज अबूतालिब की बात न समझ पाया और पहले तो अंग्रेजी, फिर फ्रांसीसी, स्पेनी और शायद दूसरी भाषाओं में भी पूछताछ करने लगा।

अबूतालिब ने शुरू में रूसी, फिर लाक, अवार, लेजगीन, दार्गिन और कुमीक भाषाओं में अंग्रेज को अपनी बात समझाने की कोशिश की।

आखिर एक-दूसरे को समझे बिना वे दोनों अपनी-अपनी राह चले गए। एक बहुत ही सुसंस्कृत दागिस्तानी ने जो अंग्रेजी भाषा के ढाई शब्द जानता था, बाद में अबूतालिब को उपदेश देते हुए यह कहा -

'देखा, संस्कृति का क्या महत्व है। अगर तुम कुछ अधिक सुसंस्कृत होते, तो अंग्रेज से बात कर पाते। समझे न?'

'समझ रहा हूँ,' अबूतालिब ने जवाब दिया। 'मगर अंग्रेज को मुझसे अधिक सुसंस्कृत कैसे मान लिया जाए? वह भी तो उनमें से एक भी जबान नहीं जानता था, जिनमें मैंने उससे बात करने की कोशिश की?'

मेरे लिए विभिन्न जातियों की भाषाएँ आकाश के सितारों के समान हैं। मैं यह नहीं चाहता कि सभी सितारे आधे आकाश को घेर लेनेवाले अतिकाय सितारे में

मिल जाएँ। इसके लिए सूरज है। मगर सितारों को भी तो चमकते रहना चाहिए। हर व्यक्ति को अपना सितारा होना चाहिए।

मैं अपने सितारे - अपनी अवार मातृभाषा को प्यार करता हूँ। मैं उन भूतत्ववेत्ताओं पर विश्वास करता हूँ, जो यह कहते हैं कि छोटे-से पहाड़ में भी बहुत-सा सोना हो सकता है।

'अल्लाह, तुम्हारे बच्चों को उनकी माँ की भाषा से वंचित कर दे,' एक नारी ने दूसरी को कोसा।

कोसनों के बारे में। जब मैंने अपनी लंबी कविता 'पहाड़िन' लिखी, तो उसकी एक गुस्सैल पात्र के मुँह से कहलवाने के लिए कोसनों की जरूरत महसूस हुई। मुझे बताया गया कि एक गाँव में एक बुजुर्ग पहाड़िन रहती है, जिसे उसकी पड़ोसिनों में से कोई भी कोसनों के मामले में मात नहीं दे सकती। मैं फौरन इसी अद्भुत औरत की तरफ चल दिया।

वसंत की एक प्यारी सुबह को, जब भला-बुरा कहने और गालियाँ बकने के बजाय खुश होने और गाने को मन होता है, मैं उस बुजुर्ग औरत के घर पहुँचा। मैंने निष्कपट भाव से अपने आने का उद्देश्य कह दिया। मैं तो आपसे कुछ जोरदार गालियाँ सुनना चाहता हूँ। मैं उन्हें लिख लूँगा और अपनी लंबी कविता में उनका उपयोग करूँगा।

'अल्लाह करे कि तुम्हारी जबान सूख जाए, कि तुम अपनी प्रेमिका का नाम भूल जाओ, कि जिस आदमी के पास तुम्हें काम से भेजा जाए, वह तुम्हारी बात को सही ढंग से न समझे। कि जब तुम दूर-दराज का सफर कर लौटो, तो अपने गाँव को अभिनंदन के शब्द कहने भूल जाओ, कि जब तुम्हारे मुँह में दाँत न रहें, तो उसमें हवा सीटियाँ बजाए... गीदड़ के बेटे, अगर मेरा मन खुश नहीं, तो क्या मैं हँस सकती हूँ (अल्लाह तुम्हें इस खुशी से महरूम रखे!)? जिस घर में कोई मरा नहीं, वहाँ रोने-धोने में क्या तुक है? अगर किसी ने मेरा दिल नहीं दुखाया, मुझे ठेस नहीं लगाई, तो क्या मैं अपने मन से गालियाँ गढ़ूँ? जाओ, अपना रास्ता नापो, फिर कभी ऐसे अनुरोध लेकर मेरे पास नहीं आना।'

'शुक्रिया मेहरबान दादी,' मैंने कहा और उसके घर से बाहर आ गया।

रास्ते में मैं यह सोचने लगा, 'अगर किसी तरह के गुस्से-गिले के बिना, यों ही, अचानक ही उसने मुझ पर ऐसी बढ़िया गालियों की बारिश कर दी, तो इसे सचमुच ही नाराज कर देनेवाले का क्या हाल होता होगा?'

मैं सोचता हूँ कि कभी-न-कभी कोई लोक-साहित्य संग्राहक पहाड़ी कोसनों-शापों का संग्रह करेगा और तब लोगों को इस बात का पता चलेगा कि पहाड़ी कितनी दूर-दूर की कौड़ी लाते हैं, जबान का कैसा कमाल दिखाते हैं, कल्पना की कितनी ऊँची-ऊँची उड़ानें भरते हैं और यह भी कि हमारी भाषा कितनी अभिव्यक्तिपूर्ण है।

हर गाँव के अपने कोसने - शाप हैं। एक में अदृश्य सूत्रों से आपके हाथ-पाँव जकड़े जाते हैं, दूसरे में आप ताबूत में जा पहुँचते हैं और तीसरे में आपकी आँखें निकलकर उसी तश्तरी में जा गिरती हैं, जिसमें से आप खा रहे होते हैं और चौथे गाँव में आपकी आँखें नुकीले पत्थरों पर से लुढ़कती हुई खड्ड में जा गिरती हैं। आँखों के शाप सबसे भयानक शापों में माने जाते हैं। मगर उनसे ज्यादा बुरे शाप भी हैं। एक गाँव मैंने दो नारियों को ऐसे कोसते सुना :

'अल्लाह तुम्हारे बच्चों को उससे महरूम करे, जो उन्हें उनकी जबान सिखा सकता हो।'

'नहीं, अल्लाह तुम्हारे बच्चों को उससे महरूम करे, जिसे वे अपनी जबान सिखा सकते हों!'

तो ऐसे भयानक होते हैं शाप। मगर पहाड़ों में तो किसी तरह के शाप के बिना भी उस आदमी की कोई इज्जत नहीं रहती, जो अपनी जबान की इज्जत नहीं करता। पहाड़ी माँ विकृत भाषा में लिखी हुई अपने बेटे की कविताएँ नहीं पढ़ेगी।

नोटबुक से। एक बार पेरिस में एक दागिस्तानी चित्रकार से मेरी भेंट हुई। क्रांति के कुछ ही समय बाद वह पढ़ने के लिए इटली गया था, वहीं एक इतालवी लड़की से उसने शादी कर ली और अपने घर नहीं लौटा। पहाड़ों के नियमों के अभ्यस्त इस दागिस्तानी के लिए अपने को नई मातृभूमि के अनुरूप ढालना मुश्किल था। वह देश-देश में घूमता रहा, उसने दूर-दराज के अजनबी मुल्कों की राजधानियाँ देखीं, मगर जहाँ भी गया, सभी जगह घर की याद उसे सताती रही। मैंने यह देखना चाहा कि रंगों के रूप में यह याद कैसे व्यक्त हुई है। इसलिए मैंने चित्रकार से अपने चित्र दिखाने का अनुरोध किया।

एक चित्र नाम ही था - 'मातृभूमि की याद'। चित्र में इतालवी औरत (उसकी पत्नी) पुरानी अवार पोशाक में दिखाई गई थी। वह होत्सातल के मशहूर कारीगरों की नक्काशीवाली चाँदी की गागर लिए एक पहाड़ी चश्मे के पास खड़ी थी। पहाड़ी ढाल पर पत्थरों के घरोंवाला उदास-सा अवार गाँव दिखाया गया था

और गाँव के ऊपर पहाड़ तो और भी ज्यादा उदास-से लग रहे थे। पहाड़ी चोटियाँ कुहासे में लिपटी हुई थीं।

'पहाड़ों के आँसू ही कुहासा है,' चित्रकार ने कहा, 'वह जब ढालों को ढक देता है, तो चट्टानों की झुर्रियों पर उजली बूँदें बहने लगती हैं। मैं कुहासा ही हूँ।'

दूसरे चित्र में मैंने कँटीली जंगली झाड़ी मैं बैठा हुआ एक पक्षी देखा। झाड़ी नंगे पत्थरों के बीच उगी हुई थी। पक्षी गाता हुआ दिखाया गया था और पहाड़ी घर की खिड़की से एक उदास पहाड़िन उसकी तरफ देख रही थी। चित्र में मेरी दिलचस्पी देखकर चित्रकार ने स्पष्ट किया -

'यह चित्र पुरानी अवार किंवदंती के आधार पर बनाया गया है।'

'किस किंवदंती के आधार पर?'

'एक पक्षी को पकड़कर पिंजरे में बंद कर दिया गया। बंदी पक्षी दिन-रात एक ही रट लगाए रहता था - मातृभूमि, मेरी मातृभूमि, मातृभूमि, मातृभूमि, मातृभूमि... बिल्कुल वैसे ही, जैसे कि इन तमास सालों के दौरान मैं भी यही रटता रहा हूँ... पक्षी के मालिक ने सोचा, 'जाने कैसी है उसकी मातृभूमि कहाँ है, अवश्य ही वह कोई फलता-फूलता हुआ बहुत ही सुंदर देश होगा, जिसमें स्वर्गिक वृक्ष और स्वर्गिक पक्षी होंगे। तो मैं इस परिंदे को आजाद कर देता हूँ और फिर यह देखूँगा कि वह किधर उड़कर जाता है। इस तरह वह मुझे उस अद्भुत देश का रास्ता दिखा देगा।' उसने पिंजरा खोल दिया और पक्षी बाहर उड़ गया। दसेक कदम की दूरी तक उड़कर वह नंगे पत्थरों के बीच उगी जंगली झाड़ी में जा बैठा। इस झाड़ी की शाखाओं पर उसका घोंसला था... अपनी मातृभूमि को मैं भी अपने पिंजरे की खिड़की से ही देखता हूँ' चित्रकार ने अपनी बात खत्म की।

'तो आप लौटना क्यों नहीं चाहते?'

'देर हो चुकी है। कभी मैं अपनी मातृभूमि से जवान और जोशीला दिल लेकर आया था। अब मैं उसे सिर्फ बूढ़ी हड्डियाँ कैसे लौटा सकता हूँ?'

पेरिस से घर लौटकर मैंने चित्रकार के सगे-संबंधियों को खोज निकाला। मुझे इस बात की बड़ी हैरानी हुई कि उसकी माँ अभी तक जिंदा थी। अपनी मातृभूमि को छोड़ देने और विदेश में जा बसनेवाले बेटे के बारे में उसके सगे-संबंधियों ने उदास होते हुए मेरी बातें सुनीं। ऐसा लगता था कि उन्होंने मानो उसे माफ कर दिया था और इस बात से खुश थे कि वह जिंदा तो है। पर तभी उसकी माँ अचानक पूछ बैठी -

'तुम दोनों ने अवार भाषा में बातचीत की?'

नहीं। हमारी बातचीत दुभाषिये के जरिए हुई। मैं रूसी बोलता था और तुम्हारा बेटा फ्रांसीसी।'

माँ ने काले दुपट्टे से मुँह ढक लिया, जैसा कि बेटे की मौत की खबर मिलने पर किया जाता है। पहाड़ी घर की छत पर बारिश पटापट ताल दे रही थी। हम अवारिस्तान में बैठे थे। अपनी मातृभूमि को त्याग देनेवाला दागिस्तान का बेटा भी शायद पृथ्वी के दूसरे छोर पर, पेरिस में बारिश का राग सुन रहा था : बहुत देर तक चुप रहने के बाद चित्रकार की माँ ने कहा -

'तुम्हें गलतफहमी हुई है, रसूल, मेरा बेटा तो कभी का मर चुका। वह मेरा बेटा नहीं था। मेरा बेटा वह जबान नहीं भूल सकता था, जो उसे मैंने, अवार माँ ने सिखाई थी।'

संस्मरण। कभी मैं एक अवार थियेटर में काम करता था। मंच-सज्जा की चीजों, पोशाकों और दूसरी चीजों के साथ (जिन्हें गधों पर लादा जाता था, मगर फिर भी उनमें से कुछ कलाकारों के उठाने के लिए भी बच जाती थीं) हम गाँव-गाँव घूमकर पहाड़ी लोगों को नाटक कला से परिचित कराया करते थे। थियेटर में इस तरह बिताए गए एक साल की मुझे अक्सर याद आती है।

कुछ नाटकों में मुझे छोटी-मोटी भूमिकाएँ दे दी जाती थीं, मगर ज्यादातर तो मैं प्रोंपटर बॉक्स में बैठा रहता था। मुझे, युवा कवि को, बाकी सभी भूमिकाओं के मुकाबले में प्रोंपटर का काम ज्यादा पसंद था। कलाकारों को मैं बहुत महत्वपूर्ण नहीं मानता था, गौण स्थान देता था। पोशाकें, मेक-अप और मंच-सज्जा भी कम महत्व रखते थे। शब्दों को ही मैं सबसे ऊँचा स्थान देता था और मंच-सज्जा भी कम महत्व रखते थे। शब्दों को ही मैं सबसे ऊँचा स्थान देता था और इस बात की बेहद चिंता करता था कि अभिनेता शब्दों को न गड़बड़ाएँ, उनका सही-सही उच्चारण करें। अगर कोई अभिनेता शब्दों को छोड़ जाता या उन्हें गलत ढंग से कहता, तो मैं बॉक्स में से आगे की ओर झुककर इतने जोर से और सही तौर पर इन शब्दों को कहता कि वे सारे हॉल में गूँज जाते।

हाँ, मूल पाठ और शब्द को ही मैं सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानता था, क्योंकि शब्द पोशाक और मेक-अप के बिना भी जिंदा रह सकता है - उसका भाव दर्शकों की समझ में आ जाएगा।

मुझे एक घटना याद आ रही है। उन दिनों हम 'पहाड़ी लोग' नाटक दिखा रहे थे, जिसका अवार जाति के अतीत से संबंध था। जैसे कि आमतौर पर होता था, मैं प्रोंपटर था। नाटक में एक ऐसा स्थल आता था, जब नायक आईगाजी, जो खून के प्यासे दुश्मनों से बचने के लिए पहाड़ों में छिपा रहता था, रात के वक्त अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए गाँव में आया। प्रेयसी ने उसकी मिन्नत की कि वह जल्दी से पहाड़ों में वापस चला जाए, वरना दुश्मन उसे मार डालेंगे। मगर आईगाजी (अभिनेता मागायेव यह भूमिका निभा रहे थे) अपनी प्रेमिका को बारिश से बचाने के लिए उसे नमदे के लबादे से ढक देता है और उससे अपने प्यार, अपनी विरह-वेदना की चर्चा करने लगता है।

इसी वक्त एक अनहोनी-सी बात हो गई। अभिनेता मागायेव की पत्नी अचानक रंगमंच पर आ पहुँची। गुस्से में वह अपने पति पर इसलिए झपटी कि वह किसी दूसरी नारी के सामने प्रणय-निवेदन कर रहा था। मागायेव अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नेपथ्य में खींच ले गए ताकि उसे बात समझा सकें। उन्हें आशा थी कि वे उसी क्षण रंगमंच पर लौट आएँगे और नाटक चलता रहेगा। किंतु पत्नी तो पति से लिपट गई और उसे रंगमंच पर नहीं लौटने दिया। नाटक की प्रेयसी रंगमंच के बीच अकेली खड़ी रह गई। सो नाटक रुक गया।

मैं अपने प्रोंपटर के बॉक्स में थियेटरी पोशाक और मेक-अप के बिना मामूली पतलून और खुले कालर की सफेद कमीज पहने बैठा था। लगता है कि पैरों में स्लीपर थे। बेशक मागायेव का पार्ट मुझे जबानी याद था, मगर जिस हाल में मैं बैठा था, उसमें मागायेव की जगह लेना मेरे लिए मुमकिन नहीं था। पर चूँकि मेरे लिए पोशाक नहीं, शब्द ही सबसे अधिक महत्व रखते थे, मैं अपने बॉक्स से निकलकर रंगमंच पर आ गया और उस बेचारी प्रेमिका से वे शब्द कहे, जो आईगाजी यानी अभिनेता मागायेव को कहने चाहिए थे।

मुझे मालूम नहीं कि दर्शकों को संतोष हुआ या नहीं, या नाटक उनके लिए खासा मजाक ही बनकर रह गया, मगर मुझे तो खुशी हुई। दर्शक नाटक का सार समझ गए थे, एक भी शब्द से वंचित नहीं हुए थे और मैं इसी को सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात मानता था।

मुझे याद है कि इसी थियेटर के साथ मैं पहली बार विख्यात, ऊँचे पहाड़ी गाँव गूनीब में गया था। यह तो सभी जानते हैं कि बेशक कवि एक-दूसरे से अपरिचित भी हों, फिर भी एक-दूसरे के यार होते हैं। गूनीब में एक ऐसा ही शायर रहता था,

जिसके बारे में मैंने सुना तो था, मगर मिलने का मौका नहीं हुआ था। मैं इस कवि से मिलने गया और जब तक हमारा थियेटर वहाँ रहा, मैं उसी के घर में रहा।

मेहरबान मेजबानों ने मेरी इतनी ज्यादा खातिरदारी की कि मुझे परेशानी-सी होने लगी, मेरी समझ में यही नहीं आता था कि कैसे अपनी झेंप छिपाऊँ। कवि की माँ के स्नेह की तो मेरे मन पर विशेषतः बहुत गहरी छाप थी।

वहाँ से रवाना होने के समय मुझे अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे। कुछ ऐसा हुआ कि जब मैंने कवि की माँ से विदा ली, तो कमरे में कोई नहीं था। मैं जानता था कि अगर उसके बेटे के बारे में कुछ अच्छे शब्द कहूँ, तो माँ के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और कुछ नहीं हो सकती। बेशक मैं यह अच्छी तरह समझता था कि गूनीब का वह कवि साधारण है, फिर भी मैं उसकी प्रशंसा करने लगा। मैंने उसकी माँ से यह कहना शुरू किया कि उसका बेटा बहुत अग्रगामी कवि है, सदा ज्वलंत विषयों पर कविताएँ रचता है।

'संभव है कि अग्रगामी ही हो,' माँ ने उदासी से मुझे टोकते हुए कहा, 'मगर प्रतिभा उसमें नहीं है। बेशक उसकी कविताएँ ज्वलंत समस्याओं से संबंधित हों, मगर जब मैं उन्हें पढ़ती हूँ, तो मुझे ऊब महसूस होने लगती है। रसूल, तुम ही जरा गौर करो कि जब मेरा बेटा पहले शब्द बोलना सीख रहा था, जिन्हें तो समझना भी मुश्किल था, तो मुझे इतनी खुशी हुई थी कि बयान से बाहर। मगर अब, जब वह बोलना ही नहीं, कविता रचना भी सीख गया है, तो मुझे ऊब महसूस होती है। कहते हैं कि औरत की अक्ल उसके फ्राक के पल्ले पर होती है। जब वह बैठी होती है, तो उसकी अक्ल लुढ़ककर फर्श पर जा गिरती है। मेरे बेटे का भी यही हाल है। जब तक वह खाने की मेज पर बैठा रहता है, खाते हुए साधारण ढंग से बातचीत करता है, मैं खुशी से उसकी बातें सुनती हूँ। मगर खाने की मेज से लिखने-पढ़ने की मेज तक जाते-जाते वह सीधे-सादे और अच्छे-अच्छे सभी शब्द खो बैठता है। बस, दुर्बोध, नीरस और ऊबभरे शब्द ही उसके पास रह जाते हैं।'

इस घटना को याद करके मैं अल्लाह से यही दुआ करता हूँ कि वह मेरी जबान मेरे पास बनी रहने दे। मैं ऐसे लिखना चाहता हूँ कि मेरी कविताओं, मेरी इस किताब को तथा इनके अलावा मैं और भी जो कुछ लिखूँ, उसे भी माँ, बहन, हर पर्वतवासी और हर वह व्यक्ति, जिसके हाथ में मेरी किताब जाए, समझे, प्यार करे। मैं ऊब पैदा करना नहीं चाहता, लोगों को खुशी देना चाहता हूँ। अगर मेरी भाषा बिगड़ जाती है, प्राणहीन, दुर्बोध और ऊबभरी हो जाती है - थोड़े में यह कि

अगर मैं अपनी मातृभाषा को बिगाड़ता हूँ, तो मेरे लिए जीवन में इससे अधिक भयानक बात और कुछ नहीं हो सकती।

बहुत पहले की बात है, तब मैं छोकरा ही था। हमारे गाँव के लोग मसजिद के करीब जमा होकर अपने साझे मसलों पर सोच-विचार किया करते थे। तब मैं वहाँ अपने पिता की कविताएँ पढ़कर सुनाया करता था। छोकरा होते हुए भी मैं बड़े जोश से (जरूरत से ज्यादा जोश के साथ) खूब ऊँचे और उन शब्दों तथा आवाजों पर खास जोर देकर कविताएँ पढ़ता था, जो मुझे पसंद आती थीं। उदाहरण के लिए, पिता जी की नई कविता 'त्सादा में भेड़िये का शिकार' का पाठ करते हुए मैं सभी शब्दों में 'त्स' ध्वनि का दाँत भींचकर ऐसे उच्चारण करता कि वे थर्राते, आपस में टकराते और झनझनाते। मुझे लगता कि इन ध्वनियों के ऐसे तीव्र और जोरदार उच्चारण से अधिक प्रभाव पैदा होता है।

पिता जी हर बार यह कहते हुए मुझे समझाने की कोशिश करते -

'शब्द क्या कोई अखरोट या बादाम है, जिसे दाँतों तले दबाकर तोड़ा जाए? फिर शब्द क्या कोई लहसुन है कि उसे बट्टे से सिल पर पीसा जाए? या शब्द कोई सूखी पथरीली जमीन है कि एड़ी-चोटी का जोर लगाकर उस पर हल चलाया जाए? शब्दों को चबाए बिना ऐसे सहज ढंग से उनका उच्चारण करो कि तुम्हारे दाँत बजें नहीं, उनमें से झनझनाहट न पैदा हो।'

मैं फिर से कविता पढ़ता, मगर फिर से वही नतीजा निकलता। एक बार मेरी माँ इस वक्त घर की छत के सिरे पर खड़ी थीं। पिता जी ने पुकारकर माँ से कहा -

'तुम ही इसे किसी तरह यह सिखा दो!'

माँ ने मेरे लिए कठिन शब्दों का वैसे उच्चारण किया, जैसे पिता जी चाहते थे।

'सुना? अब तुम इन्हें ऐसे ही दोहराओ।'

मुझे फिर भी कामयाबी नहीं मिली

'छिः,' पिता जी झल्ला उठे। 'शब्दों को बिगाड़नेवाले एक जालातूरीवासी की मैंने झाड़ू से पिटाई की थी। अपने बेटे का मैं क्या करूँ?'

वे दुखी होकर सभा से चले गए।

पिता जी ने जालातूरीवासी की कैसे पिटाई की।

वसंत के मौसम में पैंठ लगने का दिन था। जैसा कि सभी जानते हैं, वसंत में पिछली फसल की बची-बचाई सभी चीजें खत्म हो जाती हैं और नई फसल अभी आई नहीं होती। वसंत में पतझर की तुलना में सभी चीजें बाजार में महँगी होती हैं, यहाँ तक कि हाँडियाँ भी, यद्यपि वे खेत में पैदा नहीं होतीं।

मेरे पिता जी ने, जो उस वक्त जवान आदमी थे, बाजार जाने का इरादा बनाया। पड़ोसी ने उनसे झाड़ू खरीदने को कहा और इसके लिए बीस कोपेक दिए।

'अगर झाड़ू सस्ती मिल जाए, तो बाकी पैसे अपने पास रख लेना,' पड़ोसी ने जवान हमजात से कहा। खैर वे बाजार पहुँचे।

झाड़ू बेचनेवाले को उन्होंने जल्दी ढूँढ़ लिया और लगे उससे मोल-तोल करने।

यह तो शायद सभी जानते हैं कि पूर्वी बाजार में किसी भी चीज के लिए माँगे जानेवाले पहले मूल्य का कोई महत्व नहीं होता। पाँच कोपेक की चीज के लिए सौ रूबल भी बताए जा सकते हैं।

पिता जी ने अच्छी और मजबूत-सी झाड़ू चुनकर पूछा -

'बेचते हो?'

'तो और किसलिए यहाँ खड़ा हूँ?'

'क्या कीमत है?'

'चालीस कोपेक।'

'झाड़ू तो घोड़ा नहीं है कि ऊँची कीमत से सौदाबाजी शुरू की जाए। एक बार ही असली दाम कह दो और मामला तय करो।'

'चालीस कोपेक।'

'मजाक छोड़ो।'

'चालीस कोपेक।'

'बीस में दे दो।'

'चालीस कोपेक।'

'मगर मेरे पास तो सिर्फ बीस कोपेक हैं।'

'चालीस कोपेक।'

'मगर मेरे पास तो सचमुच ही और पैसे नहीं हैं।'

'जब हों, तो तब आना।'

यह समझ में आ जाने पर कि झाड़ू नहीं खरीदी जा सकेगी, मेरे पिता जी बाजार में घूमने लगे और जल्दी ही दुकानों के करीब एक ऊँची जगह पर उन्हें लोगों की भीड़ दिखाई दी। वे नजदीक गए, धकियाकर आगे बढ़े और समझ गए कि लोग गायक महमूद का गाना सुन रहे हैं।

महमूद पंदूर हाथों में लिए भीड़ के बीच बैठा था। वह कभी पंदूर बजाता और कभी तारों पर हाथ रखकर गाने लगता। सभी दम साधे सुन रहे थे। अपने हर दिन के धंधे के सिलसिले में बाजार के ऊपर उड़नेवाली मधुमक्खी की भिनभिनाहट भी सुनाई दे रही थी। गाने के दौरान एक तरुण खाँसने लगा, तो पके बालोंवाले एक पहाड़ी ने, जो शायद तरुण का बाप था, उसे फौरन दूर भगा दिया।

ऐसी गहरी खामोशी में ही, जब महमूद के गाने के सिवा और कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था, कोई जालातूरीवासी अपने पास खड़े आदमी से बातें करने लगा। वैसे तो वह जालातूरीवासी नेक इरादे से ही ऐसा कर रहा था। उसके पास खड़ा हुआ आदमी अवार भाषा का एक भी शब्द नहीं समझता था और महमूद जो कुछ गाता था, यह जालातूरीवासी उसे साथ-साथ वह सब कुछ समझाता जाता था। मगर मुसीबत तो यह थी कि उसके लगातार बोलते जाने से गाने का रंग-भंग होता था और बाकी लोग उसका पूरी तरह मजा नहीं ले पाते थे।

मेरे भावी पिता, जवान हमजात को जालातूरीवासी की यह हरकत बहुत बुरी लगी। उन्होंने उसे चुप कराने के लिए उसकी आस्तीन खींची, मगर बेकार, उसके कान में यह कहा कि वह चुप रहे। मगर उसने इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। हमजात की समझ में नहीं आ रहा था कि उसे कैसे चुप कराए। इसी परेशानी में उन्होंने इधर-उधर नजर दौड़ाई, तो देखा कि झाड़ू बेचनेवाला भी गाना सुनने के लिए करीब ही आ खड़ा हुआ है। पिता जी भागकर उसके पास गए, सबसे बड़ी झाड़ू उसके हाथ से झपट ली और उससे लोगों के रंग में भंग डालनेवाले इस जालातूरीवासी की पिटाई करने लगे।

जालातूरीवासी धमकियाँ देता हुआ पीछे हटने लगा, मगर पिता जी ऐसे आग-बबूला हो उठे थे कि उन्होंने उसकी धमकियों की जरा भी परवाह न करते हुए गाने में खलल डालनेवाले उस आदमी को वहाँ से खदेड़ दिया। इसके बाद पिता जी झाड़ू बेचनेवाले के पास झाड़ू लौटाने गए।

'अपने पास ही रख लो।'

'मगर मेरे पास तो सिर्फ बीस कोपेक हैं और तुम चालीस माँगते हो।'

'मुफ्त ही ले जाओ। तुमने जो काम किया है, वह तो मेरे सारे माल से ज्यादा कीमत रखता है।'

गीत का मजा किरकिरा करनेवाले जालातूरीवासी तो अब इस दुनिया में बहुत हैं। अफसोस तो इस बात का है कि उनके लिए झाड़ू और ऐसा

आदमी नहीं है, जो उस झाड़ू का इस्तेमाल करता।

पहाड़ों में बढ़िया, तीर की तरह निशाने पर बैठनेवाले और पैने शब्द की तारीफ में यह कहा जाता है -

'जीन कसे घोड़े के बराबर कीमत है इसकी।'

नोटबुक से। मखचकला में मेरा पड़ोसी अली अलीयेव बहुत ही शानदार पहलवान है, चार बार विश्व-चैंपियन रह चुका है। एक बार इस्तांबूल में उसे तुर्की के सबसे तगड़े पहलवान से कुश्ती करनी पड़ी। तुर्क पहलवान सचमुच ही बहुत ताकतवर और फुर्तीला था। किंतु शांतचित्त और साहसी अली अलीयेव ने तुर्क को डोरी के गोले की तरह कालीन पर चित फेंक दिया। तुर्क ने उठते हुए अवार भाषा में धीरे-से कुछ भला-बुरा कहा। अपनी भाषा सुनकर अली अलीयेव को बड़ी हैरानी हुई। मगर जब विजेता ने भी अवार भाषा में यह कहा, 'हमवतन, कोसते क्यों हो, खेल तो खेल ठहरा,' तो तुर्क को और भी ज्यादा हैरानी हुई।

फिर जब एक जमाने से बिछुड़े हुए दो भाइयों की तरह दोनों पहलवानों ने अचानक एक-दूसरे को बाँहों में भर लिया, तो उन दोनों से भी ज्यादा हैरानी हुई रेफरी और दर्शकों को।

मालूम यह हुआ कि तुर्क उस अवार परिवार से संबंध रखता था, जो शामिल की गिरफ्तारी के बाद तुर्की चला गया था। अब भी जब कभी इन दोनों पहलवानों की मुलाकात होती है, तो वे दोस्तों की तरह मिलते हैं।

पिता जी का संस्मरण। 1939 में मेरे पिता जी एक पदक पाने के लिए मास्को गए। उस वक्त तो यह एक बहुत बड़ी घटना थी। जब वे छाती पर पदक लगाए हुए लौटे, तो गाँव की मजलिस हुई और लोगों ने उनसे मास्को, क्रेम्लिन और मिखाईल इवानोविच कालीनिन के बारे में, जो उस वक्त पदक भेंट किया करते

थे, तथा यह भी बताने को कहा कि किस चीज ने उनके दिल पर सबसे गहरी छाप छोड़ी।

जो कुछ हुआ था, पिता जी ने वह सभी सिलसिलेवार सुनाया और फिर यह भी कहा -

'सबसे बड़ी बात तो यह है कि मिखाईल इवानोविच कालीनिन ने रूसी में नहीं, अवार भाषा में मेरे नाम का उच्चारण किया। उन्होंने मुझे हमजात त्सादासा नहीं, त्स' अदासा हमजात कहा।'

गाँव के बड़े-बूढ़े हैरान हुए और उन्होंने सिर हिलाकर अपनी खुशी जाहिर की।

'देखा न,' पिता जी ने कहा, 'मेरी जबान से यह सुनकर ही तुम्हें कितनी खुशी हो रही है। क्रेम्लिन में खुद कालीनिन के मुँह से यह सुनकर मुझ कितना अच्छा लगा होगा। आप लोगों से ईमान की बात कहता हूँ कि इतनी ज्यादा खुशी हुई थी इससे कि पदक के बारे में खुश होने की सुध ही नहीं रही।'

पिता जी की भावनाओं को मैं बहुत ही अच्छी तरह समझता हूँ।

कुछ साल पहले मैं सोवियत लेखकों के एक प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के नाते पौलेंड गया। एक दिन क्रेको में किसी ने होटल में मेरे कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी। मैंने दरवाजा खोला। किसी अपरिचित ने शुद्ध अवार भाषा में पूछा -

'हमजातील रसूल यहीं रहते हैं?'

मैं चकराया और साथ ही बेहद खुश हुआ -

'अल्लाह करे कि तुम्हारे अब्बा के घर को कभी आग न लगे, वह कभी तबाह न हो! यह बताओ कि तुम अवार यहाँ क्रैको में कैसे आ बसे?'

मैंने लपककर अपने मेहमान को लगभग गले लगा लिया, कमरे में खींच ले गया और सारा दिन तथा सारी शाम हम बातें करते रहे।

मगर मेरे मेहमान अवार नहीं थे। वे दागिस्तान की भाषा और साहित्य का अध्ययन करनेवाले पोलिश विद्वान थे। अवार भाषा उन्होंने नजरबंद कैंप के दो अवार कैदियों से ही पहले पहल सुनी थी। भाषा उन्हें अच्छी लगी और खुद अवार तो और भी ज्यादा पसंद आए। वे अवार भाषा सीखने लगे। बाद में एक अवार तो चल बसा, दूसरा कैदी रहा, सोवियत सेना ने उसे मुक्ति दिलाई और वह अभी तक जिंदा है।

पोलिश विद्वान के साथ हमने केवल अवार भाषा में ही बातचीत की। मेरे लिए यह अनूठी और असाधारण-सी बात थी। मैंने उन्हें दागिस्तान आने की दावत दी।

हाँ, तो उस दिन हम दोनों ने अवार भाषा में बातचीत की। मगर मेरी और उनकी भाषा में बहुत बड़ा अंतर था। वे विद्वानों की, शुद्ध, बहुत सही, बहुत ही ज्यादा सही, यहाँ तक कि बेजान भाषा बोलते थे। वे भाषा की रंगीनी और हर शब्द की धड़कन की तुलना में व्याकरण, शब्द-क्रम और वाक्य-रचना की तरफ ज्यादा ध्यान देते थे।

मैं ऐसी पुस्तक लिखना चाहता हूँ, जिसमें भाषा व्याकरण के अधीन न होकर व्याकरण भाषा के अधीन हो।

अन्यथा मैं व्याकरण को सड़क पर पैदल जानेवाले और साहित्य को खच्चर पर सवार मुसाफिर की उपमा दूँगा। पैदल चलनेवाले ने खच्चर पर सवार मुसाफिर से अनुरोध किया कि वह उसे खच्चर पर बैठा ले। उसने उसे अपने पीछे जीन पर बैठा लिया। पैदल मुसाफिर की धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ी, उसने खच्चर सवार को जीन से नीचे धकेल दिया और फिर यह चिल्लाते हुए उसे दुतकारने लगा -

'यह खच्चर और जीन के साथ बँधा हुआ सारा माल-मता भी मेरा है!'

मेरी प्यारी अवार भाषा! तुम मेरी दौलत हो, बुरे दिनों के लिए सँजोकर रखा गया खजाना हो, सभी रोगों के लिए रामबाण हो। अगर आदमी गायक की आत्मा लेकर गूँगा पैदा हुआ है, तो उसका न जन्म लेना ही बेहतर होता। मेरी आत्मा में ढेरों गीत हैं और मुझे आवाज भी मिली है। यह आवाज तुम हो, मेरी प्यारी अवार भाषा। एक लड़के की तरह मेरा हाथ थामकर तुम मुझे मेरे गाँव से बड़ी दुनिया में, लोगों के पास ले गई हो और मैं उन्हें अपनी मातृभूमि के बारे में बताता हूँ। तुम ही मुझे उस देव के पास ले गईं, जिसका नाम महान रूसी भाषा है। वह भी मेरे लिए मातृभाषा बन गई। उसने मेरा दूसरा हाथ पकड़ा और मुझे दुनिया के सभी देशों में ले गई। मैं उसका उसी तरह आभारी हूँ, जैसे हारादारीह गाँव की उस नारी का, जो मेरी धाय थी। मगर फिर भी मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी सगी माँ भी है।

कारण कि अपने चूल्हे में आग जलाने के लिए हम पड़ोसी से दियासलाई ला सकते हैं। मगर हम ऐसी दियासलाई माँगने के लिए दोस्तों के पास नहीं जा सकते, जिससे दिल में आग जलाई जा सके।

लोगों की भाषाएँ बेशक अलग-अलग हों, मगर दिल एक होने चाहिए। मैं ऐसे कई दोस्तों को जानता हूँ, जो अपना गाँव छोड़कर बड़े शहरों में जा बसे हैं। इसमें कोई खास बुरी बात नहीं है। पक्षियों के बच्चे भी पंख निकलने तक ही घोंसलों में रहते हैं। मगर इस बात का क्या किया जाए कि बड़े शहरों में रहनेवाले मेरे दोस्तों में से कुछेक अब दूसरी भाषा में लिखते हैं! जाहिर है कि यह उनका अपना मामला है और मैं उन्हें कोई सीख नहीं देना चाहता। मगर फिर भी वे एक हाथ में तरबूज सँभालने की कोशिश करनेवाले लोगों के समान हैं।

मैंने इन बेचारों से बात की और इस नतीजे पर पहुँचा कि जिस भाषा में वे अब लिखते हैं, वह अवार तो है ही नहीं, मगर रूसी भी नहीं। वे मुझे ऐसे वन की याद दिलाते हैं, जहाँ लकड़हारों ने बड़े अटपटे ढंग से काम किया है।

हाँ, मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जिनके लिए अपनी मातृभाषा अशक्त और अपर्याप्त थी और वे सशक्त तथा समृद्ध भाषा की खोज में निकल पड़े। मगर नतीजा निकला उस अवार लोक-कथा जैसा, जिसमें एक बकरी भेड़िये जैसी दुम बढ़ाने के लिए जंगल में गई। मगर लौटी सींगों से भी हाथ धोकर।

या फिर वे पालतू हंसों जैसे हैं, जो तैर और डुबकी भी लगा सकते हैं, मगर मछली की तरह तो नहीं, कुछ उड़ भी सकते हैं, मगर उन्मुक्त पक्षियों की तरह तो नहीं, कुछ गा भी सकते हैं, मगर फिर भी बुलबुल तो नहीं हैं। वे कुछ भी तो ढंग से नहीं कर सकते।

'कैसा हाल-चाल है?' एक बार मैंने अबूतालिब ने पूछा।

'बस, ऐसा ही। न तो भेड़िये जैसा, न खरगोश जैसा। दोनों के बीच का सा।' अबूतालिब कुछ देर चुप रहकर बोले, 'लेखक के लिए यह बीच की स्थिति ही सबसे बुरी होती है। उसे या तो खरगोश को हड़प जानेवाले भेड़िये या भेड़िये से बच निकलनेवाले खरगोश की तरह अपने को महसूस करना चाहिए।'

नोटबुक से। एक बार पड़ोस के गाँव के कुछ किशोर मेरे पिता जी के पास आए और उन्हें बताया कि उन्होंने एक गायक की पिटाई कर डाली है।

'किसलिए पीटा है तुमने उसे?' पिता जी ने पूछा।

'वह गाते हुए मुँह बनाता था, जान-बूझकर खाँसता था, शब्दों को तोड़ता-मरोड़ता था, कभी चीखने, तो कभी कुत्ते की तरह भौंकने लगता था। उसने गाने का सत्यानाश कर दिया था, इसीलिए हमने उसकी मरम्मत की।'

'किस चीज से मरम्मत की तुमने उसकी?'

'किसी ने पेटी से, किसी ने घूँसों से।'

'कोड़े से भी पिटाई करनी चाहिए थी। मगर मैं यह जानना चाहता हूँ कि किन जगहों पर तुमने उसकी ठुकाई की?'

'ज्यादा तो धड़ के नीचेवाले हिस्सों पर। मगर जाहिर है कि गर्दन भी बची नहीं रही।'

'मगर सबसे ज्यादा कुसूर तो सिर का था।'

संस्मरण। एक और घटना अगर याद आ ही गई है, तो यहाँ उसका भी उल्लेख क्यों न कर दिया जाए? मखचकला में एक अवार गायक रहते हैं... मैं उनका नाम नहीं बताना चाहता। वे तो खैर जान ही जाएँगे कि यहाँ उन्हीं का जिक्र किया गया है और आपको नाम जानने या न जानने से फर्क ही क्या पड़ता है? ये गायक अक्सर मेरे पिता जी के पास आते और उनसे अपनी धुनों पर गीत रचने का अनुरोध करते। पिता जी राजी हो जाते और इस तरह गानों का जन्म होता।

एक दिन हम चाय पी रहे थे, जब रेडियो पर यह घोषणा हुई कि विख्यात गायक हमजात त्सादासा का लिखा गीत गाएँगे। हम सभी और पिता जी भी ध्यान से सुनने लगे। मगर गाना ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, हमारी हैरानी भी उतनी ही ज्यादा बढ़ती जाती थी। गायक ऐसे गा रहे थे कि एक भी शब्द पल्ले नहीं पड़ता था। बस, कुछ चीजें ही सुनाई देतीं और गायक शब्दों को ऐसे निगल जाते, जैसे कोई मुर्गा अपने सारे चुग्गे को पहले तो इधर-उधर बिखरा दे और फिर दाना-दाना करके उन्हें चुगने लगे।

गायक से मुलाकात होने पर पिता जी ने उनसे पूछा कि उनके गीत के साथ उन्होंने ऐसी ज्यादती क्यों की।

'मैं इसलिए ऐसा करता हूँ' गायक ने जवाब दिया, 'कि दूसरे न तो कुछ समझ सकें और न ही याद रख पाएँ। अगर दूसरे गायकों को गीत याद हो गया, तो वे भी गाने लगेंगे, मगर मैं चाहता हूँ कि सिर्फ मैं ही उसे गाऊँ।'

कुछ समय बाद पिता जी ने अपने दोस्तों की दावत की। गायक भी आए थे। दावत जब खत्म होने की थी, तो पिता जी ने दीवार पर से टूटे तारोंवाला कुमज उतारा और वह गीत गाने लगे, जिसकी धुन गायक ने रची थी। पिता जी शब्दों का तो बहुत स्पष्ट उच्चारण करते, मगर बेसुरे साज पर बजाई जानेवाली धुन का पूरी तरह हुलिया बिगड़ गया। गायक को बहुत बुरा लगा, कहने लगे कि टूटे तारोंवाले, बेसुरे कुमुज पर उनकी रची हुई धुन नहीं बजाई जानी चाहिए, कि ऐसा

कुमुज उनके गाने का माधुर्य प्रस्तुत करने में असमर्थ है। पिता जी ने बड़े इतमीनान से जवाब दिया -

'यह तो मैं जान-बूझकर ऐसे गाता और साज बजाता हूँ। ताकि दूसरे तुम्हारी धुन को समझकर याद न कर लें। अगर ऐसा गाना चल सकता है, जिसमें शब्द पल्ले न पड़ें, तो भला ऐसा गाना क्यों नहीं चलेगा, जिसमें धुन का सिर-पैर मालूम न हो सके।'

दागिस्तानी लेखक दस भाषाओं में लिखते हैं और नौ में अपनी रचनाएँ छापते हैं। मगर ऐसी स्थिति में वे क्या करते हैं, जो दसवीं भाषा में लिखते हैं? और यह भाषा क्या है?'

दसवीं भाषा में वे लिखते हैं, जो अपनी मातृभाषा - वह चाहे अवार, लाक या तात कोई भी क्यों न हो - भूल चुके हैं, मगर पराई भाषा सीख नहीं पाए हैं। वे न घर के हैं, न घाट के।

अगर आप पराई भाषा को अपनी मातृभाषा से ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं, तो उसमें लिखें। या फिर अगर कोई दूसरी भाषा ढंग से नहीं जानते, तो मातृभाषा में लिखिए। मगर दसवीं भाषा में नहीं लिखिए।

हाँ, मैं दसवीं भाषा का दुश्मन हूँ। भाषा पुरानी, एक हजार साल की होनी चाहिए। तभी वह काम आ सकती है।

निश्चय ही भाषा बदलती रहती है और इसके खिलाफ मैं किसी तरह की बहस नहीं करूँगा। वृक्ष के पत्ते भी तो हर साल बदलते हैं, कुछ गिरते हैं और दूसरे उनकी जगह आते हैं। मगर वृक्ष तो ज्यों-का-त्यों बना रहता है। वह साल-दर-साल अधिकाधिक ऊँचा होता जाता है, उसकी शाखाएँ बढ़ती जाती हैं। आखिर उस पर फल आ जाते हैं।

मैं आपको अपने गीत, अपनी किताबें देता हूँ, अवार भाषा के छोटे, मगर प्राचीन वृक्ष पर उगाए हुए फल आपकी भेंट करता हूँ।

मातृभाषा

सपनों में तो सदा अनोखी और अटपटी बातें होतीं
आज अचानक मैंने अपने को सपने में मरते देखा
दागिस्तानी घाटी थी, मैं था, औ' धूप झुलसती थी

सीना गोली से छलनी था, मिटती थी जीवन की रेखा।

कलछल कलछल नदिया बहती, वह अबाध ही दौड़ी जाती
नहीं जरूरत जिसकी जग को, और सभी ने जिसे भुलाया,
मेरे नीचे थी मेरी ही, अपनी मिट्टी, अपनी धरती
उसका हिस्सा बनने की थी, कुछ क्षण में मेरी भी काया।

गिनता हूँ मैं अपनी साँसें, मगर न कोई इतना जाने
पास न कोई मेरे आए, सहलाए न प्यारी बाँहें,
सिर्फ उकाब कहीं दूरी पर, ऊँची-ऊँची भरे उड़ानें
और कहीं पर एक तरफ को, हिरन भर रहे ठंडी आहें।

अपनी भरी जवानी में मैं छोड़ रहा हूँ इस दुनिया को
फिर भी मेरी इस मिट्टी पर, मेरे शव पर और कब्र पर,
माँ भी नहीं, नहीं प्यारी भी, नहीं दोस्त कोई रोने को
अरे, न क्यों वे भी आती हैं, जो रोती हैं पैसे लेकर।

बेबस पड़ा-पड़ा ऐसे ही, तोड़ रहा था मैं दम अपना
तभी अचानक, कहीं निकट ही कुछ आवाजें पड़ीं सुनाई,
चले जा रहे थे दो साथी, वे कुछ कहते, कुछ बतियाते
भाषा उनकी भी अवार थी, मेरे कानों को सुखदाई

आग उगलती दोपहर में उस दागिस्तानी घाटी में
मैं मरता था, मगर लोग तो, हँसते, बतियाते जाते थे,
किसी हसन की मक्कारी की, किसी अली की सूझ-बूझ की
मजे-मजे चर्चा करते वे किस्से कह मन बहलाते थे।

अपनी ही भाषा में सुनकर कुछ धीमी-धीमी आवाजें
मुझे लगा कुछ ऐसे, जैसे जान जिस्म में फिर से आए,
समझ गया मैं वैद्य, डॉक्टर, मुझे न कोई बचा सकेगा
केवल मेरी अपनी भाषा, मुझे प्राण दे सके, बचाए।

शायद और किसी को दे दे, सेहत कहीं अजनबी भाषा
पर मेरे सम्मुख वह दुर्बल, नहीं मुझे तो उसमें गाना,
और अगर मेरी भाषा के, बदा भाग्य में कल मिट जाना
तो मैं केवल यह चाहूँगा, आज, इसी क्षण ही मर जाना।

मैंने तो अपनी भाषा को, सदा हृदय से प्यार किया है
बेशक लोग कहें, कहने दो, मेरी यह भाषा दुर्बल है,
बड़े समारोहों में इसका, हम उपयोग नहीं सुनते हैं
मगर मुझे तो मिली दूध में, माँ के, वह तो बड़ी सबल है।

आनेवाली नई पीढ़ियाँ, क्या अनुवादों के जरिए ही
समझेंगी महमूद और उसकी कविता का रंग निराला?
क्या मैं ही वह अंतिम कवि हूँ, जो अपनी प्यारी भाषा में
जो अवार भाषा में लिखता, उसमें छंद बनानेवाला।

प्यार मुझे बेहद जीवन से, प्यार मुझे सारी पृथ्वी से
उसका कोना-कोना प्यारा, प्यारा उसका साया, छाया,
फिर भी सोवियत देश अनूठा मुझको सबसे ज्यादा प्यारा
अपनी भाषा में उसका ही, मैंने जी भर गौरव गाया।

बाल्टिक से ले, सखालीन तक, इस स्वतंत्र, खिलती धरती का
हर कोना मुझको प्यारा है, हर कोना ही मन भरमाए,
इसके हित हँसते-हँसते ही, दे दूँगा मैं प्राण कहीं भी
पर मेरे ही जन्म-गाँव में, बस मुझको दफनाया जाए।

ताकि गाँव के लोग कभी आ, करें कब्र पर चर्चा मेरी
कहें हमारी भाषा में यह, यहाँ रसूल अपना सोता है,
अपनी भाषा में ही जिसने, अपने मन-भावों को गाया
त्सादा के हमजात सुकवि का, अरे वही बेटा होता है।

नोटबुक से। एक पहाड़ी नौजवान के माँ-बाप इस बात के खिलाफ थे कि वह रूसी लड़की से शादी करे। मगर वह लड़की शायद अपने अवार प्रेमी को बहुत

प्यार करती थी। एक दिन उस नौजवान को अपनी प्रेमिका से अवार भाषा में लिखा हुआ एक खत मिला। नौजवान ने माँ-बाप को वह खत दिखाया। उन्होंने उसे पढ़ा और बहुत हैरान हुए। इस खत ने उनके दिल पर इतना असर किया कि उन्होंने उस असाधारण पत्र को हाथ में लिए हुए उसी समय उस लड़की को अपने घर लाने की इजाजत दे दी।

नोटबुक से। लेखक के लिए भाषा वैसे ही है, जैसे किसान के लिए खेत में फसल। हर बाली में बहुत-से दाने होते हैं और इतनी अधिक बालियाँ होती हैं कि गिनना नामुमकिन। पर किसान अगर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा हुआ अपनी फसल को देखता रहे, तो एक भी दाना उसे नहीं मिलेगा। रई की फसल को काटना और फिर माँड़ना चाहिए। मगर इतने पर ही तो काम समाप्त नहीं हो जाता। माँड़े अनाज को ओसाना और दानों को भूसे, घास-फूस से अलग करना जरूरी होता है। इसके बाद आटा पीसने, गूँधने और रोटी पकाने की जरूरत होती है। पर शायद सबसे ज्यादा जरूरी तो यह याद रखना होता है कि रोटी की चाहे कितनी भी अधिक जरूरत क्यों न हो, सारा अनाज इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। किसान सबसे अच्छे दानों को बीजों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए रख लेता है।

भाषा पर काम करनेवाला लेखक सबसे अधिक तो किसान जैसा ही होता है।

कहते हैं कि बालकों ने उस वृक्ष को काट डाला, जिस पर एक पक्षी रहता था और उसका घोंसला तबाह कर डाला।

'वृक्ष, तुम्हें क्यों काट डाला गया?'

'क्योंकि मैं बेजबान हूँ।'

'पक्षी, तुम्हारा घोंसला क्यों बरबाद कर दिया गया?'

'क्योंकि मैं बहुत बकबक करता था।'

कहते हैं कि शब्द तो बारिश के समान होते हैं : एक बार - महान वरदान है, दूसरी बार - अच्छी रहती है, तीसरी बार - सहन हो सकती है, चौथी बार - दुख और मुसीबत बन जाती है।

विषय

दरवाजे को तोड़ो नहीं - वह किसी कठिनाई
के बिना चाभी से खुल जाता है।

द्वार पर आलेख

यह मत कहो - 'मुझे विषय दो'।
यह कहो - 'मुझे आँखें दो'।

युवा लेखक को सीख

'प्यारे साथियो, मेरी कलम लिखने को बेकरार है। मगर यह समझ में नहीं आता कि किस विषय पर लिखूँ। मुझे सामयिक महत्व का कोई विषय बताइए और मैं उस पर एक बहुत बढ़िया किताब लिख दूँगा।'

लेखक संघ, पत्रिकाओं या समचार-पत्रों के संपादक-मंडलों या लेखकों के नाम अपने पत्रों में युवाजन इस तरह का अनुरोध करते हैं। मेरे पास भी ऐसे खत आते हैं। मेरे पिता जी के पास भी ऐसे पत्र आया करते थे। कभी-कभी वे सिर हिलाते हुए कहते -

'जवान आदमी शादी करना चाहता है, मगर मुसीबत यह है कि किससे शादी करे, उसे यह मालूम नहीं। उसकी नजर में एक भी लड़की नहीं है, इसलिए कोई भी नहीं जानता कि सगाई करनेवालों को कहाँ भेजा जाए।'

संस्मरण। एक बार दागिस्तान के लेखक-संघ में अबूतालिब का खत आया। कवि ने लिखा था कि उन्हें एक महीने के लिए दूरस्थ पहाड़ी गाँवों में सामग्री जुटाने के लिए भेज दिया जाए। प्रबंध समिति की बैठक में अबूतालिब से पूछा

गया कि वे किस बारे में, किस विषय पर लिखना चाहते हैं। बुजुर्ग शायद झल्ला उठे -

'क्या शिकारी पहले से ही यह जान सकता है कि कौन-सा शिकार उसके सामने आ जाएगा - खरगोश, हंस, भेड़िया या लाल लोमड़ी? क्या कोई योद्धा पहले से ही यह जान सकता है कि लड़ाई के मैदान में वह बहादुरी का कौन-सा कारनामा कर दिखाएगा?'

मैं भी उस बैठक में उपस्थित था। अबूतालिब के शब्दों ने मेरे दिल में घर कर लिया।

मुझे ऐसे लोगों की वजह से हमेशा हैरानी होती है, जो लेखक से कुरेद-कुरेदकर यह पूछते हैं कि अगले कुछ सालों में वह क्या लिखने का इरादा रखता है। यह सही है कि किस तरह की चीज वह लिखना चाहता है, उसकी कुछ मोटी-सी रूप-रेखा लेखक के दिमाग में होती है। शायद वह यह योजना बना सकता है कि उपन्यास लिखेगा या तीन खंडोंवाला बड़ा उपन्यास लिखेगा, मगर कविता कविता तो अप्रत्याशित ही आती है, उपहार की तरह। कवि का धंधा योजनाओं के कठोर बंधनों को नहीं मानता। कोई अपने लिए इस तरह की योजना तो नहीं बना सकता - आज सुबह के दस बजे मैं सड़क पर मिल जानेवाली लड़की से प्रेम करने लगूँगा। या यह कि कल शाम के पाँच बजे किसी नीच आदमी से नफरत करने लगूँगा।

कविता गुलाबों के बगीचे या व्यारियों में खिलनेवाले फूलों के समान नहीं है। वहाँ वे हमेशा हमारे सामने होते हैं - हमें उन्हें खोजना नहीं पड़ता। कविता तो मैदानों, ऊँची चरागाहों में खिलनेवाले फूलों की तरह होती है। वहाँ हर कदम पर नया, अधिक सुंदर फूल पाने की आशा बनी रहती है।

भावनाओं से संगीत का जन्म होता है, संगीत से भावनाओं का। किसे पहला स्थान दिया जाए? आज तक इस सवाल का जवाब नहीं मिल सका कि मुर्गी पहले पैदा हुई या अंडा? ठीक ऐसा ही यह सवाल है - लेखक विषय को जन्म देता है या विषय लेखक को? विषय - यह तो लेखक का संपूर्ण संसार है, संपूर्ण लेखक है। विषय के बिना उसका अस्तित्व ही नहीं होता। हर लेखक का अपना ही विषय होता है।

विचार और भावनाएँ पक्षी हैं, विषय आकाश हे; विचार और भावनाएँ हिरन हैं, विषय जंगल है; विचार और भावनाएँ बारहसिंगे हैं, विषय पर्वत है; विचार

और भावनाएँ रास्ते हैं, विषय वह नगर है, जिधर से रास्ते ले जाते हैं और आपस में जा मिलते हैं।

मेरा विषय है - मातृभूमि। मुझे उसे खोजने और चुनने की जरूरत नहीं। हम तो अपने लिए मातृभूमि नहीं चुनते, मगर मातृभूमि ने हमें शुरू से ही चुन लिया है। आकाश के बिना उकाब, चट्टानों के बिना पहाड़ी बकरा, तेज और निर्मल जलवाली नदी के बिना ट्राउट और हवाई अड्डे के बिना हवाई जहाज नहीं हो सकता। ऐसे ही मातृभूमि के बिना लेखक नहीं हो सकता।

मुर्गे-मुर्गियों के बीच अहाते में धीरे-धीरे चलनेवाला उकाब-उकाब नहीं रहा। सामूहिक फार्म की भेड़-बकरियों के बीच चरनेवाला पहाड़ी बकरा-पहाड़ी बकरा नहीं रहा। मछलीघर में तैरनेवाली ट्राउट-ट्राउट नहीं रही। अजायबधर में रखा हुआ हवाई जहाज-हवाई जहाज नहीं रहा।

ठीक ऐसे ही बुलबुल के तराने के बिना बुलबुल नहीं हो सकती।

विषय के बारे में कुछ और। बचपन से ही एक दृश्य मुझे बहुत प्रिय है। ऐसा होता कि जब कभी मैं अपने पिता जी के पहाड़ी घर की छोटी-सी खिड़की खोलता, मुझे गाँव के दामन में मेजपोश की तरह बिछा हुआ एक हरा-भरा, चौड़ा पठार दिखाई देता। सभी ओर से चट्टानें उसके ऊपर झुकी होती थीं। चट्टानों के बीच टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ थीं, जो बचपन में मुझे साँपों की याद दिलाती थीं और गुफाओं के मुँह मेरे लिए हमेशा ही दरिंदों के जबड़ों जैसे होते थे। पहाड़ों की पहली कतार के बाद दूसरी कतार नजर आती थी। पहाड़ गोल-गोल, काले-काले और ऊँट की पीठ की तरह झबरीले-से लगते।

अब मैं यह समझता हूँ कि स्विटजरलैंड या नेपुल्स में अधिक सुंदर जगहें भी हैं, मगर मैं जहाँ कहीं भी गया, मेरी आँखों ने इस धरती के कैसे भी सौंदर्य को क्यों नहीं देखा, मैं अपने उस सुदूर बचपन के चित्र से, पहाड़ी घर की छोटी-सी खिड़की के चौखटे में जड़े चित्र से उसकी तुलना करता हूँ और दुनिया के सभी सौंदर्य उसके सामने फीके पड़ जाते हैं। यदि किसी कारणवश मेरा अपना गाँव और उसके इर्द-गिर्द की जगहें न होतीं, यदि वे सब मेरी स्मृति में सजीव न रहतें, तो मेरे लिए सारी दुनिया छाती होती, मगर दिल के बिना, मुँह होती, मगर जबान के बिना, आँखें होती, मगर पुतलियों के बिना घोंसला होती, मगर पक्षियों के बिना। इसका हरगिज यह मतलब नहीं है कि अपने विषय को मैं अपने गाँव और

अपने घर की सीमाओं में बंद कर रहा हूँ, कि अपने मनपसंद विषय के गिर्द किले की ऊँची दीवारें खड़ी कर रहा हूँ।

ऐसी जमीन भी होती है, जहाँ हल से गहरी जोताई की जाती है, मगर जोती हुई मोटी तह के नीचे जमीन की नई नर्म तह नजर आती है। ऐसी जमीन भी होती है कि जिस पर हल्की-सी जोताई करते ही नीचे कठोर पत्थर नजर आने लगते हैं। ऐसी जमीन भी होती है, जिसकी हल्की-सी तह उठाने के पहले ही पत्थर नजर आते हैं। मैं ऐसी जमीन पर हल चलाने और मेहनत करने का इरादा नहीं रखता, क्योंकि जानता हूँ कि वहाँ अच्छी फसल नहीं होगी।

मातृभूमि के प्रति अपने प्यार को मैं उस घोड़े की तरह, जिसने अच्छी तरह काम किया है और जिसे अब मैदान में घास चरनी चाहिए, पगहा बाँधकर या पिछाड़ी डालकर नहीं रखना चाहता। मैं तो घोड़े की लगाम उतारकर उसकी पसीने से तर गर्म गर्दन थपथपाता और यह कहता हूँ - जाओ, जाकर मौज से चरो, शक्ति बटोरो। मातृभूमि के प्रति मेरी भावना में आजादी से चरनेवाले घोड़े की तरह कुछ चैन और मस्ती है।

दुनिया के कार्य-कलापों को मैं अपने पहाड़ी घर, अपने गाँव, अपने दागिस्तान, मातृभूमि के प्रति अपनी भावना के अंतर्गत नहीं खोजना चाहता। इसके उलट, दुनिया के सभी कार्य-कलापों, इसके सभी कोनों में मैं मातृभूमि की भावना अनुभव करता हूँ। इस अर्थ में सारी दुनिया मेरा विषय है।

मुझे याद है कि दूर-दराज के और खूबसूरत सांतियागो में मुर्गों ने मुझे जगा दिया था। जागने पर कुछ मिनट तक मुझे ऐसा लगा मानो मैं छोटे-से पहाड़ी गाँव में हूँ। इस तरह सांतियागो के मुर्गे मेरी रचना का विषय बने।

जापान में, और भी अधिक सुंदर कामाकूर शहर में मुझे सौंदर्य प्रतियोगिता देखने का अवसर मिला। वहाँ 'रूप की महारानी' चुनी जानेवाली थी। जापानी सुंदररियाँ बाँधे हमारे सामने आईं। मैंने बरबस ही उनके साथ अवार पहाड़ों में रह जानेवाली अपनी उस 'एकमात्र' से तुलना की और उनमें मुझे वह नहीं मिला, जो मेरी महारानी में है। इस तरह जापानी सुंदरियाँ और जापानी रूप की महारानी मेरा विषय बनीं।

नेपाल में बौद्ध-मंदिरों, शाही महलों और बाईस चश्मों को, जो सभी बीमारियाँ दूर करते हैं, सभी जादू-टोनों, सभी बुराइयों को दूर भगाते हैं, जी भरकर देखने के बाद आखिर में काठमांडू पहाड़ों की खड़ी चढ़ाइयों पर चढ़ा। इन पहाड़ों ने

मुझे अपने दागिस्तान की याद दिला दी और शानदार तथा आलीशान महलों और मंदिरों की तुलना में उन्हें देखकर दिल को कहीं ज्यादा खुशी हुई। वास्तुशिल्प की विचित्र कृतियों के मुकाबले में मुझे मामूली पहाड़ कहीं ज्यादा कीमती लगे। मेरे दिमाग में यह ख्याल आया कि चमत्कारी चश्मे नहीं, बल्कि ये पहाड़ सभी बीमारियों, सभी बुराइयों को दूर भगा सकते हैं। इस तरह नेपाल के बौद्ध-मंदिर और पर्वत मेरी रचना का विषय बन गए।

बड़े-बड़े और कोलाहलपूर्ण भारतीय नगरों के बाद मुझे कलकत्ता के नजदीक एक छोटे-से गाँव में ले जाया गया। बड़े-से खलिहान में अनाज माँड़ा जा रहा था, बैल गेहूँ के सुनहरे पूलों पर चक्कर काट रहे थे। दुनिया के एक भी संग्रहालय, एक भी थियेटर से मुझे इतनी खुशी नहीं मिली, जितनी अपने खुरों से गेहूँ के सुनहरे पूलों को धीमी चाल से माँड़नेवाले इन बैलों को देखकर। मुझे लगा मानो मैं अपने बचपन और प्यारे गाँव मैं लौट गया हूँ। इस तरह कलकत्ते का निकटवर्ती गाँव मेरा विषय बना।

मैं देख चुका हूँ - हिंदेशिया के पहाड़ों में हमारे पहाड़ों की तरह ढोल बजते, न्यूयार्क की सड़कों पर चेर्केसी जातीय पोशाक पहने किसी काकेशियाई को घूमते; इस्तांबूल और पेरिस में वे दुखी पहाड़ी लोग, जिन्होंने खुद अपने को देश-निकाला दे रखा है और जो दुनिया के सबसे बदकिस्मत लोग है; लंदन की प्रदर्शनी में बालखारी के मशहूर कुम्हारों के मिट्टी के बर्तनों की प्रदर्शनी; वेनिस में लाकों के त्सोकरा गाँव के रज्जु-नर्तकों के करतबों से आश्चर्यचकित होनेवाले दर्शक; पीटसबर्ग की पुरानी किताबों की एक दुकान में शामिल के बारे में एक पुस्तक।

सभी जगहों पर, जहाँ कहीं भी मैं गया, दागिस्तान के साथ मेरा एक तार-सा जुड़ा रहा है।

अगर किसी योद्धा पर कई आदमी तलवारें लेकर एकसाथ टूट पड़ते हैं, तो समझ लो कि उसकी शामत आ गई। वह एकसाथ सामने और पीछे से अपना बचाव नहीं कर सकता। पर यदि उसे कोई चट्टान मिल जाए जिसके साथ वह अपनी पीठ टिका सके, तो स्थिति इतनी बिगड़ नहीं पाती। पीठ को चट्टान के साथ टिकाकर चुस्त और ताकतवर योद्धा एक साथ दो या तीन दुश्मनों से भी लड़ सकता है।

दागिस्तान मेरे लिए ऐसी ही चट्टान है। वह मुझे कठिन-से-कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने में मदद देता है।

यात्री जिन देशों की यात्रा करते हैं, उनके गीत स्वदेश लेकर आते हैं। मगर मेरी मुसीबत तो यह है कि कहीं भी क्यों न जाऊँ, हर जगह से दागिस्तान के बारे में ही गीत लेकर लौटता हूँ। हर कविता के साथ मेरी उससे मानो नई जान-पहचान होती है, उसे नए ही सिरे से समझता और प्यार करता हूँ। मेरे लिए मेरी मातृभूमि दागिस्तान अक्षय और असीम भंडार है।

नोटबुक से।

'उकाब, तुम्हारा सबसे प्यारा गीत किसके बारे में है?'

'खड़े पहाड़ों के बारे में।'

'सागर-पक्षी, तुम्हारा मनपसंद गीत किसके संबंध में है?'

'नीले सागर के संबंध में।'

'कौवे, तुम्हारा सबसे प्यारा गीत किसके बारे में है?'

'लड़ाई के मैदान में पड़ी मजेदार लाशों के बारे में।'

साहित्य के भी अपने पक्षी हैं - उकाब और सागर-पक्षी। एक पहाड़ों का कीर्ति-गान करता है, दूसरा - सागर का। हरेक की अपनी मातृभूमि है, अपना विषय है। मगर कौवे भी हैं। वे तो अपने ही को सबसे अधिक प्यार करते हैं। कौवा जब युद्ध-क्षेत्र में पड़ी लाश की आँख निकालता है, तो यह नहीं सोचता कि वह आँख वीर की है या कायर की। मैं ऐसे साहित्यकारों को भी जानता हूँ, जो आज वह करते हैं, जिससे आज लाभ है और कल वह करेंगे, जिससे कल लाभ होगा।

विषय के बारे में कुछ और। विषय - यह तो माल-मते से भरा संदूक है। शब्द - वह इस संदूक की चाबी है। मगर संदूक में अपनी दौलत होनी चाहिए, पराई नहीं।

कुछ लेखक एक विषय से दूसरे विषय पर छलाँग लगाते रहते हैं, एक की गहराई में भी नहीं उतर पाते। वे जरा संदूक का ढक्कन उठाते हैं, ऊपर पड़े कपड़ों को ही हिलाते-डुलाते हैं और झटपट आगे बढ़ जाते हैं। संदूक का असली मालिक तो यह जानता है कि अगर सावधानी से एक के बाद एक चीज बाहर निकाली जाए, तो सबसे नीचे हीरे-मोतियों से भरी मंजूषा हाथ लगेगी।

एक विषय से दूसरे विषय पर छलाँग लगानेवाले लेखक अनेक शादियाँ करने के लिए पहाड़ों में विख्यात दालागालोव के समान हैं। उनसे जैसे-तैसे अट्ठाईस बार शादी की, मगर आखिर में बिल्कुल अकेला ही टापता रह गया।

फिर भी अकेली कानूनी बीवी से विषय की तुलना करना ठीक नहीं होगा। एक माँ या एक बच्चे से भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। कारण कि हम ऐसा नहीं कह सकते - यह मेरा विषय है, खबरदार, जो किसी ने इसे छुआ।

विषय तो मेरा है, मगर सभी इस विषय को ले सकते हैं। मैंने एक लेखक को किसी दूसरे लेखक को इसलिए भला-बुरा कहते सुना था कि उसने उसका विषय 'चुरा' लिया था। वह कह रहा था, 'इरचे गाजाख' (पिछली शताब्दी का कुमीक कवि और कुमीक साहित्य का जन्मदाता) के बारे में लिखने का हक तुम्हें किसने दिया? तुम तो जानते ही हो कि यह मेरा विषय है, कि इरचे गाजाख के बारे में मैं लिखता हूँ। यह तो दिन दहाड़े चोरी है!' यह लेखक ऐसे आपे से बाहर हुआ जा रहा था मानो उसी वक्त कोई उसकी प्रेमिका ले उड़ा हो।

उसे जवाब भी ऐसा करारा मिला, जो कोई पहाड़ी ही दे सकता था -

'इमाम वही बन सकता है, जिसकी तलवार में दम हो, जिसकी धार तेज हो। दुलहन उसकी नहीं होती, जिसने सगाई करने के लिए बिचौलियों को उसके घर भेजा हो, बल्कि उसकी होती है, जो उसे अपनी बीवी बना लेता है। सभी अन्य विषयों की भाँति इरचे का विषय भी उसी का होगा, जो उसके बारे में बेहतर लिखेगा।'

हाँ, विभिन्न लेखक स्वतंत्र रूप से एक ही विषय पर काम कर सकते हैं। साहित्य में सामूहिक फार्म नहीं हो सकता। हर लेखक का अपना खेत, जमीन का अपना टुकड़ा होता है, जो चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो। मगर मैं किसी को इस आधार पर अपने खेत के पास आने से नहीं रोकता कि खुद अपने खंडों के पास नहीं जाता। मेरी सीमा-रेखा पर आपको न तो कुत्ते नजर आएँगे और न बंदूक लिए पहरेदार। मगर न सीमा-रेखा है कहाँ, उसे कैसे निश्चित किया जाए, किस चीज के उसके गिर्द बाड़ बनाई जाए? मेरा विषय न तो निषिद्ध चरागाह है और न मसजिद की ऐसी जगह ही, जहाँ किसी पराये आदमी का पाँव नहीं पड़ना चाहिए।

दागिस्तान के लेखकों का सम्मेलन हो रहा था। उसमें बहस चल रही थी। एक वक्ता ने कहा -

'दागिस्तानियों को दूसरे देशों और दूसरे लोगों के बारे में लिखने की क्या पड़ी है? स्पेन के बारे में स्पेनी, जापान के बारे में जापानी और उराल के उद्योगों की बारे में उराली लिखें। अगर किसी पक्षी का घोंसला एक बाग में है, तो क्या वह अपना तराना गाने के लिए किसी दूसरे बाग में उड़कर जाएगा? क्या पहाड़ों से कंकड़ोंवाली मिट्टी घाटी में लानी चाहिए, जहाँ उसके बिना ही अत्यधिक उपजाऊ मिट्टी है? दुंबे की चर्बीदार दुम को भूनने से पहले क्या उस पर और घी चुपड़ने की भी जरूरत होती है?'

सम्मेलन में एक अन्य जनतंत्र से आया हुआ मेहमान भी उपस्थित था। उसने वक्ता को यह जवाब दिया -

'जैसे पक्षियों का घोंसला होता है, वैसे ही दरिदों की माँद होती है। मगर सूरज सभी जानवरों को रोशनी देता है और बारिश सभी वृक्षों को सींचती है। इंद्रधनुष सभी को अपनी एक जैसी छटा दिखाता है। बिजली ऊँचे पहाड़ों में भी चमकती है और गहरे दर्रों में भी। बादल भी ऐसे ही सभी जगह गरजता है। विदेश से लाए गए चावल से भी बढ़िया पुलाव तैयार किया जा सकता है। मैं आपके सम्मेलन में बहुत दूर से आया हूँ। सो भी बधाई देने के लिए। मगर अब मुझे यह लगता है कि आपके पहाड़ों, आपके सागर, आपके नेक पुरुषों और गरिमा-संपन्न सुंदर नारियों से मुझे प्यार हो गया है। अगर मैं आपके बारे में लिखूँगा, तो मेरे लोग इसके लिए मेरा आभार मानेंगे। अगर आप मेरी जन्मभूमि के बारे में लिखेंगे, तो इसमें भी कुछ बुराई नहीं होगी। प्यार की तरह लेखक भी अपने विषय के चुनाव में स्वतंत्र होता है। क्या प्यार कभी अनुमति लेकर किसी दिल में अपनी जगह बनाता है?'

सम्मेलन में उपस्थित सभी लोगों ने खूब तालियाँ बजाई, मेहमान के शब्द तीर की तरह पैने थे और ठीक निशाने पर बैठे थे। मगर तालियाँ बजाते और मेहमान से लगभग पूरी तरह सहमत होते हुए भी कुछ विचार मेरे दिमाग में आते रहे।

दूसरे देशों और दूसरे लोगों के बारे में लिखना तो अच्छी बात है, मगर अपने विषय में पूरी तरह पारंगत होने के बाद ही ऐसा करना चाहिए।

मेरा छोटा-सा दागिस्तान और मेरी बहुत बड़ी दुनिया। ये दो नदियाँ हैं, जो घाटी में पहुँचकर एक हो जाती हैं। आँसू की दो बूँदें हैं, जो दो आँखों से छलककर, दो गालों पर बहती हैं, मगर एक ही गम या एक ही खुशी से पैदा होती हैं।

दो बूँदें कवि के गालों पर, गिरीं नमी की
एक बूँद दाएँ पर आई, एक बूँद बाएँ पर छलकी,
एक खुशी की एक गमी की,
एक हृदय का क्रोध बन गई, एक प्यार बन मन का ढलकी।

नन्ही-नन्ही ये दो बूँदें, शांत बड़ी
शक्तिहीन हैं अलग-अलग पर, यदि दोनों मिल जाएँ,
वे कविता का रूप ग्रहण कर तब अनुपम
बिजली-सी कड़कें, फिर बादल बनकर जल बरसाएँ।

मेरा छोटा-सा दागिस्तान और मेरी बहुत बड़ी दुनिया। बस, यही है मेरी जिंदगी, मेरा गीत, मेरी किताब, मेरा विषय।

जो उकाब ऊँची चट्टानों से घाटी के विस्तारों में उड़ान नहीं भरता - बुरा उकाब है।

जो उकाब घाटी के विस्तारों से ऊँची चट्टानों की ओर नहीं लौटता - बुरा उकाब है।

मगर उकाब के लिए ऐसा करना आसान है। वह पैदा ही उकाब हुआ है और चाहने पर भी सागर-पक्षी या कौवा नहीं बन सकता। अगर लेखक इस श्रेष्ठ और साहसी पक्षी के गुण लेकर पैदा नहीं हुआ, तो उसके लिए उकाब बनना कठिन है।

हमारे यहाँ जो आदमी कुमुज बजाना नहीं जानता, उसके बारे में तसल्ली देते हुए कहा जाता है - कोई बात नहीं, दूसरी दुनिया में सीख जाएगा।

कितने अधिक हैं ऐसे लोग, जो प्यार या घृणा की भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि केवल गंध से प्रेरित होकर लेखनी उठाते हैं!

बात यह है कि गाँव में आनेवाला मेहमान यह सोचते हुए कि कौन-सा घर अपने लिए चुने, आखिर चिमनी से निकलनेवाले धुएँ की गंध के आधार पर ही ऐसा करता है। एक घर के धुएँ में मकई की रोटियों की गंध होती है और दूसरे के धुएँ में भुने मांस की।

दूल्हा भी तो दो लड़कियों में से, जिनमें से एक बुद्धू और दूसरी समझदार है, बुद्धू को केवल इसलिए चुन लेता है कि उसके पास दौलत ज्यादा है।

ऐसे भी तो लेखक हैं, जिन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे किस विषय पर या किस देश के बारे में लिखते हैं। वे तो उन मुनाफाखोरों जैसे हैं, जो यह सोचते हैं कि वे जितनी अधिक दूर जाएँगे, अपना माल उतना ही ज्यादा महँगा बेच पाएँगे।

वे मुझे फारखालशा नाम की उस लड़की की याद दिलाते हैं, जो यह मानती थी कि अपने गाँव में उसके लायक कोई लड़का नहीं है, इसलिए दूसरे गाँव के नौजवानों पर आस लगाए बैठी रही और जैसा कि आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है, आखिर चिर-कुमारी ही रह गई।

जंगल में जानेवाले दो पहाड़ियों का किस्सा। किसी गाँव के दो पहाड़ी आदमी जुए के लिए लकड़ी काटने को जंगल में गए। जाहिर है कि उनके पुराने जुए काम के नहीं रहे होंगे।

एक को तो फौरन ढंग का वृक्ष मिल गया और उसने दो बढ़िया सूखे तने काट लिए। मगर उसके साथी को ऐसा ही लगता गया कि अगला वृक्ष बेहतर होगा, अगला वृक्ष और भी ज्यादा अच्छा होगा। वह दिन भर ऐसे ही जंगल में भटकता रहा और जो कुछ उसे चाहिए था, उसे चुनने के बारे में अपना इरादा न बना सका। आखिर उसने वे दो तने काट लिए, जो शुरू में मिलनेवालों की तुलना में कहीं बुरे थे। वह शाम होने पर तब घर लौटा, जब पहला पहाड़ी नए जुए का उपयोग कर खेत जोतने के बाद घर लौट रहा था।

अबूतालिब ने यह किस्सा मुझे इस सिलसिले में सुनाया था कि एक दागिस्तानी कवि बहुत लंबी यात्रा के बाद दो घटिया-सी कविताएँ रचकर घर लौटा था।

'जो गीत अपने घर में नहीं सीखा गया, वह घर से दूर नहीं सीखा जा सकता,' बुजुर्ग ने यह नतीजा निकाला और फिर इतना और जोड़ दिया- 'कवि कभी-कभी उस पहाड़ी आदमी जैसे होते हैं, जो दिन भर अपनी फर की टोपी खोजता रहा, जबकि वह उसके मूर्खतापूर्ण सिर पर मौज मना रही थी।'

विषय के बारे में कुछ और। एक ऐसा भी दिन था, जब मैं पहली बार अपना घर छोड़कर सफर को निकला था। माँ ने जलता हुआ लैंप खिड़की में रख दिया था। मैं थोड़ा चलता, मुड़कर देखता, फिर चलता, मगर मेरे घर का लैंप कुहासे और अँधेरे को चीरकर मुझे अपनी झलक दिखाता रहा।

छोटी-सी खिड़की में रखा हुआ लैंप अनेक वर्षों के दौरान, जब मैं दुनिया में घूमता रहा, मेरी आँखों के सामने टिमटिमाता रहा। अब अपने घर लौटकर मैंने इस खिड़की में से झाँका, तो मुझे वह सारी बड़ी दुनिया, जो मैं अब तक घूम चुका था, दिखाई दी।

लेखक को विषय भला कौन दे सकता है? उसे सिर, आँखें, कान और दिल देना कहीं अधिक आसान है। जो लेखक प्यार या घृणा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि गंध या अधिक सही तौर पर, अपनी सूँघने की शक्ति के आधार पर विषय खोजते हैं, वे युग-पुत्र नहीं बन सकते। वे अपने समय के नहीं, एक दिन के बेटे होते हैं। इसके अलावा बहरी दुलहन से भी उनकी तुलना की जा सकती है।

बहरी दुल्हन का किस्सा। कभी किसी गाँव में एक बहरी लड़की रहती थी। दूसरे गाँव के एक नौजवान ने, जिसे उसके बहरेपन के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था, उसके घर सगाई करनेवाले भेज दिए। ढंग से सारा प्रबंध हो गया और शादी शुरू हुई। बेशुमार मेहमान जमा हो गए। दुलहन यह नहीं चाहती थी कि शादी में शामिल होनेवाले सभी लोगों को उसके बहरेपन के बारे में मालूम हो। उसने अपनी सहेली से कहा कि वह सारा वक्त उसके करीब बैठी रहे। अगर लोग कोई खुशी भरी बात सुनाएँ यानी ऐसी कि जिस पर हँसना चाहिए, तो सहेली उसके बाएँ कंधे पर चुटकी काटे। अगर दुख और उदासी भरी कोई बात सुनाई जाए, तो सहेली दाएँ कंधे पर चुटकी काटे।

शादी के वक्त दुलहन का खुद बोलना-बतियाना जरूरी नहीं होता, उसका चुप रहना ज्यादा अच्छा होता है। इसलिए कुछ वक्त तो सारा मामला ढंग से चलता रहा। जब हँसना जरूरी होता, तो दुलहन हँसती और इर्द-गिर्द जमा लोग जब दुखी होते, तो वह भी दुखी हो जाती।

मगर बाद में उसकी सहेली वह भूल गई, जो तय किया गया था, और जब बाएँ कंधे पर चुटकी काटनी होती, तो वह दाएँ पर काटती यानी सब कुछ उलट करने लगी। दुल्हन दुख और गहरी सोच के क्षणों में ठहाके लगाती और, जब सब हँसते, तो वह आहें भरती, दुखी होती।

दूल्हा दुलहन को गौर से देखने लगा, देखता रहा और इस नतीजे पर पहुँचा कि वह बिल्कुल मूर्ख है। उसने उसी क्षण उस रास्ते से उसे वापस भेज दिया, जिससे वह आई थी।

तो असली लेखक को बहरी दुलहन की तरह दाईं और बाईं ओर से चुटकियों की जरूरत नहीं होनी चाहिए। उसके अपने ही दिल की पीड़ा, सिर्फ अपनी ही खुशी को उसे कलम उठाने के लिए मजबूर करना चाहिए, वह इसलिए नहीं हँसता है कि दूसरे हँसते हैं और इस कारण उसे भी ऐसा ही करना चाहिए। वह इसलिए दुखी नहीं होता कि दूसरे दुखी हैं और इस कारण उसे भी उनका साथ देना चाहिए। नहीं, शादी को तो उसे अपना ही रंग देना चाहिए। कवि जब हँसे, तो इर्द-गिर्द सभी खुश हो उठें। कवि जब अपने दिल का दर्द उनके सामने रखे, तो उन सब के दिल दर्द से टीस उठें।

अगर कोई अभी भी मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं और यह मानता है कि दूसरों के बताये हुए विषय पर लिखना ज्यादा आसान है, तो वे मेरे साथ घटी हुई निम्न घटना से सबक लें।

संस्मरण। तब मैं खूंजह की गढ़ीवाले प्रारंभिक स्कूल की दूसरी कक्षा में पढ़ता था। नीली आँखोंवाली नीना नाम की एक लड़की, जो रूसी अध्यापिका की बेटी थी, मेरे साथ एक ही डेस्क पर बैठती थी। मुझे वह बहुत अच्छी लगती थी, मगर उससे यह कहने की मुझे हिम्मत नहीं होती थी। आखिर मैंने एक पुर्जे पर यह लिखकर उसे देने का फैसला किया। मगर यह भी कुछ आसान काम नहीं था, क्योंकि उस वक्त तक मुझे रूसी में एक शब्द भी नहीं लिखना आता था। चुनांचे मैंने अपने एक दोस्त से मदद करने की प्रार्थना की। वह समझ में न आनेवाले कुछ रूसी शब्द बोलता गया और मैं रूसी अक्षरों में उन्हें लिखता गया। मैं सोच रहा था कि प्यार के बहुत बढ़िया शब्द, जैसे कि मैं नीना को लिखना चाहता था, लिख रहा हूँ। काँपते हाथों से वह पुर्जा मैंने नीना को दिया, काँपते हाथों से उसने उसे लिया और पढ़ने लगी। अचानक उसका मुँह लाल हो गया, वह क्लास से बाहर भाग गई और फिर डेस्क पर उसने मेरे साथ नहीं बैठना चाहा। बाद में पता चला कि मेरे सारे प्रेम-पत्र में बहुत ही अश्लील और गंदे-गंदे शब्द भरे हुए थे।

एक और घटना याद आ रही है। मैं साहित्य-संस्थान का विद्यार्थी था और नीना लेनिन नामक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान की। दिसंबर के महीने में एक दिन उसने मुझे अपने यहाँ आने की दावत दी। मुझे मालूम था कि उसने मुझे अपने जन्म-दिन पर बुलाया है। जाहिर है कि मुझे तोहफों की फिक्र हुई, मगर मुझे लगा कि अगर मैं नीना के बारे में कविता लिखूँ, उसे सबके सामने पढ़कर सुनाऊँ और फिर उसे भेंट करूँ, तो यह सबसे अच्छा तोहफा रहेगा।

तो इस तरह मैंने बधाई की कविता लिखी, अपने एक सहपाठी को, जो मेरी ही तरह जवान कवि था, रूसी भाषा में उसका उल्था करने के लिए राजी किया। मेरा साथी रात भर उस कविता का अनुवाद करता रहा। जब उसने मुझे वह पढ़कर सुनाई, तो मैं अपनी कविता को पहचान ही नहीं पाया। उसमें अत्यधिक भावुकतापूर्ण भावनाएँ थीं, प्यार की तड़प और वेदना की बातें थीं। मगर मैं नीना को जो कुछ कहना चाहता था, उसमें से कुछ भी बाकी नहीं रह गया था।

मगर अब मुझे धोखा देना मुश्किल था। मैं एक बार ऐसे जाल में फँस चुका था। इसलिए मैंने अपने साथी से कहा -

'खैर, यह कविता तुम अपनी प्रेयसी को उसके जन्म-दिन पर पढ़कर सुनाना, क्योंकि यह मेरी नहीं, तुम्हारी कविता है।'

विषय के बारे में कुछ और। विषय सोई हुई मछली की भाँति पेट ऊपर को किए हुए सतह पर नहीं तैरा करता। वह तो गहराई में, तेज और निर्मल पानी में होता है। उसे वहाँ खोजिए, भँवर में से, जल-प्रपात के नीचे से निकालने की सामर्थ्य पैदा कीजिए। लंबे और कठोर श्रम से कमाए गए तथा पटरी पर संयोग से मिल जानेवाले धन का क्या एक जैसा ही मूल्य हो सकता है?

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है कि हम-बहुत से जानवर पकड़ सकते हैं, मगर वे सभी गीदड़ और खरगोश ही होंगे। एक जानवर पकड़ना ही बेहतर है, बशर्ते कि वह लोमड़ी हो। मगर कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह कहाँ मिलेगी। यह जरूरी बात नहीं है कि सबसे अच्छा जानवर सबसे दूरवाले दर्रे में ही रहता हो।

एक शिकारी जिंदगी भर कोई रुपहली लोमड़ी पकड़ने का सपना देखता रहा। उम्र भर उसकी खोज में उसने सारे पहाड़ छान मारे। बुढ़ापे में उसके लिए दूर-दूर जाना मुश्किल हो गया और वह पासवाले दर्रे में घर के बिल्कुल करीब ही शिकार करने लगा। अचानक वहीं एक दिन उसे रुपहली लोमड़ी मिल गई। शिकारी ने लोमड़ी से पूछा -

'तू अब तक कहाँ छिपी रही थी? मैं तो जिंदगी भर तेरी तलाश करता रहा।'

'मैं तो सारी उम्र इसी दर्रे में रही हूँ,' लोमड़ी ने जवाब दिया। 'क्या तुम यह नहीं जानते कि खोज में तो बेशक सारी जिंदगी बिताई जा सकती है, तो भी पाने के लिए एक दिन या एक घड़ी की जरूरत होती है?'

हाँ, हर लेखक के जीवन में एक दिन आता है, जब वह खुद अपने को पहचान पाता है, जब उसे अपना मुख्य विषय मिल जाता है। इस विषय के साथ उसे बाद

में गद्दारी नहीं करनी चाहिए। अगर वह ऐसा करेगा, तो उसके साथ भी वैसी ही बीत सकती है, जैसी कि मेरे एक परिचित के साथ बीती।

मेरे एक परिचित के नाटक का किस्सा। एक दागिस्तानी लेखक ने सामूहिक फार्म के जीवन के बारे में एक नाटक लिखा। विषय चाहे बहुत ही महत्वपूर्ण था, थियेटर ने नाटक स्वीकार नहीं किया और 'नाटक पसंद नहीं आया' इस बहुत ही घटिया कारण के आधार पर उसे लौटा दिया।

शायद किसी अन्य व्यक्ति के लिए तो यही कारण काफी होता, मगर नाटककार को इससे संतोष नहीं हुआ। वह नाराज हो गया और उसने ठीक जगह पर शिकायती चिट्ठी लिख भेजी। उसी वक्त इस मामले पर गौर करने और जरूरी कदम उठाने के लिए एक आयोग नियुक्त कर दिया गया। नाटक का अध्ययन करने पर उसका यह सार सामने आया - गेहूँ की बहुत ही बढ़िया फसल की कटाई के लिए खुशी भरे गीत गाते हुए दो टोलियाँ आपस में समाजवादी प्रतियोगिता करती हैं।

इस तरह के कथानकवाला नाटक आयोग को अवश्य पसंद आता और नाटक के रास्ते में कोई बाधा नहीं आ सकती थी, मगर तभी कुछ दूसरे हालात ने खलल डाल दिया। इसी वक्त यह तय किया गया कि कुमीक स्तेपियों में, जहाँ हँसती-गाती टोलियाँ आपस में मुकाबला करती हुई फसल बटोर रही थीं, गेहूँ की जगह कपास बोई जाए। अब 'कपास' की परिस्थितियों में गेहूँ के बारे में नाटक पेश नहीं किया जा सकता था। नाटककार ने सोच-विचार में ज्यादा वक्त बरबाद नहीं किया और अपने नाटक में जरूरी तब्दीलियाँ करने लगा। नई बोई गई कपास में अभी फूल भी नहीं आए थे कि नाटक को नई, बढ़िया शक्ल दे दी गई। नाटक को फिर से थियेटर में पढ़ा जाने लगा। अभी उस पर विचार-विनिमय चल ही रहा था कि एक नया फैसला सामने आ गया। उसमें कहा गया था कि कुमीक स्तेपियों में कपास उगाना तो गेहूँ से भी कम फायदेमंद है और इसलिए वहाँ मकई उगाई जानी चाहिए।

मेहनती नाटककार अपने नाटक को फिर से नया रूप देने लगा। मालूम नहीं कि यह मामला आगे क्या करवट लेता, मगर इसी वक्त थियेटर जल गया। मेरे परिचित को बड़ी मायूसी हुई, वह नदी के खड़े तट पर गया और हताशा में अपने नाटक को नदी की तेज धारा में बहा दिया। अब उसे नाटक के बारे में कोई अफसोस नहीं होता।

शायद एक अन्य नाटक का किस्सा सुना देना भी ठीक रहेगा। उसे एक रूसी लेखक ने लिखा और उसका नाम था - 'जोशीले लोग'। यह गेहूँ कपास का नहीं, 'माहीगीरी' का नाटक था। वास्तव में यह नाटक 'माहीगीरी' के बारे में भी नहीं, बल्कि निम्न विषय से संबंध रखता था।

एक ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती है कि पहाड़ी लोगों को उनके सदियों पुराने देहातों से निकालकर मैदानों में सागर के किनारे बसाया जाए। इसे 'मैदानों में बसाना' कहा जाता है। हम यहाँ इस मसले की तफसील में नहीं जाएँगे। सिर्फ इतना ही कहेंगे कि सदियों से भेड़ें पालनेवाले पहाड़ी लोग मैदानों में कभी-कभी मछुए बन जाते हैं। बुरा मछुआ बढ़िया चरवाहे से कैसे बेहतर है, यह भी आसानी से समझना मुश्किल है। मगर 'जोशीले लोग' नाटक में यही बताया गया था कि दूर-दराज के एक गाँव के पहाड़ी लोग कैसे कास्पियन सागर के मछुए बन गए।

नाटक के सभी पात्र अवार थे और इसलिए नाटककार ने अवार थियेटर को अपना नाटक भेजा। मगर अवार थियेटर ने नाटक अस्वीकार करके लौटा दिया।

नाटककार अब क्या करे? उसकी जगह कोई दूसरा होता, तो शायद परेशान हो उठता और हिम्मत हार बैठता। मगर हम जानते हैं कि शतरंज में काले मोहरे कभी-कभी ऐसी कठिन परिस्थिति में पड़ जाते हैं, ऐसी जगह धकेल दिए जाते हैं कि उन्हें जीने-मरने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। अचानक इसी वक्त वे अपना घोड़ा आगे बढ़ा देते हैं। यह बहुत अप्रत्याशित और बहुत सीधी-सी चाल होती है। बस, सारा पासा ही पलट जाता है। अब सफेद मोहरों को अपनी रक्षा करनी होती है, वक्त रहते अपनी जान बचाकर भागना होता है।

'जोशीले लोग' नाटक के रचयिता ने भी ऐसी सीधी-सी चाल चली। अचानक उसने सभी अवार नामों को कुमीक नामों में बदल दिया और नाटक कुमीक थियेटर को भेज दिया। मगर शतरंजी घोड़ा चलने पर भी बात बनी नहीं। कुमीक थियेटर ने भी मछुए बन जानेवाले चरवाहों के बारे में नाटक प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया।

हमारे दागिस्तान में अनेक जातियाँ हैं। नाटक के पात्र दार्गिन भी बने और लेजगीन भी, मगर अच्छे मछुए तो फिर भी नहीं बन पाए। भूखे कुत्ते की तरह, जिसे घर में खिलाने को कुछ नहीं था, नाटककार ने अपने नाटक को बाहर सड़क पर छोड़ दिया। कुत्ते ने बहुत-से दरवाजों के चक्कर लगाए, मगर उसे कहीं एक भी हड्डी नहीं मिली।

कुछ साल बाद नाटककार उच्च साहित्यिक पाठ्यक्रमों में शिक्षा पाने के लिए मास्को चला गया। तब मखचकला में यह खबर पहुँची कि उसके मछुए जिप्सी बन गए हैं। जिप्सियों के 'रोमन' थियेटर ने नाटक में दिलचस्पी जाहिर की। आखिर लंगड़ी दुलहन को दूल्हा मिल गया। खैर, यह शादी बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकी...

तो लीजिए, मैंने अपने परिचित लेखकों के दो नाटकों की एक साथ आलोचना कर डाली। अगर इस वक्त मैं लेखकों की सभा में मंच पर खड़ा होता, तो कभी की मुझे ये आवाजें सुनाई दी होतीं - 'अपनी चर्चा करो! अपनी आलोचना करो!'

अपने बारे में क्या कहूँ? मैं तो शायद बहुत खुशकिस्मत होता, अगर लेखकों के ऐसे ही गुनाहों के लिए, जिनकी मैंने अभी चर्चा की है, मुझ पर आरोप लगाए जाते। मगर मैं तो अपने ऊपर ऐसे गुनाह का बोझ लादे हुए हूँ, जिनके सामने 'कपास' और 'मछुओं' संबंधी सारे गुनाह मजाक से लगते हैं, हेच और बेमानी हैं। जवानी के दिनों में मैंने एक ऐसी हरकत की, जिसे याद करके दिल को बहुत तकलीफ होती है।

बाद को मेरे दोस्तों ने बहुत अर्से तक और जी भरकर मुझे भला-बुरा कहा। मेरे लिए यह सजा थी। मगर सबसे बड़ी सजा तो मैं खुद अपने भीतर महसूस करता हूँ और कोई भी मुझे इससे अधिक दंड नहीं दे सकता था।

पिता जी कहा करते थे कि अगर कोई नीचतापूर्ण और लज्जाजनक हरकत करोगे, तो बाद में चाहे कितनी भी नाक क्यों न रगड़ो, वह हरकत तो वापस नहीं लौटा सकोगे।

पिता जी कहा करते थे कि लज्जाजनक हरकत करने और कुछ साल बाद उसके लिए पछतानेवाला आदमी उस ऋणी के समान होता है, जो पुराने और गैर-कानूनी घोषित किए जानेवाले रुपयों से अपना कर्ज चुकाना चाहता है।

पिता जी यह भी कहा करते थे कि अगर तुम बुराई को मानमानी करने दोगे और उसे घर से बाहर आजाद छोड़ दोगे, तो उस जगह को पीटने से क्या लाभ होगा, जहाँ वह बैठी थी?

बैलों के चुराए जाने के बाद दरवाजे पर बड़ा-सा ताला लगाने में क्या तुक है?

यह सब कुछ सही है। मैं यह भी जानता हूँ कि मार-पीट के बाद घूँसे चलाना बेकार है। मगर मेरे पाठक कभी-कभी मुझे फिर से खत लिख देते हैं, बीती बात

याद दिला देते हैं, मेरे घाव को हरा कर डालते हैं। वे मानो मेरी खिड़की पर पत्थर फेंकते हैं, मानो पुकारकर कहते हैं -

'रसूल हमजातोव, खिड़की में से झाँको, अपनी सूरत दिखाओ। हमें, अपने पाठकों को यह बताओ कि यह सब कैसे हुआ?'

'क्या और किस बारे में बताऊँ?'

इस बारे में कि उन्नीस सौ इकावन में तुमने शामिल को कलंकित करनेवाली कविता लिखी थी और उन्नीस सौ इकसठ में लिखी गई कविता में उसका गुणगान किया। दोनों कविताओं पर रसूल हमजातोव का नाम है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह एक ही रसूल है या भिन्न रसूल हैं और किस रसूल पर हम विश्वास करें।

बहुत ही टेढ़ा सवाल है यह। शरीर में लगनेवाला तीर तो निकाला जा सकता है, मगर क्या दिल में लगनेवाला तीर निकालना मुमकिन है?

मेरे प्यारे पाठक, मुझे मालूम नहीं कि तुम्हारी उम्र कितनी है। मुमकिन है कि तुम अभी बिल्कुल जवान हो। तुम्हारे जीवन में क्या ऐसी सीमा-रेखाएँ, ऐसी हदें आई हैं, जो तुम्हें लाँघनी पड़ी हों? मुझे एक ऐसी सीमा लाँघनी पड़ी है - अपनी भावनाओं को गंभीरतापूर्वक समझे बिना मैंने प्यार किया है। बाद में मुझे इसके लिए पछताना पड़ा।

ऐसा भी होता है कि पड़ोसियों के घरों की खिड़कियों के बीच बहुत ही तंग-सी गली होती है। हर खिड़की में पड़ोसी एक-दूसरे के सामने खड़े हैं। वे एक-दूसरे को भला-बुरा कहते हैं, बड़ा छोटे पर और छोटा बड़े पर बुरी हरकतों के आरोप लगाता है। मैं एक-दूसरे को कोसनेवाले इन पड़ोसियों के समान हूँ, मगर दोनों खिड़कियों में मैं ही खड़ा हूँ। सिर्फ इतना ही फर्क है कि एक खिड़की में मैं जवान हूँ और दूसरी में, जैसा इस वक्त हूँ।

जैसे कोई बहुत ही सुंदर लड़की बुद्धू नौजवान को चकाचौंध कर देती है, उसी तरह समय की चमक ने मुझे चौंधिया दिया था। मैं हर चीज को वैसे ही दोषहीन देखता था, जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी को।

अगर संजीदगी से बात की जाए, तो यही कहना होगा कि मैं समय की छाया था। यह तो सभी जानते हैं कि डंडा, वैसी ही उसकी छाया। अधिकृत रूप से यह निर्णय किया गया था कि शामिल अंग्रेजों और तुर्कों का भाड़े का टट्टू था और उसका मुख्य उद्देश्य भिन्न जातियों में फूट डालना था। जहाँ यह निर्णय किया

गया था, मैंने उस घर, उस घर के मालिक पर एतबार किया। तभी मैंने हम लोगों के शामिल का भंडाफोड़ करनेवाली कविता लिखी थी।

अब कभी-कभी तसल्ली देने के लिए मुझसे यह कहा जाता है-

'हमने सुना है कि तुमने वह कविता खास फरमाइश पर लिखी थी, तुम्हें उसे लिखने के लिए मजबूर किया गया था।'

यह झूठ है! किसी ने भी मेरे साथ जोर-जरर्दस्ती नहीं की, मुझे मजबूर नहीं किया। मैंने खुद अपनी इच्छा से शामिल के बारे में कविता लिखी थी और खुद ही उसे संपादक के पास लेकर गया था। बात सिर्फ इतनी है कि उस वक्त मैं उन पहाड़ी लोगों जैसा था, जो अरबी का एक अक्षर भी न जानते हुए कुरान के पन्ने उलटते-पलटते हैं यानी कुछ भी नहीं समझ पाते, फिर भी एक खास प्यारी-सी खुशी महसूस करते हैं।

मैं समय की छाया था। तब मैं यह नहीं जानता था कि कवि कभी छाया नहीं हो सकता, कि वह हमेशा आग, प्रकाश-स्रोत होता है और इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह हल्की-सी रोशनी है या बड़ा सूरज। रोशनी की कभी छाया नहीं होती, रोशनी से तो सिर्फ रोशनी ही होती है।

शायद मैं यह बात कुछ देर से समझा हूँ पर क्या हुआ, सेब भी भिन्न-भिन्न किस्मों के होते हैं। कुछ जल्दी पक जाते हैं और दूसरे सिर्फ पतझर में जाकर ही रसीले होते हैं। लगता है कि मैं पतझरवाली ही किस्म हूँ।

तो ऐसे हुआ था यह सब किस्सा। जहाँ तक मेरे घाव का संबंध है, तो वह मेरे साथ है।

कभी न भरनेवाला मेरा, घाव हरा हो आया फिर से
फिर से दिल को चीर रहा वह, अंगारे-सा दहकाता,
दादा मुझे सुनाते रहते थे बचपन में जिसके किस्से
लोगों की बातों में उसका जिक्र बहुत अक्सर आता।

वह किस्से-सा लोक-कथा-सा, लेकिन फिर भी ठोस हकीकत
बड़े शौक से सुनता था मैं, बचपन में उसकी बातें,
और हमारे घर के ऊपर, संध्या के अरुणिम अंबर में
उसके वीर सैनिकों जैसी, तिरतीं बादल की पाँतें।

गीत पहाड़ों का था वह तो, उसी गीत को मेरी अम्माँ
कभी-कभी गाया करती थीं, मैं तो नहीं, भुला पाता,
कैसे उनकी निर्मल आँखों में, आँसू का कण उजला
साँझ समय की चरागाह में, शबनम कण-सा बन जाता।

वह बुजुर्ग सेनानी पहने, चोगा हम पर्वतवालों का
निकट खड़ा खिड़की के मानो, झाँका करता था घर में,
उसके सब हथियार बँधे रहते थे दाएँ पहलू में
और खूब लड़ता था वह तो, खड़ग लिए बाएँ कर में।

मुझे याद है, उस बुजुर्ग ने, जिसका है छविचित्र सामने
बड़े भाइयों को मेरे दो, युद्ध-क्षेत्र में विदा किया,
ऐसा टैंक बना देने को, उसका नाम लिखा हो जिस पर
माला भी दी, और बहन ने, कंगन-जोड़ा भेंट दिया।

और पिता ने मेरे अपने स्वर्गवास से कुछ ही पहले
उसी वीर पर कविता रच दी, लेकिन यह क्या गजब हुआ!
वह था ऐसा वक्त कि जब शामिल को समझ न पाए थे हम
लांछन उस पर तब लगते थे, कहते थे सब भला-बुरा।

अगर पिता के दिल को ऐसा, धक्का नहीं अचानक लगता
शायद जीते और बहुत दिन... तभी भूल मैंने भी की
कर बैठा विश्वास सहज ही, लोगों की झूठी बातों पर
उसी लहर में बहकर मैंने, झटपट कविता भी लिख दी।

उस बुजुर्ग का खड़ग कि जिसने, बरसों तक साहस, हिम्मत से
खूब दुश्मनों से टक्कर ली, उनका खून बहाया था,
हो गुमराह, भटक चक्कर में, अपनी कच्ची-सी कविता में
एक देश-द्रोही का तेगा, मैंने उसे बताया था।

उसके भारी कदमों की अब, रातों को आहट मिलती है

जैसे ही बुझती है बत्ती, वह खिड़की में आ जाता,
कभी आहूलगो गाँव बचाता रण-आँगन में लड़ता-भिड़ता
या गूनीब के उस बुजुर्ग-सा वह मेरे सम्मुख आता।

कहता है - मैंने युद्धों में, अंगारों, ज्वालाओं में भी
अपना कितना खून बहाया, और बहुत पीड़ी जानी,
उन्नीस घाव सहे थे तन पर, बहुत कसकते, बहुत टीसते
और बीसवाँ घाव तुम्हारा, तुझ लड़के की नादानी।

घाव खंजरों के थे तन पर, घाव गोलियों के भी थे
तुमने घाव किया जो लेकिन, उसका दर्द कहीं बढ़कर,
क्योंकि किसी पर्वतवासी का, मुझ पर वार हुआ यह पहला
मेरे दिल, सीने में सीधे, उतर गया तेरा खंजर।

यह मुमकिन है अब जिहाद भी, नहीं वक्त की माँग रहा है
लेकिन कभी इसी ने तेरे, घर, पर्वत की रक्षा की,
लगता है, मेरा तेगा भी, आज समय से पिछड़ गया है
आजादी हित कभी शत्रु की, इसने कड़ी परीक्षा ली।

भूल सभी आराम-चैन को, एक पहाड़ी की दृढ़ता से
लड़ता रहा, न सुध थी मुझ को, गीतों, मौज-बहारों की,
कभी-कभी कोड़ों से मैंने, करवाई थी कड़ी मरम्मत
कथाकार, गायक, कवियों की, सुंदर रचनाकारों की।

यह संभव है भूल बड़ी की, मैंने उनको व्यर्थ सताकर
यह संभव है मुझे चाहिए, था गुस्से पर काबू पाना,
देख तुम्हारे जैसे थोथे तुकबंदों को, पर, यह लगता
भूल न की थी तब भी मैंने, तब भी सच को पहचाना।

इसी तरह सूरज चढ़ने तक, मुझे कोसता, पास, खड़ा वह
मैं पहचान उसे लेता हूँ, चाहे हो तम की चादर,
रंगी हिना से फूली-फूली, लहराती उसकी वह दाढ़ी

नजर मुझे आ जाती टोपी, कसी हुई पगड़ी उस पर।

क्या जवाब दे सकता हूँ मैं? उसके सम्मुख, तेरे सम्मुख
ओ मेरी जनता मैं सचमुच, अपराधी हूँ बहुत बड़ा,
था इमाम, उसका था नायब, छोड़ गया था साथ मगर जो
वह योद्धा हाजी-मुराद था, वह सेनानी बड़ा कड़ा।

पश्चाताप हुआ तब उसको, निर्णय किया लौट चलने का
मगर राह में दलदल आया, वह ही उसको निगल गया,
क्या इमाम के पास चलूँ मैं? कैसा है बेतुका खयाल यह
नहीं रास्ता वह मेरा है, और जमाना आज नया।

वे सोचे-समझे ही मैंने, तब जो कविता लिख डाली थी
शर्म, उनींदे से भी उसका मुश्किल मोल चुका पाना,
अपनी गलती की इमाम से, माफी पाने को इच्छुक हूँ
पर दलदल में उसी तरह से, नहीं चाहता धँस जाना।

और मुझे लगता है ऐसा, मैंने जिसको ठेस लगाई
किया बड़ा अपमान, न उससे क्षमा-दान मिल सकता है,
उसे कलंकित करनेवाली, रची छिछोरी जो कविता थी
तलवारों से लिखनेवाला, उसे माफ कब करता है!

बेशक ऐसा ही होने दो... पर तू मेरी प्यारी जनता
मेरा यह अपराध भुला दे, तू तो मुझे क्षमा दे कर,
मेरी प्यारी धरती तू तो, देख न अपने कवि को ऐसे
जैसे कोई माँ, बेटे को, देखे गुस्से से भर-भर।

मुझे मालूम नहीं कि दागिस्तानियों ने मुझे मेरी पुरानी कविता के लिए माफ किया या नहीं, नहीं मालूम कि शामिल की छाया ने उसके लिए मुझे माफ किया या नहीं, मगर खुद मैं अपने को कभी भी माफ नहीं करूँगा।

मेरे पिता जी ने मुझसे कहा था -

'शामिल को नहीं छेड़ना। अगर ऐसा करोगे, तो जिंदगी भर चैन नहीं पाओगे।'

पिता जी की बात सच निकली।

मैं बेटा पर्वतवासी का, बचपन से ही सही कड़ाई,
डाँट-डपट से मैं परिचित हूँ, हुई कभी तो खूब पिटाई।
मेरी भूलों, अपराधों पर, पिता न तरस कभी खाते थे,
खूब जोर से कान ऐंठ कर, अक्ल ठिकाने पर लाते थे।

अब मैं वयस्क, समय अब मुझ पर,
हर दिन अपनी चोटें करता,
खूब जोर से कान खींचकर लाल-लाल वह उनको करता
वैसे ही जैसे हो जाता, जब कोई बेसुर दोतारा,
वादक उसका तार खींचकर, उसे नया सुर देता प्यारा।

समय! दिनों से साल और सालों से सदियाँ बनती हैं। मगर युग क्या है? वह सदियों से बनता है या सालों से? या फिर एक दिन भी युग बन सकता है? वृक्ष पाँच महीने तक हरा रहता है, मगर उसके सभी पत्तों को पीला करने के लिए एक दिन या एक रात ही काफी होती है। इसके उलट भी होता है। पाँच महीनों तक वृक्ष निपत्ता और कोयले की तरह काला रहता है। उसे हरा-भरा करने के लिए एक उजली, सुहावनी सुबह ही काफी होती है। खुशी भरी एक सुबह ही उस पर फूल लाने के लिए काफी रहती है।

ऐसे वृक्ष भी हैं, जो हर महीने बाद अपना रंग बदलते है, और ऐसे भी हैं जो कभी रंग नहीं बदलते।

मौसमी पक्षी भी हैं, जो मौसम के मुताबिक सारी दुनिया में जहाँ-तहाँ उड़ते रहते हैं, और उकाब भी हैं, जो कभी अपने पहाड़ छोड़कर नहीं जाते।

पक्षी हवा के रुख के खिलाफ उड़ना पसंद करते हैं। अच्छी मछली हमेशा धारा के विरुद्ध तैरती है। सच्चा कवि अपने हृदय का आदेश मानते हुए 'विश्व मत' का विरोध करने से कभी नहीं झिझकता।

नोटबुक से। मेरा एक दोस्त है, एक अवार कवि। पिछले साल उसकी कविताओं का नया संग्रह निकला है। पुस्तक की सारी कविताओं को उसने ऐसे हिस्सों में बाँट दिया है, जैसे कि शहरी फ्लैट के कमरों को अलग-अलग उद्देश्य के

लिए बाँटा जाता है। राजनीतिक या सामाजिक कविताओंवाला भाग तो जैसे अध्ययन-कक्ष है, आंतरिक भावनाओं या प्रणय की कविताओं का हिस्सा मानो शयन-कक्ष है और सामान्य ढंग की कविताएँ मानो दीवानखाने के अंतर्गत आती हैं। मगर समझ में नहीं आता कि कृषि, अनाज और चरवाहों संबंधी कविताओं को कहाँ जगह दी जाए - क्या रसोई-घर में?

क्या दागिस्तानी गायकों की प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए पहाड़ों से आनेवाले गायक ने ठीक ही नहीं किया था? अपनी कविताओं को अलग-अलग हिस्सों में बाँटनेवाले हमारे इस कवि ने गायक से अनुरोध किया कि वह हर हिस्से से एक कविता गाये। गायक ने अपने कुमुज को सुर किया, कुछ मिनट तक चुप रहा मानो अपने विचारों को एकत्रित करता रहा और फिर गाने लगा। बहुत देर तक गाता रहा वह। सभी श्रोता घबरा उठे : अगर एक भाग से कविता गाते हुए ही उसने इतना वक्त लगा दिया, तो चारों भागों से कविताएँ गाते हुए कितना वक्त लेगा, कब गाना खत्म होना? मगर गायक तभी चुप हुआ और तारों पर हथेली रखकर उसने उनकी झंकार को शांत किया। इसके बाद उसने और नहीं गाया। हुआ यह कि उसने कवि के मुख्य विचारों और भावनाओं को एक ही गाने में समेट दिया। कवि ने गायक से पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया।

'दोस्त,' गायक ने जवाब दिया, 'यह मेरा कुमुज है और इसमें तीन तार हैं। मैं पहले एक, फिर दूसरा और फिर तीसरा तार तो नहीं बजा सकता।'

विषय के बारे में कुछ और। शायद सभी को यह किस्सा मालूम नहीं है कि एक पहाड़ी आदमी नए, ऊँचे बूट पहनता था और उसे इस बात की बड़ी फिक्र रहती थी कि वे कहीं गंदे न हो जाएँ। इसलिए वह पंजों के बल चलता। एक दिन वह ऐसी जगह जा फँसा, जहाँ घुटनों तक कीचड़ था। चुनांचे बेचारे को सिर के बल खड़ा होना पड़ा।

ऐसा होता है कि कवि कभी-कभी सृजन नहीं करते, बल्कि अपने को मानो रविवारीय घुड़दौड़ों में हिस्सा लेते हुए महसूस करते हैं। इसलिए कि इनाम का रूमाल पाँच मिनट के लिए घोड़े की गर्दन की शोभा बढ़ा सके, वे उसकी पीठ को चाबुक मार-मारकर लहूलुहान करने को भी तैयार रहते हैं। रूमाल तो उसी दिन उतारना होगा, मगर घाव बहुत अर्से तक नहीं भर पाएँगे। ऐसे कवि तालातल के अलीबुलात की तरह हमेशा इस बात के लिए तैयार-बर-तैयार रहते हैं कि... मगर आप तो नहीं जानते कि अलीबुलात का किस्सा क्या है?

एक बार खूंजह के नायब ने नुकेर (अंग-रक्षक) अलीबुलात से कहा -

'तैयार हो जाओ, कल सुबह तुम्हें तालातल गाँव जाना होगा।'

'मैं तैयार हूँ' हुक्म बजानेवाले नुकेर ने जवाब दिया।

पहाड़ों की चोटियाँ अभी अच्छी तरह रोशन भी नहीं हुई थीं कि अलीबुलात ने अपने घोड़े पर जीन कसा और रवाना हो गया। दोपहर के खाने के वक्त तक वह खूंजह लौट आया। जब वह खूंजह के करीब पहुँच रहा था, तो कुछ परिचित पहाड़ी लोग उससे मिले। उन्होंने पूछा -

'अल्लाह तुम्हारी हिफाजत करे, बहुत दूर से लौट रहे हो क्या, अलीबुलात?'

'हाँ, तालातल से वापस आ रहा हूँ।'

'किस काम से गए थे तालातल?'

'यह मुझे मालूम नहीं। काम के बारे में नायब ही जानते हैं। उन्होंने कल मुझसे कहा था कि जाना होगा और बस, मैं चला गया।'

हमारे साहित्य-जगत में ऐसे अलीबुलात भी विद्यमान हैं।

विषय के बारे में कविता

जब किशोर था, उन्हीं दिनों जब किसी ब्याह-शादी में जाता,
धूमधाम में, मौज-मजे में, मैं भी बड़े रंग में आता।
जाम खनकते, जाम छलकते, और छड़ी वे मुझे थमाते,
चुनो नाच की साथी कोई, वे तब मुझको यह बतलाते।
लोगों की उस भीड़, शोर में, मैं घबराता, मैं शर्माता,
किसे चुनूँ नाच की साथी, इतना पर मैं समझ न पाता।
'इसको चुन लो, उसको चुन लो,' बड़े मुझे तब यह बतलाते,
अपनी समझ-बूझ दिखलाते, मुझे इशारों से समझाते।
अब मैं वयस्क हुआ हूँ मुझको, साज दे दिया, लो तुम गाओ,
अपनी इस सुंदर धरती का, गीत सकल जग में पहुँचाओ।
पर फिर से सब शिक्षा देते, फिर से मुझको राह दिखाते,
तुम यह गाओ, यह मत गाओ, बच्चा समझ मुझे सिखलाते।

विषय के बारे में कुछ और। मैंने बहुत-से ऐसे युवाजन देखे हैं, जो शादी करने से पहले अपने दिल से नहीं, बल्कि रिश्तेदारों, चाचा-चाचियों से सलाह-मशविरा

करते हैं। अपने सृजन-कार्य में लेखक की तो प्यार के बिना शादी हो ही नहीं सकती। चाची या मौसी की सलाह से हुई शादी के फलस्वरूप कम-से-कम जिंदा बच्चे तो होते ही हैं। बेशक ऐसा सुनने में आया है कि पति-पत्नी में जितना ज्यादा प्यार होता है, बच्चे उतने ही ज्यादा सुंदर होते हैं मगर लेखक की प्रेमहीन शादी से तो मृत पुस्तकों का ही जन्म होता है। लेखक को अपने विषय से नाता जोड़ने के पहले यह सुन लेना चाहिए कि उसका दिल क्या कहता है।

चाचा-चाचियों की सलाह पर लिखी जानेवाली कविताओं का वैसा ही हाल होगा, जैसा कि मेरे एक दोस्त की किताब का हुआ था।

मेरे दोस्त की किताब के बारे में। साल तो मुझे अच्छी तरह याद नहीं, मगर तब अचानक यह कहा जाने लगा कि हमारे देश को गोगोलों और श्चेद्रीनों की जरूरत है। सोवियत व्यंग्य-साहित्य की अचानक जरूरत महसूस हुई।

मेरा दोस्त थोड़ा कवि, थोड़ा गद्यकार और थोड़ा संपादक है। मतलब यह कि साहित्यकार है। उसने उपर्युक्त आह्वान पर फौरन कान दिया और व्यंग्यात्मक कविताओं की एक किताब लिख डाली। उसने चुगलखोरों, चापलूसों, कामचोरों और अनेक पत्नियोंवालों और ऐसे ही अन्य बुरे तत्वों को अपने व्यंग्य-बाणों का निशाना बनाया, जो कुल मिलाकर अच्छे सोवियत जीवन पर काली छाया डालते हैं।

किताब दुकानों पर आई ही थी कि एक आलोचक ने अपने लेख में कसकर लेखक की खबर ली। उसने लिखा - 'हमें गोगोलों और श्चेद्रीनों की जरूरत है, लेखक ने इस नारे को शाब्दिक और बहुत ही सीधे-सरल ढंग से समझा है। अब हमें पता चला है कि कैसा घटिया और दुष्ट आदमी हमारे नजदीक रहता रहा है। अब हमें पता चला है कि उसका कितना छोटा और काला दिल है। जिन लोगों का उसने अपनी किताब में जिक्र किया है, वे उसे मिले कहाँ? हमारे सोवियत देश में क्या सचमुच ऐसे लोग हैं, नहीं, सोवियत देश में ऐसे लोग नहीं हो सकते। वे काली आत्मावाले इस व्यक्ति की काली कल्पना की उपज हैं और उसकी कीचड़ उछालनेवाली किताब से हमारे दुश्मनों को ही लाभ होगा।'

बड़ा अधिकारी मुखतारबेगोव मेज पर मुकका मारते हुए चिल्ला उठा -

'कहाँ देखा तुमने ऐसा काहिल, ऐसा निकम्मा और इसके अलावा पियक्कड़ टोली-मुखिया?'

'अपने गाँव में,' लेखक ने नम्रता से जवाब दिया।

'यह तो झूठा आरोप है। मुझे मालूम है कि तुम्हारे गाँव का सामूहिक फार्म अग्रणी है। अग्रणी सामूहिक फार्म में ऐसा टोली-मुखिया नहीं हो सकता।'

थोड़े में यह कि व्यंग्यकार खुद ही अपने व्यंग्य का शिकार बन गया। एक पोलिश पत्रिका में छपे कार्टूनवाली ही बात हुई। कार्टून में दो छज्जे दिखाए गए थे, एक पहली और दूसरा चौथी मंजिल पर। दोनों छज्जों में एक-एक आदमी खड़ा था। नीचेवाला आदमी ऊपरवाले पर ईंटें फेंकता, मगर वे चौथीं मंजिल तक न पहुँचतीं और फेंकनेवाले के सिर पर ही वापस आ लगतीं। ऊपरवाला आदमी इतमीनान से नीचे ईंटे फेंकता जाता था और वे भी निचले छज्जे पर खड़े आदमी के सिर पर लगती थीं। कार्टून के नीचे यह शीर्षक लिखा था - 'नीचे और ऊपर से आलोचना।'

किस्मत के मारे इस व्यंग्यकार को किसी ने यह सलाह दी कि अपने को अपराधी मान लेना ही उसके लिए सबसे अच्छा रहेगा। सो भी एक बार ही नहीं, कई बार तथा जहाँ भी मुमकिन हो सके - अखबार में, पत्रिका और हर बैठक में। बदकिस्मत किताब के लेखक ने पछताना, रोना-पीटना शुरू किया। मगर यह काफी नहीं माना गया। बड़े अधिकारी मुखतारबेगोव ने कहा -

'कीचड़ उछालनेवाली तुम्हारी कविताओं के बाद हमें तुम पर एतबार नहीं रहा। तुम्हें अमली तौर अपनी कलम से यह साबित करना होगा कि तुमने अपने को सुधार लिया है।'

मेरे दोस्त के लिए सब समान था - आलोचना करने को कहो, तो भी तैयार, अपनी भूल सूधारने को कहो, तो भी तैयार। वह काम में जुट गया और उसने 'मेहनती मरजानत' नाम की एक लंबी कविता रच डाली। कविता की नायिका अग्रणी और जोशीली लड़की, आन की आन में सारे सामूहिक फार्म को अग्रणी बना देती है, सभी योजनाओं की अतिपूर्ति करती है और यहाँ तक कि शौकिया कला-कार्यक्रम में खुद रचा हुआ गाना गाकर पहला स्थान भी प्राप्त कर लेती है। इस कविता को फौरन पत्रिका में छापा गया और पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया गया। मगर वक्त ने कुछ करवट ली। उन्हीं अखबारों ने, जिन्होंने उसे झूठी बदनामी करने और कीचड़ उछालनेवाला कहा था, अचानक यह फतवा दे दिया कि वह अव्वल दर्जे का चापलूस है। बड़े अधिकारी मुखतारबेबोव ने फिर मेज पीटते हुए कहा -

'यह तुमने कहाँ देखा है कि सामूहिक फार्म में कोई भी कमी-त्रुटि न हो? ऐसा आदर्श सामूहिक फार्म तुम्हें कहाँ मिल गया?'

अपराधी ने इस बार मौन साधे रखा। कुछ ऐसी मजबूत गाँठें भी होती हैं, जो हाथों से नहीं खुलतीं, मगर उन्हें दाँतों से भी नहीं खोला जा सकता, क्योंकि वे गंदगी से लथ-पथ होती हैं। मेरा दोस्त समझ गया था कि उसके सामने ऐसी ही गाँठ है और इसलिए वह सिर्फ सिर झुकाए बैठा रहा।

दस साल तक उसकी यह खामोशी बनी रही। इन सालों के दौरान वह लेखक-संघ में भी कभी नहीं आया। सिर्फ एक बार ही, जब उसे फ्लैट दिया गया, वह वहाँ आया। आप सहमत होंगे कि उस वक्त तो आए बिना काम नहीं चल सकता था।

बड़े अधिकारी मुखतारबेगोव को कुछ ही समय बाद धोखाधड़ी के लिए ऊँचे पद से हटा दिया गया। किसी को भी उसके लिए अफसोस नहीं हुआ।

प्रसंगवश यह भी बता दूँ कि उसे सागर-स्नान बहुत पसंद था। सुबह और शाम को वह बड़ी काली 'जीम' कार में खास तट पर जाता और वहाँ अकेला ही कैस्पियन सागर के ठंडे और नमकीन पानी में डुबकियाँ लगाता। घर उसका सागर-तट पर ही था। मगर अब किसी ने भी मुखतारबेगोव को नहाते नहीं देखा। आम तट पर, जहाँ सभी लोग नहाते थे, उसने नहाना पसंद नहीं किया। शायद वह अपने को बदल नहीं सका, अपनी अकड़ नहीं छोड़ सका।

विषय के बारे में कुछ और। जब हम सड़क पर आते हैं, तो हमें अपने सभी ओर-जमीन पर, झाड़ियों में, वृक्षों पर बहुत-से पक्षी उड़ते दिखाई देते हैं। वे आकाश में भी उड़ते हैं, कुछ ऊँचे, कुछ नीचे। इनमें अबाबीलें होती हैं, डोमकौवे, कौवे, गौरेयाँ और ऐसे ही दूसरे पक्षी होते हैं। ऐसे पक्षियों के बीच आकाश में सिर्फ एक ही उकाब होता है। वह सबसे ऊँचा, नजर से बहुत दूर होता है, मगर फिर भी अगर वह आकाश में है, तो घर से बाहर आनेवाले आदमी को उकाब ही सबसे पहले दिखाई देगा। वह दूसरे पक्षियों से इसीलिए अलग और सबसे पहले नजर आता है कि सबसे दूर और सबसे ऊँचा होता है। इसके बाद ही घर के दरवाजे से पाँच कदम दूर बैठी गौरैया की तरफ ध्यान जाता है।

मगर उकाब को देख लेने से कोई उकाब नहीं बन जाता। किसी वीर के बारे में लिखनेवाला लेखक खुद वीर नहीं हो जाता। वीरतापूर्ण कविताओं के लिए विख्यात बहुत-से कायरों को मैं जानता हूँ। अगर पहाड़ी सूरमा मखच दाखादायेव

अपनी कब्र से बाहर आ सकता, तो अपने बारे में शोध-प्रबंध लिखनेवाले 'विद्वान' से वह क्या कहता?

'तुम मेरे वीरतापूर्ण जीवन के बारे में बता ही क्या सकते हो, जब अपने लिखे हुए एक भी वाक्य को संपादक से नहीं बचा सकते? मेरे बारे में तुम्हारे विचारों को हर संपादक जैसे चाहता है, बदल देता है और तुम जरा भी आपत्ति करने का साहस नहीं कर पाते। नहीं, तुम मखच दाखादायेव जैसे आदमी के बारे में शोध-प्रबंध लिखने के लायक नहीं हो,' पहाड़ी सूरमा ने, अगर वे कब्र से बाहर आ सकते, तो यही कहा होता।

कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि कोई महान विषय चुन लेने से वे खुद भी महान बन जाएँगे। मगर सबसे साधारण ही सबसे महान होता है। बारिश की बूँद में ही जल-प्रलय छिपा रहता है। महान और तुच्छ व्यक्ति में यह अंतर होता है कि तुच्छ व्यक्ति केवल बड़ी चीजों और घटनाओं को ही देख सकता है और अपने आसपास की चीजों पर उसकी नजर नहीं जाती। किंतु महान व्यक्ति छोटी-बड़ी सभी चीजों पर उसकी नजर नहीं जाती। किंतु महान व्यक्ति छोटी-बड़ी सभी चीजों को देखता है और तुच्छता में भव्यता खोज निकालता है औद दूसरों को दिखा सकता है।

संस्मरण। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रतिभाशाली लेखक मुँह लटकाए दिखाई देते हैं और प्रतिभाहीन सीना ताने घूमते हैं। ऐसा तब होता है, जब लेखक के नेक इरादों को ही महत्व दिया जाता है, मगर उसकी किताब कैसी बन पड़ी है, उसके लेखक में कितनी प्रतिभा है, लेखनकला में वह कितना पारंगत है, इसका गंभीरता से मूल्यांकन नहीं किया जाता। ऐसी स्थितियों में गुरू ज्यादा और चेले कम, माल से ज्यादा गाहक, लेखकों से ज्यादा बक्कू हो जाते हैं।

ऐसे ही वक्त में मेरे पिता जी ने शामिल के बारे में एक बड़ी कविता लिखने की तीव्र इच्छा अनुभव की। कविता छपने ही वाली थी कि शामिल को इस वक्त से और हमेशा के लिए अंग्रेजों-तुर्कों का भाड़े का टट्टू मानने का हुक्मनामा आ गया। यह पता चला कि शामिल दागिस्तान के लोगों की आजादी के लिए नहीं, बल्कि उन्हें धोखा देने के लिए पचीस साल तक लड़ता रहा था।

अपनी वीरतापूर्ण कविता का मेरे पिता जी क्या करते! उन्हें संकेत किया गया कि हमारे अच्छे जमाने में प्राचीन इतिहास के पृष्ठ उलटने में क्या रखा है और

अगर वे अधिक सामयिक और पाठकों के अधिक निकट किसी विषय पर नई कविता लिखें, तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

उन दिनों हमारे परिवार के मित्र, खुशमिजाज अबूतालिब अक्सर पिता जी के पास आते थे। जुरना या बाँसुरी हमेशा उनके साथ होती थी।

'हमजात,' अबूतालिब आराम से बैठकर जुरने को सुर में करते हुए बोले, 'बहुत दुखी नहीं होओ। जब मैं लड़का था और कविता नहीं रचता था, तो हमेशा जुरना बजाता था। कई सालों तक इसने मुझे और मेरे परिवार को रोटी दी। इस पर हर धुन बजती थी। आओ, उन जवानी के दिनों की याद ताजा करें, कुछ समय के लिए कविताओं को भूल जाएँ और संगीत का मजा लें। मैं जुरना बजाऊँगा और हमजात तुम ढोल बजाओ, ऐसे हमें राहत मिलेगी।'

'यह तुम क्या कह रहे हो, अबूतालिब! अगर हम ढोल और जुरना बजानेवाले हो जाते, तो भी इतना बुरा न होता। जुरना-वादक तो अपना जुरना बजाता है और उसकी धुन पर नर्तक नाचता है या नट रज्जु पर चलता है। जुरना-वादक नीचे खड़ा होता है और नट रज्जु पर नाचता है। बताओ अबूतालिब, उन दोनों में से किसकी अधिक बुरी हालत होती है? हम दोनों रज्जु पर चलनेवालों के समान हैं। वे हमें रज्जु पर करतब करनेवाले और नर्तक बनाना चाहते हैं।'

खुशमिजाज अबूतालिब उदास हो गए और उनके साथ ही उनका जुरना भी उदास हो गया। देर तक वे चुपचाप अपना बाजा बजाते रहे, फिर उन्होंने सिर ऊपर उठाया और बोले -

'बड़ा मुश्किल धंधा है कविता रचने का।'

> दामन से हम नजर डालते
> जब-जब ऊँची चोटी पर
> ऐसे लगता छू लेंगे हम
> हाथ बढ़ा, आगे बढ़ कर,
> मगर घनी, गहरी बर्फों में
> पाषाणी पगडंडी पर,
> हम बढ़ते, चलते जाते हैं
> अंत न आता कहीं नजर।
> इसी तरह से काम हमारा
> सीधा-सीधा-सा लगता,

पर शब्दों के हेर-फेर में
बहुत बड़ा झंझट पड़ता।
कभी-कभी तो पंक्ति न बनती
शब्द अकड़ जाते तन कर,
तब लगता कविता रचने से
सुगम पहुँचना चोटी पर।

उकाब की बराबरी करने के इच्छुक पक्षी का किस्सा। भेड़ों का रेवड़ पहाड़ों से घाटी में उतर रहा था। अचानक उकाब ने आसमान से नीचे झपट्टा मारा, एक मेमने को पंजों में दबाया और उठा ले गया। एक छोटे-से परिंदे ने यह सब देखा। उसने सोचा, 'भला मैं भी ऐसे ही क्यों न करूँ, जैसे उकाब ने किया? मेमने की क्या बात है, मैं तो पूरी भेड़ ही उठा ले जाऊँगा।' पक्षी बहुत ऊँचा उड़ा, उसने पंख समेटे और नीचे की तरफ झपटा। मगर यह किस्सा ऐसे खत्म हुआ कि वह भेड़ के सींग से टकराया और अपनी जान से हाथ धो बैठा।

'एक बार मक्खी ने भी पत्थर फेंकना चाहा था,' मरे हुए परिंदे को हथेली पर रखे हुए चरवाहे ने कहा।

इस तरह उकाब की बराबरी करने के इच्छुक पक्षी की मक्खी से ही तुलना की गई।

विषय के बारे में कुछ और। विषय प्यार भी है, कसम भी है, याचना भी है, प्रार्थना भी है। पूरब में कहा जाता है कि दोहराने से प्रार्थना बिगड़ती नहीं, बेहतर ही हो जाती है।

विषय के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। अगर एक ही विषय को लगातार दोहराया जाए, तो वह घिसा-पिटा हो जाएगा, उसका कोई मूल्य नहीं रहेगा। हीरा जितना अधिक बड़ा होगा, उतनी ही ज्यादा उसकी कीमत होगी। हीरे की धूल की किसे जरूरत है?

एक बार मैंने रूसी अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना के बारे में एक कविता रची। मैंने देखा कि पाठकों, यहाँ तक कि आलोचकों को भी वह कविता पसंद आई। मुझे खुशी हुई और लगा उसी विषय को रगड़ने।

मेरी कविताएँ उस शराब जैसी नहीं रहीं, जो शुरू में पीपे में थी, बल्कि उस शराब जैसी हो गई जो पीपे को धो देने के बाद हासिल होती है।

पुरानी शराब का लेबल लगाकर कच्ची शराब भी बेची जा सकती है। अब मैं आपको यह सुनाता हूँ कि मास्कोवासियों को अपनी घर की बनी शराब पिलाते हुए हम क्या करते थे।

मैं और काकेशिया के मेरे दूसरे दोस्त अपने घरों से मास्को लौटते हुए हमेशा अपने साथ शराब लाते थे। दोस्त इकट्ठे होते, हम पीपा खोलते और जाम उड़ाए जाने लगते। पीपे में पुरानी, खूब अच्छी तरह से तैयार और बढ़िया शराब होती। हमारे दोस्त शराब पीकर उसकी तारीफ करते और अपने दूसरे दोस्तों से उसकी चर्चा चलाते। बढ़िया शराब चाहनेवाले बहुत ज्यादा होते। जाहिर है कि पीपा तो आखिर खाली हो ही जाता। कभी-कभी हम यह गुनाह करते कि आम बाजारी शराब खरीदकर उसे अपने पीपे में डाल देते और यह कहते कि असली, घर की बनी हुई, बढ़िया शराब है। ऐसे पारखियों से जो हमारा भंडाफोड़ कर देते, कभी वास्ता नहीं पड़ा था। सिर्फ एक मेहमान ने ही शराब चखने के बाद मेरी तरफ देखा और मानो भर्त्सना करते हुए सिर हिलाया। बाकी तो जितनी ज्यादा पीते, उन्हें उतना ही ज्यादा नशा होता और वे उतने ही ज्यादा तारीफों के पुल बाँधते।

मेरी उन कविताओं के बारे में भी, जिन्हें मैं अक्सर दोहराने लगा था, यही कहा जा सकता है। सिर्फ कुछ बहुत ही समझदार और कठोर पाठक सिर हिलाकर कहते थे -

'अरे भाई, दालागालोव भी इसी काम से आया था।'

या फिर वे यह कहते, 'एक गाँव के लिए एक ही मूर्ख काफी है।'

तब यह बात मेरी समझ में आई कि मैं भी वही कुछ कर रहा हूँ, जो बढ़िया कारीगरों ने अपनी छड़ियों के साथ किया था।

अब मैं आपको ढंग से यह सारा किस्सा सुनाता हूँ।

जब मैं लड़का ही था तो कुरबान अली नाम का एक डाकिया ढेर सारे खत और अखबार लेकर हर दिन हमारे गाँव में आता। वह आबूता गाँव का रहनेवाला बड़ा ही हँसोड़ और मस्त-मौला था। डाक बाँटते वक्त कुरबान अली गप-शप करने और पाइप के कश लगाने के लिए जरूर ही मेरे पिता जी के पास आता। कह नहीं सकता कि ऐसी बातचीत के लिए उसने मेरे पिता जी ही को क्यों चुना था। बात यह है कि उसकी बातचीत का विषय हमेशा एक ही होता था - शादी के बारे में। शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि नई शादी के बारे में। कारण कि

वह उन लोगों में से था, जो एक हफ्ते बाद शादी करते हैं और एक महीने बाद तलाक दे देते हैं।

यह उस वक्त की बात है, जब उसने तलाक दिया ही था और अपने लिए जवान विधवा की तलाश कर रहा था। उसने तो जैसे उसे खोज भी लिया था, क्योंकि हर दिन वह इसी बात की चर्चा करता था कि वह कितनी सुंदर है, जवान और मिलनसार है।

मगर अचानक जवान विधवा के बारे में बातचीत बंद हो गई। कुरबान अली पहले की तरह ही हर दिन आता, किंतु बातचीत मौसम या सामूहिक फार्म के काम-काजों और ऐसे ही सभी तरह के विषयों के बारे में करता, कुछ ही समय बाद होनेवाली अपनी शादी के बारे में नहीं।

'तुम किसी के साथ शादी करने की सोच रहे थे, क्या कर ली?' पिता जी ने एक दिन पूछा।

'अरे नहीं हमजात, यह तो मैं सोच रहा था, मगर लगता है कि उसका तो बिल्कुल ऐसा ख्याल नहीं था। अब जवान विधवा ढूँढ़ने के लिए मुझे सारे दागिस्तान का चक्कर लगाना पड़ेगा।'

कुरबान अली ने बहुत अर्से तक सूरत नहीं दिखाई। इसका मतलब तो यही था कि सचमुच गाँवों के चक्कर लगाता हुआ अपने लिए बीवी खोज रहा था। इस दौरान उसका बेटा डाक बाँटने आता रहा। बदकिस्मत डाकिया जब फिर से हमारे घर आया, तो हमने बड़ी बेसब्री से उससे पूछा -

'कहो क्या हालचाल है? तुम्हारा रास्ता तो सीधा और छोटा ही रहा न?'

'शायद सीधा ही रहता, मगर दालागालोव ने उसे टेढ़ा कर दिया।'

'वह कैसे?'

'बहुत सीधे-सादे ढंग से। अपने उद्देश्य से मैं जहाँ कहीं भी गया, मुझे यही बताया गया, देर से आए हो। दालागालोव भी इसी काम से आया था।'

दरबीश दालागालोव औरतों के मैदान का मशहूर सूरमा था। 1938 में उसने अठारह बार शादी की थी।

डाकिये कुरबान अली की बदौलत सारे दागिस्तान में आसानी से यह कहावत फैल गई - 'दालागालोव भी इसी काम से आया था।'

दूसरा किस्सा है एक मूर्ख के बारे में। यह तो सभी जानते हैं कि हर गाँव में सिर्फ एक ही अहमक रहता है। यही अच्छी बात है। जब बहुत-से अहमक या मूर्ख होते हैं - तो बुरा होता है। जब एक भी नहीं होता, तो भी जैसे कुछ कमी-सी महसूस होती है। अहमकों की एक-दूसरे से अच्छी तरह जान-पहचान होती है और वे तो एक-दूसरे के यहाँ मेहमान भी आते-जाते हैं। इसी रिवाज के मुताबिक एक बार गूरताकुली गाँव का अहमक खूंजह गाँव के अहमक के यहाँ मेहमान आया।

'सलाम अलैकुम, अहमक!'

आगे सब कुछ वैसे ही हुआ, जैसे कि दो दोस्तों के बीच होता है। वे चूल्हे के पास बैठ गए, खूब खाया-पिया। तीसरे दिन गूरताकुली का अहमक अपने घर जाने को तैयार हुआ। मेजबान अहमक ने जैसे होना चाहिए, वैसे ही बड़ी इज्जत से मेहमान को विदा किया, तोहफे दिए और गाँव के छोर तक छोड़ने गया। दोनों अहमकों ने एक-दूसरे से विदा ली।

मेहमाननवाजी की सभी रस्में पूरी हो चुकी थीं। कुछ ही देर पहले का मेहमान जैसे ही गाँव की हद से बाहर जाता है, उसके साथ मनमाना बर्ताव किया जा सकता है, क्योंकि अब वह मेहमान नहीं रहा। उसी वक्त खूंजह का अहमक भागकर गूरताकुलीवाले अहमक के पास पहुँचा और अचानक उस पर पिल पड़ा।

'किसलिए तुम मुझे पीट रहे हो?'

'मेरे यहाँ फिर कभी मेहमान नहीं आना। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि एक गाँव के लिए सिर्फ एक ही अहमक काफी है?'

कभी-कभी मैं इस किस्से पर गौर करता हूँ और मेरे दिमाग में यह ख्याल आता है कि एक गाँव के लिए एक ही अक्लमंद भी काफी है।

नोटबुक से। किसी अमीर खान ने किसी गरीब से पूछा -

'बत्तख का कौन-सा हिस्सा सबसे ज्यादा मजेदार होता है? अगर ठीक जवाब दोगे, तो इनाम मिलेगा।'

'पिछला,' गरीब ने फौरन जवाब दिया।

जब बत्तख बनकर तैयार हो गई, तो खान ने इसी हिस्से को चखा और उसे बेहद पसंद आया। उसने दूसरे गरीब से पूछा -

'भैंस का कौन-सा हिस्सा सबसे ज्यादा मजेदार होता है?'

दूसरा गरीब आदमी भी इनाम पाना चाहता था, इसलिए उसने पहले की तरह ही जवाब दिया -

'पिछला।'

खान ने उसे चखा और इस दूसरे गरीब को कोड़े लगवाए।

बड़े अफसोस की बात है कि उन लेखकों के लिए कोड़े नहीं हैं, जो सोचे-समझे बिना अलग-अलग मौकों पर एक ही बात दोहराते रहते हैं।

अब ऊनसूकूल की छड़ी के आलेख की कहानी सुनिए। मास्को के साहित्यकार ब्लादलेन बाखनोव लंगड़ाते हैं और छड़ी के सहारे चलते हैं। छुट्टियों में दागिस्तान जाते हुए मैंने उनसे वादा किया कि ऊनसूकूल के प्रसिद्ध कारीगरों की नक्काशीवाली सुंदर छड़ी उन्हें लाकर दूँगा। घर पहुँचते ही मैंने अपने एक परिचित नक्काश को इस अनुरोध का पत्र लिख भेजा। नक्काश बुजुर्ग कारीगर और मेरे पिता के दोस्त थे और इसलिए यह आशा की जा सकती थी कि छड़ी जैसी बढ़िया होनी चाहिए, वैसी ही होगी। सिर्फ एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी कि इस छड़ी पर लिखवाया क्या जाए।

इसी समय एक केंद्रीय समाचार-पत्र में साहित्यिक विषय पर एक बड़ा लेख निकला। उसका शीर्षक था - 'आलोचना की जगह डंडा।'

'बहुत खूब', मैंने सोचा, 'ऐसा आलेख मास्को के साहित्यिक को भेंट की जानेवाली छड़ी के लिए बिल्कुल ठीक रहेगा।'

दो हफ्ते बाद छड़ी तैयार हो गई। ऊनसूकूल की छड़ियों में यह सबसे बढ़-चढ़कर थी। उचित स्थान पर ये शब्द शोभा दे रहे थे - 'ब्ला बाखनोव को। आलोचना की जगह डंडा। रसूल हमजातोव की ओर से।'

वैसे तो मखचकला, किस्लोवोद्स्क, प्यातिगोर्स्क की स्मरण-चिह्नों की दुकानों तथा पहाड़ी गाँवों की मंडियों में ऊनसूकूल की छड़ियाँ बिकती हैं।

कुछ अर्से बाद इन सभी जगहों पर 'ब्ला बाखनोव को। आलोचना की जगह डंडा। रसूल हमजातोव की ओर से' आलेखवाली छड़ियाँ बिकने लगीं। इन स्वास्थ्यप्रद स्थानों पर आनेवाले लोग संभवतः ऐसा आलेखवाला उपहार खरीदते समय हैरान हुए होंगे। मगर सबसे अधिक हैरानी तो मुझे हुई।

हुआ यह कि बुजुर्ग कारीगर, जिन्होंने पहली छड़ी बनाई, रूसी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। मैंने कागज पर जो कुछ लिख भेजा था, उन्होंने उसे ज्यों-का-त्यों छड़ी पर उतार दिया। उन्होंने सोचा कि अगर कवि ने छड़ी पर ये शब्द लिखवाने चाहे हैं, तो इनमें जरूर कोई बड़ी समझदारी की बात छिपी होगी। तो भला यही शब्द दूसरी छड़ियों की शोभा क्यों न बढ़ाएँ?

बुजुर्ग कारीगर को दोष नहीं दिया जा सकता। उन्होंने भोलेपन से कवि पर विश्वास कर लिया और अपने सहज विश्वास में उदारता और निश्छलता का परिचय दिया। मगर हम अनुभवी साहित्यकार भी तो क्या कभी-कभी इस बुजुर्ग के समान ही नहीं होते?

विषय के बारे में अंतिम शब्द। एक विषय है, जो प्रार्थना के समान है। उसे जितना अधिक दोहराया जाता है, वह उतना ही अधिक मूल्यवान, उच्च और श्रेष्ठ हो जाता है। यह विषय और प्रार्थना है मेरी मातृभूमि।

बच्चे को जब किसी शरारत के लिए सजा दी जाती है, तो पहाड़ी इलाकों के रिवाज के अनुसार चेहरे के सिवा उसे इसकी किसी भी जगह पर मारा-पीटा जा सकता है। इनसान के चेहरे को नहीं छुआ जा सकता और यह चीज हर पहाड़ी आदमी के लिए कानून है।

दागिस्तान तुम मेरा चेहरा हो। मैं तुम्हें छूने की मनाही करता हूँ। लड़ाई-झगड़े में पहाड़ी लोग बड़े सब्र से काम लेते हैं। वे एक-दूसरे को बहुत-से बुरे-बुरे शब्द कहते हैं और हर कोई उन्हें बर्दाश्त करता है तथा उनके जवाब में अपने गंदे शब्द कहता है। मगर ऐसा तभी तक होता है, जब तक कि इन गंदे शब्दों का सिर्फ आपस में झगड़नेवालों तक ही संबंध रहता है। पर यदि संयोग या असावधानी से कोई माँ या बहन को कुछ भला-बुरा कह बैठता है, तो समझो कि मुसीबत आ गई - तब खंजर चल जाएँगे।

दागिस्तान - तुम मेरे लिए माँ हो। वे सभी, जिन्हें मुझसे उलझना पड़ेगा, इस बात की गाँठ बाँध लें। मुझे तो बेशक कैसे ही भले-बुरे शब्द कह लो - मैं सब बर्दाश्त कर लूँगा। मगर मेरे दागिस्तान को नहीं छूना।

दागिस्तान - वह मेरा प्यार है, मेरी प्रतिज्ञा, मेरी याचना, मेरी प्रार्थना है। तुम ही मेरी सारी किताबों, मेरे सारे जीवन का मुख्य विषय हो।

कभी-कभी मुझसे यह कहा जाता है कि मैं केवल तुम्हारे अतीत की चर्चा करूँ, पुराने रस्म-रिवाजों, दंत-कथाओं और गीतों, शादियों और तलवारों,

लड़ाइयों और दोस्तियों, मुरीदों के इस्पाती कलेजों और वफादार कुमारियों, गरिमा और साहस, नौजवानों के खून और माताओं के आँसुओं का ही वर्णन करूँ।

कभी-कभी मुझसे सिर्फ तुम्हारे वर्तमान का ही बखान करने को कहा जाता है। मुझसे अनुरोध किया जाता है कि मैं राजकीय फार्मों और सामूहिक फार्मों, टोली और उपटोली मुखियाओं, पुस्तकालयों और थियेटरों, तुम्हारी श्रम-संबंधी उपलब्धियों का उल्लेख करूँ।

मैं अपने को इस या उस अतीत या वर्तमान तक ही सीमित नहीं कर सकता। मेरे लिए तो एक दागिस्तान है, जो एक हजार साल की जिंदगी देख चुका है। मेरे लिए उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य घुल-मिलकर एक हो गए हैं। मैं उसे अलग-अलग कालों में विभाजित नहीं कर सकता।

दूसरे राज्यों और देशों का इतिहास तो सिर्फ खून से ही नहीं, कलम और स्याही से कागज पर भी कभी का लिखा जा चुका है। उसे तो सैनिक और सेनापति ही नहीं, लेखक और इतिहासकार भी लिख चुके हैं। दागिस्तान का इतिहास तो तलवारों ने लिखा है। सिर्फ बीसवीं सदी ने ही दागिस्तान को कलम दी है।

दागिस्तान, मैं तुम्हारी प्राचीन लड़ाइयों के चिह्नों को देख आया हूँ, उन अनेक रण-क्षेत्रों में हो आया हूँ, जिनमें तुम्हारे सपूतों की हड्डियाँ बोई गई हैं। सामूहिक फार्मों के गेहूँ या मक्का के खेत इस बात के लिए मुझसे नाराज न हों कारण कि जब मैं अपनी कविताओं में आधुनिक दागिस्तान की चर्चा करता हूँ, तो अतीत इसके लिए मेरी भर्त्सना नहीं करता।

दूर-दराज के देशों की यात्राओं के बाद जब मैं अपने घर लौटता हूँ, तो पहाड़ी लोग मुझे घेर लेते हैं और जो कुछ मैंने देखा होता है, उसे बयान करने को कहते हैं। वे मेरे गिर्द घेरा डालकर बैठ जाते हैं और सुनते हैं। अधिक-से-अधिक मैं तीन घंटे ही बोल पाता हूँ और मैं उन्हें फ्रांस, भारत, जापान या तुर्की के बारे में बताता रहता हूँ। मगर तीन घंटों के बाद अपने आप और अनजाने ही दागिस्तान के बारे में बातचीत शुरू हो जाती है। मैं अपने पहाड़ी लोगों से दागिस्तान की चर्चा करने लगता हूँ और वे मुझे ऐसे सुनते रहते हैं मानो पहली बार सुन रहे हों, यद्यपि वे खुद ही तो दागिस्तान हैं।

महमूद बड़े कवि थे। उनका मुख्य विषय था - मरियम के प्रति उनका प्यार। उनके एक घनिष्ठतम मित्र ने महमूद से लोरी रचने को कहा, क्योंकि उसके यहाँ बेटा हुआ था। महमूद ने अपनी कलम आजमाई, मगर उन्हें कामयाबी नहीं मिली। महमूद की लिखी लोरी सुनकर बच्चा पालने में रोता रहता, जबकि उससे उसे नींद आनी चाहिए थी। दूसरे मित्र ने महमूद से अनुरोध किया कि वह उसकी पत्नी के बारे में, जिसका देहांत हो गया था। शोक-गीत रच दे। महमूद ने ऐसा किया, मगर उन्हें सफलता नहीं मिली। महमूद का शोक-गीत सुनकर किसी की भी आँखों में आँसू नहीं आए। इसके उलट, कुछ तो मुस्करा भी दिए।

किंतु मरियम के प्रति महमूद के असफल प्यार से संबंधित उनके गीत सुनकर लोग अब तक रोते हैं।

महमूद की काव्य-साधना का मुख्य विषय था - मरियम। मेरा मुख्य विषय है - दागिस्तान। मेरा प्यार महान हो या तुच्छ, मेरी सच्चाई छिछली हो या गहरी, मेरी भावनाएँ पुरातन हों या नूतन, मगर मैं तुम्हारे बारे में ही लिखता हूँ, दागिस्तान। जब मैं कलम उठाता हूँ, तो वह बरबस मेरे हाथ में काँपने लगती है।

पिता जी कहा करते थे कि अगर तरबूजों का खेत बिल्कुल सड़क किनारे है, तो पास से गुजरनेवाला हर राहगीर कच्चा तरबूज तोड़ लेगा।

कहते हैं कि जिस पत्थर को उठा नहीं सकते, उसे हाथ नहीं लगाओ। इतनी दूर तक नहीं तैरो, जहाँ से लौट नहीं सकते।

कहते हैं कि अगर नाले में टखनों तक पानी है, तो पतलून को घुटनों से ऊपर नही उठाओ।

विधा

मूर्ख चीख से हैरान करता है,
बुद्धिमान जँचती हुई कहावत से।

वसंत आया - गीत गाओ।
जाड़ा आया - किस्सा सुनाओ।

लीजिए, मैं उस पहाड़ के सामने खड़ा हूँ, जिसे लाँघना है। बढ़िया घोड़ा मुझे हर दर्रे के पार ले जाएगा। पहाड़ - मेरा विषय है, घोड़ा - मेरी भाषा है। मगर अब मुझे वह पगडंडी चुननी है, जो मुझे खड़े पहाड़ के पार ले जाएगी।

मेरे सभी पहाड़ी पूर्वजों को सीधी पगडंडी पसंद आती रही है। उस पर चढ़ना कठिन और खतरनाक होता है, मगर वह छोटी होती है... वह जान भी ले सकती है, जल्दी से मंजिल पर भी पहुँचा सकती है।

या फिर मैं उस किले के सामने खड़ा हूँ, जिस पर कब्जा करना है। मेरे पास बहुत ही बढ़िया हथियार है, जो लड़ाई में मुझे कभी धोखा नहीं देगा। किला है मेरा विषय और भाषा है मेरा हथियार। मगर मुझे ऐसा तरीका चुनना है, जिससे इस अभेद्य दुर्ग पर आसानी से अधिकार किया जा सके। इस पर अचानक धावा बोला जाए या धीरे-धीरे घेरा डालना बेहतर होगा?

एक खेत में बाजरा बोया हुआ है और नजदीक ही पहाड़ी नदी में पानी है। मगर इस पानी को खेत तक कैसे लाया जाए?

चूल्हे में लकड़ी है, पतीला और कुछ वह भी है, जो पतीले में डाला जाना है। मगर फिर भी यह सवाल तो है ही कि दोपहर के खाने के लिए क्या पकाया

जाए?

संपादक महोदय ने अपने पत्र में मुझे इस बात की छूट दी थी कि मैं अपने लिए कोई भी साहित्यिक विधा चुन सकता हूँ - कहानी या उपन्यास, कविता या लेख। जितनी अधिक संभावनाएँ होती हैं, चुनाव उतना ही ज्यादा कठिन होता है।

नोटबुक से। हमारे साहित्य-संस्थान में ऐसे हुआ था। पहले वर्ष की पढ़ाई के समय बीस कवि थे, चार गद्यकार और एक नाटककार। दूसरे वर्ष में - पंद्रह कवि, आठ गद्यकार, एक नाटककार और एक आलोचक। तीसरे वर्ष में - आठ कवि, दस गद्यकार, एक नाटककार और छह आलोचक। पाँचवें वर्ष के अंत में - एक कवि, एक गद्यकार, एक नाटककार और शेष सभी - आलोचक।

खैर, यह तो अतिशयोक्ति है, चुटकुला है। मगर यह तो सच है कि बहुत-से कविता से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ करते हैं, उसके बाद कहानी-उपन्यास, फिर नाटक और उसके बाद लेख लिखने लगते हैं। हाँ, आजकल तो फिल्म सिनेरियो लिखने का ज्यादा फैशन है।

कुछ बादशाहों और शाहों ने अपनी मलिकाओं और बेगमों को इसलिए छोड़ दिया था कि उनके संतान नहीं हुई थी। मगर कुछ बीवियाँ बदलने के बाद उन्हें इस बात का यकीन हो गया कि इसके लिए वे बिल्कुल दोषी नहीं थी; दूसरी तरफ कोई भी किसान जिंदगी भर एक ही बीवी के साथ रहता है और उसी से एक दर्जन बच्चे पैदा कर लेता है।

मैं तो यह मानता हूँ कि शराब पियो, मगर रोटी से मुँह न मोड़ो। गीत गाओ, मगर किस्से भी सुनो। कविताएँ रचो, मगर सीधी-सादी कहानी को दूर न भगाओ।

गद्य। एक वह भी जमाना था, जब मैं पालने में लेटा रहता था और मेरी माँ लोरी गाया करती थी; उन्हें सिर्फ एक ही लोरी आती थी। हमारे पिता जी बेशक जाने-माने कवि थे, अपने बेटों के लिए उन्होंने एक भी गीत नहीं रचा। वे हमें बड़े शौक से तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ और घटनाएँ सुनाते थे। यह उनका गद्य था।

पिता जी को अपनी कविताओं की चर्चा करना पसंद नहीं था। मेरे ख्याल में वे काव्य-रचना को गंभीर काम नहीं मानते थे। उनके संजीदा काम थे - जमीन जोतना, खलिहान को ठीक-ठाक करना, गाय और घोड़े की देखभाल करना, छत

पर से बर्फ साफ करना और बाद को गाँव, यहाँ तक कि हलके के मामलों में सरगर्म हिस्सा लेना।

कविता रचने के बाद मेरे पिता इस बात की खास चिंता नहीं करते थे कि वह कहाँ छपती है। केंद्रीय समाचार-पत्र हो या गाँव के पायनियरों का दीवारी समाचार-पत्र इस बात की तरफ मेरा ध्यान गया था कि दीवारी समाचार-पत्र में स्थान दिए जाने पर उन्हें ज्यादा खुशी होती थी।

वे अक्सर उन शब्दों को याद किया करते थे, जो प्यार के विख्यात गायक, कवि महमूद को उनके पिता अनासील मुहम्मद ने कहे थे। प्यार और प्यार के गीतों से बेहाल, भूखे और जर्द चेहरेवाले निखट्टू बेटे जैसे कवि महमूद ने जब घर आकर रोटी माँगी, तो उनके पिता ने बड़े इतमीनान से यह जवाब दिया -

'कविता खाओ और प्यार पियो। मैं तुम्हारे लिए हल जोतता-जोतता थक गया हूँ!'

इसमें कोई शक नहीं कि गीत के बिना तो पक्षी भी नहीं रह सकता। मगर पक्षी का मुख्य काम तो है - घोंसला बनाना, चुग्गा हासिल करना, अपने बच्चों का पेट भरना।

पिता जी के लिए उनकी कविताएँ पक्षी के तराने के समान ही थीं - सुंदर, सुखद, किंतु अनिवार्य नहीं। वे उन्हें सुबह के वक्त कहे जानेवाले 'शुभ प्रभात' और रात को बिस्तर पर जाते वक्त कहे जानेवाले 'शुभ रात्रि' शब्दों, पर्व की बधाई या दुख के शोक-संदेश की तरह ही मानते थे।

ऐसी धारणा है कि कवि इस दुनिया से कुछ निराले होते हैं - हर कोई अपने ही ढंग से। मगर पिता जी अपने स्वभाव और मानसिक संरचना की दृष्टि से साधारण पहाड़ी आदमी थे। सबसे अधिक तो उन्हें मंडली में बैठकर, जब लोग एक-दूसरे को टोकते नहीं, मजे से बातचीत करना, तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ और घटनाएँ सुनाना यानी गद्य ही अधिक पसंद था।

पिता जी ने विख्यात कवि महमूद को अपनी कविताएँ दिखाई। कवि को पिता जी की कविताएँ देखकर हैरानी हुई और बोले कि वे उनकी समझ में नहीं आतीं और कुल मिलाकर वे यह समझ ही नहीं पाते कि गऊ, ट्रैक्टर, कुत्तों और खूंजह गाँव की पगडंडी के बारे में कैसे कविताएँ रची जा सकती हैं।

'तो किस बारे में कविताएँ रची जाएँ?' पिता जी ने नम्रता से पूछा।

'प्यार, केवल प्यार के बारे में! प्यार का महल बनाना चाहिए।'

महमूद की कविता

महल बनाए इस धरती पर, मैंने प्यार अनूठे के
मगर बाड़ के नीचे मैं खुद, मौसम भी बिगड़ा, बिगड़ा,
मधुर भावनाओं का मैंने, एक बनाया शाही पुल
टूट गया, मैं उसे देखता अब पत्थर पर पड़ा-पड़ा।

पिता जी ने प्यार का महल नहीं बनाया। उन्हें उसके निर्माण की चिंता भी नहीं थी। उनकी चिंता, उनका महल, उनकी कविता जिनसे ओत-प्रोत थी, वे थे - उनका पहाड़ी घर, परिवार, बच्चे, उनका गाँव, घोड़ा, देश, शांति और धरती, आकाश, बारिश, सूरज और घास।

हाँ, एक बार उन्होंने प्यार की कविता, उस नारी के बारे में कविता भी लिखी थी, जिसे वे प्यार करते थे। मगर इसलिए कि कोई उस कविता को पढ़ न सके, उन्होंने उसे अरबी में रचा था। यह कविता केवल उनके और उनकी प्रेयसी के लिए थी।

हाँ, पिता जी को धीरे-धीरे आगे बढ़नेवाला बुद्धिमत्तापूर्ण किस्सा बहुत अच्छा लगता था। शाम के झुटपुटे में वे मुझे अपनी गोद में बैठा लेते, भेड़ की खाल के सुगंधित कोट के पल्ले से ढक देते और किस्से सुनाते जाते, सुनाते जाते। वे उनकी चर्चा करते जो विदेशों में चले गए थे और जो अपनी मातृभूमि में रह गए थे। वे रास्तों और नदियों का जिक्र करते, यह बताते कि फूल कैसे खिलते हैं और क्यों उन पर मधुमक्खियाँ बैठती हैं। वे यह वर्णन करते कि कैसे सूर्योदय और सूर्यास्त होता है।

वे मुझे यह बताते कि रई की एक बाल में कितने दाने होते हैं और सुंदर इंद्रधनुष का कैसे जन्म होता है।

अगर किसी दूसरे गाँव से हमारे गाँव की तरफ आता हुआ कोई राहगीर दूरी पर दिखाई देता, तो पिता जी सविस्तार यह बता सकते थे कि वह कौन है, किस मतलब से आ रहा है, किसके यहाँ ठहरेगा...

ओह, पिता जी यह सब कुछ मुझे क्यों बताते थे? कहीं ज्यादा अच्छा होता, अगर वे इन सब चीजों को लिख डालते। तो यह उनका गद्य होता, कवि हमजात त्सादासा का गद्य।

उनके लिए कहानी और जीवन एक ही चीज थे। विचार को वे कहानी और कहानी को विचार मानते थे। कविता की तुलना वे मन की तरंग से करते थे।

पिता जी अगर अपनी सभी कहानियाँ लिख डालते, तो बहुत अच्छा होता। कारण कि जब मैं बड़ा हुआ, तो मेरे व्यक्तित्व में मेरे हृदय ने ही प्रधानता प्राप्त की। जब कोई पक्षी करीब से उड़ता हुआ गुजरता, तो मैं यह सोचे बिना ही कि वह किधर और क्यों उड़ा जा रहा है, उसे उड़ते हुए ही पकड़ना चाहता। पिता जी ने चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न की, फिर भी अपने बचपन में माँ की एकमात्र लोरी मेरे लिए उनके सभी किस्से-कहानियों से ज्यादा प्यारी बनी रही।

गीत के साथ मेरा बचपन बीता, तरुणावस्था में भी गीत ही मेरे साथ रहा, उसी के साथ मैं पूरी तरह वयस्क हुआ और मेरे बाल पके।

मगर अब मैं यह समझता हूँ कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न भटकता रहा, मैंने कैसे भी गीत क्यों न गाए, हर समय एक चट्टान हमेशा यह इंतजार करती रही कि कब उकाब आकर उस पर बैठेगा, एक वृक्ष था, जो लगातार यह राह देखता रहा कि कब पक्षी उस पर घोंसला बनाएगा, एक घर लगातार इस प्रतीक्षा में रहा कि कब उसके दरवाजे पर दस्तक होगी, गद्य लगातार यह इंतजार करता रहा कि कब कवि उसके पास आएगा।

तो मैं अब उस चट्टान पर उतरता हूँ, जो मेरी राह देखती है, दरवाजे पर दस्तक देता हूँ कि उसे खोल दिया जाए, मुझे अंदर जाने दिया जाए। मैं समझ गया हूँ कि पृथ्वी पर मैंने जो कुछ देखा है, मैं जो कुछ सोचता और अनुभव करता हूँ, उस सब को कविता में बयान नहीं कर सकता।

मैं यह बात समझता हूँ कि गद्य कविता नहीं है, जिसे खड़े-खड़े गाया जा सकता है। इसके लिए मेज के करीब बैठना होगा, आस्तीनें चढ़ानी होंगी, बड़े सवेरे जागने के लिए अलार्म घड़ी को चाबी देनी होगी, तेज चाय तैयार करनी होगी ताकि रात को नींद न आ जाए।

हाँ, अगर बुनियाद सही ढंग से रखी गई है और मचान ढंग से बनाई गई है, तो मकान की तामीर भी आगे बढ़ेगी। मगर यह कहानी होगी, लघु-उपन्यास, कथा या किस्सा, दंत-कथा या विचार-संग्रह अथवा केवल लेख - यह मुझे मालूम नहीं।

कुछ संपादक और आलोचक मुझसे यह कहेंगे कि मैंने न तो उपन्यास न किस्सा और न लघु-उपन्यास ही लिखा है, कुल मिलाकर यह कि न जाने क्या

लिख डाला है। कुछ दूसरे संपादक और आलोचक कहेंगे कि यह पहली, दूसरी और तीसरी चीज भी है, यह भी है, वह भी है।

मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगा। मेरी लेखनी से जो कुछ भी निकलेगा, उसे बाद में आप चाहे जो भी नाम दे दें। मैं किताबी कानूनों के मुताबिक नहीं, बल्कि अपने दिल की इच्छानुसार लिखता हूँ। दिल के लिए तो किसी तरह के कानून नहीं हैं। शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसके अपने कानून हैं, जो सभी पर समान रूप से लागू नहीं होते।

मैं मन-ही-मन सोचता हूँ कि अगर एक ही पतीले में मांस, चावल, फल, मिर्च और एक साथ नमक तथा शहद डाल दूँगा, तो कहीं खाने का मजा तो किरकिरा नहीं कर डालूँगा। या इसके विपरीत यह बहुत ही मजेदार, अद्भुत भोजन बनेगा। अच्छा है कि वही इसके बारे में राय दें, जो इसे खाएँगे।

मेरी कहानी, मेरे विचार, मेरी कथा! बचपन में कभी-कभी ऐसा भी होता था कि जाड़े की रात में मैं सो नहीं पाता था। क्योंकि या तो भाइयों या पिता जी के लौटने का बड़ी बेसब्री से इंतजार करता था। मैं दरवाजे के पास होनेवाली चर्रमर्र या दूर की आहट पर कान लगाए रहता और तब मिनट घंटों में बदल जाते।

ऐसी रातों में दादा मेरे पास बैठकर धीरे-धीरे कुछ सुनाने लगते। कभी कोई लोक-कथा, कभी गीत, कभी कोई अक्लमंदी की बात, कोई कहावत जो कभी तो हास्यपूर्ण होती, तो कभी भयानक। मेरे लिए मिनट और घंटे गायब हो जाते और रह जाती केवल दादा जी की आवाज और कल्पना की उड़ान से बननेवाले चित्र। भाई या पिता जी आते, दादा की बातों में खलल डालते और तब मुझे इस बात का अफसोस होता कि वे अपने आगमन से दिलचस्प किस्से का रंग-भंग कर देते हैं।

फिर जब मैं खुद बड़ा हो गया, दुनिया भर में घूमने और उसी तरह अपने घर लौटने की जल्दी करने लगा जैसे कभी मेरे भाई या पिता जी करते थे, तो जितना घर के पास पहुँचता, मेरा दिल उतना ही ज्यादा और बेचैनी से धड़कने लगता। मैं रास्ते में बाकी रह गए दर्रे गिनता। उसी वक्त कोई हमराही दिलचस्प किस्सा, अपने जीवन की कोई घटना या कथा सुनाने लगता, मैं ध्यान से सुनता रहता, मगर तभी रास्ता खत्म हो जाता और दिल को इस बात का कुछ अफसोस होता कि किस्सा सुनानेवाला अपना किस्सा खत्म नहीं कर पाया।

पिता जी पूछते -

'कहो, कैसे तुम लोगों ने पहाड़ को लाँघा, दर्रे में कैसा हाल रहा, वह बर्फ से ढका हुआ तो नहीं था?'

मगर मुझे तो न पहाड़ याद होता था, न दर्रा और न बर्फ। मेरा हमराही जो कुछ सुनाता रहा था, मुझे तो सिर्फ वही याद होता था। उसके किस्सों ने खड़े पहाड़ों को सपाट घाटी और ठंडी बर्फ को गर्म रुई में बदल दिया था।

मेरी कहानियो, मेरे विचारो! क्या तुम सगे-संबंधियों का इंतजार करनेवालों की जाड़े की लंबी रात या प्यारे चूल्हे तक पहुँचने के इच्छुक का जाड़े का लंबा रास्ता छोटा कर सकते हो?

शोरबे को मजेदार बनाने के लिए जिस तरह उसमें तरह-तरह के सुगंधित पत्ते या मसाले डाले जाते हैं, उसी तरह अपनी नीरस-फीकी कहानियों में मैं कहीं-कहीं एकाध कहावत या मुहावरा डाल देता हूँ।

ताईलूख गाँव की लड़कियाँ होंठों के कोनों के पास ठोड़ी पर दो चमकते हुए बिंदु लगाती हैं। मेरे गद्य में कहावतें भी वैसे ही हों, जैसे लड़कियों के चेहरों पर ये बिंदु।

अपनी कहानियों के ताने-बाने में मैं अपने संस्मरणों और स्मृतियों को उसी तरह टिका रहा हूँ जैसे सीधी दीवार में तराशे हुए पत्थर चुने जाते हैं। हर पत्थर दीवार में ठीक से नहीं जँचता। उनमें से कुछ पत्थरों की चुनाई करने के बाद जब मैं अपनी कहानी को आगे बढ़ा ले गया, तो मुझे कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई, जिससे संभवत: धार्मिक प्रवृत्तिवाले लोग परिचित हैं। ऐसी अनुभूति तब होती है, जब उपासना का मूड खत्म होने पर भी उपासना जारी रहती है। फिट न बैठनेवाले पत्थरों को दीवार में से निकालना पड़ा।

तो इस तरह भावनाओं की ज्वारवाली कविताओं और गीतों से मैं शांत कहानी की ओर, गद्य की ओर बढ़ता हूँ। मगर यदि मैंने कुछ समय के लिए कविता से जुदा होने का फैसला किया है, तो वह मुझसे अलग नहीं होना चाहती। जब मैं सोता हूँ, तो प्यार करनेवाले बिल्ली के बच्चे की तरह वह मेरे कंबल में आ दुबकती है। पहाड़ों के पीछे से सामने आनेवाले सुबह के सूरज की किरण की भाँति वह मेरे खिड़की खोलते ही अंदर घुस आती है। वह शराब की अंतिम और सबसे मीठी बूँदों के साथ गिलास के तल में मेरा इंतजार करती है। वह उस औरत की भाँति हर जगह मेरा पीछा करती है, जिसे अचानक त्याग दिया गया है और जो अपने भूतपूर्व प्रेमी को रास्ते में मिलने पर यह कहती है -

'क्या तुमने सचमुच मुझसे नाता तोड़ने का निर्णय कर लिया है? मगर जरा सोच लो, मेरे बिना रह लोगे? तुम पहाड़ी बकरे हो और ठंडे जंगलों में चरने के आदी हो। तुम साल्मन हो और तेज ठंडी धारा के अभ्यस्त हो। क्या तुम यह सोचते हो कि शांत, गर्म झील में रहना तुम्हें अच्छा लगेगा? पर खैर, अगर तुमने मुझसे अलग होने का ही फैसला कर लिया है, तो आओ आखिरी को कुछ देर साथ बैठ लें।'

कविता, क्या तुम नहीं जानतीं कि मैं कभी तुमसे अलग नहीं हो सकता? क्या मैं अपने अंतर में जन्म लेनेवाली सभी खुशियों, सभी आँसुओं से अलग हो सकता हूँ।

तुम उस लड़की जैसी हो, जिसका तब जन्म हुआ, जब सभी लड़के की राह देख रहे थे। तुम उस लड़की के समान हो, जो पैदा होकर खुद ही अपने बारे में यह कहे - 'मैं जानती हूँ कि आप लोग मेरा इंतजार नहीं कर रहे थे और फिलहाल आप में से कोई भी मुझे प्यार नहीं करता। पर कोई बात नहीं, मुझे जरा बड़ी होने और खिलने दो, चोटियाँ गूँथने और गीत गाने दो। तब देखेंगे कि क्या इस दुनिया में कोई ऐसा आदमी है, जो मुझे प्यार न करने की हिम्मत करेगा।'

कविता

काम खत्म हो जाने पर, हम करते हैं मन-रंजन,
चलते-चलते थकते हैं, तो दम लेते हैं कुछ क्षण।
मेरे लिए कठिन तुम मंजिल, तुम ही मधुर पड़ाव,
तुम ही हो श्रम-साध्य काम, तो तुम ही मन बहलाव।

लोरी बनकर तुमने मेरा, बचपन सरस बनाया,
तुम्हें वीरता या वसंत के, सपनों में फिर पाया।
खिला प्यार का कुसुम हृदय में, तुम ही उसमें बोलीं
पर मेरे ही साथ प्यार ने, मन में पलकें खोलीं।

लड़का था तो तुम में जैसे, माँ की छाया झलकी,
फिर तू बनी प्रेमिका मेरी, मदिरा बनकर छलकी।
मेरे विवश बुढ़ापे में, सुध लेगी बेटी बनकर,

तू स्मृति बन रह जाएगी, जब हो जाऊँगा खंडहर।

कभी-कभी लगता है मुझको, तुम पर्वत, दुर्गम, दुष्कर
कभी-कभी लगता है जैसे, तुम हो सधी हुई नभचर।
तुम उड़ान में, पंख समान,
युद्ध भूमि में, शस्त्र महान।
मेरे लिए सभी कुछ कविता, केवल चैन नहीं पाता
अच्छा है या बुरा, न जानूँ, बस, सेवा करता जाता।

श्रम का अंत कहाँ पर होता, शुरू कहाँ पर मन बहलाव?
कूच कहाँ तक जारी रहता, कहाँ राह का मधुर पड़ाव?
तू ही मेरा कठिन सफर है, तू ही है पथ का विश्राम,
तू ही मन बहलाव राह का, तू ही मेरा मुश्किल काम।

पिता जी कहा करते थे कि सिरखाऊ बक्की को चुप कराने के लिए किसी सम्मानित बुजुर्ग या मेहमान को बोलना शुरू कर देना चाहिए। अगर बक्की इसके बाद भी अपनी बेतुकी बकवास बंद न करे, तो गीत गाना शुरू कर दो। अगर गीत का भी उस पर कोई असर न हो, तो बेझिझक उसे कालर से पकड़कर घर से बाहर निकाल दो। अपनी बकबक से गीत में बाधा डालनेवाले हर आदमी की भी इसी तरह अच्छी मरम्मत की जा सकती है।

कविता, तुम तो खुद ही दूसरों से कहीं ज्यादा अचछी तरह यह जानती हो कि तुम्हारी चर्चा करने से तुम न तो बेहतर और न ही ऊँची हो जाओगी। क्या बातों से गीत की महत्ता बढ़ाई जा सकती है? क्या केतली के पानी से पहाड़ी धारा का प्रवाह तेज किया जा सकता है? क्या फूँकों से तेज हवा को और तेज किया जा सकता है? क्या मुट्ठी भर बर्फ से गगनचुंबी पहाड़ी चोटियों की भव्यता बढ़ाई जा सकती है? क्या पोशाक की काट या मूँछों के फैशन से बेटे के प्रति माँ का प्यार बढ़ाया जा सकता है?

कविता, तुम्हारे बिना मैं यतीम हो जाता।

कविता

तेरे बिना हमारी दुनिया, होती जैसे गुफा अँधेरी
सूरज क्या होता है वह तो बिल्कुल इतना समझ न पाती,
या वह ऐसा अंबर होती, जिसमें तारा एक न चमके
या फिर ऐसा प्यार कि जिसमें आलिंगन का स्नेह, न बाती।

दुनिया होती सागर जैसी, मगर नीलिमा से अनजानी
हिम आच्छादित, धवल छटा से, मनमोहक, चिर, सुंदर,
या फिर ऐसा उपवन होती, जिनमें कलियाँ, सुमन न खिलते
जहाँ न गातीं मधुर बुलबुलें, जहाँ न टिड्डों का मृदु स्वर।

पातहीन सब तरुवर होते, भद्दे, भोंड़े, काले, काले
गर्मी नहीं, न जाड़ा होता, न वसंत, केवल पतझर,
लोग असभ्य सभी हो जाते, दीन-हीन-से, भाव-शून्य से
रहा गीत... तो गीत न लेता जन्म कभी इस धरती पर।

अवार लोगों में यह कहा जाता है कि 'संसार की रचना के एक सौ बरस पहले ही कवि का जन्म हुआ था।' इस तरह वे शायद यह कहना चाहते हैं कि यदि कवि संसार की रचना में हिस्सा न लेता, तो दुनिया इतनी सुंदर न बनती।

हम तीन भाई थे और हमारी एक बहन थी। बहन सबसे बड़ी थी। सभी पहाड़ी औरतों की तरह उसके भाग्य में भी बहुत काम लिखा था, दुख-दर्द और आँसू लिखे थे। पिता जी बार-बार हमसे यह कहा करते थे -

यह सच है, मुझे बहन सबसे ज्यादा प्यारी है। मगर मेरी एक अन्य बहन भी है और मैं नहीं जानता कि उन दोनों में से कौन-सी मुझे अधिक प्रिय है। मेरी दूसरी बहन है - कविता। उसके बिना मैं जिंदा नहीं रह सकता।

कभी-कभी मैं अपने से यह प्रश्न करता हूँ कि क्या चीज कविता का स्थान ले सकती है। इसमें कोई शक नहीं कि कविता के अलावा पहाड़ हैं, बर्फ और नद-नाले हैं, बारिश और सितारे हैं, सूरज और अनाज के खेत हैं... मगर क्या पहाड़, बारिश, फूल और सूरज का कविता के बिना और कविता का इनके बिना काम चल सकता है? कविता के बिना पहाड़ विराट पत्थर बन जाएँगे, बारिश परेशान करनेवाले पानी और डबरों में बदल जाएगी और सूर्य गर्मी देनेवाला अंतरिक्षीय पिंड बनकर रह जाएगा।

फिर से मैं यह सवाल करता हूँ - क्या चीज कविता का स्थान ले सकती है? हाँ, दूर-दराज के देश हैं, पक्षियों के तराने हैं, आकाश है और दिल की धड़कन है। मगर कविता के बिना कुछ भी तो ऐसा नहीं रह जाता। दूर-दराज के लुभावने देशों की जगह केवल भौगोलिक अर्थ ही रह जाएगा, महासागर की जगह पानी का अटपटा अपार भंडार ही रह जाएगा, पक्षियों के तराने नर-मादा की जरूरी पुकार ही बन जाएँगे, नीले आकाश की जगह कई गैसों का मिश्रण और दिल की धड़कन की जगह सिर्फ खून का दौरा ही बनकर रह जाएगा।

निश्चय ही कोमलता, नेकी, दया, प्यार, सुंदरता, साहस, घृणा और गर्व भी हैं... मगर ये सभी भावनाएँ कविता से ही जन्मी हैं, उसी तरह जैसे कविता ने इनसे जन्म पाया है। वे कविता के बिना जीवित नहीं रह सकतीं और कविता उनके बिना!

मेरी कविता मेरा सृजन करती है और मैं अपनी कविता का। एक-दूसरे के बिना हम निर्जीव हैं - इतना ही नहीं, हमारा अस्तित्व ही नहीं रहता। मेरे जिस्म में हड्डियाँ हैं। कोई अजनबी आँख यह नहीं बता सकती कि मेरी कौन-सी हड्डियाँ मजबूत और सही-सलामत हैं तथा कौन-सी टूटी थीं और बाद को जुड़ गई। मगर एक्स-रे से सब कुछ नजर आ जाएगा और मेरे अंदर जो कुछ गुप्त तथा रहस्यपूर्ण है, उसे सभी देख सकेंगे।

मेरी पसलियों, रीढ़ की हड्डी और फेफड़ों की तुलना में मेरी आत्मा कहीं गहरी और अधिक विश्वसनीय ढंग से छिपी हुई है। किंतु कविता की किरणें मुझे रोशन कर देती हैं और मेरी आत्मा की हर गतिविधि लोगों के सामने आ जाती है। कविता की जादुई किरणों से प्रकाशित मेरी आत्मा बिल्कुल निरावरण और पारदर्शी होकर मानो हथेली पर रख दी जाती है और लोग मुझे आर-पार देख सकते हैं।

आधुनिक गणन-यंत्रों में हजारों तार और चक्र लगे होते हैं। बड़ी-बड़ी संख्या के जटिल प्रश्न उन्हें हल करने को दिए जाते हैं। बिजली की तरंग असंख्य चक्रों और तारों के बीच से दौड़ती है। इस जटिल यंत्र में जो प्रक्रियाएँ होती हैं, कोई आँख या कोई मस्तिष्क उन्हें नहीं जान सकता। मगर बाद में आखिरी जवाब, परिणाम के रूप में कोई एक संख्या हमारे सामने आ जाती है।

मेरे शरीर के असंख्य तारों के बीच से कैसे प्रभावों, प्यार और घृणा की कैसी तरंगें दौड़ती हैं, यह कोई नहीं जान सकता। मेरे रोम-रोम पर अपनी छाप

छोड़नेवाली अनुभूतियों से बाद में कविता जन्म लेती है। मेरी आत्मा अंतिम और उच्चतम रूप में इसी का सृजन कर सकती है, इसे ही जन्म दे सकती है।

बहुत घूमा-फिरा हूँ मैं इस दुनिया में। कभी पैदल तो, कभी घोड़े पर, कभी हवाई जहाज में कुर्सी पर ऐसे टेक लगाकर मानो ऊँघ रहा हूँ, कभी रेलगाड़ी की ऊपरवाली बर्थ पर लेटकर और कभी तेज कार में।

पगडंडी या घोड़े पर मुझे देखकर लोग यह कह सकते थे कि वह रसूल हमजातोव है। वह अकेला ही जा रहा है और शायद उसे अकेलेपन के कारण ऊब महसूस हो रही होगी। मगर मैं कभी भी एकाकी नहीं होता। मेरी बहन - कविता हमेशा मेरे साथ रहती है। एक मिनट को भी हम दोनों जुदा नहीं होते। कभी-कभी तो नींद में भी मैं काव्य-रचना करता हूँ, या पहले की लिखी हुई अपनी कविताएँ याद करता हूँ, या दूसरे कवियों की कविताएँ पढ़ता हूँ।

पहले मैं यह सोचता था कि धरती पर बहुत कम कवि हैं। शायद कवियों को दूसरे लोगों के बीच बहुत ऊब अनुभव होती होगी। जीवन में हर किसी की अपनी दिलचस्पी होती है यानी जिसके बारे में साथियों या पड़ोसियों से बातचीत की जा सकती है - काम के बारे में, बीवी, वेतन, छुट्टी के दिन, घर-गिरस्ती, माहीगीरी, सिनेमा या बीमारी के बारे में... मैं सोचता था कि इन सभी बातों के संबंध में कवि भी लोगों से बातचीत कर सकता है, मगर जिस काव्यमय रूप में वह दुनिया को ग्रहण करता है, उसके बारे में वह किससे चर्चा करेगा?

मगर बाद में यह बात मेरी समझ में आई कि अकवि इस दुनिया में कोई नहीं है। हर व्यक्ति की आत्मा में कुछ कवि बसा हुआ है। कम-से-कम कविता हरि किसी के यहाँ उसी तरह मेहमान बनकर आती है, जैसे दोस्त अपने दोस्त के पास आता है।

हमारे लोगों में गीत के प्रति प्यार उतना ही स्वाभाविक और समझ में आनेवाला है, जितना बच्चों के प्रति प्यार। हाँ, हम सभी कवि हैं। हमारे बीच केवल इतना ही अंतर है कि कुछ इसलिए कविता रचते हैं कि ऐसा कर सकते हैं। दूसरे इसलिए काव्य-रचना करते हैं, कि उन्हें ऐसा लगता है कि वे ऐसा करने में समर्थ हैं। मगर तीसरे बिल्कुल कविता नहीं रचते। शायद ये, तीसरे ही असली कवि हैं?

वह जमाना भी था, जब मैं कविता नहीं रचना था। तो क्या मैं तब कवि नहीं था? क्या तब मेरा हृदय कम धड़कता था और खून में कम गर्मी होती थी? क्या

दुख-दर्द से मेरा हृदय कम टीसता था और खुशी से कम नाचता था? क्या तब सभी कुछ जानने की पिपासा मुझमें कम थी? क्या तब मेरी आँखों को यह दुनिया इतनी ही सुंदर नहीं लगती थी जितनी अब? क्या काली घटाओं के बीच बड़ा-सा नीला सितारा देखकर मैं इसी तरह भाव-विभोर नहीं हो उठता था? क्या निर्झर की झर-झर में मुझे मधुर संगीत की अनुभूति नहीं होती थी? क्या सारसों की आवाजें और घोड़ों की हिनहिनाहट सुनकर मैं विह्वल नहीं हो उठता था? क्या कोई पुराना गीत या बुजुर्गों के बढ़िया कारनामे सुनकर मेरी आँखें डबडबा नहीं आती थीं?

मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा था, तो एक पड़ोसी के घोड़े चराने का काम करने लगा था। तीन दिन के काम के बदले में पड़ोसी को मुझे एक किस्सा सुनाना पड़ता था।

मुझे याद आता है कि तभी मैं चरवाहों के पास पहाड़ों में जाया करता था। आधा दिन उधर जाने और आधा दिन लौटने में लगता। और मैं वहाँ जाता था एक कविता सुनने।

ऊनसूकूल की नाशपातियाँ, गिमरा के अंगूर, बूत्सरा का शहद, अवार गीत।

मुझे याद आता है कि जब मैं दूसरे दर्जे में पढ़ता था, तो एक दिन मैं अपने त्सादा गाँव से खड़ी पहाड़ी पगडंडियों पर चढ़ता हुआ बूत्सरा गाँव गया, जो बीस किलोमीटर दूर है। वहाँ मेरे पिता जी के एक बुजुर्ग दोस्त रहते थे, जिन्हें बहुत-से पुराने गीत, कविताएँ और दंत-कथाएँ याद थीं। बुजुर्ग चार दिन तक सुबह से शाम तक मुझे यह सब कुछ सुनाते रहे और मुझसे जैसे बन पड़ा, मैं उनके गीत लिखता रहा। मैं कविताओं और गीतों से भरा हुआ थैला लिए खुश-खुश लौट रहा था।

बूत्सरा गाँव के ऊपर एक पहाड़ सिर उठाए खड़ा है। जब मैं इस पहाड़ पर चढ़ गया, तो न जाने कहाँ से बड़े-बड़े और भयानक एलसेशन कुत्ते मेरी तरफ लपके। वे कम-से-कम एक दर्जन रहे होंगे। हरी घास पर वे ऐसे ही तेजी से झपटते आ रहे थे, जैसे टारपीडो किसी जहाज के काले पहलू की ओर निशाना साधे हुए झपटती चली आती हैं। उनके बड़े-बड़े पीले और गीले दाँतोंवाले जबड़े मुझे दिखाई दे रहे थे। बस एक मिनट और बीत जाता, तो वे मुझे चीर डालते। मगर इसी वक्त मुझे चरवाहे की आवाज सुनाई दी -

'लेट जाओ! हिलो-डुलो नहीं।'

मैं लेट गया, धरती से चिपक गया और निर्जीव-सा हो गया। हिलते-डुलते हुए मुझे डर लगता था और शायद मैंने तो साँस भी रोक ली थी। सिर्फ मेरा दिल ही ऐसे जोर से धक्-धक् कर रहा था कि मुझे यों लगा मानो उसकी धड़कन दूर तक सुनाई दे रही है। कुत्ते कुछ भी न समझ पाते हुए मेरे पास रुक गए, मुझे और कविताओं से भरे मेरे थैले को सूँघते रहे। कुत्ते यह सोचकर कि उनसे कोई भूल हो गई है, उलझन में एक-दूसरे की तरफ देखते और अपनी कल्पना के मुझ शिकार को पकड़ने के लिए आगे भाग गए। जल्दी ही वे मोड़ के पीछे गायब हो गए।

चरवाहे के आने तक मैं लेटा रहा।

'किसके बेटे हो?'

'मैं रसूल हूँ, त्सादा के हमजात का बेटा।' मैंने इस आशा से जान-बूझकर पिता जी का नाम लिया था कि उसे सुनकर चरवाहा मेरी ज्यादा चिंता करेगा और मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं होने देगा।

'यहाँ पहाड़ पर क्या कर रहे हो?'

'मैं कविताओं के लिए बूत्सरा गया था। यह रहीं थैले में।'

चरवाहे ने कविताएँ निकालकर उन्हें गौर से देखा।

'तो तुम भी कवि बनना चाहते हो? तो फिर तुम कुत्तों से क्यों डर गए? तुम्हारे पथ पर क्या इसी तरह के कुत्ते तुम पर झपटेंगे? मेरे एलसेशन कुत्तों की तरह वे कविताएँ सूँघकर आगे नहीं भाग जाएँगे। तुम्हें डरना नही चाहिए, किसी भी चीज से डरना नहीं चाहिए। जानते हो यह कौन-सा पहाड़ है? इसी पहाड़ से हाजी-मुराद संतरियों की आँखों में धूल-झोंककर नीचे कूद गया था। संतरी मुँह बाए देखते रह गए थे और हाजी-मुराद बच निकला था। अपने वतन में तो पहाड़ भी मदद करते हैं।'

पहले मैं ऐसा समझता था कि काव्यमयी हलचल, जो मुझ पर हावी हो गई है, वह बेचैनी, जो निरंतर मेरी आत्मा में बसी रहती है, प्यार, जो मेरे हृदय में जमकर बैठ गया है, यह सब और खून का उबाल तक भी वक्ती चीज है और जल्दी ही यह खत्म हो जाएगा। मगर मेरा सिर सफेद हो चला है, बच्चे बड़े-बड़े हो गए हैं और मेरी किताबें पुरानी होती जा रही हैं, मगर एक भी भावना ने मेरा साथ नहीं छोड़ा है। मेरी कविता मेरी बहुत ही वफादार संगिनी रही है।

अब मैं उसे संबोधित करता हूँ।

कविता, दुनिया और जिंदगी के लंबे सफर पर तुमने कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा और अब, जबकि मैं गद्य के बड़े समतल विस्तारों में बढ़ने जा रहा हूँ, तुम अब भी मेरा साथ नहीं छोड़ोगी। मैं जानता हूँ कि कहानी को छंदों में बाँधना बेमानी है। इस तरह बहुत ही अच्छी कहानी को बहुत ही बुरी कविता बनाया जा सकता है। मगर कहानी में कविता तो खाने में नमक का काम दे सकती है। मेरे तो समूचे जीवन के लिए ही कविता नमक के समान रही है। उसके बिना मेरा जीवन फीका और बेजायका होता। हम पहाड़ी लोग मेज पर खाना लगाते समय नमकदानी रखना कभी नहीं भूलते।

गद्य दूर तक उड़ सकता है, मगर कविता की उड़ान ऊँची होती है। गद्य उस बड़े हवाई जहाज के समान है, जो बड़े इत्मीनान से सारी दुनिया के गिर्द चक्कर लगा सकता है। कविता लड़ाकू हवाई जहाज है, जो बिजली की तरह अपनी जगह से लपकता है, आन-की-आन में आसमान की गहराइयों में जा पहुँचता है और गद्य के बड़े हवाई जहाज को वह चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न उड़ रहा हो, जा पकड़ता है।

अपनी पुस्तक में मैं विभिन्न विधाओं को मिलाना और उसे अवारिस्तान की सीमाओं से दूर भेजना चाहता हूँ। भला क्यों न करूँ ऐसा? हमारी कविताएँ तो एक अर्से से दागिस्तान की हदों से बहुत दूर पाठकों के दिलों पर अपनी राहें पगडंडियाँ बना रही हैं। कुछ कहानियों को भी विदेश जाने के अनुमति-पत्र मिल गए हैं। हाँ, हमारे नाटक अभी घर में ही बैठे हैं। शायद उनके कागजात की जाँच हो रही है या उन्हें अभी अच्छा व्यवहार और तौर-तरीके सिखाने की जरूरत है।

अगर मेरे दिमाग में नाटक लिखने का विचार आ जाता, तो सारा दागिस्तान, गाँव, शहर, सभी देश और सारी दुनिया उसके घटना-स्थल होते। पहाड़, आकाश तेज नदियाँ, सागर और धरती मंच-सज्जा होते। बीती सदियाँ, वर्तमान और पूरा भविष्य उसका घटना-काल होता। सहस्राब्दी को मैं क्षणों में व्यक्त करता। उसके पात्र होते - मैं खुद, मेरे पिता जी, मेरे बच्चे, मेरे दोस्त और कभी के मर-खप गए तथा ऐसे लोग भी, जिनका अभी जन्म ही नहीं हुआ।

यह नाटक मेरी मुख्य रचना, मेरा 'युद्ध और शांति', मेरा 'दोन क्विक्सॉत', मेरा 'दैविक कामेडी' होता। मगर मैं न केवल नाटक लिखने, बल्कि अपनी भावी पुस्तक की दीवार में एक 'नाटकीय' पत्थर रखने का भी जोखिम मोल नहीं लूँगा। नाटक को मैं किसी दूसरे वक्त, बल्कि दूसरे लेखकों के लिए रहने देता हूँ। बारी-बारी से गद्य और पद्य ही लिखूँगा। कविता - तेज घुड़सवारी है और गद्य पैदल

यात्रा। पैदल ज्यादा दूर तक जाया जा सकता है। घोड़े पर जल्दी से जाना संभव है। कभी मैं पैदल चलूँगा, तो कभी घुड़सवारी करूँगा। जो कुछ कहानी के रूप में सुना सकता हूँ, सुनाऊँगा, जो कुछ गद्य के रूप में सुना नहीं सकूँगा, उसे गाऊँगा। मुझमें जवानी की चंचलता है और बुढ़ापे की समझ-बूझ। जवानी गाए और बुद्धिमत्ता गद्य में अपनी बात सुनाए।

मेरे भीतर भिन्न लोग रहते हैं - कभी तो मैं कलफ लगे नेप्किन का उपयोग करते हुए और बाएँ हाथ में काँटा लेकर शिष्टाचारपूर्वक खाना खाता हूँ और कभी भेड़ के मांस का बड़ा-सा टुकड़ा दोनों हाथों में लेकर अपने गाँववालों के साथ घास पर बैठकर खाता हूँ तथा बूजा पीता हूँ।

शहर से जब मैं पहाड़ों को जाता हूँ, तो शहरी ढंग से बढ़िया शराबें और फल अपने साथ लेता हूँ। भोले-भाले और मेहमाननवाज चरवाहों के यहाँ से जब शहर लौटता हूँ, तो काठी के आर-पार लटकता हुआ भेड़ का धड़ साथ लाता हूँ।

सागर भी तो कभी सहलाता है, तो कभी झुँझलाता है, कभी सनकी होता है और कभी गुस्से से फुंकारता है। ठीक इसी तरह बहुत से चरित्र मेरे अदर साँस लेते हैं।

खड्ड के सिरे पर मैंने एक तरुण और तरुणी को आलिंगन में बँधे बैठे देखा। उन्होंने एक-दूसरे को ऐसे बाँहों में कस रखा था, इस तरह वे एक-दूसरे में मिलकर एक हो गए थे कि उन्हें अलग से देख पाना संभव नहीं था।

ठीक इसी तरह मेरे अंदर सुख-दुख, आँसू और खुशी, सबलता और दुर्बलता अभिन्न रूप से एक साथ रहती हैं।

नहीं खड़ा था घोड़ा पिछली टाँगों पर
और दहाना बेचैनी से वह तो नहीं चबाता था,
भारी बोझिल मन से अपना शीश झुका
उजले-उजले दाँत दिखाकर, हँसता था, मुस्काता था।

लगभग छूते थे अयाल उसके धरती
वह कुम्मैती घोड़ा मानो ज्वाला-सा जलता लगता
पहले तो यह मैंने सोचा, गजब अरे!
मानव की ही भाँति न जाने कैसे यह घोड़ा हँसता!

हैरत किसे न होगी ऐसी झाँकी से
किया फैसला, देखूँगा मैं उसे, पास उसके जाकर,
क्या देखा? वह नहीं हँस रहा, रोता है
मानव की ही भाँति दुखी मन, शीश झुका, सिर लटकाकर

लंबे-लंबे पत्तों-सी लंबी आँखें
धुँधली-धुँधली उनमें आँसू की दो बूँदें चमक रहीं,
जब हँसता हूँ, मुझे ध्यान से तब देखो
छिपी न हों मेरी पलकों में आँसू की दो बूँद कहीं।

नोटबुक से। सिवुख गाँव के एक पहाड़ी ने पहाड़ के दामन में सफेद बादल देखे तो यह समझा कि फूले-फूले सफेद ऊन का ढेर है और उसने नीचे छलाँग लगा दी। फूले-फूले बादल ऊन या रुई के ढेर से चाहे कितने ही मिलते-जुलते क्यों न हों, फिर भी वे रुई कभी नहीं बन सकेंगे।

केवल रूप को ध्यान में रखकर लिखी गई पुस्तक रूप की दृष्टि से चाहे कितनी भी सुंदर क्यों न हो, फिर भी वह मानवीय आत्मा को कभी नहीं छू पाएगी।

केवल रूप की तरफ ध्यान देना उचित नहीं। सागर तट पर सारा जीवन बिता देनेवाले एक मछुए ने जंगल में चींटियों का ढेर देखा, तो उसे केवियर का ढेर समझ लिया। सागर पर कभी न जानेवाले एक पहाड़ी ने जब केवियर का ढेर देखा, तो उसे चींटियों की बांबी मान बैठा।

नोटबुक से कुछ और

वक्ष एक ही, शोभा देता जिस पर तमगा, गोली का भी पड़े निशान,
चेहरा एक, कि आँसू जिस पर झर आते हैं, खिल उठती है मृदु मुस्कान।
होंठ वही हैं, कभी जहर को वे छूते हैं, कभी शहद का करते पान,
गगन एक है, उसमें ही तो उड़ें कबूतर औ' उकाब भी भरें उड़ान।
बादल काला, पर उसमें जल ज्वाला दोनों, संग-संग रहते गतिमान,
कील एक ही, साथ-साथ ही उस पर लटकें, साज और खंजर भी म्यान।

नोटबुक से कुछ और। पहली बार प्यार करनेवाली जवान पहाड़ी लड़की ने सुबह खिड़की में से बाहर झाँका, तो खुशी से चिल्ला उठी -

'इन वृक्षों पर कितने सुंदर फूल आ गए हैं!'

'वृक्षों पर तुम्हें फूल कहाँ नजर आ रहे हैं?' उसकी बूढ़ी माँ ने आपत्ति की। 'यह तो बर्फ है, पतझर का अंत और जाड़े का आरंभ हो रहा है।'

सुबह एक ही थी, मगर एक नारी के लिए वसंत की और दूसरी के लिए जाड़े की। मेरे भीतर दो भिन्न व्यक्ति रहते हैं जिनका मैं एक रूप हूँ। उनमें से एक जवान है और दूसरा बूढ़ा; एक वसंत है और दूसरा जाड़ा। अगर मेरी किताब में आपको गद्य और पद्य दोनों मिलें, तो हैरान न होइएगा।

'तो क्या तुम एक हाथ में दो तरबूज उठाने की कोशिश नहीं कर रहे हो?' मुझसे पूछा जा सकता है।

'नहीं, मैं ऐसा नहीं कर रहा हूँ,' यही मेरा जवाब है।

जब मैं विभिन्न विधाओं को एक साथ मिलाता हूँ, तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैं तरह-तरह के फलों को काटकर, एक साथ मिलाकर उनका सलाद बनाना चाहता हूँ। मगर मैं तो उन्हें एक समझदार माली की तरह मिलाकर, उनका संकरण करके एक नई किस्म तैयार करना चाहता हूँ।

मालूम नहीं कि इसका कैसा फल सामने आएगा। मगर हर काम में ऐसा ही होता है। आग जलाते वक्त हम उसके सारे परिणामों की कल्पना नहीं कर सकते। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि हर बार आग जलाते वक्त डरा जाए। तो लीजिए, मैं दियासलाई जलाता हूँ, उसे सूखी टहनी के पास ले जाता हूँ और हाथ की ओट करके उसे हवा से बचाता हूँ। आग जलने लगती है। मुझे इस बात का डर नहीं है कि फिलहाल जो आग इतनी दुर्बल और सहमी-सहमी सी है, वह अचानक काबू में न आनेवाले दरिंदे का रूप ले लेगी। मैं इसके बारे में नहीं सोचता हूँ बस, आग जला रहा हूँ।

शामिल ने अपनी तलवार पर एक अपनी ही कहावत खुदवा रखी थी - 'युद्ध-क्षेत्र की ओर अपना घोड़ा बढ़ाते हुए जो आदमी परिणामों की चिंता करता है, वह वीर नहीं।'

कहते हैं कि चतुर हाथों में साँप का जहर भी फायदेमंद हो सकता है और मूर्ख के हाथों में शहद भी नुकसान पहुँचा सकता है।

कहते हैं कि अगर तुम कहानी सुना नहीं सकते, तो गाओ; अगर गा नहीं सकते, तो कुछ सुनाओ।

शैली

कैसा है गायक, उसकी आवाज बताए
कैसा है सुनार, उसका हुनर जताए

कूबाची की
कला-वस्तु पर आलेख

'तुम मुझ पर चिल्ला क्यों रहे हो?'
'मैं चिल्ला नहीं रहा हूँ, मेरा बातचीत करने का ढंग ही ऐसा है।'

पति-पत्नी
की बातचीत से

'तुम्हारी कविताएँ कविताओं जैसी नहीं लगतीं।'
'मेरा लिखने का ढंग ही ऐसा है।'

कवि और
उसके पाठक की बातचीत से

हम लड़कों को चौपाल में, जहाँ गाँव के वयस्कों की मजलिस जमती थी, जाने की इजाजत नहीं होती थी। बड़े-से पत्थर पर बैठकर हम कभी-कभी उन्हें दूर से ही देखा करते थे।

एक दिन हमने आनदी गाँव से आए एक मेहमान को लगातार एक घंटे तक बोलते और सभी लोगों को उसे चुपचाप सुनते देखा। हमने आपस में यह तय किया कि आनदी का रहनेवाला जरूर कोई बहुत महत्वपूर्ण समाचार लाया है। इसीलिए तो सभी इतनी देर तक और इतने ध्यान से उसकी बातें सुन रहे हैं।

घर पर मैंने पिता जी से पूछा, 'आनदी के मेहमान ने आज क्या कुछ बताया आप लोगों को?'

'अरे, जो कुछ उसने आज बताया, हम त्सादावासी बीस बार वह सभी कुछ पहले भी सुन चुके हैं। मगर वह सुनाता ऐसे ढंग से है कि न चाहते हुए भी उसे सुनना ही पड़ता है। शाबाश है इस आनदीवासी को, अल्लाह उसकी उम्र दराज करे।'

ढंग के बारे में कुछ और। हर दरिंदा अपने ढंग से चालाक होता है, शिकारी से बच निकलने का उसका अपना ढंग होता है। हर शिकारी का दरिंदे को फाँसने, उसका शिकार करने का अपना ढंग होता है। ठीक इसी तरह हर लेखक का अपना ढंग, लिखने का अपना तरीका, अपना मिजाज और अपनी शैली होती है।

युवा कवि के रूप में जब मैं मास्को के साहित्य-संस्थान में पढ़ने गया, तो मैंने अपने को नए और अपरिचित वातावरण में पाया। सभी कुछ मुझे शिक्षा देता था - खुद मास्को, सेमिनार, सेमिनारों में आनेवाले प्रमुख कवि, प्रोफेसरगण, मेरे सहपाठी और होस्टल के साथी। सभी ओर से मुझ पर शिक्षा की बौछार होती थी और इसलिए कुछ समय को मैं जैसे कि भूल-भुलैया में फँस गया, भटक गया और एक नए, एक अजीब ढंग से, जिसका अवार साहित्य में अभी तक अस्तित्व नहीं था, लिखने लगा।

मैं यह नहीं छिपाऊँगा कि उन दिनों मैं अपनी कविताओं को रूसी में अनूदित देखने को बहुत लालायित था। मैं रूसी पाठक की ओर लपक रहा था और मुझे लगा कि मेरा नया ढंग रूसी पाठक के अधिक निकट होगा, वह आसानी से उसकी समझ में आ जाएगा। मैंने अपनी अवार मातृभाषा के संगीत, कविता की लय-ताल की ओर बिल्कुल ध्यान देना छोड़ दिया। कविता के रूप, अलंकारहीन भाव ने प्रमुख स्थान ले लिया। मैं यह सोचता था कि उचित ढंग का विकास कर रहा हूँ, मगर वास्तव में - अब यह बात समझता हूँ - चालाक बन रहा था।

खुशकिस्मती से मैं जल्दी ही यह समझ गया कि कविता और चालाकी ऐसी दो तलवारें हैं, जो एक म्यान में नहीं समा सकतीं। मगर मेरे बुद्धिमान पिता मुझे और भी पहले समझ गए थे। मेरी नई कविताएँ पढ़कर उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि भेड़ की मोटी दुम के लिए मैं खुद भेड़ को गँवाना चाहता हूँ, कि मैं उस बंजर पथरीली जमीन को जोतना और बोना चाहता हूँ, जिसे लाख सींचने पर भी उसमें कुछ पैदा नहीं होगा, कि मैं आकाश के बिना बारिश चाहता हूँ।

पिता जी फौरन यह सब कुछ समझ गए, मगर वे बहुत ही सावधान और नीतिकुशल व्यक्ति थे। एक दिन बातचीत के दौरान बोले -

'रसूल, मुझे इस बात से चिंता हो रही है कि तुम्हारा लिखने का ढंग बदलने लगा है।'

'पिता जी, मैं अब बालिग हूँ और लिखने के ढंग की तरफ सिर्फ स्कूल में ही ध्यान दिया जाता है। बालिग से सिर्फ यही नहीं पूछा जाता कि उसने कैसे लिखा है, बल्कि यह कि क्या लिखा है।'

'मिलीशियामैन या ग्राम-सोवियत के प्रमाण-पत्र देनेवाले सेक्रेटरी के बारे में तो शायद ऐसा ही सही है। मगर कवि के लिए उसका ढंग, उसकी शैली - लगभग आधा काम है। कविता में चाहे कितना भी मौलिक विचार क्यों न व्यक्त किया जाए, उसे सुंदर अवश्य होना चाहिए। सुंदर ही नहीं, अपने ढंग से सुंदर होना चाहिए। कवि के लिए अपनी शैली खोज पाना, अपने को खोज लेना ही कवि बनना है।

'तुम बहुत जल्दी कर रहे हो, मगर तेज और उछल-कूद करनेवाला सोता कभी सागर तक नहीं पहुँच पाता। अधिक शांत और इतमीनान से बहनेवाली दूसरी धारा उसे निगल जाती है।

'अधिक घोंसले बदलने और यह न जाननेवाला परिंदा कि कौन-सा घोंसला चुने, आखिर घोंसले के बिना ही रह जाता है। क्या अपना घोंसला बना लेना अधिक आसान नहीं, तब चुनने का सवाल ही नहीं रहेगा।'

अब, जबकि मैं चालीस के पार पहुँच चुका हूँ, अपनी चालीस किताबों के पृष्ठ उलटता हूँ, तो यह पाता हूँ कि मेरे खेत में, जहाँ मैंने गेहूँ बोया था, पराये खेतों के ऐसे पौधे भी उग आए हैं, जिन्हें मैंने नहीं बोया था, बेशक ये झाड़-झंखाड़ नहीं, बल्कि अच्छे-जौ, जई और रई-के पौधे हैं, मगर फिर भी मेरे गेहूँ के खेत में ये पराये हैं।

अपने रेवड़ में मुझे दूसरों की भेड़ें नजर आ रही हैं। वे कभी भी ऊँचाई और पहाड़ी हवा की आदी नहीं हो पाएँगी।

खुद अपने में मैं कभी-कभी दूसरे लोगों को अनुभव करता हूँ। मगर इस किताब में मैं अपना रूप ही रहना चाहता हूँ। अच्छा हूँ या बुरा - जैसा हूँ, उसी रूप में मुझे ग्रहण कीजिए।

पहाड़ों में जब कोई पहाड़ी आदमी शादी में शामिल होने आता है, तो अपने से पहले वहाँ जमा हुए लोगों से वह यह पूछता है -

'तुम खुद ही यहाँ काफी हो या मैं भी आ जाऊँ?'

शादी में शामिल पहाड़ी यह जवाब देते हैं -

'अगर तुम वास्तव में ही तुम हो, तो अंदर आ जाओ।'

तो यह है वह मेरी किताब, जिससे मुझे यह साबित करना है कि मैं-मैं हूँ। मैं लेखक होना चाहता हूँ - लेखक की भूमिका नहीं निभाना चाहता। देखिए तो, अभिनेता रंगमंच पर कैसे ब्रांडी पीता है। लीजिए, वह नशे में धुत्त हो गया, जबान से ठीक-ठीक शब्द नहीं निकलते, सिर छाती पर झुक गया। मगर जिस बोतल से वह पी रहा है, उसमें ब्रांडी नहीं, चाय है। चाय से नशा नहीं होता। मेरे ख्याल में मेरी इस बात से वे तो सहमत होंगे, जिन्होंने कभी ब्रांडी नहीं पी।

ऐसा प्रतीत होता है कि अगर किसी नाटक में कवि की भूमिका होती है, तो नाटककार के लिए इस कवि की कविताएँ रचना ही सबसे ज्यादा मुश्किल काम होता है। इसलिए नाटक में यदि कोई कवि होता है, तो वह अपनी कविताएँ नहीं सुनाता। मगर कविता के बिना भला कवि क्या होगा? दुकान की शो विंडो की रौनक बढ़ानेवाले गत्ते के मॉडल से वह कैसे भिन्न है? मुझे किसी के जैसा - उमर खयाम, पुश्किन या बायरन के जैसा भी नहीं होना चाहिए।

कुछ भैंसचोर किसी की भैंस चुराने पर उसके सींग उखाड़ देते हैं या दुम काट डालते हैं। कार चुरानेवाले चोर उस पर दूसरा रंग कर देते हैं। मगर सारी चालाकी के बावजूद चोरी तो चोरी रहती है।

पाठकों की बातचीत में मुझे यह सुनकर सबसे ज्यादा खुशी होती कि रसूल ने रसूल के ही ढंग में किताब लिखी है।

चहकनेवाले परिंदों के मुकाबले में मुझे गानेवाले परिंदे ज्यादा पसंद हैं। कूड़े-करकट में से कुछ चुगनेवाले पक्षी की तुलना में उड़ता हुआ पक्षी मुझे अधिक अच्छा लगता है। तंग बंदरगाह में खड़े जहाज के मुकाबले में नीले सागर की लहरों पर तैरता हुआ जहाज मुझे कहीं अधिक अच्छा लगता है।

हल्की-फुल्की नावों को देखिए। वे सभी तरह की लहरों पर कैसे उछलती हैं। बड़े और भारी जहाजों को देखिए! वे तो तूफान के वक्त भी हिचकोले नहीं खाते।

शराब की एक बूँद पिए बिना ही मूर्ख शोर मचाते और लड़ाई-झगड़ा करते हैं। बुद्धिमान बड़ा जाम पीने के बाद भी धीरे-धीरे, शांतिपूर्वक और संजीदगी से बात करते हैं।

रसूल की किताब, तुम लोगों के सामने अपने को ऐसे पेश करो, जैसे कि रसूल की किताब को शोभा देता है।

किसी पहाड़ी के घर में अगर कोई अपरिचित मेहमान आ जाता है, तो तीन दिन से पहले उससे उसका नाम और यह नहीं पूछा जाता कि वह कहाँ से आया है।

मेरी पुस्तक को भी आप इसी तरह स्वीकारें। यह नहीं पूछें कि वह कौन है, कहाँ से आई है, किसने लिखी है। उसे खुद ही अपना परिचय देने दें।

मैं जैसा हूँ, उससे अच्छा या बुरा नहीं होना चाहता। बीस साल की उम्र में अगर ताकत नहीं है - तो इंतजार नहीं करो, वह नहीं आएगी। तीस साल की उम्र में अगर अक्ल नहीं है - तो इंतजार नहीं करो, वह नहीं आएगी। चालीस साल की उम्र में अगर धन नहीं - तो इंतजार नहीं करो, वह नहीं आएगा। ऐसी है एक रूसी कहावत। हमारे पहाड़ों में कहा जाता है - अगर चालीस साल में आदमी उकाब नहीं बना - तो वह कभी नहीं उड़ पाएगा। मेरी घोड़ागाड़ी को मेरे ही रास्ते पर चलने दो।

जब बारिश होती है, तो हमारे गाँव के ऊपर खड़े पहाड़ से बहुत-सी छोटी-छोटी धाराएँ नीचे बहकर आती हैं। नीचे वे सभी घुल-मिलकर वक्ती बरसाती झील बन जाती हैं। फिर इस झील से सिर्फ एक ही बड़ी नदी बहती है।

हमारे इर्द-गिर्द के पहाड़ों से बहुत-सी तंग पगडंडियाँ हमारे गाँव की ओर आती हैं। धाराओं की तरह वे सभी हमारे गाँव में आकर मिल जाती हैं। लेकिन अगर गाँव से हलका, नगर या बड़ी दुनिया में जाना हो, तो उसके लिए केवल एक ही चौड़ी सड़क है।

मैं नहीं जानता कि सड़क या नदी-किससे अपनी तुलना करूँ। मगर मैं इतना जानता हूँ कि मेरे बहुत-से हमवतनों के विचार, मेरे बहुत-से हमवतनों के शब्द और भावनाएँ पहाड़ी धाराओं या टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों की तरह मुझमें आकर घुल-मिल गई हैं। मेरी अपनी पगडंडी, मेरी राह मुझे गाँव से कविता-क्षेत्र में ले गई है।

मैं दुनिया के बहुत-से हिस्सों में हो आया हूँ। बहुत-से देशों की यात्रा कर चुका हूँ और तरह-तरह के लोगों से मिला हूँ बड़ी-बड़ी शानदार दावतों और स्वागत-समारोहों में जाने का मुझे मौका मिला है। ये स्वागत-समारोह राष्ट्रपतियों और बादशाहों के भी थे, प्रधानमंत्रियों और साधारण मंत्रियों तथा राजदूतों के भी। इन समारोहों में जूते और चाँदें कैसे चमकती हैं, कैसे बढ़िया ढंग से टाइयाँ बँधी होती हैं, कैसे बर्फ से सफेद कफ होते हैं, कैसे शिष्टतापूर्वक सिर झुकाए जाते हैं और मुस्कानें बिखराई जाती हैं, हर शब्द और हाव-भाव कितना सधा-बधा होता है! ऐसे समारोहों में कलाकार प्रधानमंत्रियों जैसे लगते हैं और प्रधानमंत्री कलाकारों जैसे।

ऐसे समारोहों में मैं कभी भी खुद को अपने रूप में अनुभव नहीं करता। मैं ऐसे हाव-भाव प्रकट करता हूँ, जो करना नहीं चाहता, ऐसे शब्द कहता हूँ, जिन्हें कहने को मन नहीं होता। इन समारोहों की चमक-दमक में से अचानक मुझे त्सादा के अपने चूल्हे और उसके गिर्द बैठे हुए अपने परिजनों की या किसी होटल के कमरे में जमा खुशमिजाज दोस्तों की झलक मिलती है। उस वक्त उन बहुत-से पकवानों की जगह लहसुनवाले खीनकाल खाने की तीव्र इच्छा होती है! अहा, आस्तीनें चढ़ाकर अपने घर के चूल्हे के गिर्द दोस्तों के बीच बैठकर लहसुनवाले खीनकाल इस तरह हड़पने में कितना मजा है कि बाँहें घी से तर हो जाएँ!

कुछ किताबें पढ़ते हुए मुझे ऐसे लगता है, मानो वे कूटनीतिक समारोह में उपस्थित हों। उनमें हाव-भाव, गतिविधि और भाषण की स्वतंत्रता नहीं होती।

मेरी किताब, तुम कूटनीतिक समारोह में मेहमान नहीं बनना। तुम केवल वही शब्द कहना, जो तुम्हारे वास्तविक चरित्र के अनुरूप हैं, ऐसे शब्द नहीं, जो केवल शिष्टतावश कहने होते हैं।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो जब तक अपने घर, अपने परिवार, अपने बीवी-बच्चों और दोस्तों में होते हैं, लोग रहते हैं। मगर जैसे ही अपने दफ्तर की कुर्सी पर जा बैठते हैं, रूखे, भावनाहीन और क्रूर हो जाते हैं। उनका तो जैसे कायापलट हो जाता है। हर नए पद, हर नई कुर्सी के साथ उनका चरित्र, व्यवहार और चेहरा बदलता जाता है।

मेरी पुस्तक, तुम स्थिर रहना, अपना चरित्र नहीं बदलना, वैसे ही जैसे मैं अपना चरित्र नहीं बदलता हूँ। स्वागत-समारोहों को नहीं, दोस्तों और अपने चूल्हे

के धुएँ को प्यार करना, कंसर्टों को नहीं खेतों को प्यार करना, धरती की आवाज सुनना, सभाओं का शोर नहीं। ऐसा भी तो होता है कि सभाओं में एक बात कही जाती है और सभाओं के बाद बिल्कुल दूसरी ही।

नोटबुक से। कौन ऐसा दागिस्तानी होगा, जो सुलेमान स्ताल्स्की की बड़ी फर की टोपी, भेड़ की सुगंधित खाल के भारी कोट और कॉफ चमड़े के हल्के-फुल्के जूतों से परिचित न रहा हो! मेरे ख्याल में तो केवल दागिस्तानी ही नहीं, दूसरे लोग भी ऐसी टोपी और ऐसे जूतों के बिना सुलेमान की कल्पना नहीं कर सकते थे।

तो सुलेमान स्ताल्स्की को पुरस्कृत किया गया और मक्सिम गोर्की ने उन्हें 20वीं शताब्दी का होमर कहा। सुलेमान को मास्को आमंत्रित किया गया। मास्को में एक दागिस्तानी मंत्री उनसे मिले।

'अरे, प्यारे सुलेमान,' मंत्री ने कवि से कहा, 'मास्को में तो गाँव का-सा रंग-ढंग अच्छा नहीं लगता। आपको अपना यह भेस बदलना होगा।'

दागिस्तानी सरकार के आदेशानुसार सुलेमान के लिए ऊनी सूट सिलवाया गया, उनके लिए नए जूते, कनटोपा और कराकूल की फर के कालरवाला ओवरकोट भी खरीदा गया। सुलेमान ने हर चीज को बहुत ध्यान से देखा। ओवरकोट को हाथ पर लटकाकर आँका, जूतों के तले आपस में बजाए और बाद में सभी चीजों को जैसे-तैसे लपेटकर सूटकेस में रख दिया।

'शुक्रिया। अच्छी, नई चीजें हैं। मेरे बेटे मुसलिम के लिए बिल्कुल ठीक रहेंगी। मैं तो सुलेमान ही रहना चाहता हूँ। न तो सूट और न बूट के लिए अपना नाम बदलना चाहता हूँ। मेरे अपने जूते मुझसे नाराज हो जाएँगे।'

अपने बाहरी रूप की इस मौलिकता के प्रति भी सुलेमान का यह लगाव मेरे पिता जी को बहुत पसंद आया।

नोटबुक से। सुलेमान के बेटों ने उन्हें कई बार लिखना-पढ़ना सिखाने की कोशिश की। सुलेमान ने हर बार बड़ी लगन से यह काम शुरू किया, मगर बाद में कागज रखकर यह कहा -

'नहीं, बच्चो। जैसे ही मैं पेंसिल हाथ में लेता हूँ, कविता फौरन मुझसे दूर भाग जाती है। कारण कि मैं कविता के बारे में नहीं, बल्कि यह सोचने लगता हूँ कि इस कंबख्त पेंसिल को कैसे हाथ में थामना चाहिए।'

नोटबुक से। आफंदी कापीयेव सुलेमान के दोस्त थे। उन्होंने रूसी भाषा में सुलेमान की कविताओं का अनुवाद किया। तुच्छ और घटिया लोगों को इस दोस्ती से ईर्ष्या होती थी। उन्होंने कापीयेव को विख्यात कवि की नजरों में गिराना चाहा और बदनाम भी किया। उन्होंने सुलेमान से कहा -

'तुम तो रूसी पढ़ नहीं सकते, मगर हम जानते हैं कि आफंदी कापीयेव अनुवाद करते हुए तुम्हारी कविताओं को बिगाड़ देता है। जहाँ चाहता है, उन्हें बढ़ा देता है, जहाँ चाहता है, घटा देता है और बहुत-सी पंक्तियों को अपने ही ढंग से बदल डालता है।'

एक दिन साधारण बातचीत के दौरान सुलेमान ने यह चर्चा चलाई -

'दोस्त,' वे बोले, 'मैंने सुना है कि तुम मेरे बच्चों को पीटते हो?'

आफंदी फौरन समझ गए कि किस बात की तरफ इशारा किया जा रहा है।

'तुम्हारी कविताएँ तुम्हारे बच्चे नहीं हैं, सुलेमान। वे तो तुम खुद सुलेमान स्ताल्स्की हो।'

'तब मैं बूढ़ा तो बच्चों से भी ज्यादा इज्जत का हकदार हूँ।'

'मगर सुलेमान, तुम्हारे लिए क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है कविता की पंक्तियाँ या उनकी शैली और आत्मा? तुम्हारे सामने शराब की बोतल रखी है। अगर यह शराब खराब हो जाए, तो इसकी मात्रा तो कम नहीं हो जाएगी, मगर यह वह शराब नहीं रहेगी, जिसे हम पीते हैं और मजा लेते हैं। सवाल शराब की मात्रा का नहीं, उसकी खुशबू, जायके और नशा देने की शक्ति का है।'

'तुम ठीक कहते हो, यही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।'

वास्तव में ऐसा ही हुआ कि आफंदी कापीयेव ने ही सुलेमान को रूसी पाठकों तक पहुँचाया।

नोटबुक से।

'तुम्हारे पिता की कविताओं की मुझे किसी तरह भी चाबी नहीं मिलती,' आफंदी ने मुझसे शिकायत की। हमजात त्सादासा की कविताओं का भी उन्होंने रूसी में अनुवाद किया था। 'तुम्हारे पिता का अपना ही ताला है। ऐसा लगता है कि वे हँस रहे हैं, मगर वास्तव में उदास होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रशंसा कर रहे हैं, मगर वास्तव में व्यंग्य, यहाँ तक कि मजाक करते होते हैं। ऐसा लगता है कि कोस रहे हैं, मगर वास्तव में प्रशंसा करते होते हैं। यह सब कुछ मैं समझता

हूँ, मगर रूसी भाषा में व्यक्त नहीं कर पाता। मैं उनकी कविता की शैली, उनका भाव तो व्यक्त कर सकता हूँ, मगर मुझे तो खुद हमजात चाहिए, वैसे ही जीते-जागते जैसा कि हम उन्हें जानते हैं। रूसी भाषा के पाठकों को उन्हें इसी रूप में जानना चाहिए। वे मानो सभी लोगों जैसे हैं, फिर भी बाकी सब से अलग हैं।'

कवि की कविताएँ भी ऐसी ही होनी चाहिए।

संस्मरण से। अब मेरे गाँववाले मुझे कवि रसूल हमजातोव के रूप में जानते हैं। मगर कभी ऐसा भी वक्त था, जब सभी मुझे भुलक्कड़ और गड़बड-झाला व्यक्ति मानते थे। मैं किसी काम में उलझा होता और उसी वक्त किसी दूसरी चीज के बारे में भी सोचता रहता। नतीजा यह होता कि कमीज उल्टी पहन लेता, ओवरकोट के बटन गलत ढंग से लगा लेता और ऐसे ही बाहर चला जाता। बूटों के फीते न बाँधता और अगर बाँधता, तो ऐसे कि वे फौरन खुल जाते। उस वक्त मेरे बारे में कहा जाता था -

'यह कैसे हुआ कि ऐसे सलीकेदार, ऐसे ढंगवाले और शांत पिता के घर में ऐसे ऊधमी और बेढंगे बेटे ने जन्म लिया है? इन दोनों में से कौन बूढ़ा और कौन जवान है - वह जो फीते बाँधना भूल जाता है या वह जो कभी कुछ नहीं भूलता?'

'हाँ,' मैं ऐसी फुजूल बात के जवाब में कहता, 'मैंने पिता जी का बुढ़ापा ले लिया है और उन्हें अपनी जवानी दे दी है।'

हाँ, मेरे पिता जी आखिरी दम तक जवान आदमी की तरह सलीकेदार और चुस्त बने रहे। बाहरी और भीतरी तौर पर वे सदा सधे-बधे, अनुशासित और नपे-तुले रहे। गाँव के सभी लोग यह जानते थे कि मेरे पिता भेड़ का कोट पहनकर किस वक्त अपने घर की छत पर आते हैं। पिता जी के छत पर आने के समय के अनुसार वे अपनी घड़ियाँ ठीक कर सकते थे। हमारे गाँव के एक नौजवान ने सेना से अपने माँ-बाप के नाम खत में यह लिखा - 'हम तड़के ही उठते हैं। हमें ठीक उसी वक्त जगाया जाता है, जब हमजात अपनी छत पर आते हैं।'

अगर कोई सुबह के वक्त हमजात से मिलना चाहता, तो उसे यह मालूम होता था कि कितने बजकर कितने मिनट पर खूंजह की ओर जानेवाले रास्ते पर पहुँचना चाहिए। हमजात हमेशा एक ही वक्त पर घर से काम के लिए रवाना होते थे।

लोग उनके बारे में सभी कुछ जानते थे। उन्हें मालूम था कि किस जगह तक वे घोड़े की लगाम थामकर चलते हैं और कहाँ घोड़े पर सवार होते हैं। उनकी

मामूली काली कमीज, बिरजिस और घुटनों तक के उनके उन जूतों से भी वे परिचित थे, जिन्हें उन्होंने खुद बनाया था और हर सुबह अपने हाथ से साफ करते थे। उनकी पेटी; एक बार भी उस्तरे से न साफ किए गए और ढंग से हजामत बने सिर, उनकी फर टोपी से भी वाकिफ थे, जिसे वे सही अंदाज से सिर पर रखते थे। टोपी की कराकुल फर न तो बहुत घुँघराली थी और न ही बहुत झबरीली।

पिताजी का अपना एक स्वरूप था और जो कुछ वे पहनते तथा करते, इस स्वरूप के बहुत अनुरूप था। हमजात की पोशाक और गतिविधि में किसी दूसरी चीज की कल्पना करना ही असंभव था।

खुद उन्हें भी किसी तरह के परिवर्तन पसंद नहीं थे। जब उनका कोई कपड़ा फट जाता और नया खरीदना होता, तो वे बिल्कुल वैसा ही खोजते। नई पोशाक बेशक बिल्कुल उसी माप और उसी डिजाइन की होती, फिर भी पिता जी पहले कुछ दिनों में अपने को अजीब-अजीब और अटपटा-सा महसूस करते रहते।

एक बार उनकी पेटी घिसकर टूट गई। नई पेटी खरीद लेना मामूली बात थी। मगर हमजात ने उसी पेटी को, जिसके वे अभ्यस्त थे, बड़े यत्न से सी लिया और कुछ समय तक उसे ही इस्तेमाल करते रहे। वे कंजूस नहीं थे, पैसों की भी उन्हें कुछ कमी नहीं थी, मगर जिस चीज के वे आदी हो गए थे, उससे अलग होते हुए उन्हें दुख होता था। आखिर वह पेटी फिर से टूट गई और पिता जी को नई पेटी खरीदनी ही पड़ी। तब भी उन्होंने नई पेटी के साथ पुराना बकलस सी लिया।

अपनी फर टोपी को वे जिंदा मेमने की तरह सहलाते। अगर उन्हें अपनी वह पेटी ही, जिसके वे अभ्यस्त थे, इतनी प्यारी थी, तो सोचिए कि फर टोपी कितनी प्यारी होगी।

1941 की गर्मी में जब देशभक्तिपूर्ण युद्ध शुरू हुआ, तो दागिस्तान की सरकार ने पिता जी से यह अनुरोध किया कि वे पहाड़ों के बजाय मखचकला में आ बसें। ऊँचे, ठंडे पहाड़ों के बाद शहर में उन्हें घुटन और गर्मी महसूस हुई। ऊँचे, पहाड़ी इलाकों के लिए उपयुक्त पोशाक उन्हें गर्म शहरी हवा में भारी महसूस होने लगी। फर की टोपी तो खास तौर पर जलवायु के अनुकूल न प्रतीत हुई। पिता जी ने कई टोप और हल्की टोपियाँ पहनकर देखीं, मगर वे हमजात के व्यक्तित्व को एकदम इतना बदल देती थीं कि हम बच्चों के बहुत मनाने के बावजूद वे उन्हें उतारकर एक तरफ फेंक देते थे।

तो हमजात उस फर की टोपी को हाथ में लिए हुए ही मखचकला में घूमते रहते। कभी वे उसे उतार लेते, कभी पहन लेते, मगर एक मिनट को भी उसे अपने से अलग न करते।

लोग जंग जैसी मुसीबत के भी आदी हो जाते हैं और जिंदगी अपनी, बेशक एक नई, युद्धकालीन लय की अभ्यस्त हो जाती है। पिता जी फिर से जब-तब पहाड़ों पर जाने लगे। कैसे चैन की साँस लेते थे वे वहाँ, कितनी खुशी से वे अपनी फर की टोपी पहनते थे, जिसे उन्होंने कभी अपने से अलग नहीं किया था। उन दिनों वे उस आदमी की तरह होते, जिसके पास या तो बहुत समय तक पीने को सिगरेट न रही हो या जिसे इसकी कड़ी मनाही कर दी गई हो और फिर अचानक उसे इतमीनान से तेज देसी तंबाकू की सिगरेट लपेटने, चैन और बड़े मजे से सिगरेट पीने और लंबे कश खींचने की संभावना मिल गई हो।

मेरे पिता जी ने कभी तंबाकूनोशी नहीं की थी, मगर वे दूसरी छोटी-मोटी चीजों से, सृजन और अपनी धरती के प्रति प्यार का तो खैर जिक्र ही क्या किया जाए, और भी अधिक खुशी हासिल करते थे।

पिता जी की नोटबुक से। 'रजब बेशक मेरा दोस्त है, मगर उसने मेरे साथ दुश्मन से भी बुरा बर्ताव किया। उसने मेरे खिलाफ उस्तरे को अपना सहयोगी बनाया,' मेरे पिता जी ने अपनी नोटबुक में एक बार यह लिखा था। किस्सा यों हुआ था। 1934 में पिता जी प्रथम लेखक-सम्मेलन में भाग लेने के लिए मास्को गए। अवार लेखक रजब दीनमागामायेव तब जिंदा थे। वे मेरे पिता जी को नाई की दुकान पर खींच ले गए ताकि उनके सिर और दाढ़ी के बाल कुछ छँटवा दिए जाएँ। रजब ने जान-बूझकर ऐसा करवाया या नाई यह नहीं समझा कि उससे क्या करने को कहा गया है, मगर उसने पिता जी की एक बार भी साफ न की गई दाढ़ी को बिल्कुल मूँड़ डाला। पिता जी का बाद में ही इसकी तरफ ध्यान गया। दर्पण में एकदम पराया, अजनबी चेहरा देखकर वे चिल्ला उठे, उन्होंने हाथों से मुँह ढाँप लिया और नाई की दुकान से बाहर भाग गए। इसके बाद वे सम्मेलन की बैठकों में नहीं गए, लोगों को अपनी सूरत दिखाने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई।

'मैं तो जीवन में अपना चेहरा नहीं बदल पाया,' पिता जी ने बाद में कहा, 'कविता में अपना चेहरा कैसे बदल सकता हूँ?'

पिता जी को जीवन में और उसी तरह कविता में भी बनावट पसंद नहीं थी। हाँ, एक बार वे पराई और बनावटी मुद्रा के लगभग आदी हो गए थे।

संस्मरण से। एक बार कुछ गाँववासी मखचकला में पिता जी के पास मेहमान आए। उन्होंने देखा कि उनसे बातचीत करते हुए पिता जी किसी अस्वाभाविक, अनभ्यस्त मुद्रा में बैठते हैं यानी अपनी ठोड़ी को तीन उँगलियों पर टिकाए रहते हैं। एक पहाड़ी ने कहा -

'पहले तो हमने कभी तुम्हें तीन उँगलियों पर ठोड़ी टिकाकर बैठे नहीं देखा था। कब से तुम ऐसा करने लगे हो? और किसलिए? ऐसा करना तुम्हें जरा भी नहीं जँचता। यह तुम्हारी आदत नहीं है, हमजात।'

'हाँ, मुझे इसे छोड़ना ही चाहिए,' हमजात ने जवाब दिया। 'यह चित्रकार मुहिद्दीन जमाल का कुसूर है। उसने तीन महीने तक मेरा चित्र बनाने के लिए मुझे अपने सामने बैठाए रखा। तीन महीने तक मैं तीन उँगलियों पर ठोड़ी टिकाए उसके सामने बुत बना बैठा रहा। चित्रकार ने ऐसा ही चाहा और मुझे उसका हुक्म मानना पड़ा।'

'बहुत परेशानी हुई होगी तुम्हें?'

'बैठने से तो नहीं, मगर यह मुद्रा बनाए रखने से। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता था कि ठोड़ी को सहारा देनेवाली तीन उँगलियाँ मेरी अपनी नहीं हैं। फिर कभी मुझे ऐसा महसूस होता कि मेरी तीन उँगलियाँ किसी दूसरे की ठोड़ी को सहारा दे रही हैं। तीन महीनों तक मैं लगातार हर दिन ऐसे ही बैठा रहा और आखिर इसका आदी हो गया। चित्रकार के सामने बैठने का सिलसिला खत्म हो चुका, तस्वीर बन चुकी और दीवार पर लटकी हुई है, मगर मैं, जैसा कि तुम देख रहे हो, अभी तक अपनी ठोड़ी को तीन उँगलियों पर टिकाए रहता हूँ। जानते हो न कि दिल का रोगी दिल में दर्द न होने पर भी छाती के बाईं ओर अपना हाथ रखे रहता है। खैर, कोई बात नहीं, मैं इस आदत से छुटकारा पा लूँगा।'

पिता जी की नोटबुक में इस बात का भी जिक्र मिलता है कि कैसे उन्होंने नए दाँत लगवाए।

दाँतों के डाक्टर ने उनसे पूछा कि वे कौन-से-सोने, चाँदी या इस्पात के दाँत लगवाना पसंद करेंगे। हमजात को कोई जवाब नहीं सूझा और उन्होंने वहाँ उपस्थित दोस्तों की तरफ सलाह और मदद के लिए देखा।

'सोने के लगवा लो,' एक दोस्त ने कहा, 'सोना बहुत अच्छी धातु है।'

'इस्पात के लगाव लो,' दूसरे दोस्त ने सलाह दी, 'इस्पात ज्यादा मजबूत होता है और ऐसे दाँत कभी नहीं टूटेंगे।'

'मगर इसका नतीजा क्या होगा,' हमजात ने आपत्ति की, 'अगर मैं सोने या इस्पात के दाँत लगवाकर गाँव लौटूँगा, तो लोग मुझे ऐसे देखेंगे मानो मेरे मुँह में बत्तियाँ जल रही हों। लोग मुझे नहीं, मेरे दाँतों पर ही नजर टिकाए रहेंगे। दाँत मेरे चेहरे पर हावी हो जाएँगे। क्या हड्डी के, ऐसे ही दाँत लगाना संभव नहीं ताकि किसी को यह पता न चले कि मैंने नए दाँत लगवाए हैं। मैं ऐसे दाँत लगवाने को तैयार हूँ, जिनसे यह न पता चले कि वे नए हैं।'

दाँतों के डाक्टर ने ऐसा ही किया और दाँत लगा दिए, जो उनके पहले, कुदरती दाँतों जैसे थे।

इसके बाद जब कभी उन्हें किसी कवि की कविता में पराई या कहीं से ली गई पंक्तियों की झलक मिलती, तो वे कहते -

'इसकी कविता में मुझे नकली दाँत चमकते दिखाई दे रहे हैं।'

सोने के दाँतों से भी सेब खाया जा सकता है, मगर मेरा ख्याल है कि वह इतना रसीला और जायकेदार नहीं लगेगा जितना अपने दाँतों से खाने पर।

संस्मरण। 1947 में मखचकला के थिएटर में एक बड़ा समारोह हुआ : कवि हमजात त्सादासा की सत्तरवीं जयंती मनाई जा रही थी। बहुत-से भाषण हुए, बहुत-सी बधाइयाँ दी गई, बहुत-सी कविताएँ पढ़ी गई और ढेरों उपहार भेंट किए गए। जिसकी जयंती मनाई जा रही थी, आखिर उसे यानी मेरे पिता जी से कुछ बोलने को कहा गया। हमजात मंच पर आए, इतमीनान से उन्होंने अपनी एक जेब से इस दिन के लिए विशेष रूप से लिखी गई कविताएँ निकालीं और ऐनक निकालने के लिए वैसे ही इतमीनान से दूसरी जेब में हाथ डाला... मगर इसी वक्त पिता जी बेचैन हो उठे। उन्होंने एक जेब टटोली, फिर दूसरी। सभी समझ गए कि जयंती के नायक हमजात अपना चश्मा साथ लाना भूल गए हैं।

उसी वक्त किसी को चश्मा लाने के लिए भेज दिया गया। मगर हमजात मंच पर खड़े थे और कुछ भी तो नहीं कर सकते थे। तब हमजात के दोस्त अबूतालिब ने उन्हें अपना चश्मा दिया, जो मानो फिट बैठ गया। पिता जी उसे चढ़ाकर कविता पढ़ने लगे। वे अपनी कविता पढ़ रहे थे, मगर उनकी आवाज, उनकी पूरी मुद्रा में कुछ अविश्वास, कुछ घबराहट थी, और सभी को ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अपनी नहीं, किसी दूसरे व्यक्ति की, ऐसे संयोगवश हाथ में आ जानेवाली वह कविता पढ़ रहे थे, जिन्हें वे खुद भी पहली बार देख रहे हों।

पिता जी जब दूसरी कविता पढ़ने लगे, तो जिस नौजवान को चश्मा लाने के लिए भेजा गया था, वह भागता हुआ हॉल में आ पहुँचा। हमजात ने अबूतालिब का चश्मा उतारकर अपना चश्मा चढ़ाया, तो फौरन उनकी आकृति बदल गई, उसी वक्त उनकी आवाज में जोर आ गया। हॉल में बैठे लोगों ने खूब जोर से तालियाँ बजाई मानो अभी असली हमजात त्सादासा मंच पर आए हों और इसके पहले उन्हीं की शक्ल-सूरतवाला कोई दूसरा आदमी उनके सामने खड़ा रहा हो।

'चश्मे ने तो मेरी जयंती का मजा ही किरकिरा कर दिया होता,' हमजात ने मुस्कराते हुए कहा।

'क्या मेरा चश्मा कुछ बुरा है?' अबूतालिब ने ऊँची आवाज में पूछा।

'बहुत ही अच्छा है, मगर फिर भी वह तुम्हारा चश्मा है। हर आदमी की अपनी आँखें हैं और चश्मा भी अपना ही होना चाहिए।'

पिता जी को न तो बहुत तेज रोशनी पसंद थी और न ही घना अँधेरा। उन्हें बहुत गाढ़ा और बहुत ही पतला, बहुत ही ठंडा और बहुत ही गर्म, बहुत ही महँगा और बहुत ही सस्ता, बहुत ही पिछड़ा हुआ और बहुत ही अग्रणी, ऐसा कुछ भी पसंद नहीं था।

उन्हें भेड़िए की क्रूरता और खरगोश की दुर्बलता अच्छी नहीं लगती थी। सत्ता की निरंकुशता और अधीनों की दासता पसंद नहीं थी। वे कहा करते थे -

'ऐसे सूखो नहीं कि अकड़कर टूट जाओ, मगर इतने गीले भी नहीं होवो कि चीथड़े की तरह तुम्हें निचोड़ लिया जाए।'

मगर पिता जी उन लोगों में से नहीं थे, जो बारिश की एक बूँद से भीग जाते हैं और हवा का हल्का-सा झोंका लगने पर सूख पाते हैं। वे साधारण व्यक्ति थे और उनमें हमारे लोगों की सभी आदतें और सभी गुण विद्यमान थे और वे बड़े सुंदर ढंग से उनमें साथ-साथ बने रहे।

संस्मरण। एक बार पिता जी के साथ हमें एक बीमार रिश्तेदार की तीमारदारी के लिए मखचकला से गाँव जाना था। उस समय अब्दुर्रहमान दानीयालेव दागिस्तानी सरकार के प्रधान थे। यह मालूम होने पर कि हम पहाड़ जा रहे हैं, उन्होंने हमारे लिए काली सरकारी कार भेज दी। शायद वह 'जीम' थी।

जब तक हमारी कार शहरी सड़कों को मापती रही, पिता जी बड़े रंग में रहे। मगर जैसे ही शहर के बाहर की सड़क पर हमारी कार गधों, टट्टुओं और घोड़ों पर सवार या पैदल पहाड़ी लोगों को पीछे छोड़ने लगी, पिता जी नर्म और

आरामदेह सीट पर बेचैनी से इधर-उधर हिलने-डुलने लगे। उस वक्त अपनी जवानी के रंग में मैं तो जहाँ खिड़की से अपना सिर बाहर निकालने की कोशिश करता था ताकि सभी यह देख सकें कि हम कार में जा रहे हैं, वहाँ पिता जी अधिक से अधिक पीछे हटते गए, छिप-से गए।

बारिश हो रही थी। होत्सातल गाँव की नदी के करीब पहुँचने पर हमने देखा कि एक बैलगाड़ी नदी के ऐन बीच में फँए गई है और उस पर एक बूढ़ा सवार है। पिता जी ने फौरन कार रुकवाई, नदी में घुस गए और बूढ़े की मदद करने लगे। बूढ़े के साथ मिलकर उन्होंने बैलों को हाँका और पहियों को आगे धकेला। बैलगाड़ी जल्दी ही समतल रास्ते आ गई। हमारी कार आगे बढ़ी। कुछ किलोमीटरों के फासले पर एक और नदिया रास्ते में आई। पिता जी ने फिर से कार रोकने को कहा और बैलगाड़ीवाले बूढ़े का इंतजार करने लगे।

'बूढ़े की गाड़ी जरूर यहाँ अटक जाएगी। मुझे मालूम है कि बैलों को कैसे इस नदी के पार ले जाया जा सकता है। मैं बूढ़े का इंतजार और उसकी मदद करूँगा।'

वास्तव में ऐसा ही हुआ। हमने इंतजार किया और चूँ-चर्र करती हुई बैलगाड़ी जब दूसरी नदी के पास पहुँची, तो पिता जी बड़ी होशियारी से बैलों को नदी के पार ले गए।

'बूयनाक्स्क से जब मैं तरह-तरह का सामान लेकर पहाड़ों को जाता था, तो कई बार इसी तरह की मुसीबत में फँस जाया करता था,' कार के पास आकर और अपने कपड़ों के छोर से हाथ पोंछते हुए पिताजी ने हमसे कहा। दूर जाती हुई बैलगाड़ी को देखकर वे ऐसे दुखी मन से मुस्करा दिए मानो उसके साथ ही उनका सारा अतीत, उनका सारा जीवन जा रहा हो।

खूंजह के पठार पर चढ़ते हुए एक ट्रक हमारी कार से जरा छू गई। एक पहिया टूट गया। पिता जी को तो जैसे इस बात से खुशी हुई और वे पैदल ही गाँव की तरफ चल दिए। हमने उन्हें बहुत मनाया कि दूसरा पहिया लग जाने तक रुक जाएँ, मगर वे राजी न हुए।

'मुझे तो शादी में शामिल होने के लिए भी ऐसी कार में जाते हुए शर्म आती और बीमार दोस्त की तीमारदारी के लिए तो ऐसे ठाठ से जाने की कोई जरूरत ही नहीं। मैं बहुत खुश हूँ कि कार खराब हो गई, मैं पैदल ही जाता हूँ।'

पिताजी बचपन से ही अपनी जानी-पहचानी उस पगडंडी पर चल दिए, जिस पर हमारे गाँव में जाने के लिए पहाड़ी लोगों की कई पीढ़ियाँ चल चुकी थीं। कार ठीक हुई तो हम बड़े रास्ते से गाँव की ओर चल दिए और पिता जी के साथ-साथ ही गाँव पहुँचे।

बाद में अब्दुर्रहमान दानीयालोव ने चिंता प्रकट करते हुए रास्ते की दुर्घटना के बारे में पूछा।

पिता जी ने मजाक में जवाब दिया -

'कार जरूरत से ज्यादा ही बढ़िया है। अगर जरा घटिया होती, तो शायद उसका कुछ भी न बिगड़ता।'

संस्मरण। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मेरे पिता जी बहुत बीमार रहे। पहाड़ों की यात्रा के समय, जहाँ वे निर्वाचकों से भेंट करने गए थे, बीमारी ने उन्हें अचानक धर दबाया था। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव नजदीक आ रहे थे और हमजात त्सादासा का नाम उम्मीदवार के रूप में पेश किया गया था।

हलके के केंद्र तक वे कार में गए, मगर उन दिनों पहाड़ी गाँवों में केवल घोड़ों पर ही जाना संभव था। आम तौर पर वे घोड़े को धीरे-धीरे ले जाते थे और अक्सर तो उसकी लगाम थामकर चलते रहते थे। हमजात को पैदल चलना सबसे ज्यादा पसंद था।

स्थानीय अधिकारियों ने हमजात की तरफ बहुत ध्यान दिया। सर्वोच्च सोवियत के भावी सदस्य के लिए वे जवान और बहुत तेज घोड़ा लाए। अधिकारियों को दोष देना अनुचित होगा, उन्होंने तो अपनी तरफ से वही करने की कोशिश की, जो उन्हें बहुत अच्छा प्रतीत हुआ। उन्होंने तो यही समझा कि ऐसे प्यारे मेहमान को अपने हलके का सबसे अच्छा घोड़ा सवारी के लिए देना चाहिए।

बहत्तर साल के बुजुर्ग अपने मेजबानों को नाराज नहीं करना चाहते थे और अपने बीते दिनों को याद कर जवान की तरह कूदकर घोड़े पर सवार हो गए। घोड़ों पर सवार जवानों से घिरे हुए बुजुर्ग शायद नायबों के बीच इमाम जैसे लग रहे थे।

जवानों ने अपने घोड़ों पर चाबुक सटकारे और विभिन्न दिशाओं के विभिन्न गाँवों में यह सूचना देने चले गए कि हमजात जल्दी ही वहाँ पहुँचेंगे। दूसरे घोड़ों

की देखा-देखी हमजात का घोड़ा भी जोश में आकर हवा से बातें करने लगा। बुजुर्ग उसे काबू में न ला सके और तेज घुड़दौड़ शुरू हो गई। हमजात को जोर के झटके लगे, वे जीन पर अत्यधिक उछलते रहे, उनकी हालत अधिकाधिक बुरी होती गई और आखिर काठी से नीचे जा गिरे। वे बीमार होकर मखचकला लौटे और यह बीमारी उनकी जान लेकर ही रही।

'कविताओं के साथ भी ऐसा ही होता है,' पिता जी खाँसते हुए कहते। 'कवि को अपने अभ्यस्त घोड़े पर ही सवारी करनी चाहिए, पराये, अनजाने घोड़े पर नहीं बैठना चाहिए। पराया घोड़ा तो जीन से नीचे फेंक सकता है।'

अपने पिता जी के बारे में मैं बहुत देर तक बहुत कुछ बता सकता हूँ। मगर अब मैं उनके दोस्त अबूतालिब के बारे में कुछ बताना चाहता हूँ। कल का सारा दिन मैंने उन्हीं के साथ बिताया था।

अबूतालिब के साथ बिताया गया दिन। किसी कारणवश अधूरी रह जानेवाली, ठीक वक्त पर खत्म न की जानेवाली कविता को फिर से बैठकर लिखना और पूरी करना मेरे लिए सबसे ज्यादा मुश्किल काम होता है। पहाड़ी लोगों में ऐसा कहा जाता है कि मेढकी इसीलिए अब तक दुम के बिना है कि उसने दुम चिपकाने का काम अगले दिन पर छोड़ दिया था।

दो हफ्ते पहले शुरू की गई एक लंबी कविता को खत्म करने का मैंने सुबह से ही इरादा बना लिया था। काम मुश्किल था और मैंने अपनी आया फ्रोस्या से कहा -

'अगर कोई मेरे बारे में पूछे, तो कह देना कि मैं घर पर नहीं हूँ। जिसे मेरी जरूरत हो, वह दोपहर के खाने के बाद आ जाए।'

ऐसी हिदायत देकर मैं ऊपरवाले कमरे में चला गया और इतमीनान से काम में जुट गया। मगर सड़क की आवाजें तो मेरे कानों तक पहुँच रही थीं और मुझे बाहरी फाटक की चीं-चर्र सुनाई दी। कुछ क्षण बाद घर के दरवाजे की घंटी बज उठी। फ्रोस्या की आवाज तो मुझे सुनाई नहीं दी, मगर अबूतालिब का स्वर मुझ तक पहुँच गया। मुझे अपनी कुर्सी दहकते तवे या कँटीली झाड़ी जैसी महसूस होने लगी। कभी ऐसा नहीं हुआ था कि हमजात त्सादासा के घर पर, जो अब रसूल हमजातोव का घर था, अबूतालिब का स्वागत न हुआ हो, कि उन्हें घर की दहलीज से वापस लौटना पड़ा हो। ऐसा कभी नहीं हुआ था और हो भी नहीं सकता था। मगर मैं बड़ी अटपटी स्थिति में था - एक तरफ तो अबूतालिब को

लौटने नहीं दिया जा सकता था और दूसरी तरफ फ्रोस्या को झूठा साबित करना उचित नहीं था, जिसने ईमानदारी से मेरा अनुरोध पूरा करते हुए अबूतालिब से यह कह भी दिया था कि मैं दोपहर के खाने के बाद ही घर पर लौटूँगा।

मैंने अपने दिमाग की नहीं, दिल की बात मानी। मैंने खिड़की में से सिर बाहर निकालकर अपने पिता जी के दोस्त को आवाज दी -

'अंदर आ जाइए, अबूतालिब, मैं यहाँ हूँ।'

'आह, अल्लाह तुम्हारा भला करे। क्या त्सादा के हमजात का बेटा लेनदारों से छिपता है?' अबूतालिब ने झटपट अपनी फर की टोपी उतारी और फ्रोस्या के करीब से गुजरते हुए उसकी तरफ आँख से इशारा करके कहा - 'रसूल, इस औरत से कह दो कि जब अबूतालिब इस घर में आता है, तो दरवाजे अपने आप ही खुल जाते हैं और यह कि उस वक्त तुम, रसूल, हमेशा घर पर होते हो। अगर तुम घर पर नहीं भी हो, तो भी अबूतालिब इस घर में खा-पी सकता है और जरूरत होने पर सो भी सकता है।'

'फ्रोस्या का कोई कुसूर नहीं है। मेरी बीवी फातिमात काम पर जाते हुए उसे सब से यह कहने की हिदायत कर गई थी कि मैं घर पर नहीं हूँ। बीवी मेरी बड़ी फिक्र करती है।'

'खुशकिस्मत हैं वे जिनकी बीवियाँ हैं और जिनके सिर वे अपने सभी गुनाह मढ़ सकते हैं। पर फातिमात क्या यह भूल गईं कि आज बृहस्पतिवार है?' अपनी गीली, झबरीली फर की टोपी झाड़ते हुए अबूतालिब ने कहा।

'बृहस्पति को क्या खास बात होती है?'

'इस दिन मैं गुसल करता हूँ। क्या तुमने इस बात की तरफ ध्यान नहीं दिया कि मैं हर बृहस्पति को हमामघर जाता हूँ और चूँकि हमामघर तुम्हारे घर के पास है, इसलिए हमेशा यह उम्मीद की जा सकती है कि मैं कुछ देर बैठने, गपशप करने और सिगरेट के कश लगाने के लिए तुम्हारे यहाँ भी आ सकता हूँ।'

'आपको हमामघर जाने की क्या जरूरत पड़ी है, अबूतालिब? आपके तो फ्लैट में ही गुसलखाना और गर्म पानी भी है।'

'गुसलखाना और फव्वारा - ये तो रई की रोटी के टुकड़े जैसे हैं, मगर हमामघर है शादी की दावत के समान। मेरा एक बाग है और हजारों सालों से पहाड़ों से बहकर आनेवाला एक सोता भी है। मैं इस सोते के पानी से अपने पेड़ों की सिंचाई करता हूँ। मगर क्या मैं जलपात्र से भी पेड़ों को सींच सकता था?

हमामघर को मैं जोरदार पहाड़ी सोता मानता हूँ और तुम्हारे शावर और गुसलखाने को जलपात्र। नहीं रसूल, इन खिलौनों को तुम बच्चों के कवि नूरूद्दीन यूसुफोव के लिए ही रहने दो। सुना है कि अब वह कठपुतलियों के लिए सिनेरियो लिखता है। उसकी कठपुतलियों के लिए वे बढ़िया रहेंगे।'

'हमामघर के बाद चाय पीना बढ़िया रहेगा,' जब हम बरामदे से कमरे में आए, तो मैंने अबूतालिब को यह सुझाव दिया।

'वल्लाह-चाय भी चलेगी, बिल्लाह-शोरबा भी कुछ बुरा नहीं रहेगा, तल्लाह-शराब से भी काम चल जाएगा। मगर गुसल के बाद वोद्का ही सबसे अच्छी रहेगी।'

'शोरबा तो हमारे यहाँ है, मगर कल का। इस वक्त सुबह है, अभी ताजा शोरबा नहीं पका।'

'हम कल के शोरबे से शुरू करेंगे और तब तक ताजा भी तैयार हो जाएगा।'

फ्रोस्या ने जब तक मेज लगाई, मैंने विदेशी शराबों के अपने संग्रह का प्रदर्शन शुरू किया।

सागर पार के विभिन्न देशों से रंग-बिरंगी सुंदर बोतलों में मैं रम, ब्रांडी, जिन, ह्विस्की, काल्वादोस, अबसेंट, वेर्मूत, स्लिवोवित्सा और हंगेरियाई ऊनीकूम आदि लाया था... ब्रांडियाँ भी तरह-तरह की थीं - मार्टीनी, काम्यू और प्लीस्का।

'जो भी पीना चाहते हैं, वही अपने लिए चुन लें, अबूतालिब।'

'रसूल, यह सब बकवास तुम मेरे सामने से उठा लो। अगर पिलाना ही चाहते हो, तो सफेद निशानवाली साधारण वोद्का पिलाओ। सफेद निशानवाली वोद्का सिर्फ इसीलिए अच्छी नहीं है कि हम उसे जानते हैं, बल्कि इसलिए भी कि वह हमें जानती है। जो कुछ तुम मुझे दिखा रहे हो, मुमकिन है कि वे बहुत जायकेदार हों, मगर ये सभी बोतलें बहुत दूर से आई हैं, वे पराई, मेरे लिए अनजानी भाषाओं में बोलती हैं और मैं जिस भाषा में बोलता हूँ, वह उनकी समझ में नहीं आएगी। इसके अलावा आदत और मिजाज का भी सवाल है। नहीं, हम एक-दूसरे को बिल्कुल नहीं जानते। ये बोतलें अपरिचित मेहमानों जैसी हैं, जिनके साथ पहले बातचीत और जान-पहचान करना, अच्छी तरह घुलना-मिलना जरूरी है। मुझे अंदेशा है कि हम एक-दूसरे को समझ नहीं पाएँगे। इन्हें अपने दोस्तों-मास्को के लेखकों के लिए रहने दो। इन्हें उनके लिए भी रख छोड़ो, जो सगी माँ द्वारा अपने घर में पकाए गए खाने का स्वाद भूल चुके हैं।'

मेरे संग्रह में वोद्का की एक भी बोतल नहीं थी। मैंने ऐसे जाहिर किया कि अभी दुकान से बोतल ले आता हूँ। मुझे आशा थी कि अबूतालिब ऐसा करने से मना करेंगे, क्योंकि बाहर बारिश थी, ठंडी हवा चल रही थी और इसके अलावा घर में पीने को बहुत कुछ था। वैसे तो यह सनक ही थी कि मेज पर बेहतरीन फ्रांसीसी ब्रांडियों की बोतलें होते हुए भी वोद्का की माँग की जाए।

अबूतालिब सचमुच ही मुझे जाने से रोकने लगे -

'रसूल, बेशक तुम्हारे बाल पक गए हैं, फिर भी फौरन यह पता चलता है कि तुम अभी बच्चे ही हो। क्या वोद्का लाने को तुम्हें खुद जाना चाहिए, क्या तुमसे कम उम्र के लोग नहीं हैं? बाहर अहाते में जाओ, पड़ोस में रहनेवाले किसी छोकरे से कहो, वही जाकर ले आएगा। मुझ कहीं जाने की जल्दी नहीं है, मैं खुशी से उसके लौटने का इंतजार करूँगा।'

अबूतालिब ने जैसा कहा, मुझे वैसा ही करना पड़ा। मैंने पड़ोस में रहनेवाले एक छोकरे को पैसे दिए और वही वोद्का लेने भाग गया। अबूतालिब ने इसी बीच इधर-उधर नजर दौड़ाई।

'तुम्हारे घर में पहाड़ से आया हुआ कोई मेहमान दिखाई नहीं दे रहा। क्या सचमुच एक भी मेहमान नहीं है?'

'आज तो कोई नहीं है।'

'जब मेरे दोस्त और तुम्हारे पिता हमजात जिंदा थे, तो इस घर में हमेशा मेहमान होते थे। मेहमानों का होना इसलिए अच्छा रहता है कि उनके पास हमेशा तंबाकू होता है।'

'तंबाकूनोशी को तो मेरे यहाँ भी कुछ मिल जाएगा।' मैंने तरह-तरह की बढ़िया सिगरेटों का डिब्बा निकालकर सामने रख दिया।

'ये चिकनी सफेद नलियाँ मेरे लिए नहीं हैं। ये तो तुम मास्कोवालों के लिए ही ठीक हैं। मुझे तो सिर्फ अपना तेज पहाड़ी तंबाकू ही पसंद है। अपनी तंबाकू की थैली निकालनी होगी।'

अबूतालिब ने कुरते के नीचे से बड़ी सारी थैली निकाली और उसे उलटकर उसके तल की सीवन को खुरचा और एक सिगरेट बनाने के लिए तंबाकू निकाला। बड़ी निपुणता से उन्होंने सिगरेट लपेटी और जबान से थूक लगाकर चिपकाया।

'खुद बनाई गई इस सिगरेट से भला तुम्हारी इन सीधी डंडियों की तुलना हो सकती है? मेरी इस सिगरेट का अपना रूप है, वह किसी और से मिलती-जुलती नहीं। मगर तुम्हारी सभी सिगरेटें एक जैसी हैं। अब तुम्हीं बताओ मुझे कि डिब्बे में से बनी-बनाई सिगरेट निकालने में या अपने हाथ से ऐसी सिगरेट बनाने में ज्यादा मजा है? बात यह है कि मैं तो जब इसे बनाता हूँ, तो उस वक्त भी खुशी हासिल करता हूँ। मैं भला यह खुशी क्यों गँवाऊँ?'

मैंने स्विस या बेल्जियम का लाइटर जलाया, मगर अबूतालिब ने जलते हुए लाइटरवाला मेरा हाथ परे हटा दिया। उन्होंने जेब से इस्पात का एक टुकड़ा, छोटा-सा चकमक और बटे हुए सूत का टुकड़ा निकाला। सूत उन्होंने चकमक पर रखा और इस्पात का टुकड़ा मारकर चिनगारी पैदा की। इसके बाद उन्होंने सूत को हिला-डुलाकर उसे जोर से जलने को विवश किया और उससे सिगरेट जलाई। जलते हुए सूत को मेरी नाक के पास ले जाकर बोले -

'सूँघो तो, कैसी गंध है इसकी? बढ़िया है न? और तुम्हारे लाइटर से कैसी गंध आती है?'

कुछ देर को अबूतालिब धुएँ के बादल में खो गए। धुआँ कुछ गायब हो जाने पर अबूतालिब ने पूछा -

'यह बताओ रसूल, कि तुम्हारा सिर अभी से क्यों सफेद हो गया?'

'मालूम नहीं, अबूतालिब।'

'मगर मुझे मालूम है कि मेरा सिर क्यों सफेद है।'

'भला क्यों?'

'मेरा सिर इसलिए सफेद हो गया है कि मुझे वोद्का लाने के लिए दुकान पर जानेवाले इन छोकरों का हमेशा बहुत इंतजार करना करना पड़ता है। हाँ, रसूल, बच्चे तब तक माँ-बाप की परेशानियों को नहीं समझ पाते, जब तक उनके अपने बच्चे नहीं हो जाते। ठीक इसी तरह वे, जो पीते नहीं, हमें नहीं समझ पाते। वोद्का लाने के लिए उसे भेजना चाहिए, जो खुद उसे प्यार करता हो, तब देर नहीं होगी।'

इसी बीच फ्रोस्या ने मेज लगा दी। कुछ देर बाद मेज के बीचोंबीच वोद्का की बोतल भी आ गई।

'ओह,' अबूतालिब ने कहा, 'साधारण सामूहिक किसानों के बीच मानो सिवुख का अध्यक्ष आ गया हो।' उन्होंने वोद्का की बोतल लेकर उसे बच्चे की तरह झुलाया - 'अरे, रे, कितनी बढ़िया बोतल है। शायद इसे लानेवाला लड़का बहुत ही भला आदमी बनेगा।'

इसी वक्त मेज पर रखे छोटे-छोटे जामों की तरफ अबूतालिब का ध्यान गया। उनके माथे पर ऐसे बल पड़ गए मानो मुँह में कोई बहुत कड़वी चीज आ गई हो या दाँत में दर्द हो। उन्होंने जाम को इधर-उधर घुमाकर देखा, उसमें झाँका - शायद वह उसमें अपनी सिगरेट का टोटा डालना और इस तरह उस चीज के प्रति अपनी तिरस्कार भावना व्यक्त करना चाहते थे, जो इसी की अधिकारिणी थी।

मैंने जार्जियनों द्वारा भेंट किया गया बड़ा-सा सींग-जाम अबूतालिब की तरफ बढ़ा दिया।

बुजुर्ग कवि ने भिन्न दिशाओं से देर तक उसे गौर से देखा और फिर अपनी राय जाहिर की -

'अच्छा सींग है, मगर यदि इस पर चाँदी न मढ़ी होती, तो और भी ज्यादा सुंदर लगता। सींग पर यह नक्काशीवाली चाँदी दूल्हे की पेटी जैसी लगती है। क्या जरूरत है इसकी? क्या चाँदी से वोद्का अधिक नशेवाली या ज्यादा मजेदार हो जाएगी? नहीं, रसूल, तुम मुझे मामूली गिलास दो, जो जिंदगी भर मेरे हाथ में रहा है। मुझे मालूम है कि गिलास में कितने घूँट होते हैं, कब मुझे रुकना और कब पीना जारी रखना चाहिए।'

मैंने अबूतालिब की यह इच्छा भी पूरी कर दी। उन्होंने वोद्का गिलास में ढाली, उसमें डबल रोटी का छोटा-सा टुकड़ा डाला और दार्गिन भाषा में कहा -

'देरखाब।' इसके बाद एक ही बार में गिलास खाली कर दिया, साँस ली और कहा - 'पीने से पहले हमेशा 'देरखाब' कहना चाहिए। यह सही है कि उसका अर्थ स्पष्ट करना मुश्किल है, यह भी मुमकिन है कि उसका कोई विशेष अर्थ हो भी ही नहीं, पर क्या 'देरखाब' शब्द ऐसे ही समझ में नहीं आ जाता।'

वोद्का पीने के बाद अबूतालिब ने शोरबे की तश्तरी अपने करीब खींच ली, एक अलग प्लेट में मांस निकाल लिया और शोरबे में डबल रोटी के टुकड़े डाले। वे धीरे-धीरे, गर्म और जायकेदार शोरबे के हर चमचे का मजा ले लेकर उसे खाने लगे। जब-तब वे इतमीनान से मांस का छोटा-सा टुकड़ा काटकर भी मुँह में डाल

लेते। मेरे ख्याल में अगर वे उसे किसी दूसरी तरह खाते या अपने जेबी चाकू के बजाय किसी और चीज से काटते, तो शायद मांस उन्हें इतना मजेदार न लगता।

शोरबा और मांस खाने के बाद अबूतालिब ने मेज पर से डबल रोटी के सभी कण इकट्ठे किए और उन्हें मुँह में डाल लिया। इसके बाद उन्होंने थोड़ी-सी वोद्का और पी तथा मूँछों पर हाथ फेरा।

'शायद अब चाय पीना पसंद करेंगे?'

'अब फिर से तंबाकू मेरी चाय होगा। रसूल, मुझे यह बताओ कि सिगरेट दूसरी सभी चीजों से किस बात में भिन्न है?'

'मालूम नहीं।'

'बाकी सभी चीजों को जब खींचा जाता है, तो वे लंबी हो जाती हैं और यह उलटे छोटी रह जाती है,' अपनी इस भोली-भाली पहेली से खुश होते हुए वे हँस दिए।

'आप बहुत ज्यादा सिगरेटें पीते हैं, अबूतालिब, आपकी सेहत के लिए क्या ये बुरी नहीं हैं?'

'कहते हैं कि बढ़िया खाने के बाद तो खुद अल्लाह भी तंबाकूनोशी करता है।'

सिगरेट पीने के बाद अबूतालिब ने अचानक यह पूछा।

'लेखक-संघ की प्रबंध-समिति की बैठक कब होगी?'

'कल।'

'लेखक सहायता कोष में इस बार जैनुद्दीन की अर्जी पर गौर किया जाएगा या नहीं?'

'मालूम नहीं, मगर आपको इससे क्या लेना-देना है?'

'तुम्हें एक किस्सा सुनाता हूँ। जब मैं किशोर था, तो बछड़े चराता था। मेरे बछड़े बड़े ही भले थे। मैं मजे से धूप में हरी घास पर लेटा रहता और वे मेरे आस-पास चरते रहते। सभी बहुत खुश थे - मैं भी, बछड़े भी और बछड़ों की मालकिन भी। मगर बाद में मुसीबत आ गई - एक दबंग बछड़े ने जई के खेत का रास्ता मालूम कर लिया। उसके पीछे-पीछे बाकी बछड़े भी उधर ही जाने लगे। बस, मेरी चैन की जिंदगी खत्म हो गई। बछड़ों को जई के खेत की ओर जाने से मैं न रोक सका और इसलिए हर वक्त उनके करीब ही बने रहना पड़ता था। हमारे कवियों के लिए लेखक सहायता कोष भी ऐसा ही बन गया है। जब तक उन्हें इस कोष

की गंध नहीं आई थी, वे चैन से रहते थे, किताबें लिखते थे। मालूम नहीं कि पहल किसने की, मगर अब तो जई चरनेवाले मेरे बछड़ों की तरह सभी साहित्यकार सहायता कोष के सपने देखते हैं। सुबह उठते ही वे कविताएँ नहीं, आर्थिक सहायता पाने के लिए तरह-तरह की अर्जियाँ लिखने बैठ जाते हैं। सो मैं भी एक अर्जी लिखना चाहता हूँ और तुम लोग प्रबंध-समिति में उस पर विचार करना।'

'किस बारे में, अबूतालिब? किस चीज की जरूरत है आपको?'

'यह तो तुम्हें मालूम ही है कि अब तक एक भी डाक्टर मेरा बदन नहीं देख पाया है। फिर भी मैंने सेनेटोरियम का पास लेने का निर्णय किया है।'

'यही समझिए कि पास आपकी जेब में है। मगर लेखक संघ के बजाय दागिस्तान की सर्वोच्च सोवियत से इसके लिए अनुरोध करना क्या आपके लिए ज्यादा अच्छा नहीं रहेगा? आप तो सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष मंडल के सदस्य हैं। लेखकों के सेनेटोरियम के मुकाबले में सरकारी सेनेटोरियम बेहतर है।'

अबूतालिब सिर हिलाने और जबान चटकारने लगे। उसकी यह चटकारी बहुत ही भिन्न भावनाओं - हर्ष, निराशा, आश्चर्य और जैसा कि इस समय था - असहमति को व्यक्त कर सकती थी।

'नहीं, रसूल, पहली बात तो यह है कि सर्वोच्च सोवियत के लिए मुझे अस्थायी रूप से, सिर्फ चार साल के लिए चुना गया है और लेखक मैं जिंदगी भर के लिए हूँ। दूसरे, दोनों सेनेटोरियमों में कुछ न कुछ त्रुटियाँ तो होंगी ही। तो बताओ कि तुम्हारी और खापालायेव की आलोचना करना ज्यादा आसान होगा या सर्वोच्च सोवियत की?'

'तो अर्जी लिख दीजिए, कल उस पर गौर कर लेंगे।'

'अर्जी तो मिर्जा लिख देगा, मैंने तो कभी नहीं लिखी, मगर तुम लोग पास तैयार कर लो,' इतना कहकर अबूतालिब खड़े हो गए, बाहर जाने को तैयार हो गए।

'अबूतालिब, अब आप कहाँ जाएँगे?'

'प्रकाशन गृह जाना चाहता हूँ। सुना है कि मेरी नई किताब छप गई है। देखना चाहिए कि बेटा है या बेटी।'

'शाम को अध्यापिका प्रशिक्षण संस्थान में आइएगा, लेखकों की विद्यार्थियों से भेंट होगी।'

'अच्छी बात है। जुरना साथ लेता आऊँ?'

'आह, अबूतालिब, आप जुरना-वादक नहीं, कवि हैं। कविता-संग्रह साथ लेते आइए, यही ज्यादा अच्छा रहेगा।'

'तो मुलाकात होगी,' अबूतालिब यह कहकर चले गए।

अध्यापिका प्रशिक्षण संस्थान में कवि-सम्मेलन शाम के सात बजे शुरू होनेवाला था। बहुजातीय दागिस्तान के कवि जमा हो रहे थे। सात बजे। मैंने इधर-उधर नजर दौड़ाई। अबूतालिब कहीं नजर नहीं आए। उनके बिना ही कवि-सम्मेलन आरंभ करना पड़ा। मंच पर एक के बाद एक कवि आता रहा। हर किसी ने अपनी भाषा में कविता सुनाई। किसी ने लाक, किसी ने कुमीक, किसी ने लेजगीन और किसी ने अवार भाषा में। एक युवा कवि जब अपनी लंबी कविता सुना रहा था, तो हाल में बैठे लोगों ने जोर से तालियाँ बजानी शुरू की। यह अबूतालिब गफूरोव मंच पर आए थे। लड़कियों ने तालियाँ बजाकर उनका स्वागत किया था।

अन्य दो कवियों की कविताएँ सुनने के बाद मैंने अबूतालिब को इशारा किया कि वे कविता-पाठ करने को तैयार हो जाएँ। अबूतालिब ने फौरन गंभीर मुद्रा बना ली, ऐसे बैठ गए मानो फोटो खिंचवाने जा रहे हों और मूँछों पर ताव देने लगे। 'देख रहे हो न, तैयार हो रहा हूँ,' बुजुर्ग शायर मानो इस तरह मुझसे यह कहना चाहते थे।

मंच पर आकर अबूतालिब ने लड़कियों से कभी रूसी, कभी अवार, और कभी लाक भाषा में कुछ बातचीत की। वे दागिस्तान की हर भाषा कुछ-कुछ जानते हैं। लाक भाषा में उन्होंने दो कविताएँ सुनाई।

अबूतालिब ने अपना यह साहित्यिक कार्यक्रम ऐसे जल्दी-जल्दी समाप्त किया मानो यह प्रस्तावना या भूमिका हो और वे मुख्य चीज के लिए समय बचा रहे हों। हाथ से इशारा करके उन्होंने तालियाँ बंद करवाई और लड़कियों से पूछा -

'चाहती हैं कि मैं आपको जुरना सुनाऊँ?'

'चाहती हैं, चाहती हैं, सुनाइए।' लड़कियाँ चिल्लाई।

अबूतालिब मंच के पीछे से जुरना और मुरली ले आए और धीरे-धीरे कभी एक, तो कभी दूसरा साज बजाने लगे। मगर सभी समझ रहे थे कि यह तो सिर्फ तैयारी हो रही है, साजों को सुर में किया जा रहा है मानो आवाज को आजमाकर

देखा जा रहा है। यह यकीन हो जाने पर कि साज सुर में हो गए हैं, अबूतालिब ने अचानक मेज से पानी का भरा गिलास उठाया और पानी जुरने में उँड़ेल दिया।

'खुद पीने से पहले घोड़े को पिलाओ,' पहाड़ी लोग ऐसा कहते हैं। 'खुद पीने से पहले जुरने को पिलाओ,' पहाड़ों में जुरना-वादक कहते हैं।

अबूतालिब जुरना बजाने और उसके साथ-साथ खुद भी कभी एक तो कभी दूसरी दिशा में हिलने-डुलने लगे। जवान लड़कियों से भरा हॉल देखकर अबूतालिब रंग में आ गए थे। शायद उस रात अबूतालिब का जुरना सारे मखचकला में सुनाई दिया होगा।

अध्यक्ष मंडल में अपनी जगह पर बैठते हुए अबूतालिब ने सरलता से पूछा -

'क्यों कैसा बजाया मैंने जुरना? बढ़िया न?'

'हाँ, बढ़िया।'

'तो तुमने ऐसे धीरे-धीरे तालियाँ क्यो बजाई? अभी और तालियाँ बजाओ।'

अबूतालिब के ये शब्द का सुनकर श्रोता खुशमिजाजी से हँस दिए।

कवि-सम्मेलन का मैं ही संचालन कर रहा था और मुझे सचमुच ही यह अच्छा नहीं लगा था कि अबूतालिब जैसे बढ़िया कवि जुरना-वादक के रूप में सामने आए थे। यह तो बिल्कुल वैसी ही बात थी मानो रूसी कवि येसेनिन कविताएँ सुनाने के बजाय मंच पर नाचने लगें। येसेनिन नाच तो शायद सकते ही थे। मगर हर चीज का अपना वक्त होता है। शायद अध्यक्षमंडल में बैठा हुआ मैं नाक-भौंह सिकोड़ता रहा था और मैंने तालियाँ भी कम बजाई थीं और इसीलिए अबूतालिब के शब्द सुनकर लोग हँस दिए थे।

लड़कियों के एक दल के साथ चौड़ी सीढ़ी उतरकर हम वहाँ गए, जहाँ हमने ओवरकोट उतारे थे। ओवरकोट पहनकर मैंने दर्पण में अपने को देखा। उन दिनों ऊँचे, चौड़े और पैडवाले ओवरकोटों का फैशन था। मैं ऐसा ही ओवरकोट पहने था। अबूतालिब ने यह देखकर सिर हिलाया -

'पहले तो दुंबे यानी चर्बीवाली बढ़िया खुराक खाकर कंधे चौड़े होते थे और अब रुई से। पहले तो कुमुज के साथ गीत गाए जाते थे और अब कागज सामने रखकर पढ़े जाते हैं। बड़ी तब्दीलियाँ हो गई हैं दुनिया में मुझे वे पसंद नहीं हैं।'

'कवि-सम्मेलन में देर से क्यों आए थे, अबूतालिब?'

'मैं तो बिल्कुल तैयार होकर घर से निकलने ही वाला था कि अचानक अवार थिएटर का एक कलाकार मेरे पास भागा आया...'

'अवार थिएटर को आपकी क्या जरूरत पड़ गई?'

'बात यह है कि उनके खेल में शादी का दृश्य आता है। अब तो शादी के बिना एक भी खेल नहीं होता। मगर जुरना-वादक बीमार हो गया। जुरने के बिना भला क्या शादी हो सकती है? इसलिए उन्होंने मुझे सिर्फ दस मिनट तक जुरना बजाने के लिए बुलवा भेजा। मगर जब तक हम थिएटर पहुँचे, जब तक शादी शुरू हुई, वक्त तो बीतता गया। मैंने ऐसे दो गीत बजाए कि दर्शक खेल को भूल-भालकर सिर्फ मुझे ही सुनते रहे। अगर मैं देर गए रात तक जुरना बजाता रहता, तो भी वे बैठे सुनते रहते।'

'प्रसिद्ध कवि अबूतालिब गफूरोव और जनतंत्र की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष मंडल के सदस्य की जगह अगर मैं होता, तो जुरना-वादक के रूप में कभी वहाँ न जाता।'

'अबूतालिब तुमसे यह बेहतर जानता है कि उसे क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए।'

'आप प्रकाशन गृह तो हो आए न? आपकी किताब का क्या हाल है?'

'अल्लाह का शुक्र है कि किताब छप गई। अल्लाह का शुक्र है कि कुछ पैसे मिल गए। अल्लाह का शुक्र है कि कर्ज अदा कर दिया। अल्लाह का शुक्र है कि बत्तख खरीद ली।'

'तो 'मागारीच' (दावत) होगी?'

'किसकी?'

'संपादक, चित्रकार और लेखपाल की। उन सभी की, जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में भाग लिया है।'

'संपादक की 'मागारीच'?' अबूतालिब तो गुस्से से चलते-चलते रुक भी गए। 'उसकी 'मागारीच' नहीं, 'मागोरोच' होनी चाहिए।' अवार भाषा में 'मागोरोच' का अर्थ है मरम्मत या पिटाई करना। अपने बढ़िया शब्द-खिलवाड़ से खुश होकर अबूतालिब देर तक हँसते रहे। इसके बाद अपनी बात जारी रखते हुए बोले -

'सुनो रसूल, लोग कहते हैं कि अगर कोई दागिस्तानी अपने बेटों की सुन्नत कराएगा, तो उसे नौकरी, यहाँ तक कि पार्टी से भी बर्खास्त किया जा सकता है।

उन संपादकों का पत्ता क्यों नहीं काटा जाता, जो मेरी कविताओं को लुंज-पुंज बनाते हैं, उनके टुकड़े-टुकड़े करते हैं? संपादित कविता देखते ही मैं तुम्हें यह बता सकता हूँ कि संपादक किस गाँव की बोली में ढालने की कोशिश करता है।' अबूतालिब अचानक खामोश हो गए और फिर मुस्कराकर बोले - 'हाँ, वह औरत जो करारनामे पर दस्तखत कराती है, वह बढ़िया है। अहा, क्या बढ़िया औरत है वह। इस औरत का मैंने बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया।'

'और क्या कहा आपने उसे? शायद कोई तोहफा दिया?'

'मैंने उससे कहा कि अगर उसके यहाँ कोई खराब, बदरंग या टूटा-फूटा बर्तन हो, तो वह उसे मेरे पास ले आए। मैं उसकी मरम्मत कर दूँगा, टाँका लगा दूँगा और वह नए जैसा हो जाएगा।'

अबूतालिब की यह शरारत मुझे अवार थिएटर में उनके जुरना-वादन से भी ज्यादा खली। बाड़ के पास ताँबे के टुकड़ों का ढेर देखकर मैंने बुजुर्ग शायर को जान-बूझकर चिढ़ाते हुए कहा -

'पहले जब आप टीनगर थे, तो शायद उन दिनों पुराने बर्तन यहाँ इस तरह न पड़े रहते। आप इन्हें इकट्ठा करके घर ले जाते?'

'नहीं, मुझे इन्हें ले जाने का मौका न मिलता, रसूल,' अबूतालिब ने खुशमिजाजी से जवाब दिया। 'इन्हें तो मुझसे पहले ही दूसरे उठा ले गए होते।'

रास्ते में हमें देर से जानेवाला एक राहगीर मिल गया। अबूतालिब ने किसी तरह की हिचक-झिझक के बिना उसे रोका, उससे तंबाकू और दियासलाई माँगी और सिगरेट पीने लगे।

साफ बात यह है कि अबूतालिब की ऐसी हरकतें मुझे अच्छी नहीं लगीं। दागिस्तान के जन-कवि, अपने सारे जनतंत्र के विख्यात व्यक्ति और सरकार के सदस्य, वे कभी तो रंगमंच पर जुरना बजाते थे, कभी प्रकाशनगृह की सेक्रेटरी के बर्तनों की मरम्मत करने को तैयार थे, कभी देर से रात को मखचकला की सड़क पर मिल जानेवाले राहगीर से तंबाकू माँगते थे। मगर मैंने बुजुर्ग की लानत-मलामत नहीं की। मुझे डर था कि वे नाराज हो जाएँगे। चुनांचे मैंने उनसे यह कहा -

'आप काफी बड़ी उम्र के हो चुके हैं, अबूतालिब। अगर आप सिगरेट पीना छोड़ दें, तो क्या यह आपकी सेहत के लिए ज्यादा अच्छा नहीं रहेगा?'

'मतलब यह कि आज सिगरेट पीना छोड़ दो, कल बर्तनों की मरम्मत करना छोड़ दो और परसों जुरना बजाना छोड़ दो। ऐसा करने पर तो मैं अपने आप ही कविता-रचना बंद कर दूँगा, वे खुद-ब-खुद ही मुझसे दूर भाग जाएँगी। वे उसी अबूतालिब से परिचित हैं और प्यार करती हैं, जो बर्तनों की मरम्मत करता है, सिगरेटें पीता है और जुरना बजाता है। अगर मैं अबूतालिब ही नहीं रहूँगा, तो मेरी कविताओं को मेरी क्या जरूरत रहेगी? मैं अबूतालिब गफूरोव हूँ, रसूल हमजातोव नहीं, जो सिगरेट पीना चाहता और बर्तनों की मरम्मत नहीं कर सकता, मगर लेखक-संघ का संचालन करने में समर्थ है। इसी तरह मैं न तो यूसुफ खापालायेव हूँ, न नूरूद्दीन यूसुफोव, न मक्सिम गोर्की और न ही जोश्चेंको...'

(उन दिनों जोश्चेंको की कड़ी आलोचना हो रही थी और इसलिए अबूतालिब का उसका नाम भी याद आ गया।)

'पहाड़ी बकरा पहाड़ों के सिवा कहाँ छिप सकता है? नाला दर्रे के सिवा कहाँ बह सकता है? तुम मेरे सिर पर पराई फर की टोपी नहीं रखो। तुम हाथ धोकर मेरे अतीत के पीछे क्यों पड़े हो? हाँ, मैं कभी जुरनावादक, चरवाहा और टीनगर था। मगर क्या मुझे अपने अतीत पर शर्म आती है? वह अतीत भी तो मेरा ही था, मुझ अबूतालिब का। रसूल, मैं इस वक्त तुमसे जो कह रहा हूँ, मेरे इन शब्दों को याद कर लो। अगर तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे, तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसाएगा। मैंने बीवियों को छोड़ा और बीवियों ने मुझे। मगर मैं जो काम करना जानता हूँ, वह मुझे छोड़कर नहीं जा सकता और न ही मैं उसे छोड़ सकता हूँ।'

हाँ, यही थे बुजुर्ग शायर अबूतालिब, मेरे पिता के दोस्त। वे ऐसे ही थे और इसी रूप में उन्हें ग्रहण करना चाहिए। अगर वे बदल जाते, तो अबूतालिब और कवि भी न रहते।

एक और किस्सा सुनाता हूँ, जिसका शीर्षक हो सकता है - अबूतालिब का नया फ्लैट। यह तब की बात है, जब मुझे दागिस्तान के लेखक-संघ का अध्यक्ष चुना ही गया था। यह ऐसा पद है, जिसमें कर्तव्यों की तुलना में अधिकार ज्यादा हैं। अगर कोई खुद ही अपने लिए काम न खोजे, तो मजे से अपना मूलभूत कार्य यानी कविताएँ रचना जारी रख सकता है। मगर मैं उस वक्त जोशीला नौजवान था। मैंने सरगर्मी दिखानी शुरू की। मैं अपने पद से संबंधित सभी तरह के काम ढूँढ़ने लगा -

मेरे ख्याल में अगर कोई आदमी अपने घर की मजबूती और दृढ़ता जाँचना चाहता है, तो वह शहतीरों, कोने के आधार-स्तंभों यानी सभी तरह के स्तंभों को ही जाँचना शुरू करता है। मैंने ध्यान से देखा और इस नतीजे पर पहुँचा कि चार जन-कवि - लेजगीन ताहिर खूरियूक्स्की, कुमीक अली गाजीयेव, अवार जाहिद हाजीयेव और लाक अबूतालिब गफूरोव दागिस्तान के लेखक-संघ के आधार-स्तंभ हैं। यह समझने के बाद मैंने अपनी कार्रवाई की योजना बनाई। मैंने यह तय किया कि अगर दागिस्तान के सरकारी प्रतिनिधि से इन चार महारथियों की भेंट कराई जाए, तो अच्छा रहे, कवि उसे अपनी जरूरतें बताएँगे और सरकारी प्रतिनिधि कवियों के सामने अपनी इच्छाएँ व्यक्त कर सकेगा।

तो प्रादेशिक पार्टी समिति के सेक्रेटरी अब्दुर्रहमान दानीयालोव से हमारी बातें हो रही थीं। चाय की चुसकियाँ लेते हुए अनौपचारिक ढंग से खुलकर बातें की जा रही थीं। मेरे कवियों की खुशी का तो पारावार नहीं था और चारों एक ही आवाज में यह कह रहे थे कि हमारे लेखक-संघ का नया प्रधान रसूल हमजातोव कितना अच्छा आदमी है। साथी दानीयालोव को जन-कवियों से बातचीत करते हुए खुशी हो रही थी और वे भी मन ही मन रसूल की तारीफ कर रहे थे। मगर मैं ऐसे जाहिर कर रहा था मानो मेरा इस मामले से कोई सरोकार ही न हो।

हम लोगों ने दागिस्तान, जीवन और कविताओं की चर्चा की। आखिर प्रादेशिक समिति के सेक्रेटरी ने कहा कि हर कवि अपनी कोई न कोई इच्छा व्यक्त करे। ताहिर खूरियूक्स्की ने सबसे पहले अपनी बात कही -

'साथी, दानीयालोव, मुझे इस चीज से बहुत दुख होता है कि ठंड पड़ने पर बहुत-सी भेड़ें चरागाहों में मर जाती हैं। क्या गर्मियों में बहुत ज्यादा आदमियों को वहाँ भेजना मुमकिन नहीं, ताकि वे जाड़े भर के लिए चारा तैयार कर लिया करें?'

साथी दानीयालोव ने कवि के शब्द नोट कर लिए और पूछा -

'कुछ और भी कहना है आपको?'

'हमारे खूरियूक गाँव के सामूहिक फार्म के लिए क्या एक मोटर देना संभव नहीं?'

अब गाजीयेव अली की बारी आई। उन्होंने अपना मुँह खोला और सेक्रेटरी समेत, हम सभी को अपने पुराने और सड़े हुए दाँत दिखाए।

'क्या मेरे मुँह में अच्छे, नए दाँत नहीं लगवाए जा सकते? इनसे खाने में तकलीफ होती है। दाँतों के बिना गाने में भी तो मजा नहीं आता। जब कविता-

पाठ करता हूँ, तो सिसकारी-सी निकलती है।'

गाजीयेव ने उसी वक्त इस चीज का अमली तौर पर प्रदर्शन भी किया कि दाँतों के बिना कविता-पाठ में कितनी असुविधा होती है। उन्होंने खासाफयूर्त नगर कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष को कविता के रूप में भेजी गई अर्जी सुनाई। कविता में बुजुर्ग कवि को घर गर्माने के लिए कोयला देने की मार्मिक प्रार्थना की गई थी।

'तो मिला कोयला?' दानीयालोव ने पूछा।

'पिछले साल से मामला लटकता चला आ रहा है।'

सेक्रेटरी ने फिर से कागज पर कुछ लिखा और हम जाहिद हाजीयेव की बात सुनने के लिए तैयार हुए।

'जवान लोग कन्सर्टो में गाने के बजाय चिल्लाते हैं। अपनी चीख-चिल्लाहट से वे अच्छे लोक-गीतों का सत्यानाश करते हैं। नए गीत ऐसे हैं कि गायकों को चाहे-अनचाहे चीखने के लिए मजबूर करते हैं। यह सब बंद होना चाहिए। रेडियो पर प्रेम के बारे में बहुत ही ज्यादा गाया जाता है। कुछ गायक तो प्राचीन दंत-कथाओं की हूरों का स्तुति-गान भी करते हैं। साथी दानीयालोव, उनसे कहिए कि वे हूरों का नहीं, बल्कि हमारे कृषि के अग्रणी कर्मियों का गौरव-गान करें।'

अपनी बात कहने के बाद हाजीयेव मेरी ओर मुड़े और कान में फुसफुसाए -

'इसके अलावा, यह भी पता चला है कि कल शाहतामानोव और सुलेमानोव ने रेस्तराँ में शराब पी। लेखकों के लिए शराब पीने की मनाही करनी चाहिए। इस सिलसिले में मैं तुमसे अकेले में बात करने आऊँगा।'

इसके बाद अबूतालिब की बारी आई।

'प्यारे अब्दुर्रहमान,' अबूतालिब ने प्रथम सेक्रेटरी को संबोधित करते हुए कहा, 'मेरी नवीनतम पत्नी ने मेरे लिए बेटा जना है।'

'नवीनतम' पत्नी से आपका क्या मतलब है?'

'मेरी बहुत-सी बीवियाँ हो चुकी हैं। मैं कर ही क्या सकता हूँ - अखबारों में मेरे फोटो छपते हैं, रेडियो पर मेरी चर्चा की जाती है, खूब चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को बताया जाता है कि मैं दागिस्तान का जन-कवि हूँ, संसद-सदस्य हूँ, राजकीय पुरस्कारों से सम्मानित हो चुका हूँ। भोली-भाली नारियाँ इन बातों के फेर में पड़ जाती हैं, धोखा खा जाती हैं। वे सोचती हैं कि अगर मैं इतना नामी-गरामी आदमी

हूँ, तो महल में रहता हूँगा, मेरे यहाँ माल-मते से संदूक और दौलत से थैलियाँ भरी होंगी। बस, वे मुझसे शादी कर लेती हैं। मगर बाद में वे गरीब अबूतालिब को तलघर में बैठा पाती हैं। यह उन्हें अच्छा नहीं लगता और वे मुझे छोड़कर भाग जाती हैं। इसीलिए मेरी बहुत बार शादी हुई है। हाँ, प्यारे अब्दुर्रहमान, मेरे गीत तो बुलबुलों की तरह आकाश में उड़ानें भरते हैं मगर मैं खुद तलघर में ही जिंदगी काटता जा रहा हूँ। दयनीय तलघर से मैं अपने स्वर्णिम गीत आकाश में उड़ाता हूँ। अब मेरी नई बीवी, जिसने मुझे बेटा दिया है, इस बात की धमकी दे रही है कि अगर मैं अच्छा और नया फ्लैट हासिल नहीं करूँगा, तो वह मुझे छोड़कर चली जाएगी। वह बच्चे को छाती से चिपकाए हुए चल देगी... सुनो अब्दुर्रहमान, वह अभी गई नहीं, मगर मुझे उसके लिए अफसोस होने लगा है, तुम मेरा परिवार नहीं तोड़ो, मुझे ऐसा चूल्हा दे दो, जहाँ मैं अपना पतीला टिका सकूँ। मैं सत्तर को पार कर चुका हूँ और मेरी गाड़ी ऊपर की तरफ नहीं, नीचे को जा रही है। इसके अलावा यह भी सुन लो कि अगर तुम मुझे फ्लैट दे दोगे, तो मैं तुम्हें भी अपने यहाँ आने की दावत दूँगा।'

एक हफ्ता भी नहीं बीता कि अबूतालिब को नए फ्लैट की चाबी मिल गई। अलविदा प्यारे तलघर। हमारे अबूतालिब पुश्किन सड़क के एक नए मकान की तीसरी मंजिल के तीन कमरोंवाले फ्लैट में चले गए थे।

एक दिन सड़क पर अबूतालिब से मेरी मुलाकता हो गई। देखकर उन्होंने ऐसा जाहिर किया मानो लोहे के टुकड़ों के अंबार में, जिसके पास से वे गुजर थे, कुछ ढूँढ रहे हों।

'सलाम अबूतालिब, कैसी जिंदगी चल रही है नई जगह पर? फ्लैट तो पसंद है न?'

'कई दिनों से घंटी ढूँढ़ रहा हूँ ताकि उसे घर के पास लटकाकर बजाऊँ और तुम्हें, त्सादा गाँव के हमजात के बेटे को, अपने यहाँ मेहमान बुलाऊँ। तीन बार मैंने सागर की तरफ खिड़की खोली और इस उम्मीद से जुरना बजाया कि तुम उसे सुनोगे और उसकी पुकार पर कान देकर चले आओगे। मगर ऐसा लगता है कि बहुत बड़ी घंटी के बिना काम नहीं चलेगा। चलकर ढूँढ़ता हूँ।'

हम इसी वक्त अबूतालिब का नया घर देखने चल दिए। वहाँ तो सिर्फ दीवारें ही दीवारें थीं। फर्श पर जहाँ-तहाँ वे ऊल-जलूल चीजें पड़ी थीं, जिन्हें अबूतालिब तलघर से अपने साथ ले आए थे। पुराना जुरना, कुमुज, लुहार की पुरानी

धौंकनियाँ (खुदा ही जाने कि नए फ्लैट में उन्हें उनकी क्या जरूरत थी), मिट्टी के तेल के पुराने स्टोव, चिलमचियाँ, बालटियाँ, गागरें, घुटनों तक के बूट, भेड़ की खाल का कोट। पहाड़ों पर से बूढ़े लोग अबूतालिब के यहाँ मेहमान आते और सो भी अपने किसी काम-धंधे के सिलसिले में दौड़-धूप करने। उनकी खुरजियाँ भी पुरानी होतीं। किसी ऐसे ही मेहमान की खाली खुरजी हाथ में उठाए हुए अबूतालिब ने कहा -

'किस्मत की मारी खुरजी, तू खाली क्यों है? अगर तू भेड़ के मांस जैसी किसी भारी चीज से भरी होती, तो मेरे मेहमान को इंतजार न करना पड़ता। इसीलिए कि तू खाली है, लोगों को कितनी बार बेकार ही चाग पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है।'

तो अबूतालिब ने नजरों से ऐसी जगह ढूँढ़ते हुए, जहाँ मुझे बैठा सकते, खाली खुरजी को बुरी तरह कोसा। आखिर जब उन्हें ऐसी कोई जगह न मिली, तो उन्होंने बड़ा-सा छुरा मेरे हाथ में थमाया और मुझे खिड़की के पास ले जाकर अहाते में एक छानी की तरफ इशारा करते हुए बोले -

'वहाँ एक बत्तख बैठी है। जाओ, जाकर उसे हलाल कर डालो। बस, वही हमारा खाना हो जाएगा।'

मैंने छानी का दरवाजा खोला, किसी तरह बत्तख को पकड़ा। जब मैंने उसे हलाल करना शुरू किया, तो वह बुरी तरह छटपटाने लगी। ऊपर से अबूतालिब की आवाज सुनाई दी -

'कौन ऐसे हलाल करता है? बत्तख का सिर दूसरी ओर कर दो। क्या तुम यह भी नहीं जानते कि मक्का किधर है?'

कुल मिलाकर, मैंने अपना काम अच्छी तरह से पूरा कर दिया और यहाँ तक कि अबूतालिब भी तारीफ किए बिना न रह सके।

जैसा कि हमारे यहाँ कहते हैं, अबूतालिब ने चूल्हे पर पतीले का जीन चढ़ाया और देर तक खाना पकाने के काम में उलझे रहे। इसी बीच मैंने फ्लैट का अच्छी तरह से जायजा ले लिया। बुजुर्ग शायर बेशक तलघर से निकलकर नए फ्लैट में आ बसे थे, मगर पुराने पतीले से लेकर पुरानी आदतों तक तलघर की अपनी सारी जिंदगी यहाँ अपने साथ ले आए थे। फ्लैट में एक भी कुर्सी, मेज, अलमारी, पलंग यानी किसी भी तरह का कोई फर्नीचर नहीं था।

'कविताएँ कहाँ बैठकर लिखते हैं, अबूतालिब?'

'इन कमरों में तो अब तक मैंने काम की एक भी कविता नहीं लिखी। शुरू में तो मैं पुराने तलघर में कविता लिखने जाता था। मगर अब वहाँ किसी चित्रकार का स्टूडियो बना दिया गया है। अल्लाह गवाह है, उस तलघर के मुकाबले में मुझे यहाँ नींद भी बुरी आती है। वहाँ मेरा खर्च भी कम होता था और मेरे पास वक्त भी ज्यादा रहता था। लोग भी इस बुरी तरह से परेशान नहीं करते थे। कभी कोई भूले-बिसरे ही उस तलघर में आता था। हाँ, यह सच है कि वहाँ से समुद्र की झलक नहीं मिलती थी। मगर अब वह हर वक्त बूढ़े अबूतालिब की आँखों के सामने रहता है।'

अबूतालिब देर तक कास्पियन सागर को गौर से देखते रहे, जो इस वक्त तूफान के जोरदार थपेड़ों के कारण नीला-सफेद हो रहा था। मैंने उन्हें सागर को देखने दिया, किसी तरह का खलल नहीं डाला। हम खामोश रहे। कुछ देर बाद अबूतालिब ने कहा - 'रसूल, मैं तुम्हें अपनी जिंदगी के दो दिनों, एक सबसे ज्यादा खुशी और एक सबसे ज्यादा गम के दिन के बारे में बताता हूँ।'

'बताइए।'

'बात यह है रसूल, कि यों तो मेरी जिंदगी में खुशी के बहुत दिन आए हैं। राजकीय पदक मिला - मुझे खुशी हुई; फ्लैट की चाबी मिली - मुझे खुशी हुई; तीसरे दशक में जब लाल सेना ने फौजी घोड़ा दिया - मुझे खुशी हुई। उन दिनों घोड़े पर सवार हो मैं लाल सेना के साथ जाता था, दस्ते का जुरना-वादक था। लड़ाई के रास्तों पर मेरा घोड़ा कमांडर के घोड़े के बिल्कुल पीछे रहता था। इससे भी मुझे खुशी होती थी। मगर फिर भी मेरी सबसे पहली और सबसे बड़ी खुशी वह नहीं थी।

'मेरी जिंदगी में सबसे ज्यादा खुशी का दिन तब आया था, जब मैं ग्यारह साल का था और बछड़े चराता था। मेरे पिता ने जिंदगी में पहली बार मुझे जूते भेंट किए। वे नए जूते पाकर मेरी आत्मा में गर्व की जो भावना पैदा हुई, उसे बयान करने के लिए शब्द नहीं मिल सकते। मैं अब बेधड़क उन खड्डों में और उन पगडंडियों पर जाता, जहाँ एक ही दिन पहले तक नुकीले, ठंडे पत्थरों से मेरे पाँव जख्मी हो जाते थे। अब मैं दृढ़ता से इन पत्थरों पर पैर रखता, न दर्द और न ठंड महसूस करता।

'मेरी खुशी तीन दिन तक बनी रही और उनके बाद मेरी जिंदगी के सबसे कड़वे मिनट आए। चौथे दिन पिता जी बोले -

'सुनो अबूतालिब, तुम्हारे पास अब नए, मजबूत जूते हैं, तुम्हारे पास लाठी है और ग्यारह साल तक तुम इस धरती पर जी भी चुके हो। वक्त आ गया है कि अपनी रोजी-रोटी की फिक्र में अब तुम अपनी राह पकड़ो।'

'पिता जी ने कहा कि मैं गाँव-गाँव घूमकर भीख माँगा करूँ। उस वक्त मेरे दिल पर जैसी गुजरी, वैसी तो बाकी सारी जिंदगी में भी नहीं गुजरी। मेरी आँखों से आँसू तो बाद में भी बहे, मगर वैसे कड़वे आँसू वे नहीं थे।

'एक लेखक ने मेरे बारे में कहा है कि 'अबूतालिब को नया फ्लैट मिल गया है। देखेंगे कि उसमें वह कैसी कविताएँ लिखता है।' जैसे कि मुझे यह मालूम न हो कि कविताएँ फ्लैट पर निर्भर नहीं करतीं। अपनी कविताओं के लिए कवि खुद फ्लैट है। कवि का हृदय ही उसकी कविता का घर है। मेरे जीवन के सुख-दुख के सभी क्षण मेरी आत्मा में साँस लेते हैं। मैं खुद कहाँ रहता हूँ, इसका कोई महत्व नहीं है।'

अबूतालिब के फ्लैट ने मुझे परेशान कर दिया। मैंने दागिस्तान जनतंत्र के कर्ता-धर्ताओं से उसकी चर्चा की। यह तय पाया गया कि अबूतालिब की किताब 'अबाबीलें दक्षिण को उड़ती हैं' की रायल्टी का एक हिस्सा कवि के नए फ्लैट के लिए नया और अच्छा फर्नीचर खरीदने के लिए इस्तेमाल किया जाए। इसके लिए 'कारगुजारी की तिकड़ी' बनाई गई : दागिस्तान के पुस्तक-प्रकाशन गृह के डायरेक्टर, व्यापार-मंत्री और मुझे यह काम सौंपा गया। हमें जरूरी फर्नीचर ढूँढ़ना, खरीदना और अबूतालिब के घर पहुँचाना था। इस काम के सिलसिले में पैदा होनेवाले सभी मामलों के बारे में सारी बातचीत करने का भार मुझे सौंपा गया।

हम तीनों ने मखचकला के सभी फर्नीचर-गोदामों के चक्कर लगाए और जरूरी फर्नीचर चुन लिया। सोने के कमरे के लिए, ताकि हमारे जन-कवि मजे से आराम करें, लिखने-पढ़ने के कमरे के लिए ताकि वे अपनी बढ़िया कविताएँ रचें, खाने-पीने के कमरे के लिए, ताकि वे लजीज पकवान खाएँ और मीठे पेय पिएँ।

हमारा ख्याल था कि यह सारा फर्नीचर पाकर और उसे करीने से सजाकर अबूतालिब हम लोगों के प्रति आभार प्रकट करने भागे आएँगे। मगर उनसे तो हमें सहज शुक्रिया या यह भी सुनने को नहीं मिला कि फर्नीचर पहुँच गया है। तब हमने खुद ही अबूतालिब के यहाँ जाकर यह देखने का फैसला किया कि हमारे खरीदे हुए फर्नीचर का उन्होंने क्या किया है।

हमें दरवाजे पर दस्तक देने की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि फ्लैट का दरवाजा खुला था। हम कमरे में दाखिल हुए। खाने की मेज के करीब अबूतालिब अपने परिवार के साथ कालीन पर बैठे थे। घर के सभी लोग घेरा बनाए हुए उकड़ूँ बैठे थे और उनके सामने अखबार पर खाना रखा हुआ था। अबूतालिब प्लेट में से दही खा रहे थे। खाने की चमकती हुई मेज की तरफ अबूतालिब ऐसे देख रहे थे मानो वह आलिंगन में बँधने को आतुर कोई लड़की हो, मगर जिसे बाँहों में कसने की अबूतालिब की कोई इच्छा न हो।

दूसरे कमरे में हमें लिखने की बहुत ही बढ़िया मेज दिखाई दी। उस पर कागज रखे थे। जिन्हें छुआ तक नहीं गया था, पेन और स्याही की दवात रखी थी। ये सभी चीजें और खुद मेज भी इस्तेमाल की चीजों के बजाय संग्रहालय में प्रदर्शित वस्तुओं जैसी अधिक लगती थीं। कमरे के एक कोने में फर्श पर अरबी लिपि में लिखे हुए कुछ कागज पड़े थे।

'अबूतालिब, क्या आप आधुनिक लिपि नहीं जानते?'

'जानता हूँ, मगर पुराने ढंग से लिखने की आदत पड़ी हुई है। पहले अरबी लिपि में लिख लेता हूँ और फिर संपादक के लिए आजकल की लिपि में नकल करता हूँ यानी खुद अपनी रचनाओं का रूपांतर करता हूँ।'

'पलंग पर एक बार भी नहीं सोए,' अबूतालिब की बीवी ने हमें बताया। 'बेकार ही आपने इतनी महँगी चीजें खरीदीं।'

'पलंग की भी खूब कही! शुरू में शहर में अपनी जिंदगी के पहले साल में मैं तकिए की जगह पत्थर रख लेता था और तकिए के मुकाबले में ज्यादा गहरी नींद सोता था। जब बछड़े चराया करता था, उन्हीं दिनों मुझे पत्थर पर सिर रखकर सोने की आदत पड़ गई थी।'

'तो मतलब यह है कि हमने आपके लिए जो चीजें खरीदी हैं, आप उनसे खुश नहीं हैं? पढ़ने-लिखने के कमरे के फर्नीचर से, इन कुर्सियों, इस मेज और अलमारी से?'

'फर्नीचर बहुत अच्छा है। मगर वह मेरे पड़ोसी गोडफ्रीड हसनोव के लिए ज्यादा अच्छा रहता।'

'गोडफ्रीड हसनोव अच्छा पड़ोसी है?'

'मुमकिन है कि वह अच्छा आदमी हो, मगर हमारे बीच तो खट-पट ही रहती है।'

'वह क्यों?'

'वह कुछ अधिक ही सुसंस्कृत है। इसके अलावा मैं कुछ ज्यादा ही देहाती हूँ और वह ज्यादा ही शहरी है। मैं कुछ ज्यादा ही पहाड़ी हूँ और वह ज्यादा ही मैदानी है। हमारी फर की टोपियाँ भी अलग-अलग हैं। शायद सिर भी एक जैसे नहीं हैं। मैं अपनी धरती का बेटा हूँ और वह अपने धंधे का। वह मेरे जुरने और उसकी धुन को बर्दाश्त नहीं कर सकता और मैं उसके पियानो और सिंफोनी को। उसके संगीत का मजा लेने की कोशिश करता हूँ, मगर नहीं ले पाता। यही हाल उसका है - मैं जुरना हाथ में लेता ही हूँ कि वह दरवाजा खटखटाने लगता है - 'अबूतालिब तुम मुझे काम नहीं करने देते!' मैं उससे झूठ-मूठ कहता हूँ कि यह तो रेडियो से आवाज आ रही है। वास्तव में कई बार ऐसा हुआ भी है कि उसने उस वक्त मेरा दरवाजा खटखआया, जब रेडियो पर जुरना-वादन हो रहा था। तो यह समझना चाहिए कि वह न सिर्फ मुझे जुरना-वादन हो रहा था। तो यह समझना चाहिए कि वह न सिर्फ मुझे जुरना-वादन से, बल्कि रेडियो पर उसे सुनने से भी मना करता है। थोड़े में यह कि हम एक-दूसरे से बिल्कुल अलग आदमी हैं। मेरे यहाँ पहाड़ों और देहातों से खुरजियोंवाले, उसके यहाँ मास्को से थैलेवाले मेहमान आते हैं। मैं बूजा और लहसुनवाले खीनकालों से अपने मेहमानों की खातिर करता हूँ और वह अपने मेहमानों के सामने ब्रांडी और कॉफी पेश करता है। मैं मंडी में जाता हूँ, वह दुकानों पर। जब मैं सोता हूँ, तो वह अपना संगीत रचता है, और जब वह सोता है, तो मैं अपनी कविताएँ लिखता हूँ। उसे शहरी क्यारियों में खिलनेवाले फूल पसंद हैं और मुझे ऊँची पहाड़ी चरागाहों में महकती हुई घासें। सुन रहे हैं न, वह इस वक्त भी अपनी कोई सिंफोनी बजा रहा है।'

अबूतालिब के पड़ोसी को हम अच्छी तरह जानते थे। वह दागिस्तान और रूसी संघ का प्रतिष्ठित कला कार्यकर्ता गोडफ्रीड अलीयेविच हसनोव था। उन दिनों वह पियानो के लिए अपना कंसर्ट रच रहा था। मैंने बहुत खुशी से उसका सूक्ष्म और प्रेरणापूर्ण संगीत सुना। मेरे दिमाग में यह ख्याल आया - 'इन दो बड़ी और जोरदार प्रतिभाओं - अबूतालिब की साधारण जन-प्रतिभा और हसनोव की व्यावसायिक तथा सुशिक्षित प्रतिभा - को यदि मिलाकर एक कर दिया जाए, तो वास्तव में ही कैसी अद्भुत सिंफोनी बन सकती है!'

मेरे दिमाग में यह बात भी आई कि अगर अपनी कविताओं, अपनी किताबों में मैं इन दो धाराओं - अपनी जनता का सरल चरित्र, उसकी निश्छल खुली आत्मा तथा सधी हुई व्यावसायिक दक्षता - को मिला सकूँ, तो यह बहुत बड़ी सफलता

होगी। मैं चाहता हूँ कि अबूतालिब और गोडफ्रीड मेरी कविताओं में घुल-मिल जाएँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे कृतित्व में वे वास्तविक जीवन जैसे नहीं, बल्कि शांतिपूर्ण पड़ोसी हों।

हाँ, मैं इन दो सिद्धांतों के शांतिपूर्ण हेल-मेल की आशा करता हूँ किंतु यदि ऐसा संभव नहीं हो सकता और मुझे चुनने के लिए मजबूर ही होना पड़े... तो मैं आजकल के बढ़िया-से-बढ़िया पेय की तुलना में पहाड़ी चश्मे की ठंडी, निर्मल धारा को ही तरजीह दूँगा। मेरा अभिप्राय यह है कि संस्कृति, सभ्यता और पेशे की सूक्ष्मता - अगर इनका अभाव है - तो इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। मगर जातीयता की भावना और लोक-भावना व्यक्ति को जन्म से ही मिलती है। जन-कवि और जुरना-वादक अबूतालिब अन्य परिस्थितियों में पेशेवर संगीतज्ञ और स्वरकार भी बन सकते थे, मगर मेरे ख्याल में पेशेवर स्वरकार और संगीतज्ञ गोडफ्रीड के लिए कभी भी साधारण जन-गायक बनना संभव नहीं था।

जब हम अबूतालिब से विदा लेकर चलने को हुए, तो अचानक उन्होंने पूछा -

'रसूल, मेरे यहाँ क्या टेलीफोन नहीं लग सकता?'

'आप तो लिखने की मेज और पलंग का भी इस्तेमाल नहीं करते, तो टेलीफोन का क्या करेंगे?'

'टेलीफोन पर मैं अपना जुरना बजाया करूँगा। कभी मास्को में निकोलाई तीखोनोव को तो कभी अपने सामूहिक फार्म के अध्यक्ष को जुरना सुनाया करूँगा। मेरे अध्यक्ष को यह तो मालूम होना ही चाहिए कि मेरा जुरना पहले जैसे वही गीत गाता है। टेलीफोन पर मेरा जुरना सुनकर अध्यक्ष यह समझ जाएगा कि मेरे शहरी फ्लैट में हमारे पहाड़ों की ध्वनियाँ और गंधें साँस लेती हैं।'

'हटाइए अबूतालिब, पहाड़ों की गंध से महकी हुई आपकी धुनें टेलीफोन के बिना ही मास्को तक, आपके जन्म-गाँव तक और दागिस्तान के सभी गाँवों तक पहुँच जाएँगी। वे पहाड़ों से भी ऊँची उड़ानें भरती हुई धरती के ओर-छोर तक जा पहुँचेंगी।'

अब मैं अबूतालिब से विदा लेता हूँ और वह घटना सुनाता हूँ, जो मेरे साथ और मेरे पिता जी के साथ घटी।

संस्मरण। न जाने क्यों, मगर हम दोनों एक-दूसरे को अपनी कविताएँ नहीं सुनाते थे, यहाँ तक कि उनकी चर्चा भी नहीं करते थे। पिता जी की नई कविताओं का मुझे तभी पता चलता था, जब वे छप जाती थीं या जब उन्हें

रेडियो से प्रसारित किया जाता था। या फिर जब यार-दोस्त उन कविताओं को सुनकर उनकी चर्चा करते थे। इसी तरह पिता जी को भी मेरी नई कविताओं के छप जाने तक उनके बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता था।

1949 में अवार समाचार-पत्र में मेरी लंबी कविता 'मेरा जन्म-वर्ष' छपी। जाहिर है कि वह पत्र पिता जी के हाथों में भी पहुँचा और अचानक पेंसिल के निशानोंवाली एक प्रति मेरे हाथ लग गई। मैंने क्या पाया कि पिता जी ने बहुत ध्यान से मेरी कविता पढ़ी थी और बहुत-सी पंक्तियों को अपने ढंग से बदल दिया था। यह देखना कुछ मुश्किल नहीं था कि पिता जी ने मेरी अधिक अलंकृत पंक्तियों को ही बदला था, उन्हें मेरी अधिक जटिल लक्षणाएँ, अधिक चटकीली उपमाएँ पसंद नहीं आई थीं। मेरी पंक्तियों के ऊपर लिखी पंक्तियों में पिता जी ने अधिक सीधे-सादे, स्पष्ट और समझ में आनेवाले ढंग से विचारों को व्यक्त करने का प्रयास किया था।

मुझे अब तक इस बात का बहुत अफसोस है कि हमजात द्वारा सुधारी गई पंक्तियोंवाला यह पत्र सुरक्षित नहीं रहा। मेरी यह आदत है कि जैसे ही कविताएँ छप जाती हैं, मैं उनके प्रारंभिक रूपों और पांडुलिपियों के विभिन्न रूपों की प्रतियाँ जला डालता हूँ।

पिता जी के अधिकांश सुधारों से मुझे खुशी हुई। मैंने देखा कि कविता बेहतर हो गई है, मगर बहुत-से सुधारों से मैं सहमत नहीं था। मैंने पिता जी से कहा -

'यह सही है कि आप मुझसे अधिक बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और अधिक बड़े कवि हैं। मगर मैं दूसरे युग का कवि हूँ। मैं दूसरी साहित्यिक प्रवृत्ति से संबंध रखता हूँ, मेरी साहित्यिक रुचियाँ दूसरी हैं, शैली दूसरी है - सभी कुछ दूसरा है। इन सुधारों में हमजात त्सादासा की छाप बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती है। मगर मैं तो हमजात नहीं हूँ, सिर्फ रसूल हमजातोव हूँ। मुझे अपनी शैली, अपने ढंग का अनुकरण करने दीजिए।'

'तुम्हारी बात सही नहीं है। तुम्हारी कविताओं में तुम्हारी शैली, तुम्हारे ढंग यानी तुम्हारी पसंद और प्रकृति का गौण स्थान होना चाहिए। अपनी जनता की पसंद और प्रकृति को प्रथम स्थान देना चाहिए। सबसे पहले तो तुम पहाड़ी हो, अवार हो और उसके बाद ही रसूल हमजातोव हो। अपनी कविताओं में तुम अपनी भावनाओं को ऐसे अभिव्यक्ति देते हो, जैसे किसी एक पहाड़ी लोगों की भावनाओं और उनके मिजाज के लिए बिल्कुल अजनबी होंगी, तो तुम्हारा ढंग

केवल ढंग ही बनकर रह जाएगा और तुम्हारी कविताएँ सुंदर और शायद दिलचस्प खिलौने ही बनकर रह जाएँगी। अगर बादल ही नहीं होंगे, तो बारिश कहाँ से होगी? आकाश ही नहीं होगा, तो बर्फ कहाँ से गिरेगी? अगर अवारिस्तान, अवार जाति ही नहीं होगी, तो रसूल हमजातोव कहाँ से आएगा? अगर सदियों के दौरान तुम्हारी जनता के लिए बनाए गए नियम ही नहीं होंगे, तो तुम्हारे अपने नियम कहाँ से बन जाएँगे?'

तो एक बार ऐसी बातचीत हुई थी मेरी अपने पिता जी से। मेरे जीवन के बाकी सभी वर्षों, मेरी बाकी सभी राहों ने बाद में इसी बात की पुष्टि की कि पिता जी ने उस वक्त जो कुछ कहा था, वह सही था।

तीसरी बीवी का किस्सा। एक नौजवान दागिस्तानी कवि मास्को के साहित्य-संस्थान में पढ़ने गया। एक साल बीता, तो अचानक उसने यह ऐलान कर दिया कि अपनी बीवी, दूरस्थ पहाड़ी औरत को तलाक दे रहा है।

'किसलिए तलाक दे रहे हो?' हमने उससे पूछा, 'बहुत अर्सा नहीं हुआ तुम्हें शादी किए और जहाँ तक हमें मालूम है तुमने उससे इसीलिए शादी की थी कि उसे प्रेम करते थे। तो अब क्या हो गया?'

'हमारे बीच अब कुछ भी तो सामान्य नहीं है। वह शेक्सपीयर से अपरिचित है, उसने 'येव्गेनी ओनेगिन' नहीं पढ़ा, उसे यह मालूम नहीं कि 'लेक स्कूल' किसे कहते हैं और उसने मेरिमे के बारे में भी कभी नहीं सुना।'

कुछ ही समय बाद नौजवान कवि मास्कोवासिनी पत्नी के साथ, जिसने संभवतः मेरिमे और शेक्सपीयर के बारे में सुना था, मखचकला आया। हमारे शहर में वह सिर्फ एक साल रही और फिर उसे मास्को लौटना पड़ा, क्योंकि पति ने उसे तलाक दे दिया था।

'तुमने उसे तलाक क्यों दे दिया?' हमने उससे पूछा। 'तुमने हाल ही में शादी की थी और वह भी इसलिए कि उसे प्यार करते थे। तो अब क्या हो गया?'

'इसलिए कि हमारे बीच कुछ भी तो सामान्य नहीं था। वह अवार भाषा का एक भी शब्द नहीं जानती, अवार रीति-रिवाजों से अपरिचित है, पहाड़ी लोगों, मेरे हमवतनों का मिजाज नहीं समझती, उसे उनका अपने घर में आना अच्छा नहीं लगता। वह एक भी अवार कहावत, अवार पहेली या गीत नहीं जानती।'

'तो अब तुम क्या करोगे।'

'शायद तीसरी बार शादी करनी पड़ेगी।'

मुझे लगता है कि तीसरी बीवी खोजने के पहले इस नौजवान कवि को खुद अपने को समझना चाहिए।

मैं चाहता हूँ कि मेरी किताब में अवार पर्वत भी हों और शेक्सपीयर के सॉनेट भी। यही कामना है कि मेरी किताब वह तीसरी बीवी हो, जिसे नौजवान दागिस्तानी कवि अभी तक खोज रहा है।

नोटबुक से। मखचकला में चालीस फ्लैटोंवाला लेखक-भवन बनाया गया। फ्लैटों का बँटवारा शुरू हुआ। कुछ लेखकों ने कहा कि प्रतिभा के अनुसार फ्लैट बाँटे जाएँ, दूसरे बोले कि बच्चों की संख्या को ध्यान में रखा जाए।

यह तो कहना ही पड़ेगा कि लेखकों में फ्लैटों का बँटवारा मुश्किल काम है। मगर जैसे-तैसे यह काम सिरे चढ़ गया। चालीस लेखकों के परिवार इन फ्लैटों में आ बसे, उन्होंने गृह-प्रवेश की दावतें उड़ा लीं। अगले दिन बीस लेखकों की बीवियाँ एक साथ मास्को रवाना हो गईं। वे कुछ दिन बाद ऐसी थकी-हारी और दुबली-पतली होकर लौटीं मानो जंग के मोर्चे से आई हों। कुछ दिन बीतने पर मालगाड़ी से मास्को का नया फर्नीचर हमारे शहर पहुँचने लगा।

हुआ यह कि शुरू में वे बहुत देर तक फर्नीचर खोजती और चुनती रहीं। बाद में एक ने हिम्मत करके फर्नीचर खरीद लिया। दूसरी बीवियाँ यह नहीं चाहती थीं कि उनका फर्नीचर घटिया हो। बदकिस्मती से पहली बीवी ने सबसे महँगा फर्नीचर खरीदा था और उससे ज्यादा महँगा फर्नीचर खरीदकर बाजी मार लेना मुमकिन नहीं था। नतीजा यह हुआ कि बीस के बीस फ्लैट कंधे के दाँतों की तरह बिल्कुल एक जैसे लगते हैं। ऐसे फ्लैट में आने पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें अवार लोग रहते हैं।

रहे दूसरे बीस फ्लैट, तो उनकी दहलीज पर कदम रखते ही सुखाए हुए मांस और घर की बनी सासेजों, बूजा, भेड़ की खाल और भेड़ की भुनी हुई चर्बी की तेज गंध नाक में घुस जाएगी। हाँ, यहाँ इस बात का तो पता चलता है कि अवार लोग रहते हैं, मगर यह अनुभव नहीं होता कि वक्त की नब्ज को समझने और महसूस करनेवाले लेखक रहते हैं।

मैं चाहता हूँ कि मेरी किताब का हर पाठक फौरन यह समझ जाए कि यहाँ अवार रहते हैं, मगर साथ ही वह यह भी समझ जाए कि यहाँ उसका समकालीन, 20वीं शताब्दी का आदमी रहता है।

मैं न तो सिर्फ धूप और न सिर्फ छाया ही चाहता हूँ। मेरे फ्लैट में ऐसी बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हों, जिनमें से धूप छने, मगर उसमें छायादार एकांत-शांत कोने भी हों। मेरी चाह है कि मेरे फ्लैट में हर मेहमान आराम, सुविधा और बेतकल्लुफी महसूस करे, कि वह वहाँ से जाना न चाहे, या शायद (मेहमानों के बारे में) यह कहना ज्यादा सही होगा कि वे अफसोस के साथ वहाँ से जाएँ और खुशी से फिर लौटना चाहें।

एक बार जापान में विभिन्न देशों के हम प्रतिनिधि अपने दिलों पर पड़ी उस देश की छाप के संबंध में पारस्परिक चर्चा करने लगे। हम उस फव्वारे के करीब खड़े थे, जो उन्हीं दागिस्तानी पत्थरों से बना प्रतीत होता था, जो हमारे गाँव में उस जगह लगे हुए हैं, जहाँ लोगों की मजलिस जमती है।

'अद्भुत देश है,' सबसे पहले अमरीकी स्वरकार बोला, 'मुझे तो जापान में जैसे औद्योगिक उन्नतिवाले अमरीका का रूप दिखाई दे रहा है।'

'अजी नहीं,' हैटी के पत्रकार ने आपत्ति की। 'मैं अभी-अभी एक जापानी गाँव से लौटा हूँ, जापान तो हमारे छोटे-से द्वीप से ही अत्यधिक मिलता-जुलता है।'

'जनाब, आप लोगों की बहस बेकार है, पेरिस के सभी सुख-दुख यहाँ एक साथ इकट्ठे हो गए हैं,' फ्रांसीसी वास्तुशिल्पी ने उन दोनों से अलग अपना मत प्रकट किया।

मगर मैं जापानी फव्वारे के उन पत्थरों को देख रहा था, जो अवार गाँव से लाए गए प्रतीत होते थे, और सोच रहा था, 'अद्भुत देश है जापान। उसमें वह सभी कुछ है, जो दुनिया के दूसरे सभी देशों में है, मगर फिर भी वह अन्य किसी देश के समान नहीं है। वह जापान है।'

मेरी किताब, तुम में भी हर कोई अपने को देख सके, फिर भी तुम मेरी किताब रहना, अपना अलग रूप बनाए रखना, अन्य सभी किताबों से भिन्न रहना। तुम मेरा अवार, मेरा दागिस्तानी घर हो। इस घर में उस सब के करीब ही, जो सदियों से रहा है, वह भी दिखाई दे, जो यहाँ कभी नहीं रहा।

पिता जी कहा करते थे कि जिस साहित्यिक रचना में लेखक स्पष्ट दिखाई नहीं देता, वह सवार के बिना भागे जाते घोड़े के समान है।

कहते हैं कि एक पहाड़ी के घर में लगातार बेटियाँ ही जन्म लेती थीं, मगर वह बेटा चाहता था। हर आदमी उस बदकिस्मत बाप को कोई-न-कोई सलाह देना

अपना कर्तव्य समझता था। इतनी सलाहें मिलीं उसे कि आखिर वह झल्ला उठा और बोला -

'बस, रहने दीजिए अपनी सलाहों को। उन्हें सुनते-सुनते मैं जो कुछ करना जानता था, वह सब भी भूल गया।'

इस पुस्तक की इमारत । विषय-वस्तु

हम पत्थर हैं, चुने जाएँगे जल्दी किसी दीवार में
किसी महल, छानी, कारा या मसजिद, किसी मजार में।
एक पत्थर पर आलेख

हीरे की शोभा देखी जाती है उसके सेट में,
इनसान की घर में।

शादी हो गई - अब घर बनाना चाहिए।

मेरे भावों के प्रासाद बहुत बड़े-बड़े हैं, मेरे चिंतन की मीनारें, मेरी कहानियों के भवन बहुत बड़े आकार के हैं, मेरी कविताओं के नुकीले सिरे बहुत ऊँचे-ऊँचे हैं... लीजिए, मैं पत्थरों को ढो लाया, मैंने कुंदे तैयार कर लिए और नई इमारत बनाने का स्थान चुन लिया। अब मुझे कुछ हद तक सभी कुछ बनना होगा - वास्तुशिल्पी, इंजीनियर, गणितज्ञ, संग-तराश, योजनाकार।

कैसी इमारत खड़ी करूँ मैं? कैसा रूप प्रदान करूँ उसे कि आँखें देखकर खुश हों? कि वह सुघड़ और सुंदर हो, कि अब तक उसे किसी ने न देखा हो और फिर भी जानी-पहचानी लगे। ऐसी न हो कि छत से सिर टिकराए, जैसा कि आजकल के छोटे-छोटे फ्लैटों में होता है, मगर ऐसी भी न हो कि छत को देखने के लिए सिर पीछे की ओर करना पड़े। ऐसी भी नहीं कि दरवाजे में से साधारण मेज न गुजर सके, मगर ऐसी भी नहीं कि ऊँट पर चढ़े-चढ़े ही भीतर जाया जा सके। ऐसी भी नहीं कि वह गुजरगाह या क्लब हो, जहाँ लोग कंसर्ट सुनें और चल दें, मगर ऐसी भी नहीं कि वह मसजिद हो, जहाँ लोग सिर्फ नमाज अदा करने के

लिए ही आएँ। वह प्रमाण-पत्रों और आवेदन-पत्रों से ठसाठस भरे दफ्तर जैसी भी न हो और न ही लगातार घूमनेवाली अली की पवन-चक्की जैसी ही लगे।

एक नौजवान पहाड़ी की लंबी कविता पढ़कर पिता जी बोले -

'इस कविता की दीवारें कुछ अधिक ही सुंदर हैं। वह अलीकबद द्वारा बनवाए गए मुर्गीखाने जैसी लगती हैं। मुर्गीखाने को देखकर महल की याद नहीं आनी चाहिए और महल का मुर्गीखाने के रूप में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।'

इसी तरह पिता जी ने जब एक दूसरे लेखक की बहुत ही लंबी कहानी पढ़ी, जिसे वह किसी तरह भी समाप्त नहीं कर पा रहा था, तो उन्होंने उससे कहा -

'तुमने वह दरवाजा खोल दिया है, जिसे बंद नहीं कर सकते। तुमने नल खोल डाला है, जिसे बंद करना तुम्हारे बस में नहीं है। गाँठ लगाते वक्त तुमने रस्सी को बहुत ज्यादा भिगो दिया।'

मुझे याद है कि मेरे बचपन के दिनों में हमारे गाँव में गायक आया करते थे। मैं छत के सिरे पर लेटा हुआ नीचे देखता और इन गायकों को सुनता। उनमें से कोई अपने गाने के साथ खंजड़ी बजाता, कोई वायलिन, कोई चंग और अधिकतर तो कुमुज बजाते। वे अलग-अलग मौसमों में अलग-अलग जगहों से आते। वे तरह-तरह के गाने गाते और एक ही गाने को कभी न दोहराते। जब दो-तीन गायक आपस में होड़ करने लगते, तब तो मुझे खास तौर पर बहुत मजा आता।

वे गाने लंबे-लंबे थे और मैं उन सबको भूल चुका हूँ मगर फिर भी लगभग हर गाने में से किसी की चार, किसी की आठ और किसी की दो पंक्तियाँ याद रह गई हैं। शायद ये याद रह जानेवाली पंक्तियाँ ही सबसे अधिक काव्यमयी, या सबसे ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण, या सबसे ज्यादा फड़कती हुई या सबसे ज्यादा खुशी-भरी, या सबसे अधिक कारुणिक थीं।

मालूम नहीं क्यों, मुझे दूसरी नहीं, यही पंक्तियाँ याद रह गई, मगर अभी तक वे मेरी आत्मा में बसी हुई हैं और मैं अपनी प्रियतमा के नाम की तरह उन्हें कभी-कभी दोहराया करता हूँ।

संयोगवश यह भी बात दूँ कि शुरू से आखिर तक जबानी याद अन्य अवार गानों में भी ऐसी पंक्तियाँ हैं, जो मुझे बाकी पूरे गाने के मुकाबले में ज्यादा पसंद हैं।

फिर गानों की ही क्या बात है? अपनी कविताओं में भी मैं कुछ पंक्तियों के बीच अंतर करता हूँ और वे मुझे अधिक प्यारी लगती हैं - वे मुझे दूसरी पंक्तियों

की तुलना में ज्यादा श्रेष्ठ, जानदार और काव्यमयी प्रतीत होती हैं। आपसे अपने राज की एक बात कहता हूँ - मेरी लंबी कविताएँ भी हैं, जिन्हें मैंने केवल अपनी कुछ प्रिय पंक्तियों के लिए लिखा है।

कविता अगर पेटी है, तो ये पंक्तियाँ उसमें लटकता हुआ खंजर हैं; कविता अगर खेत है, तो ये पंक्तियाँ उसमें अनाज से भरी बालें हैं, कविता अगर पक्षी है, तो ये पंक्तियाँ उसके पंख हैं; कविता अगर चट्टान के सिरे पर खड़ा हिरन है, तो ये पंक्तियाँ दूर तक देखनेवाली उसकी आँखें हैं।

एक बार मेरे दिमाग में यह खयाल आया कि मिसाल के तौर पर अगर किसी कविता में मुझे आठ पंक्तियाँ पसंद हैं, तो मैं उसमें अस्सी पंक्तियाँ और क्यों जोड़ता हूँ? क्या ये सबसे अच्छी आठ पंक्तियाँ लिख देना ही ठीक न होगा? इसीलिए मैंने अष्टपदियों की एक पूरी किताब लिख डाली।

मेहमान की आमद से खुश होकर पहाड़ी आदमी छुरा लेता है और साँड़ को काट डालता है। मगर मेहमान को तो मांस का छोटा-सा टुकड़ा ही चाहिए। कोई भी मेहमान पूरा साँड़ नहीं खा सकता।

'अगर मेरे लिए मुर्गी ही काफी है, तो भला मुझे भी बड़ा साँड़ काटने की क्या पड़ी है?' मैंने सोचा।

इसीलिए उस किताब से, जो मैं कभी लिखूँगा, मैं सभी फालतू स्थलों को निकाल डालूँगा और सिर्फ उन्हें ही रहने दूँगा, जो मुझे प्रिय होंगे, चाहे पुस्तक दस या बीस गुना ही लंबी क्यों न हो।

एक बार मेरी उपस्थिति में एक जवान लाक कवि ने अबूतालिब को अपनी कविताएँ सुनाईं। दस कविताएँ सुनाकर वह चला गया। तब अबूतालिब ने मुझसे कहा -

'शाबास है इसे, यह जरूर कुछ बन जाएगा।'

'तुम्हें अच्छी लगीं उसकी कविताएँ?'

'उसकी सभी कविताएँ कमजोर थीं। मगर आठ पंक्तियाँ ऐसी थीं, जिनके लिए लड़ाई में अभी-अभी जीता गया किला उसे दिया जा सकता है। लाक भाषा में ऐसी अष्टपदी किसी ने नहीं लिखी।'

हाँ तो अगर कविताओं और गानों में ऐसी पंक्तियाँ - चतुष्पदियाँ और अष्टपदियाँ - होती हैं, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता, तो ऐसी ही अविस्मरणीय

भेंटें और दिन तथा किसी देश के मामले में ऐसी घटनाएँ और उपलब्धियाँ भी होती हैं, जो स्मृति-पटल पर अमिट छाप छोड़ देती हैं। मैं उन्हें भी शामिल कर लेना चाहता हूँ, अपनी नई इमारत, अपनी नई किताब की दीवारों में चुनना और सीमेंट से पक्का कर देना चाहता हूँ। मैं स्पष्टीकरण के सुंदर शब्दों को उनका स्थान नहीं देना चाहता। अच्छा होगा कि वे खुद ही अपनी बात कहें।

सागर-तट पर मार्च हमेशा तूफानों का महीना होता है। उन्ही दिनों मखचकला में एक बार तूफान आया। दो तेज हवाएँ - एक कास्पियन सागर से और दूसरी पहाड़ों से आनेवाली - आपस में टकराई। एक हवा सागर के खुले विस्तार पर फुंकारती हुई नगर में घुसी और दूसरी बहुत ऊँचाई से जैसे नीचे आ गिरी। दोनों हवाएँ आपस में बुरी तरह उलझ गई, गुत्थस-गुल्था हो गई और उनमें द्वंद्व होने लगा। जब दो देव आपस में भिड़ रहे हों, तो उनके बीच आना खतरनाक होता है। मगर इस बार मखचकला उनके बीच आ गया था।

जमीन पर जो कुछ भी ढीला-ढाला पड़ा था, मजबूती से उसके साथ जुड़ा-बँधा हुआ नहीं था, फौरन हवा में उड़ गया। छोटे-पतले पेड़-पौधों, खाली डिब्बे-पेटियों, झोंपड़ियों के छप्परों, प्लाइवुड के स्टॉलों और सभी तरह के कूड़े-करकट का यही हाल हुआ।

मगर जमीन में अच्छी तरह से अपनी जड़ जमाए हुए पुराने पेड़ और बड़े-बड़े मकान बड़ी मजबूती और शान से खड़े रहे। जो कुछ भी हल्का-फुल्का और अस्थिर था, हवा में उड़ गया और मजबूत तथा दृढ़ जहाँ का तहाँ बना रहा।

इसी तरह ऐसी घटनाएँ, ऐसी मानवीय भावनाएँ और विचार भी होते हैं, जो वक्त की हल्की-सी हवा में भी उड़ जाते हैं। मगर कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें जिंदगी के तेज-से-तेज तूफान भी न तो इधर-उधर बिखरा सकते हैं और न उड़ा सकते हैं।

ऐसी जानदार घटनाओं, विचारों और भावनाओं से ही मुझे अपनी पुस्तक की इमारत खड़ी करनी है। परंपरागत अवार शैली में उसका निर्माण होना चाहिए, साथ ही यह भी जरूरी है कि वह आधुनिक हो। घर ऐसा होना चाहिए कि परिवार भी उसमें खुश रहे और मेहमान को भी सुख मिले। घर ऐसा होना चाहिए कि उसमें बच्चों के लिए खुशी का समान हो, जवानों के लिए प्यार की सुविधा और बुजुर्गों के लिए चैन का आधार हो।

मेरी किताब है - मेरा दागिस्तान। कैसी रूप-रेखाएँ हैं मेरे सामने उसकी? किससे तुलना करता हूँ मैं उसकी? पंख फैलाकर उड़ते हुए उकाब से? मगर उकाब को तो इनसानी हाथों ने नहीं बनाया और हमारे विचारों का उसमें कुछ भी भाग नहीं है। तो शायद हवाई जहाज से उसकी तुलना की जाए? मगर हवाई जहाज तो जमीन से बहुत ही अधिक ऊँचाई पर उड़ता है और जब जमीन पर होता है, तो हवाई अड्डे के दृश्य के सिवा उसके इर्द-गिर्द और कुछ भी नजर नहीं आता। धरती को जब ऊँचाई से देखा जाता है और ऊँचाई से ही उसकी चर्चा की जाती है, तो मुझे अच्छा नहीं लगता। नहीं, मैं ऐसे यंत्र की रूप-रेखा देख रहा हूँ, जो हवाई जहाज की तरह उड़ता है, रेलगाड़ी की तरह दौड़ता है और जहाज की तरह तैरता है। मैं ही उसका हवाबाज, ड्राइवर और खेवनहार हूँ। हमारा प्रस्थान-स्थान हमारा हवाई अड्डा, हमारा घाट, हमारा स्टेशन है हजारों सालों की उम्रवाला अमर दागिस्तान। यहाँ से हम हवाई जहाज, रेलगाड़ी और जहाज द्वारा दुनिया के किसी भी छोर पर जा सकते हैं। वहाँ, जहाँ मैं हो आया हूँ या वहाँ जहाँ कम-से-कम मेरी कल्पना हो आई है। हम रेलगाड़ी में जाते हैं, हवाई जहाज में उड़ते हैं, जहाज में तैरते हैं। हमें खिड़कियों से नजर आते हैं बर्फ ढके सफेद पहाड़, रसीली, हरी चरागाहें, चौड़ी नदियाँ और तटहीन महासागर। हमारी खिड़कियों के सामने से गुजरते हैं उमंग-भरा वसंत, विनम्र पतझर, कड़ाके का जाड़ा और झुलसती गर्मी। और मुसाफिर तो कितने अधिक हैं मेरे इर्द-गिर्द! यहीं हैं शामिल के पट्टियाँ बँधे मुरीद, जिनकी पट्टियों में से खून रिस रहा है, यहीं हैं पहाड़ी छापामार और विभिन्न पेशों के मेरे समकालीन। मेरे इर्द-गिर्द वे सभी हैं, जिन्हें मैंने कभी देखा है, जिनसे मेरी मुलाकात हुई है, जिनसे मैंने कभी बातचीत की और जो मुझे याद रह गए हैं।

हाँ मेरी रेलगाड़ी-पुस्तक, वायुयान-पुस्तक, जलयान-पुस्तक के लिए बस एक ही टिकट या अनुमति-पत्र की जरूरत है कि उनकी मेरे स्मृति-पटल पर छाप रह गई हो। लोग और घटनाएँ उन अष्टपदियों और पंक्तियों के समान होनी चाहिए, जो मुझे गली में घूमते हुए गायकों के लंबे गानों में से याद रह गई हैं। वे उन आठ पंक्तियों जैसी होनी चाहिए, जिनकी अबूतालिब ने जवान कवि की दस लंबी कविताएँ सुनकर तारीफ की थी। वे उन वृक्षों और मकानों जैसे होने चाहिए, जो तूफान में जहाँ के तहाँ बने रहे, जबकि जो कुछ हल्का-फुल्का और अस्थिर था, वह पतझर के पत्तों की भाँति उड़ गया था।

यहीं तो गाजनिची गाँव के एक मुसलिम के साथ मेरी तुलना हो जाएगी। अब मैं आपको यह बताता हूँ कि उसके साथ क्या हुआ था।

मई के महीने में भेड़ों को धूल और उमस भरी स्तेपी से हरे-भरे, ठंडे पहाड़ों में ले जाया जाता है। उस वक्त गाजानिची गाँव के मुस्लिम नामक एक लेखक ने लेखक-संघ से यह अनुरोध किया कि उसे भेड़ों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के बारे में शब्द-चित्र लिखने के लिए दौरे पर भेज दिया जाए। वैसे मुमकिन है कि यह सितंबर महीने की बात हो, जब भेड़ों को पहाड़ों से, जहाँ इस वक्त ठंड हो जाती है, जाड़े के लिए गर्म स्तेपियों में भेजा जाता है। हमने मुसलिम को दौरे पर भेज दिया। मुसलिम रवाना हो गया और उसने चरवाहों और रेवड़ों के साथ ईमानदारी से सारा रास्ता तय किया। जब वह लौटा, तो उसके द्वारा लिखी गई नोटबुकें एक अलग घोड़े पर लादकर लाई गई। हुआ यह कि उसने जो कुछ भी देखा, वह सभी कुछ हर दिन लिखता गया। कोई भी चीज, कोई छोटी-मोटी बात भी उसने नहीं छोड़ी। किसी घोड़े को देखा, तो उसके बारे में, चरवाहे को देखा, तो उसके बारे में और भेड़ को देखा, तो उसके संबंध में लिख डाला। जरा खयाल कीजिए कि कितनी भेड़ें और कितने चरवाहे थे वहाँ! उसने जो कुछ देखा, वह भी लिखा, और जो कुछ सुना, वह भी। और वह भी सभी कुछ। उसने उनके बारे में लिखा, जो ज्यादा तेजी दिखा रहे थे और जिन्हें थोड़ा रोकना जरूरी था और उनके संबंध में भी जो पिछड़ गए थे और जिन्हें आगे खदेड़ना जरूरी था चुनांचे रास्ते के बारे में रास्ते से ज्यादा लंबी किताब बन गई। ऐसी किताब बन गई, जिसे पढ़ने के लिए उतना ही वक्त लगाना जरूरी था, जितना मुसलिम ने अपने सफर में लगाया था। चरवाहों ने बाद में हमें बताया कि जब वे गिमरा पर्वतमाला पर चढ़ रहे थे, तो एक खच्चर दिखाई दिया। इतना ही नहीं कि खच्चर को देखते ही मुसलिम ने उस बेचारे के बारे में कलम चला डाली, उसे उसके चारों सुम भी देखने की इच्छा हुई। मुसलिम उसकी तरफ लपका, उसकी एक पिछली टाँग पकड़ ली और उसने उसे ऊपर उठाना चाहा। मगर खच्चर ने लेखक के नेक इरादे और इस घटना के महत्व को न समझते हुए बदकिस्मत मुसलिम पर बदतमीजी से लात चला दी और वह उसकी नाक पर जा लगी।

इर्द-गिर्द जमा चरवाहे हँस पड़े -

'मुसलिम को यह भी लिखना होगा!'

बेशक यह सही है कि खच्चर सनकी और बदतमीज जानवर है, मगर मुसलिम के मामले में उसने शायद ठीक ही किया था। जरूरत से ज्यादा तंग करनेवाले

आदमी को सजा मिलनी ही चाहिए।

बाद में हमने लेखक संघ में मुसलिम की इस रचना पर विचार किया। मजाक करते हुए हमने उससे यह पूछा -

'मुसलिम, तुम्हारी इस किताब में हारीकुली गाँव के गधे के बच्चे से लेकर खच्चर के सुम तक सभी कुछ लिखा हुआ है। मगर यह बताओ कि बिना सींगोंवाले बकरे को तुम कैसे भूल गए?'

'अजी, आप यह क्या कह रहे हैं? कैसे भूल सकता था मैं उसे! बिना सींगोंवाला बकरा भी है मेरी किताब में। मगर मैंने स्थानीय बोली में उसका जिक्र किया है। मैंने 'खान्क्वा' के नाम से उसके बारे में लिखा है।'

हम सब खूब हँसे। मगर फिर भी बाद में हमने उसे यह समझाने की कोशिश की कि लेखक जो कुछ देखता है, उसे उस सभी के बारे में नहीं लिखना चाहिए, उसे तो अपनी जरूरत की सामग्री चुननी चाहिए। एक वाक्य बहुत बड़े विचार को, एक शब्द बहुत बड़े भाव और एक अंश पूरी घटना को व्यक्त कर सकता है।

कुछ ही समय पहले हमारे यहाँ सभी तरह का पुनर्गठन किया गया। अभी भी हम किसी-न-किसी चीज का अचानक पुनर्गठन करने लगते हैं। मुझे भी यह छूत लग गई है। मैं अपनी विधा का पुनर्गठन करता हूँ। मैं सभी विधाओं को एक किताब में इकट्ठा कर रहा हूँ, उन पर अपना संचालन स्थापित कर रहा हूँ। कहीं मैं कर्मचारियों की संख्या घटा रहा हूँ, तो कहीं बढ़ा रहा हूँ। कहीं-कहीं विधाओं को बदल रहा हूँ, दो को एक में मिला रहा हूँ और एक को दो में बाँट रहा हूँ। यदि बहुत अधिक पुनर्गठन किए जाएँ, तो चाहे संयोगवश ही, कोई-न-कोई तो बढ़िया हो ही जाएगा।

मखचकला में आनेवाले पहाड़ी का किस्सा। एक पहाड़ी सरकारी दौरे पर मखचकला आया। उसके पास बहुत पैसे थे और सो भी अपने नहीं, सरकारी। वह दोनों वक्त रेस्तराँ में खाना खाता। अपनी आमद के पहले दिन उसने सारे हॉल को सुनाते हुए चिल्लाकर कहा -

'बैरा, और ब्रांडी लाओ!'

सभी ने यह सुना, उसकी तरफ मुड़े और हैरान हुए कि यह कौन है, जो इतनी अधिक पीता है और जिसे महँगी ब्रांडी पर पैसे खर्च करते हुए तकलीफ नहीं होती।

अपने दौरे के आखिरी दिन हमारे इसी पहाड़ी ने उसी बैरे से फुसफुसाकर पूछा -

'आपके रेस्तराँ में सेंवइयों के शोरबे का क्या दाम है?'

तो बैल का जुताई के शुरू में नहीं, अंत में पता चलता है। इस बात से नहीं कि वह चरागाह में कैसे कुलाँचें भरता है, बल्कि इससे कि वह जुए में कैसे चलता है। घोड़े पर सवारी करने के समय नहीं, बल्कि उससे उतरते वक्त उसकी चर्चा की जाती है।

क्या मैं अनसालतीवासियों के बिगुल की तरह अपनी किताब का भोंपू तो नहीं बजा रहा हूँ? क्या मैं सिवुखवासियों की तरह लकड़ी का चूल्हा तो नहीं बना रहा हूँ? क्या मैं भेड़िये की जगह किसी कुत्ते को तो नहीं मार रहा हूँ, जैसा कि एक बार मेरे त्सादा गाँववालों ने किया था।

मंजिल के शुरू में मंजिल दूर लगती है। उस तक पहुँचने के लिए मुझमें पर्याप्त साहस, प्यार और सब्र तो बना रहेगा? या फिर अंत तक पहुँचने पर गुद्दी खुजाते हुए यह सोचना होगा कि सेंवइयों का क्या दाम है?

संस्मरण। एक बार दागिस्तान में बहुत कड़ाके का जाड़ा पड़ा। अचानक ही बर्फ गिरी और जमीन पर उसकी कोई एक मीटर ऊँची तह जम गई।

भेड़े-मेमने चरें तो क्या? वे मरने लगीं। मुझे प्रादेशिक पार्टी समिति में बुलाकर कहा गया -

'रसूल, चरागाहों में जाओ, भेड़ों को बचाना जरूरी है।'

'मैं उन्हें क्या मदद दे सकता हूँ?'

'वहाँ जाकर जैसा जरूरी समझो, कुछ सोच लेना। उन्हें बचाने की तरकीब ढूँढ़नी ही होगी।'

चरागाहों का रास्ता तो मैं अच्छे मौसम में भी ढंग से नहीं जानता था और बर्फीले तूफान में उसे ढूँढ़ना मेरे लिए कैसा रहा होगा, यह तो आप सोच ही सकते हैं। मगर पार्टी का अनुशासन तो सबसे ऊपर ठहरा, और इसलिए मैं बर्फ और तेज हवा में अपना रास्ता बनाता हुआ चल दिया। आखिर एक रेवड़ तक जा पहुँचा। चरवाहों के चेहरों पर मातम छाया था। उनके गालों और मूँछों पर आँसुओं की जमी हुई बूँदों की धुँधली-सी मालाएँ बनी हुई थीं। लहू-लुहान थूथनियोंवाली भेड़ें जमी हुई बर्फ की तहों के नीचे से घास पाने की कोशिश

करती थीं। मगर इसमें उन्हें कामयाबी न मिलती थी और वे मर जाती थीं। भेड़ियों और चोरों की फिक्र न करते हुए कुत्ते हवा से बचने के लिए इधर-उधर जा छिपे थे। मतलब यह कि मेरे सामने मुसीबत और लाचारी का नजारा था। मुझे देखकर चरवाहे कटुतापूर्वक हँस पड़े -

बस, कविताओं और गीतों की ही कसर रह गई थी। त्सादा गाँव के हमजात के बेटे, तुम तो हमें कविता या गीत गाकर सुनाने ही आए हो न? यह ज्यादा अच्छा होगा कि तुम कोई मरसिया पढ़ो और हम फूट-फूटकर रोएँगे।

तीन दिनों तक मैं चरवाहों के झोपड़े मैं बैठा रहा और फिर यह देखकर कि मेरे वहाँ बैठे रहने से कोई फायदा नहीं और न ही हो सकता है, पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। मैं मखचकला वापस आ गया।

'कहो, क्या बचा ली भेड़ें?' मुझसे प्रादेशिक पार्टी-समिति में पूछा गया।

'हाँ, तीन भेड़ें बचा लीं।'

'वह कैसे, बताओ तो!'

'बड़े सीधे-सादे ढंग से। चरवाहों ने तीन भेड़ें काट डालीं और हमने उन्हें खा लिया। मेरे खयाल में तो मैंने ये तीनों भेड़ें बचा लीं।'

'इसमें क्या शक है,' प्रादेशिक समिति में मुझे यह क्रोधपूर्ण जवाब मिला, 'जाओ, अपनी कविताएँ रचो और जहाँ तक भेड़ों का सवाल है, उन्हें तो हमें ही तुम्हारे बिना बचाना होगा। इसलिए कि अच्छी कविता रचो, हम तुम्हारी लानत-मलामत करते हैं।'

मेरी किताब के साथ भी कहीं ऐसा न हो। रेवड़ों को बचाने जाऊँ, पर जाने कौन-सा मुँह लेकर लोटूँ? सुबह-सवेरे शुरू होनेवाला दिन हमेशा ही तो वैसा साबित नहीं होता, जैसा कि हम चाहते हैं।

संस्मरण। मास्को के साहित्य-संस्थान में मुझे अपना पहला दिन याद आ रहा है। हमने पढ़ाई शुरू की ही थी कि मेरा जन्म-दिन आ गया। जाहिर है कि किसी ने भी मुझे बधाई नहीं दी, क्योंकि कोई जानता ही नही था कि मैंने इस दिन जन्म लिया था। मैंने ओवरकोट खरीदने के लिए कुछ रकम अलग रखी हुई थी, जो मुझे पिता जी ने दी थी।

'हाँ, तो बेचारे रसूल,' मैंने अपने आप से कहा, 'चलो, अपने जन्म-दिन पर खुद ही अपने लिए तोहफा खरीद लो।' मैं वह रकम लेकर तीशीन्स्की मंडी की तरफ

चल दिया।

दूसरे विश्व-युद्ध के बादवाले पहले सालों में मास्को की मंडियाँ भी क्या कमाल की थीं! उनके अपने कानून-कायदे थे, अपने चोर बाजारी करनेवाले और अपने ही मिलीशिया वाले। शायद वहाँ गधे और गधी को छोड़कर बाकी सभी कुछ खरीदा जा सकता था।

तीशीन्स्की मंडी बहुत कुछ तो चींटियों की उस बांबी जैसी लगती थी, जिसे किसी ने छेड़ दिया हो। एक घंटा भर मैं लोगों की भीड़ के बीच धकियाया जाता रहा, तो सभी तरह की रद्दी चीजें-सूट, घुटनों तक के जूते, ट्यूनिकें, फौजी ओवरकोट, टोपियाँ, फ्राक, स्वेटर, सेंडल और बैसाखियाँ मेरी तरफ बढ़ा-बढ़ाकर दिखाते थे...

उन दिनों मैं किसी राज्य-मंत्री जैसा दिखना चाहता था। भीड़-भड़क्के में ऐसा ओवरकोट ढूँढ़ रहा था, जिसे पहनते ही मंत्री जैसा दिखने लगूँ। आखिर मुझे चोर बाजारी करनेवाले एक आदमी के कंधे पर कुछ इसी ढंग का ओवरकोट नजर आया। उसके साथ ओवरकोट के रंग और उसी कपड़े की टोपी भी थी।

जाहिर है कि मैंने टोपी से ही शुरू किया। उसे पहनकर आईने में अपनी सूरत देखी - बिल्कुल मंत्री लग रहा था। सौदेबाजी शुरू की। जब तक मैं ऊँची और साफ आवाज में थोड़ी कीमत कहता रहा, उसे जैसे वह सुनाई ही नहीं दी। मगर जब मैंने धीरे-से, फुसफुसाकर असली कीमत कही, तो उसे फौरन सुनाई दे गया। हमने हाथ मिलाए कि सौदा तय हो गया। अपने तीन और पाँच रूबलों के नोटों को अधिक सुविधा से गिनने के लिए मैंने ओवरकोट चोर बाजारी करनेवाले को पकड़ा दिया। दो हजार दो सौ पचास रूबल गिनकर मैंने उसे सौंप दिए। बड़ी शान से मंत्री की तरह अकड़ता हुआ होस्टल में पहुँचा। तभी यह याद आया कि ओवरकोट तो चोर बाजारी करनेवाले के हाथ में ही रह गया। दो हजार दो सौ पचास रूबल देकर मैंने सिर्फ एक टोपी ही खरीदी।

तो इस तरह मंत्री बनने का सपना देखते हुए मैं ओवरकोट और पैसों से भी हाथ धो बैठा। कहीं मेरी किताब के साथ भी ऐसा ही न हो जाए।

सभी को यह मालूम होता है कि उन्हें क्या चाहिए, मगर सभी उसे हासिल नहीं कर पाते। सभी अपनी मंजिल जानते हैं, पर वहाँ तक सभी नहीं पहुँचते। ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें ऐसा लगता है कि उन्हें यह मालूम है कि किताब कैसे लिखनी चाहिए, मगर वे उसे लिख नहीं पाते।

कहते हैं कि एक ही सूई शादी का फ्राक और मुर्दे का कफन सीती है।
कहते हैं कि वह दरवाजा नहीं खोलो, जिसे बाद में बंद न कर सको।

प्रतिभा

जलो कि प्रकाश हो
लैंप पर आलेख

कवि और सुनहरी मछली का किस्सा। कहते हैं कि किसी अभागे कवि ने कास्पियन सागर में एक सुनहरी मछली पकड़ ली।

'कवि, कवि, मुझे सागर में छोड़ दो,' सुनहरी मछली ने मिन्नत की।

'तो इसके बदले में तुम मुझे क्या दोगी?'

'तुम्हारे दिल की सभी मुरादें पूरी हो जाएँगी।'

कवि ने खुश होकर सुनहरी मछली को छोड़ दिया। अब कवि की किस्मत का सितारा बुलंद होने लगा। एक के बाद एक उसके कविता-संग्रह निकलने लगे। शहर में उसका घर बन गया और शहर के बाहर बढ़िया बँगला भी। पदक और 'श्रम-वीरता के लिए' तमगा भी उसकी छाती पर चमकने लगे। कवि ने ख्याति प्राप्त कर ली और सभी की जबान पर उसका नाम सुनाई देने लगा। ऊँचे से ऊँचे ओहदे उसे मिले और सारी दुनिया उसके सामने भुने हुए, प्याज और नीबू से मजेदार बने हुए सीख कवाब के समान थी। हाथ बढ़ाओ, लो और मजे से खाओ।

जब वह अकादमीशियन तथा संसद-सदस्य बन गया था और पुरस्कृत हो चुका था, तो एक दिन उसकी पत्नी ने ऐसे ही कहा -

'आह, इन सब चीजों के साथ-साथ तुमने सुनहरी मछली से कुछ प्रतिभा भी क्यों नहीं माँग ली?'

कवि मानो चौंका, मानो वह समझ गया कि इन सालों के दौरान किस चीज की उसके पास कमी रही थी। वह सागर-तट पर भागा गया और मछली से बोला -

'मछली, मछली, मुझे थोड़ी सी प्रतिभा भी दे दो।'

सुनहरी मछली ने जवाब दिया -

'तुमने जो भी चाहा, मैंने वह सभी कुछ तुम्हें दिया। भविष्य में भी तुम जो कुछ चाहोगे, मैं तुम्हें दूँगी। मगर प्रतिभा नहीं दे सकती। वह, कवि-प्रतिभा तो खुद मेरे पास भी नहीं है।'

तो प्रतिभा या तो है, या नहीं, उसे न तो कोई दे सकता है, न ले सकता है। प्रतिभाशाली तो पैदा ही होना चाहिए।

हमारे कवि ने, जिसे सुनहरी मछली ने सभी तरह से खुशहाल कर दिया था, जल्दी ही अपने को हंसों के पंख लगा लेनेवाले कौवे की तरह महसूस करना शुरू किया। पराये पंखों का सौंदर्य शीघ्र ही खत्म हो गया और उसके अपने पंख भी बहुत कम रह गए थे। इस तरह कवि पहले की तुलना में भद्दा दिखने लगा।

दोहराने से प्रार्थना कुछ खराब नहीं हो जाती। इसलिए मैं भी दोहराता हूँ। लिखने के लिए प्रतिभा का होना जरूरी है और अगर वह सुनहरी मछली के भी पास नहीं, तो उसे कहाँ से हासिल किया जाए?

पिता जी ने यह बात सुनाई। दूर के किसी गाँव से एक पहाड़ी आदमी पिता जी के पास आया और अपनी कविताएँ सुनाने लगा। पिता जी ने इस नए कवि की रचनाएँ बहुत ध्यान से सुनीं और फिर अपेक्षाकृत अधिक कमजोर और बेजान स्थानों की ओर संकेत किया। इसके बाद उन्होंने पहाड़ी को यह बताया कि वह खुद, त्सादा का हमजात इन्हीं कविताओं को कैसे लिखता।

'प्यारे हमजात,' पहाड़ी आदमी कह उठा, 'ऐसी कविताएँ लिखने के लिए तो प्रतिभा चाहिए।'

'शायद तुम ठीक ही कहते हो, थोड़ी-सी प्रतिभा से तुम्हें कोई हानि नहीं होगी।'

'तो यह बताइए कि वह कहाँ मिल सकती है,' हमजात के जवाब में निहित व्यंग्य को न समझते हुए पहाड़ी ने खुश होकर पूछा।

'दुकानों पर तो मैं आज गया था, वहाँ वह नहीं थी, शायद मंडी में हो।'

कोई भी यह नहीं जानता कि आदमी में प्रतिभा कहाँ से आती है। यह भी किसी को मालूम नहीं कि इसे धरती देती है या आकाश। या शायद वह धरती और आकाश दोनों की संतान है? इसी तरह यह भी कोई नहीं जानता कि इनसान में किस जगह पर वह रहती है - दिल में, खून में या दिमाग में? जन्म के साथ ही वह छोटे-से इनसानी दिल में अपना घर बना लेती है या धरती पर अपना कठिन मार्ग तय करते हुए आदमी बाद में उसे हासिल करता है? किस चीज से उसे अधिक बल मिलता है - प्यार से या घृणा से, खुशी से या गम से, हँसी से या आँसुओं से? या प्रतिभा के लिए इन सभी की जरूरत होती हे? वह विरासत में मिलती है या मानव जो कुछ देखता, सुनता, पढ़ता, अनुभव करता और जानता है, उस सभी के परिणामस्वरूप वह उसमें संचित होती है?

प्रतिभा श्रम का फल है या प्रकृति की देन। यह आँखों के उस रंग के समान है, जो आदमी को जन्म के साथ ही मिलता है, या उन मांस-पेशियों के समान है, जिनका दैनिक व्यायाम के फलस्वरूप वह विकास करता है? यह माली द्वारा बड़ी मेहनत से उगाए गए सेब के पेड़ के समान है या उस सेब के समान, जो पेड़ से सीधा लड़के की हथेली पर आ गिरता है?

प्रतिभा - यह तो इतनी रहस्यमयी है कि जब पृथ्वी, उसके अतीत और भविष्य, सूर्य और सितारों, आग और फूलों, यहाँ तक कि इनसान के बारे में भी सब कुछ मालूम कर लिया जाएगा, तभी, सबसे बाद में ही यह पता चल सकेगा कि प्रतिभा क्या चीज है, वह कहाँ से आती है, कहाँ उसका वास होता है और क्यों वह एक आदमी को मिलती है और दूसरे को नहीं मिलती।

दो प्रतिभावान व्यक्तियों की प्रतिभा एक जैसी नहीं होती, क्योंकि समान प्रतिभाएँ तो प्रतिभाएँ ही नहीं होतीं। शक्ल-सूरत की समानता पर तो प्रतिभा बिल्कुल ही निर्भर नहीं करती। मैंने अपने पिताजी के चेहरे से मिलते-जुलते चेहरोंवाले बहुत-से लोग देखे हैं, मगर पिता जी के समान प्रतिभा मुझे किसी में भी दिखाई नहीं दी।

प्रतिभा विरासत में भी नहीं मिलती, वरना कला-क्षेत्र में वंशों का बोलबाला होता। बुद्धिमान के यहाँ अक्सर मूर्ख बैटा पैदा होता है और मूर्ख का बेटा बुद्धिमान हो सकता है।

किसी व्यक्ति में अपना स्थान बनाते समय प्रतिभा कभी इस बात की परवाह नहीं करती कि जिस राज्य में वह रहता है, वह कितना बड़ा है, उसकी जाति के

लोगों की संख्या कितनी है। प्रतिभा बड़ी दुर्लभ होती है, अप्रत्याशित ही आती है और इसीलिए वह बिजली की कौंध, इंद्रधनुष अथवा गर्मी से बुरी तरह झुलसे और उम्मीद छोड़ चुके रेगिस्तान में अचानक आनेवाली बारिश की तरह आश्चर्यचकित कर देती है।

कैसे मैंने एक दोस्त खो दिया। एक दिन मैं अपनी मेज पर बैठा काम कर रहा था कि एक जवान घुड़सवार मेरे घर आया।

'सलाम अलैकम।'

'वालैकम सलाम।'

'रसूल, मैं तुम्हारे पास एक छोटी-सी प्रार्थना लेकर आया हूँ।'

'भीतर आकर अपनी प्रार्थना मेज पर रख दो।'

नौजवान ने जेब में हाथ डाला और सचमुच ही कुछ कागज निकालकर मेज पर रख दिए। पहला कागज मेरे पिता जी के परम मित्र और मेरे यहाँ भी अक्सर आनेवाले व्यक्ति का पत्र था। हमारे घर और परिवार के मित्र ने लिखा था -

'प्यारे रसूल, यह नौजवान हमारा नजदीकी रिश्तेदार और बहुत भला आदमी है। इसे अपने जैसा विख्यात कवि बनने में मदद दो।'

बाकी कागज थे - ग्राम-सोवियत का प्रमाण-पत्र, सामूहिक फार्म का प्रमाण-पत्र, पार्टी-संगठन का प्रमाण-पत्र और योग्यता-पत्र।

ग्राम-सोवियत के प्रमाण-पत्र में लिखा था कि फलाँ-फलाँ वास्तव में ही काहाब-रोस्सो के मशहूर शायर महमूद का भतीजा है और ग्राम-सोवियत के मतानुसार प्रसिद्ध दागिस्तानी कवियों की पंक्ति में स्थान पाने का बहुत ही योग्य उम्मीदवार है।

दूसरे प्रमाण-पत्रों में यह बताया गया था कि महमूद का भतीजा पचीस साल का है, कि वह नवीं कक्षा तक पढ़ा है और बिल्कुल स्वस्थ है।

'बहुत खूब,' मैंने कहा, 'लाओ, दिखाओ अपनी रचनाएँ। मुमकिन है कि तुम सचमुच प्रतिभाशाली हो और वक्त आने पर प्रसिद्ध कवि बन सकोगे। मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा, हर तरह से तुम्हारी मदद करूँगा और इस तरह हमारे साझे मित्र की प्रार्थना भी पूरी हो जाएगी।'

पर यह तुम क्या कह रहे हो? मुझे तो तुम्हारे पास भेजा ही इसीलिए गया है कि तुम मुझे कविता लिखनी सिखाओ। मैंने तो अब तक कभी कविता नहीं

रची।'

'तो तुम करते क्या हो?'

'सामूहिक फार्म में काम करता हूँ। मगर इस काम से कुछ भी बनता-बनाता नहीं। श्रम-दिवस लिख लेते हैं, पर बाद में कुछ देते-दिलाते नहीं। कुनबा हमारा बड़ा है। इसीलिए मुझे कवि बनाने की बात सोची गई है। मुझे मालूम है कि मेरे चाचा महमूद काफी कमाते थे, जितना मैं सामूहिक फार्म में कमाता हूँ, उससे कहीं ज्यादा। कहते हैं कि रसूल, तुम भी खासे पैसे पाते हो।'

'मुझे लगता है कि बहुत चाहने पर भी मैं तुम्हें कवि नहीं बना सकूँगा।'

'यह तुम क्या कहते हो? मैं तो महमूद का भतीजा हूँ। प्रमाण-पत्र में सब कुछ लिखा हुआ है? ग्राम-सोवियत भी मेरा समर्थन करती है और पार्टी-संगठन भी।'

'अगर तुम महमूद के बेटे भी होते, तब भी मैं कुछ न कर पाता। जैसा कि सभी जानते हैं, महमूद का बाप लकड़ी का कोयला बनाता था, कवि नहीं था।'

'तो बताओ, यह भी कोई इंसाफ है? तुम कवि और लेखक यहाँ मखचकला में साहित्य का चर्बीवाला धड़ आपस में बाँट लेते हो। क्या मुझे कुछ अंतड़ियाँ भी नहीं मिल सकतीं? मैं अंतड़ियों के लिए भी राजी हूँ। तो मैं अब क्या करूँ? मुझे कहीं अच्छी नौकरी पाने में मदद करो। मेरे प्रमाण-पत्र बिल्कुल ठीक-ठाक हैं।'

महमूद का भतीजा होने के नाते हमने साहित्यिक-कोश से उसकी कुछ माली मदद कर दी और फिर मेरी प्रार्थना पर दागिस्तान बिजली मशीन कारखाने के डायरेक्टर ने उसे अपने यहाँ नौकरी दे दी।

मगर लोकप्रिय कवियों की पंक्ति में जगह पाने के इस उम्मीदवार को अपने भाग्य से संतोष नहीं हुआ। कुछ ही समय बाद उसके पिता ने, जो हमारे मित्र थे, नाराजगी का यह पत्र भेजा -

'तुम्हारे पिता हमजात मेरी सभी प्रार्थनाएँ हमेशा पूरी करते थे। उन्होंने मुझे कभी किसी चीज के लिए इनकार नहीं किया था। मगर तुमने, हमजात के बेटे ने मेरा ऐसा छोटा-सा अनुरोध कि मेरे बेटे को कवि बना दो, पूरा करने से भी इनकार कर दिया। लगता है कि रसूल, तुम्हें घमंड हो गया है। तुम अपने बाप जैसे नहीं हो। मैंने कभी भी अपने दोस्तों से नाता नहीं तोड़ा, मगर अब ऐसा करना पड़ रहा है। बस, खत्म।'

तो इस तरह प्रतिभा के कारण या यह कहना अधिक सही होगा कि प्रतिभा के अभाव के कारण मैं एक अच्छा मित्र गँवा बैठा। मेरा मित्र सचमुच ही अच्छा आदमी था, पर सिर्फ इतना ही नहीं समझता था कि कोई भी, चाहे वह लेखक-संघ का अध्यक्ष, चाहे पार्टी-संगठन का सेक्रेटरी, चाहे सरकार का अध्यक्ष ही क्यों न हो, वैसे ही प्रतिभा नहीं बाँट सकता है, जैसे मेज पर रखी, भुनी हुई गर्मा-गर्म भेड़ के मांस के टुकड़े मेज के चारों और बैठे पहाड़ी लोगों में बाँटे जाते हैं।

या फिर दागिस्तान के रास्तों पर जाते हुए हम माल से लदी बैलगाड़ी को ऊपर चढ़ते देखते हैं। एक आदमी उसे ऊपर की ओर खींचने में मदद देता है और दूसरा पीछे से धकेलता है।

या फिर हम भारी ट्रक द्वारा बर्फ के ढेर में फँसी छोटी-सी 'मोस्कवीच' कार को रस्से से अपने पीछे बाँधकर खींचते हुए देखते हैं।

या फिर हमें यह नजर आता है कि तंग पहाड़ी रास्ते पर धीरे-धीरे चलनेवाली भारी ट्रक तेज कार को किसी भी तरह आगे नहीं निकलने देती।

प्रतिभा बैलगाड़ी नहीं है, जिसे दो आदमी मिलकर धकेल सकते हैं या आगे खींच सकते हैं; प्रतिभा 'मोस्कवीच' कार भी नहीं है, जिसे रस्सा बाँधकर खींचा जाए; प्रतिभा वह कार भी नहीं है, जो अपने लिए रास्ता बनाकर आगे न निकल सके।

प्रतिभा को पीछे से धकेलने की जरूरत नहीं होती और हाथ पकड़कर उसे आगे बढ़ाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वह खुद अपना रास्ता बना लेती है और खुद ही सबसे आगे पहुँच जाती है।

मगर बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो यह उम्मीद लगाए रहते हैं कि उन्हें या तो पीछे से धकेला जाए या आगे की ओर खींचा जाए। लीजिए, यह रहा छोटा-सा एक और किस्सा, जिसे निम्न शीर्षक दिया जा सकता है -

बेशक बूढ़ी, मगर प्रतिभाशाली हो। जब मैं मास्को के साहित्य-संस्थान में पढ़ता था, तो अनेक रूसी कवियों से, जो उसी संस्थान के विद्यार्थी थे, मेरी दोस्ती हो गई। वे मेरी कविताओं का अनुवाद करने लगे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ये अनुवाद छपने लगे। रूसी अनुवादों की बदौलत दागिस्तान की अन्य जातियों के लोगों ने भी मेरी कविताएँ पढ़ीं।

उन सालों में कुछ ऐसे लोग थे, जो बेकार यह बक-बक किया करते थे कि रसूल हमजातोव तो अवार भाषा में कविता रच ही नहीं सकता, कि प्रतिभाशाली

रूसी अनुवादक उसका नाम पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं और यह कि वह रूसी पाठकों की रुचि के अनुसार ही कविता रचता है।

इसी सिलसिले में मुझे अक्सर एक दागिस्तानी कवि की याद आ जाती है। दागिस्तान में तात नाम की एक छोटी-सी जाति है। इस जाति के लोगों की कुल संख्या पंद्रह हजार से अधिक नहीं होगी। फिर भी पाँच-छह ऐसे तात लेखक हैं, जो सारे दागिस्तान में प्रसिद्ध हैं। उनकी किताबें मखचकला में मातृभाषा में भी छपती हैं और उनके रूसी अनुवाद भी प्रकाशित होते हैं। मैं एक तात कवि की ही चर्चा करना चाहता हूँ। उसका नाम बताना जरूरी नहीं है।

मास्को के साहित्य-संस्थान की पढ़ाई समाप्त कर मैं अपने मखचकला में वापस आ गया था। मेरे लौटने के कुछ ही दिन बाद उक्त तात कवि ने मुझे आमंत्रित किया। उसने जनावृत स्थान पर मेरी दावत की। हमारे सामने था दूर-दूर तक फैला हुआ कास्पियन सागर और फिर एक-एक शब्द का रूसी में अनुवाद करता ताकि उसकी कविता के भाव मेरी समझ में आ जाएँ।

यह ध्यान में रखते हुए कि मैं मेहमान हूँ और वह मेजबान; यह ध्यान में रखते हुए कि कहीं वह यह न समझे कि मैं मास्को में प्राप्त अपने ज्ञान की डींग मारना चाहता हूँ; यह भी ध्यान में रखते हुए कि सभी कवि आलोचना की तुलना में प्रशंसा अधिक पसंद करते हैं; यह भी दृष्टि में रखते हुए कि किसी तरह की आलोचना से भी उसे कोई लाभ नहीं होगा; और अंत में इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि उसने मेरी हर कविता और हर पंक्ति की तारीफों के पुल बाँधे हैं। मैं बड़ी बेहयाई से उसकी सभी कविताओं की प्रशंसा करता रहा।

यह सच है कि उसकी कुछ कविताएँ मुझे पसंद भी आई और मैंने दिल से उनकी तारीफ की। मगर कुछ कविताएँ मुझे अचछी नहीं लगीं और उनके मामले में मैंने बेईमानी से काम किया। हाँ, उसी वक्त मैंने मन ही मन कास्पियन सागर की लहरों की तरफ अपनी भुजाएँ फैला दीं, उनके सामने घुटने भी टेके और कहा - 'मेरा यह झूठ क्षमा करना।' इसके बाद मैं मन ही मन पहाड़ों की तरफ मुड़ा, उनकी सफेद हिम-मढ़ित चोटियों की ओर बाँहें फैलाई, उनके सामने घुटने टेके और कहा - 'मेरा यह झूठ क्षमा करना।'

एक-दूसरे को अपनी कविताएँ सुनाने और एक-दूसरे की तारीफ करने के बाद हम कुछ देर तक चुप रहे। मैं सागर का संगीत सुनता रहा और मेरा दोस्त, जैसा

कि बाद में सिद्ध हुआ, अपने ख्यालों में खोया हुआ था। आखिर उसने यह बातचीत शुरू की -

'रसूल, मैं एक बहुत ही जरूरी मामले में तुम्हारी राय लेना चाहता हूँ। मगर वादा करो कि किसी से इसका जिक्र नहीं करोगे।'

मैंने वादा किया।

'यह तो तुम जानते ही हो कि तात जाति के हम लोगों की संख्या बहुत कम है। इसलिए मुझे और मेरी कविताओं को घुटन-सी महसूस होती है। तुम ठीक करते हो कि मास्को में अपने पाठक खोजते हो। मैं तुम्हारा ही अनुकरण करना चाहता हूँ, जाकर मास्को रहना चाहता हूँ। मगर मेरे तो वहाँ न रिश्तेदार हैं, न दोस्त और न जान पहचानवाले ही। सिर छिपाने की जगह भी नहीं है। तुम्हारा क्या खयाल है, अगर मैं अपनी किताब के लिए मिलनेवाले पैसे लेकर मास्को चला जाऊँ, तो क्या वहाँ रहने को कोई ढंग की जगह मिल जाएगी?'

'क्यों नहीं मिल जाएगी? जेब में पैसे हों, तो कमरा किराए पर लिया जा सकता है।'

'मेरा यह मतलब नहीं था। वहाँ मुझे बीवी मिल जाएगी या नहीं? बेशक वह बूढ़ी हो, बदसूरत हो, कैसे भी क्यों न हो, मगर प्रतिभाशाली हो, रूसी भाषा में मेरी कविताओं का अनुवाद कर सके, मेरी रचनाओं को लोगों तक पहुँचा सके। बाद में, अपने पैरों पर खड़े हो जाने के बाद तो मैं अपना रास्ता ढूँढ़ लूँगा। इसके बिना तो मैं जातीय कूपमंडूक ही बनकर रह जाऊँगा।'

मैंने एक बार फिर से उसे बहुत गौर से देखा। जिंदगी की आग से दहकता हुआ पचीस साल का तगड़ा काकेशियाई जवान था वह। बड़े-बड़े हाथ और उँगलियाँ बालों से ढकी हुईं, छाती के बाल दीवार में ठुकी हुई कीलों की तरह कड़े, साँवले, लगभग गेहुँआ चेहरे पर मोटे-मोटे होंठ और झील की तरह नीली आँखें। सिर साही जैसा लगता था, दाँत बड़े-बड़े और सफेद थे और टाँगे लट्ठों जैसी थीं। सारे शरीर पर मांसपेशियाँ उभरी हुई थी। आदिम मानव का अच्छा नमूना-सा था वह। कई लाख की आबादीवाले शहर में, सो भी युद्ध के बाद के तीसरे साल में, इसे क्या कठिनाई हो सकती थी बीवी हासिल करने में। मैंने उसे जवाब दिया -

'तुम तो बस, सड़क के बीच खड़े होकर सीटी बजा देना और तब देखना कि बीवियाँ, जैसी भी तुम चाहो, कैसे भागी आती हैं।'

मेरा दोस्त एक बच्चे की तरह खिल उठा। वह हाथों के बल खड़ा हो गया और इसी तरह हाथों पर चलता हुआ पानी में, सागर में चला गया। तैरने से पहले उसने इतना और पूछा -

'तुम क्या सलाह देते हो - हवाई जहाज से मुझे मास्को जाना चाहिए या गाड़ी से?'

छह महीने बीत गए। टोपी पर से नम बर्फ झाड़ते हुए मैं 'मोलोदाया ग्वार्दिया' (तरुण गार्ड) प्रकाशन गृह की चौथी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि सामने से मुझे बड़ा-सा थैला बगल में दबाए वही तात कवि नीचे उतरता दिखाई दिया, जिसने कास्पियन सागर के तट पर मेरी दावत की थी। सबसे पहले तो इस बात की तरफ मेरा ध्यान गया कि वह बाकी लेखकों की तरह थैला हाथ में नहीं उठाए था, बल्कि लेखपालों और खजांचियों की तरह बगल में दबाए था। मैंने यह भी नोट किया कि आध साल में वह बहुत बदल गया है। साही जैसे बाल लंबे हो गए थे और उनमें ढंग से चीर निकला हुआ था। गालों पर दिसंबरवादियों जैसी कलमें थीं। कनिष्ठा उँगली का नाखून नुकीला था और संगीन जैसा लगता था। दूसरी उँगली में नगवाली अँगूठी थी। टाई की जगह गुबरैले के पंखों जैसा कुछ लगा था। लक-दक, बना-ठना। सलाम-दुआ के बाद उसने मेरी टाई ठीक की, जो शायद एक तरफ को खिसक गई थी। जाहिर है कि इसके लिए मैंने उसका शुक्रिया अदा किया।

अहमद ने अपनी बीवी से मेरा परिचय कराया।

'बड़ी खुशी हुई,' उसने कहा और अपनी तीन उँगलियाँ मेरी तरफ बढ़ाईं।

हमारे दागिस्तान में नारियों का हाथ चूमने की प्रथा नहीं है, इसलिए मैंने धीरे-से हाथ मिलाया। मगर वह दर्द से ऐसे चिल्ला उठी मानो मैंने उसकी उँगलियों की सारी हड्डियाँ ही कुचल डाली हों।

'मुझ मूढ़ पहाड़ी को क्षमा कीजिए... मैंने तो ऐसा नहीं चाहा था...'

'अब तक कुछ तो तौर-तरीके सीख लेने चाहिए थे,' उसने बिगड़कर कहा और दर्पण के सामने जाकर ऐसे मुँह बनाने लगी, मानो वह उसकी शक्ल-सूरत को बेहतर बना सकता हो।

हाँ, वह बूढ़ी भी थी और बदसूरत भी और इतना पाउडर थोपे थी कि उससे दरमियाने आकार के कमरे में सफेदी हो सकती थी। सबसे ज्यादा अफसोस तो

मुझे इस बात का हुआ कि इस वक्त अबूतालिब यहाँ नहीं था, वरना वह तो जरूर ही इसके बारे में निशाने पर ठीक बैठनेवाले कुछ बढ़िया शब्द कहता।

कहते हैं कि लोमड़ी और उसकी दुम से ज्यादा मक्कार और कुछ भी नहीं है। मगर वह रुपहली लोमड़ी भी कैसी उल्लू रही होगी, जो इस बूढ़ी खूसट के कालर के काम आई। मेरे दोस्त की बीवी पत्र-पत्रिकाओं के स्टॉल पर चली गई और कुछ देर को हम दोनों ही रह गए।

'क्या हालचाल है, कैसी जिंदगी चल रही है, दोस्त अहमद?'

'ओ, मैं अपने को उस बैल जैसा महसूस करता हूँ, जिसे मसूर दलने के लिए जोत दिया गया है। मेरी बीवी के हाथ में ही मेरी और मेरे काम की नकेल है। काश कि तुम्हें मालूम होता कि वह कितनी पढ़ी-लिखी है। बड़ी ही रोशन दिमाग है। ब्लोक और मायकोव्स्की को व्यक्तिगत रूप से जानती थी। सेर्गेई येसिनिन की दोस्त रही है। पेरिस हो आई है। खूब बढ़िया अंग्रेजी बोलती है। हमारे पास चार कमरों का फ्लैट है और उसमें हम दोनों ही रहते हैं। हमारे बच्चे नहीं हैं। हाँ, तोशिक नाम का जापानी कुत्ता है, बिल्ली से भी छोटा।'

'लगता है कि तुम्हारी किस्मत ने खूब साथ दिया है। इस वक्त कहाँ जा रहे हो?'

'बाल पत्रिका 'मुर्जील्का' के लिए कुछ कविताएँ लाया था, मगर ये लोग कहते हैं कि बच्चों की दृष्टि से कुछ ज्यादा ही गहरी हैं। सोचता हूँ कि किशोर सामूहिक किसानों की पत्रिका में इन्हें छपने दूँगा। उन्हें ये कविताएँ पसंद आई हैं, सिर्फ इनमें 'सामूहिक फार्म' शब्द जोड़ना होगा। आज शाम को ऐसा करके कल फिर वहाँ ले जाऊँगा... हाँ, रसूल, ऐसे ही काम करना और जीना चाहिए... मेरी बीवी मुझसे कहा करती है कि चलना सीखने से पहले बच्चे भी घुटनियाँ चलते हैं। बाद में मैं भी कोई बढ़िया चीज लिख डालूँगा।'

'अल्योशा,' उसकी बीवी ने लौटते हुए प्यार और कड़ाई से कहा। 'चलो, घर चलकर तोशिक को खिला-पिला दें और उसके बाद हम 'क्रोकोडील' (मच्छ) और 'राबोत्निसा' (कामगारिन) का भी चक्कर लगा आएँगे।'

इस मुलाकात के बाद बहुत अर्से तक अहमद से फिर मिलना नहीं हुआ। एक बार मुझे उसका एक खत मिला। उसमें उसने अनुरोध किया था कि बालखारी के कुम्हारों को एक घड़ा बनाने का आर्डर दे दूँ, जिस पर यह लिखा हो - 'मेरी प्यारी बीवी को।' मैंने घड़े का ऑर्डर दे दिया और सोचा -

'शायद वह सचमुच ही उसके लिए बहुत कुछ करती है।' बीवी द्वारा अनूदित उसकी कविताओं की कभी 'मुर्जील्का', कभी 'पायनियर' और कभी 'क्रोकोडील' में झलक मिल जाती। मगर हमारे मखचकला में उसकी तात मातृभाषा में कभी कोई कविता दिखाई नहीं दी। कई बार हमने उससे कुछ भेजने का अनुरोध किया, पर उसका कभी कोई जवाब नहीं आया।

इस पहली मुलाकात के पंद्रह साल बाद हम फिर मिले। मास्को में दागिस्तानी कला का दस दिनी समारोह हो रहा था। दागिस्तान से चालीस कवि मास्को आए थे। दागिस्तान की विभिन्न भाषाओं में हमने ट्रेड-यूनियनों के स्तंभ-भवन, क्रेम्लिन थियेटर, मोटर कारखाने और कांतेमीरोव्स्काया गार्ड डिविजन में अपनी कविताएँ पढ़ीं।

समारोह की अंतिम शाम को हमारा सुंदर-सुघड़ अहमद पीछे की ओर से हमारे पास मंच पर आया।

'रसूल,' उसने मेरी मिन्नत करते हुए कहा, 'मुझे मास्को से दागिस्तान ले चलो। मैं दुंबा बनना चाहता था, मगर अपनी छोटी-सी दुम भी खो बैठा।'

तो इस तरह अहमद दागिस्तान लौट आया। मगर किसी तरह भी उसके पंदूर के तार कसे नहीं जाते, किसी तरह भी वह सुर में नहीं आ पाता। वह मिट्टी के उस बर्तन जैसा है, जो तिड़क गया है और उसमें से सारी शराब बह गई है। उस घड़े को बाद में चाहे कैसे भी क्यों न जोड़ो, शराब उसमें से फिर भी रिसती रहेगी, निकलती रहेगी।

तो इस तरह नतीजा यह निकलता है कि अनुवादक उस व्यक्ति की प्रतिभा नहीं बढ़ा सकता, जिसमें वह है ही नहीं। कुछ लोगों का कहना है कि आफंदी कापीयेव ने सुलेमान स्ताल्स्की का निर्माण किया। दूसरों का कहना है कि सुलेमान ने आफंदी कापीयेव को बनाया। मगर हकीकत यह है कि वे दोनों ही प्रतिभाशाली थे। आफंदी की प्रतिभा ने आफंदी और सुलेमान की प्रतिभा ने सुलेमान को बनाया।

मैं ईज्या से कह दूँगी। मुझे जो अगला किस्सा याद आ रहा है, उसका उक्त शीर्षक हो सकता है।

इस समय दागिस्तान का विख्यात लेखक मुहम्मद सुलेमानोव अवार अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान में मेरे साथ पढ़ता था। वह बचपन से ही बहुमुखी प्रतिभा का धनी था - अच्छी चित्रकारी करता था, लोक-नृत्य नाचता था, कविताएँ रचता था।

'येव्गेनी ओनेगिन' से बहुत ही प्यार था उसे। यह किताब तो हमेशा उसके पास रहती थी और लगभग पूरी की पूरी उसे जबानी याद थी। उन दिनों ही वह अवार भाषा में उसका अनुवाद करने का सपना देखा करता था। युद्ध के मोर्चे पर भी वह उसे अपने साथ ले गया।

युद्ध के अंत में गोलियों और गोलों के टुकड़ों से छलनी होने पर उसे मास्को के एक अस्पताल में भेज दिया गया। वहीं मरीया नाम की एक मास्कोवासिनी युवती से उसकी जान-पहचान हो गई। घाव भर जाने पर उसने मरीया से शादी कर ली और मास्को में ही रह गया।

मैं जब पढ़ने के लिए मास्को पहुँचा, तो पूछ-ताछ ब्यूरो से मैंने अपने दोस्त का पता लगा लिया। मैं उससे मिलने को बहुत उत्सुक था और वह मुझसे। मरीया ने हमारी दिली और जोशीली बातचीत में किसी तरह का खलल नहीं डाला। अच्छी-सी शराब पीते हुए हम तीनों देर तक बैठे रहे। मुहम्मद युद्ध की चर्चा करता रहा और मैं दागिस्तान, अपने प्यारे पहाड़ों और अपने जन्म-गाँव की। मैं उन्हें अपनी और अन्य जवान अवार कवियों की कविताएँ सुनाता रहा। बाद में मैंने मुहम्मद से पूछा कि वह किस काम में अपना जीवन लगाना चाहता है।

'मैंने इस सवाल पर बहुत सिर खपाया कि मैं क्या करूँ। मगर मरीया की एक मौसी है और मौसी का ईज्या है, जो मास्को में बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति है। मौसी ने देखा कि मैं किसी सोच में डूबा हुआ घुलता रहता हूँ। वह बोली - 'तुम इस तरह परेशान क्यों रहते हो, मुहम्मद। मैं ईज्या से कह दूँगी और वह सब कुछ ठीक-ठाक कर देगा।' और सचमुच ऐसा ही हुआ। ईज्या ने विज्ञान अकादमी में मेरे लिए अच्छी-सी नौकरी ढूँढ़ दी। अब मैं वहीं काम करता हूँ।'

'तुम्हारी चित्रकारी का क्या हुआ?'

'गोलियों ने मेरे बदन पर जो चित्रकारी कर दी है, वही काफी है।'

'और कविता?'

'वह बचपन था, रसूल। अब मैं खासी उम्र का संजीदा आदमी हूँ और मुझे कोई संजीदा काम ही करना चाहिए।'

'और 'येव्गेनी ओनेगिन'?'

मेरा दोस्त सोच में डूब गया। हाँ, मैंने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया था।

'तुम दागिस्तान क्यों नहीं लौटना चाहते?'

'तब मरीया का क्या होगा?'

'उसे अपने साथ ले चलो?'

'मेरी पास तो गाँव के सिवा और कहीं कोई घर नहीं है। मरीया को लेकर तो मैं गाँव में नहीं जा सकता। वह तो मेरी माँ से भी बातचीत नहीं कर सकेगी। इसलिए कि मरीया मेरी माँ की बात समझ सके और माँ मरीया की, मैं दुभाषिया तो साथ लेकर जाने से रहा।'

मुहम्मद के लिए इस कष्टप्रद बातचीत को यहीं बंद करने के लिए मैंने मुहम्मद, मरीया और 'येव्गेनी ओनेगिन' के नाम पर जाम उठाया।

अगली बार जब मैं अपने दोस्त के यहाँ गया, तो मरीया ने मुझसे कहा कि मुहम्मद तो मानो बिल्कुल बदल गया है। दिनों और रातों को तथा फुरसत के हर मिनट में वह भूख-प्यास, आराम और नींद की परवाह किए बिना कुछ लिखता रहता है, लिखकर कागज फाड़ डालता है, फिर से लिखता है और फिर से कागज के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है।

मरीया की मौसी कुछ समय तक मुहम्मद को ऐसा करते देखती रही और आखिर उसने यह जानना चाहा कि वह क्या लिखता है और क्यों लिखे हुए कागजों को फाड़ डालता है।

'मैं कवि बनना चाहता हूँ,' मुहम्मद ने जवाब दिया। 'येव्गेनी ओनेगिन' का अनुवाद करना चाहता हूँ।'

'तो फिर इसमें क्या मुसीबत है और क्यों तुम इस तरह परेशान होते रहते हो? मैं ईज्या से कह दूँगी और वह सब कुछ ठीक-ठाक कर देगा।'

'नहीं मेरी प्यारी मौसी, न तो ईज्या, न उसका अफसर, यहाँ तक कि ईज्या की बीवी भी कवि बनने में मेरी मदद नहीं कर सकती। वह तो सिर्फ मैं खुद ही बन सकता हूँ।'

कुछ ही समय बाद मुहम्मद ने मुझे 'येव्गेनी ओनेगिन' के पहले अध्याय का अवार भाषा में अपना अनुवाद सुनाया। तीन साल बाद सभी अवार इस महान प्रणय-काव्य को अपनी मातृभाषा में पढ़ सके।

किसका फोटो छापा जाए? कहते हैं कि हिम्मती बीवी अपने पति की कामयाबी में बहुत हाथ बँटा सकती है। हाँ, ऐसी उत्साही बीवियों से हमारा भी पाला पड़ा है। एक नामी दागिस्तानी कवि की ऐसी ही बीवी थी। उसका नाम

सुनते ही लेखक-संघ, सभी प्रकाशनगृहों और समाचारपत्रों के संपादकीय कार्यालयों में लोगों को जूड़ी चढ़ जाती थी। मैं भी उससे थोड़ा डरता था और उसे फुसलाने के लिए ही मैंने अपने कमरे में उसके पति की फोटो भी लगा लिया। मैंने सोचा कि वह खुश होगी और मेरे साथ नर्मी से पेश आएगी। मगर इसका उस पर बहुत कम असर हुआ। बात यह थी कि उसके पति का फोटो मेरे कमरे में लटकने से उसे तो एक कोपेक भी नहीं मिला था।

एक बार उसने प्रकाशन गृह से यह माँग की कि फौरन ही उसके पति की कविताओं का संकलन छापा जाए। डायरेक्टर ने डरते-डरते कहा कि इस साल की योजनाओं की पुष्टि हो चुकी है, कागज की कमी है और इसलिए वह संकलन अगले साल निकालना मुमकिन होगा...

'बिल्कुल बेहया आदमी हो तुम।' वह औरत आग-बबूला होकर बोली। 'तुम्हें डर है कि लोग यह देख सकेंगे कि मेरे पति की कविताएँ तुम्हारी कविताओं से कहीं अधिक अच्छी हैं। इसीलिए तुम कागज की कमी और योजनाओं का राग अलाप रहे हो। मैं तुम्हारी रग-रग पहचानती हूँ। तुम मेरी आँखों में धूल नहीं झोंक सकते। देखूँगी। कैसे तुम मेरे पति का कविता-संकलन नहीं निकालते।'

इतना कहकर उस औरत ने फटाक से दरवाजा बंद किया और चली गई।

दो घंटे बाद डायरेक्टर के टेलीफोन की घंटी बजी। प्रादेशिक समिति के सेक्रेटरी की आवाज सुनाई दी।

'खुदा के लिए कुछ ऐसा करो कि यह औरत फिर कभी मेरे दफ्तर में न आए,' सेक्रेटरी ने मिन्नत करते हुए कहा। 'आए दिन तो मैं अपनी मेज का शीशा नहीं बदलवा सकता। वह हर बार मेज पर मुक्का मारकर उसे तोड़ डालती है।'

इस सारे किस्से का नतीजा क्या हुआ? लेव तोलस्तोय का लघु-उपन्यास 'हाजी-मुराद' और हमजात त्सादासा की बच्चों की एक किताब भी योजना से निकालनी पड़ी। इन दो किताबों की बलि उेकर उस लड़ाकी औरत के पति का कविता-संकलन योजना में शामिल किया गया।

हमें लगा कि अब शांति रहेगी। मगर नहीं, जल्दी ही नया बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। उसका कारण यह था कि संकलन में कवि का फोटो नहीं छापा गया था।

'कैसे बेहया लोग हैं।' गुस्से से पागल होती हुई वह औरत चिल्लाई। 'तुम्हें इसी बात का डर है न कि लोग यह देख सकेंगे कि तेरा पति तुम सभी से कितना ज्यादा खूबसूरत है। इसीलिए तुमने उसका फोटो नहीं छापा।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है,' प्रकाशन गृह के डायरेक्टर ने जवाब दिया। 'हम यह नहीं जानते थे कि इस किताब में किसका फोटो छापा जाए - तुम्हारा या तुम्हारे मियाँ का?'

'हाँ, यह भी एक सवाल है,' इस औरत ने दाँत निपोरे। 'कौन जाने, मेरे बिना वह कवि भी बन पाता या नहीं।'

अबूतालिब ने उस कवि से भेंट होने पर कहा -

'कूसा, मेरी एक बात मान लो। एक हफ्ते के लिए मुझे अपनी बीवी दे दो। मुझे फौरन स्तालिन पुरस्कार मिल जाएगा।'

'हटाओ भी इस बात को अबूतालिब। मैं दस साल से उसके साथ रह रहा हूँ और मुझे हाजी क्रासिम का इनाम भी नहीं मिला।'

'तो उससे कुछ प्रतिभा माँग लो।'

अबूतालिब और खातिमत का किस्सा। अबूतालिब शुरू में भेड़ें चराते रहे। इसके बाद वे टीनगर बन गए। मगर चरवाहे की अपनी मुरली वे तब भी अपने साथ ही रखते और फुरसत के वक्त उसे बजाते। अपने धंधे के सिलसिले में वे गाँव-गाँव जाते। कुछ लोगों का कहना है कि कूली गाँव में, और दूसरों के मुताबिक गूमूक में खातिमत नाम की एक लड़की गागर की मरम्मत कराने के लिए अबूतालिब के पास आई।

बहुत देर तक अबूतालिब उस गागर की मरम्मत करते रहे। कभी वे उसे एक तरफ रखकर इतमीनान से सिगरेट पीने लगते, तो कभी मुरली बजाना शुरू करते और कभी खातिमत को झूठे-सच्चे किस्से-कहानियाँ सुनाने लगते।

खातिमत उससे जल्दी करने को कहती हुई चिल्लाई -

'तुम अपनी सिगरेट ही कुछ कम लंबी लपेटो।'

'अरे, यह तुम क्या कह रही हो, मेरी प्यारी खातिमत। अब मैं गज भर लंबी सिगरेट बनाऊँगा ताकि वह और ज्यादा देर तक जलती रहे।'

आखिर लड़की बिल्कुल ही आप से बाहर हो गई और अबूतालिब को मजबूर होकर गागर उसे लौटानी पड़ी। गागर ऐसे चमचम करती थी मानो नई हो। इतनी अधिक कोशिश से अबूतालिब ने उसकी मरम्मत की थी। मगर लड़की ने जैसे ही उसमें पानी भरा कि वह चूने लगी। गुस्से से भुनभुनाती, बड़ी मुश्किल से अपने दुख के आँसुओं को रोकती हुई वह फिर से अबूतालिब के पास आई।

'इतनी देर तक तुमने गागर की मरम्मत की और वह पहले से भी ज्यादा चूती है।'

'अल्लाह करे कि दिलेर और खूबसूरत लड़के हर दिन तुम्हारी गागर पर कंकड़ फेंकें। तुम नाराज क्यों हो रही हो, खातिमत, मैंने तो जान-बूझकर उसमें सूराख छोड़ दिया था ताकि तुम फिर से मेरे पास आओ और मैं तुम्हें देख सकूँ।'

'अच्छा हो कि लड़के मेरी गागर पर नहीं, तुम्हारे सिर पर कंकड़ फेंकें।' खातिमत चिल्लाई और फिर कभी अबूतालिब के पास नहीं आई।

अबूतालिब को उसकी बड़ी याद आती। खातिमत के प्रति उनका प्यार बढ़ता ही चला गया। प्यार जितना बढ़ा, याद उतनी ही ज्यादा सताने लगी। इस तरह उस लड़की की याद में घुलते हुए अबूतालिब ने एक गीत रचा, जिसमें उसने खातिमत और उसके प्रति अपने प्यार को अभिव्यक्ति दी। इसके बाद उन्होंने दूसरा, फिर दसवाँ, फिर बीसवाँ गीत रचा और इस तरह वे टीनगर की जगह जाने-माने कवि बन गए।

इसी बीच खातिमत ने हाजी नाम के एक आदमी से शादी कर ली। कुछ अर्से बाद उसे तलाक देकर किसी मूसा की बीवी बन गई।

एक दिन ख्यातिलब्ध कवि अबूतालिब बाजार में से जा रहे थे, तो किसी ने उन्हें आवाज दी -

'ऐ अबूतालिब, गागर की मरम्मत नहीं कर दोगे?'

कवि ने मुड़कर देखा तो बूढ़ी, झुकी हुई और बीमार खातिमत को अपने सामने पाया।

'शायद अब तुम्हारा दिमाग आसमान पर जा चढ़ा है, अबूतालिब। ऐसा तो होना ही था। अब तुम सर्वोच्च सोवियत के सदस्य हो, तमगा लगाए हो। लगता है कि अपना टीनगरी का धंधा भूल गए हो। पर अगर मामले की गहराई में जाया जाए, तो मैंने ही तुम्हें कवि बनाया है, अबूतालिब। उस वक्त अगर मैं मरम्मत के लिए गागर तुम्हारे पास न लाती, तो तुम अभी तक उसी तरह बाजार में बैठे हुए टीनगरी करते होते।'

'ओ खातिमत, अगर तुममें सचमुच ऐसी ताकत है, अगर तुम सचमुच ही लोगों को कवि बना सकती हो, तो तुमने अपने पहले पति मिलीशियामैन हाजी को क्यों नहीं कवि बना दिया? और हाँ, तुम्हारे दूसरे पति मूसा के गीत भी अब तक सुनने को नहीं मिले...'

अबूतालिब तो चले भी गए, मगर खातिमत यह न समझ पाते हुए कि क्या जवाब दे, जहाँ की तहाँ मुँह बाए खड़ी थी। बारिश की बूँदों से ही वह सँभली।

तो इस तरह अगर कोई खुद ही शायर नहीं बनता, तो किसी भी दूसरे आदमी में उसे शायर बनाने की ताकत नहीं है।

पिता जी ने यह बात सुनाई कि जब मैं अपनी पहली कुछ कविताएँ, रच चुका था, तो पिता जी के एक पुराने मित्र दागिस्तान के एक प्रसिद्ध और सम्मानित व्यकित ने उनसे कहा -

'बहुत अच्छा रहे कि रसूल अब किसी को जी-जान से प्यार करने लगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि अपने प्यार से उसे खुशी मिलेगी या गम, उसमें उसे कामयाबी होगी या नाकामयाबी। शायद यह तो ज्यादा अच्छा ही होगा कि दूसरी तरफ से उसे प्यार न मिले, कि प्यार उसके लिए पीड़ा और वेदना ही लेकर आए। तब वह एकदम बड़ा कवि बन जाएगा।'

मेरे पिता जी के दोस्ते ने तो ऐसी सुंदर किशोरी भी खोज ली, जिसे मुझे बदकिस्मत आदमी, मगर बड़ा कवि बनाना था।

मेरे पिता जी ने अपने दोस्त को यह जवाब दिया -

'देखो तो दुनिया में कितनी ही लोग हैं प्यार करनेवाले, पर क्या उनमें से हर कोई कवि है? दिल से प्यार करने के लिए भी प्रतिभा की जरूरत होती है। प्रतिभा को प्यार की जितनी जरूरत है, शायद प्यार को प्रतिभा की उससे कहीं अधिक आवश्यकता है। इसमें शक नहीं कि प्यार से प्रतिभा पनपती है, मगर वह उसकी जगह नहीं ले सकता। प्रेम के प्रतिकूल भावना यानी घृणा के बारे में भी में यही कह सकता हूँ।'

'मगर मिसाल के लिए प्यार के गायक कवि महमूद को लिया जा सकता है...'

'तुम सही कहते हो। कवि के रूप में हम जैसे महमूद को जानते हैं, वह अपनी प्रेयसी की बदौलत ही बहुत हद तक वैसा बना। मगर मेरा खयाल है कि उसकी प्रेयसी का अगर इस दुनिया में अस्तित्व भी न होता, तो भी महमूद बड़ा कवि बनता। उसकी बेचैन और अलंकारी भावनाएँ उसी तरह अपना मार्ग खोज लेतीं जैसे घास की कोमल-सी पत्ती नम, बोझिल और अँधेरी मिट्टी में से सूरज की ओर अपना रास्ता बना लेती है। अरे, कभी-कभी तो वह पत्थर के नीचे से भी बाहर निकल आती है।'

हाँ, यह आसानी से माना जा सकता है कि जिस तरह आग सूखी लकड़ियों से भड़कती है, उसी तरह प्रतिभा के पनपने के लिए प्रबल मानवीय भावनाएँ - प्यार और घृणा - आवश्यक होती हैं, कि खिली मुस्कान या सलोने आँसुओं से ही कविता जन्म लेती है। मगर मैं आपके सामने दो उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

उस माँ के दुख, उस माँ की व्यथा से अधिक तीव्र व्यथा किसकी हो सकती है, जिसके बेटे की मृत्यु हो जाती है? बेटे को दफनाने की तैयारी होने लगती है, लोग जमा हो जाते हैं। मगर माँ चुपचाप बस रोती ही जाती है, वह शब्दों में, ऐसे शब्दों में अपना दुख-शोक व्यक्त नहीं कर पाती कि सभी उसकी तरह रोने लगें जैसे वह स्वयं रो रही है।

इसी समय विलाप करने की कला में दक्ष नारियाँ आती हैं। उनकी आँखों में आँसू नहीं होते, क्योंकि उनका अपना नहीं, पराया दुख होता है। मगर जैसे ही वे अपनी भयानक कला का प्रदर्शन करने लगती हैं, वैसे ही आस-पास सभी सिसकने लगते हैं।

मैंने इस कला को भयानक कला कहा है। वह वास्तव में ही बड़ी निर्मम और भयानक है। इसलाम में इसीलिए तो यह कहा गया है कि दूसरी दुनिया में विलाप करनेवालियों को ढोंगियों, पाखंडियों और चुगलखोरों की तरह ही लगातार कष्ट दिए जाते हैं। मगर वह तो कला ही ऐसी है, जिसका काम लोगों को रुलाना ही है।

अब इसके उलट उदाहरण लीजिए। ऐसे माँ-बाप से ज्यादा सुखी कौन हो सकता है, जिनका बेटा हृष्ट-पुष्ट और जवान मर्द हो गया है तथा अब शादी करना चाहता है। शादी तो हँसी-खुशी का जशन होती है। शादी के मौकों पर लोग नाचते और गाते हैं। जाहिर है कि दूल्हे के माता-पिता ही सबसे ज्यादा खुश होते हैं। मगर क्या सभी माता-पिता शब्दों में, गीत में, ऐसे गीत में अपनी खुशी जाहिर कर सकते हैं कि वहाँ उपस्थित सभी लोग चहक उठें और उनके लिए शादी की यह पराई खुशी अपनी खुशी बन जाए?

नहीं, वे ऐसा नहीं कर पाते। इसीलिए वे पहले से ही गाँवों में जाकर अच्छे गायकों को आमंत्रित कर आते हैं। गायक आ जाते हैं। एक दिन पहले वे किसी दूसरे की शादी में गाते रहे थे और अगले दिन किसी अन्य की शादी में गाएँगे।

उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता। किंतु उनकी प्रतिभा से लोग रंग में आ जाते हैं और उन्हें सच्ची खुशी मिलती है।

तो शायद प्रतिभा जीवन के लंबे अनुभव से पनपती है? और कला में प्रतिभा का व्यक्त होना विस्तृत ज्ञान, कठिन भाग्यों तथा महान कार्यों का परिणाम है?

पर यदि ऐसा होता, तो क्या चौदह वर्षीय और सो भी अंधा अवार लड़का अपने पंदूर-वादन से अवार गाँवों के लोगों को आश्चर्यचकित और मंत्र-मुग्ध कर सकता था?

मुहम्मद रजबोव नाम के एक अन्य किशोर ने, जो बचपन से ही चारपाई थामे हुए है, माँ के बारे में एक ऐसा गीत रचा है, जिसे शायद ही कोई अवार न जानता और न गाता हो। इस गीत को स्वरबद्ध किया अहमद त्सूरमीलोव ने, जिनकी दोनों टाँगों को लकवा मार गया है। उन्हीं के बारे में मैंने ये पंक्तियाँ लिखी थीं -

> तेरी मेंडोलिन में केवल आठ तार
> किंतु धुनें हैं आठ हजार...

प्रतिभाशाली अंधा आँखोंवाले प्रतिभाहीन व्यक्ति से कहीं ज्यादा देखता है। किसी ने यह भी कहा है कि बुद्धिमान अपने कमरे में बैठा हुआ ही सारी दुनिया का चक्कर लगानेवाले मूर्ख की तुलना में कहीं कुछ ज्यादा देख सकता है।

इतना ही नहीं, अंधा मुहम्मद बाजार में माँगे हुए भीख के पैसों की गिनती करते समय भी कभी गलती नहीं करता था।

नोटबुक से। अगर सिर्फ नजर में ही प्रतिभा का रहस्य छिपा है, तो लेजगीन कवि कोचखियूरस्की कैसे उसके बाद भी काव्य-रचना करता रहा, जब खान ने उसकी दोनों आँखें निकलवा दी थीं? अगर धन में ही प्रतिभाशक्ति निहित है, तो गरीब और यतीम लेजगीन कवि यतीम आमीन कैसे विख्यात हो गया? अगर शिक्षा ही में प्रतिभा-शक्ति छिपी है, तो सुलेमान स्वाल्स्की, जो अपना नाम तक नहीं लिख सकता था और हस्ताक्षर की जगह स्याही में अँगूठा भिगोकर लगाता था, 'बीसवीं शताब्दी का होमर' कैसे बन गया? अगर बहुत पढ़ने-लिखने और पांडित्य में ही प्रतिभा-शक्ति है, तो क्यों इतने पढ़े-लिखे और विद्वान लोगों से मेरा वास्ता पड़ा है, जो ढंग की एक पंक्ति भी नहीं लिख सकते थे?

पहले पहाड़ों में बहुत ही दिलचस्प प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं। एक तरफ होते थे शिक्षित, अवार भाषा में लिख-पढ़ सकनेवाले मुतअल्लिम

(विद्वान) और दूसरी तरफ अनपढ़, अपने धंधे के सिवा और कुछ भी न जाननेवाले चरवाहे। इन दोनों पक्षों के बीच शेरो-शायरी का मुकाबला होता था। इस मुकाबले में अक्सर चरवाहे ही जीतते थे। हरी-भरी ढालों पर हवा की भाँति स्वच्छंद-स्वतंत्र रूप से उड़नेवाले गीत सुशिक्षित लोगों की नपी-तुली आवाज पर हावी हो जाते थे, उनपर अपनी जीत का झंडा गाड़ देते थे।

मगर इन दोनों को ही वे कवि जीत जाते थे, जो एक साथ मुतअल्लिम और चरवाहे होते थे। ऐसी प्रतियोगिता में अगर महमूद या मेरे पिता हमजात हिस्सा लेते, तो वे दूसरे कवियों का साथ नहीं, बल्कि आपस में मुकाबला करते। दूसरे कवि बहुत पीछे रह जाते।

शायद अक्ल ही प्रतिभा की शक्ति का आधार है? मगर मास्को और दुनिया के अनेक देशों में बहुत ही बुद्धिमान लोगों से मेरी भेंट हो चुकी है। अगर उनकी अक्ल अचानक कविताओं या कहानियों या उपन्यासों का रूप ले लेती, तो कला की अमूल्य रचनाएँ हमारे सामने आ जातीं। मगर न जाने क्यों, उनके बुद्धिमत्तापूर्ण विचार कागज पर नहीं उतर पाते, हवा में बिखरकर रह जाते हैं या उनके साथ ही कब्रों में चले जाते हैं।

तो शायद प्रतिभा की शक्ति अत्यधिक श्रम में, एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देने में निहित है? बहुत बार मुझे यह सुनने को मिला है कि प्रतिभा नाम की तो कोई चीज है ही नहीं, कि वह तो केवल कठोर श्रम से ही सामने आ सकती है। मगर जहाँ तक मेरा संबंध है, शाखा पर मजे से बैठी बुलबुल का तराना मुझे भारी बोझ ले जानेवाले गधे के रेंकने से कहीं ज्यादा अच्छा लगता है।

छकड़े को खींचनेवाला नहीं, बल्कि उस पर सवारी करनेवाला ही गाने गाता है।

ऐ मेरे अल्लाह, कितनी बेमेल बातें हैं इस दुनिया में! अगर गीत छकड़े पर बैठे इनसान की काहिली का नतीजा हैं, तो शायद सारी कला ही काहिली और फुरसत, माली बेफिक्री और सभी तरह की निश्चिंतता का परिणाम है?

मगर क्या गरीबों के झोंपड़ों में जन्म लेनेवाले गीत अमीरों के महलों में नहीं गाए जाते? खानों और अमीरों के बारे में गरीबों ने ही तो सारे किस्से गढ़े हैं। शामखाल ने इरचे गाजाख को साइबेरिया निर्वासित कर दिया। इरचे गाजाख वहाँ जाकर भी कविताएँ रचता रहा। इरचे गाजाख की कविताओं से ही लोग अब कुमीक शामखाल के बारे में जानते हैं।

जार्जिया के जवान राजकुमार दावीद गुरमिश्वीली को पहाड़ी लोग उड़ा ले गए। उन्होंने ऊनसूकूल में एक गढ़े में ले जाकर उसे डाल दिया। नम गढ़े में बैठा, अपने नीलाकाशवाले सुंदर जार्जिया के लिए तड़पता हुआ राजकुमार कविता रचने लगा। इस सिलसिले में कुछ हद तक यह कहा जा सकता है कि पहाड़ी लोगों ने राजकुमार गुरमिश्वीली को कवि बना दिया।

खूंजह के खान की बेटी ऐशात को एक जवान और सुंदर चरवाहे से प्यार हो गया था। पिता को जब यह मालूम हुआ, तो उसने बेटी को घर से निकाल दिया। जाड़े की ठंडी रात थी। भयानक ठंड, घुटनों तक बर्फ और तन चीरती हवा में हल्का-सा फ्राक पहने ऐशात ने अपना पहला गीत रचा था।

पर यदि ऐसा है, तो शायद इनसानी कमजोरी और गरीबी में ही प्रतिभा की सारी शक्ति छिपी है? शायद दुर्भाग्य और दुख-मुसीबत से ही सर्वश्रेष्ठ गीतों का जन्म होता है? कविता, तुम कौन हो और तुम्हें क्या चाहिए? बातीराई के पास तुम तब आई, जब वह बीमार और बूढ़ा था और भूखे पेट ठंडे और बुझे हुए चूल्हे के पास बैठा था। महमूद के पास तुम तब आई, जब वह कारपेथियंस की खंदकों में ठिठुर रहा था और उसकी वह प्रेयसी, जो उसे सूरज, पृथ्वी और जीवन से भी ज्यादा प्यारी थी, किसी दूसरे की बीवी बन गई थी। तुम अबूतालिब के पास तब आई, जब वह खुरजी और लाठी लिए गाँव-गाँव फिरा करता था और जब उसके दिल की रानी खातिमत ने उसे ठुकराकर एक मिलीशियामैन से शादी कर ली थी। तुम अलदारिलाव के पास तब आई, जब उसने अपने हत्यारों के हाथ से जहर का प्याला लिया। संगदिल जंदिनायब ने धागों से आँखील-मारीन का मुँह सी दिया था और तभी मारीन ने अपना सबसे अच्छा गीत रचा था। इस गीत ने बाकी सारे जीवन के लिए नायब का चैन और उसकी नींद हर ली थी।

प्रतिभा, कहो तो किस चीज में तुम्हारी शक्ति निहित है? कौन हो तुम-आत्मा की आवाज, प्रतिष्ठा, साहस या शायद डर? कायर भी तो रात के वक्त अपनी मंजिल तय करता हुआ गाता है और इस तरह साहस बटोरता है।

तुम सौभाग्य हो या दुर्भाग्य, पुरस्कार हो या दंड? क्या तुम वह सुंदरता हो जिसके कारण लोग व्यथित होते हैं या वह वेदना हो, जिससे सुंदरता जन्म लेती है? या तुम समय और घटनाचक्र की संतान हो? पत्थरों के आपस में टकराने से चिनगारियाँ पैदा होती हैं। युद्ध से पृथ्वी पर लोग नहीं बढ़ते, मगर उससे वीरों की संख्या बढ़ जाती है।

मुझे मालूम नहीं कि प्रतिभा किसे कहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे मैं यह नहीं बता सकता कि कविता क्या होती है। मगर कभी-कभी य तो घर जाते समय, या किसी पराई जगह पर, या फिर सोते वक्त (मानो मेरे नमदे के लाबदे का पल्ला उठाते हुए) या फिर जब मैं हरी-हरी घास पर कदम रखता हूँ (मानो सजीव हरियाली में से मेरे भीतर घुसकर घुसकर मेरे रक्त में घुल-मिल जाती है), या फिर खाने के समय, या फिर संगीत सुनते वक्त, तो परिवार के लोगों के बीच बैठे हुए या फिर हो-हल्ला मचानेवाले दोस्तों के साथ गप-शप के समय, या फिर उस वक्त जब मैं किसी बच्चे को गोद में उठाकर मानो उसे उसके लंबे जीवन-पथ के लिए आशीर्वाद देता हूँ, या फिर उस समय जब मैं अपने किसी दोस्त को उसकी आखिरी मंजिल पर पहुँचाने के लिए उसके जनाजे को कंधा देता हूँ, या फिर जिस वक्त मैं अपनी प्रियतमा को ध्यान से देखता हूँ - तो उस समय मुझे किसी दुर्लभ, अद्भुत, रहस्यपूर्ण और शक्तिशाली चीज की अनुभूति होती है। वह कभी तो खुशी से छलकती होती है, तो कभी दुख में डूबी हुई, मगर हमेशा ही वह मुझे कुछ करने को प्रेरित करती है, हमेशा ही बोलने को विवश करती है। वह बिन बुलाए और अनुमति के बिना ही आती है।

वह आती है और उसके पीछे ही मुझे लंबा चेर्केसी कोट पहने तथा हाथ में पंदूर लिए प्रेम-दीवाना महमूद, जो अपने गीतों में पूरी तरह अपना दुख-दर्द नहीं उँड़ेल पाया, उदासी भरी नाजुक मुस्कानवाले मेरे पिता जी, हाथों में जहर का प्याला लिए अलदरिलाव, संगदिल नायब द्वारा सिए गए रक्त-रंजित होंठोंवाली मारीन आदि आते जान पड़ते हैं और उनके पीछे, कहीं बहुत दूरी पर साहित्यिक महारथियों - दांते, तोलस्तोय, शिलर, ब्लोक, गेटे, बल्जाक, दोस्तोयेव्स्की की झलक-सी मिलती है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि किरण से छिन्न-भिन्न हुए कुहासे में से स्वयं भगवान का रूप झिलमिलाता है।

'क्या हो तुम?' मैं इस चीज से पूछता हूँ।

'मैं तुम्हारी प्रतिभा हूँ, तुम्हारी कविता हूँ।'

'कहाँ से आई हो तुम?'

'मैं तो हर जगह पर हूँ।'

'क्या तुम्हारी मेरी ही जितनी उम्र है?'

'ओह नहीं, मेरी उम्र एक क्षण भी है और हजारों शताब्दियाँ भी। मुझमें बच्चे का भोलापन है, सिरफिरे नौजवान का जुनून है और बुजुर्ग की समझ-बूझ है।

मेरी कोई उम्र नहीं। मैं वह अलाव हूँ, जो कभी नहीं बुझ सकता। मैं वह गीत हूँ, जिसे कभी कोई पूरी तरह से नहीं गा सकता। मैं ऐसी उड़ान हूँ, जो किसी के बस की बात नहीं। मैं तुमसे बहुत दूर हूँ और खुद तुममें हूँ। मुझे अपने भीतर सहेजना प्रसन्नता है, परमानंद है और साथ ही भारी व्यथा और पीड़ा है। मुझसे अधिक सुखद और अधिक दुखद कुछ भी नहीं।

'अगर मैं हूँ, तो वायलिन के तारों के कंपन से ठंडी चट्टानें टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगी। अगर मैं हूँ, तो जुरना-वादन से खड्डों में पहाड़ी बकरे नाचने लगेंगे। अगर में हूँ, तो हत्यारे के हाथ से खंजर गिर जाएगा और प्रेमी चुंबनों में खो जाएँगे।

'आनदी गाँव की पाती का जब बुरका उतारा गया, तो मैं वहाँ थी। मरियम को जब घोड़े पर डालकर भगा ले जाया गया था, तो मैं वहाँ थी। जॉन ऑफ आर्क ने जब म्यान से तलवार निकालकर अपने द्वारा प्रेरित सेनाओं को आगे बढ़ने के लिए ललकारा था, तो मैं वहीं थी। जब आदमी ने पंख बनाकर छज्जे से छलाँग लगा दी थी, तो मैं वहाँ थी। जब मेगेलन या कोलंबस ने अपने जहाजों के पाल ऊपर उठाए थे, तो मैं वहाँ थी। जब 'सिसतीन मादोना' का चित्र बनाया जा रहा था, तो मैं वहाँ थी।

'सभी युग और सारी पृथ्वी मेरा कर्म-क्षेत्र हैं। विभिन्न महाद्वीप और राज्य हैं, पाटियाँ और सरकारें हैं, वर्ग और जातियाँ हैं। मगर इनसान भी हैं। इनसानों के पास मस्तिष्क और आत्माएँ हैं। वे किसी भी महाद्वीप में क्यों न हों, प्यार और घृणा करते हैं, उनमें साहस और भय है, सज्जनता और दुष्टता है, आत्मत्याग और झूठ है, वे महात्मा हैं और चुगलखोर भी। लोगों का मस्तिष्क और आत्मा - ये हैं मेरी रंग-भूमि, मेरी विजय-पराजय के क्षेत्र, मेरी सिद्धि और उपलब्धि।'

'तो मुझसे सच-सच कह दो कि मैं किस लायक हूँ? क्या मैं उस बर्फ जैसा तो नहीं हूँ, जो अगले दिन पिघल जाएगी, उस गागर में तो पानी डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, जिसके तल में सूराख है? तुम्हारी कभी न बुझनेवाली आग की एक चिनगारी तो मेरी आत्मा में आ गिरी है या नहीं, तुम्हारी उत्तेजित और मस्त कर देनेवाली सुरा की एक बूँद तो मेरे होंठों पर आ गिरी है या नहीं?'

मेरी आँखों से हर्ष-विषाद के आँसू बह रहे हैं। मगर कुछ दूसरे आँसू भी हैं, जो मेरी आँखों की गहराई में छिपे हुए हैं, ठीक उसी तरह जैसे शिकारी की पद-चाप सुनकर डरपोक पक्षी छिप जाता है। मगर इन छिपे हुए आँसुओं में भी एक प्यार का है, दूसरा दुख का, एक दुर्भाग्य का है, दूसरा सौभाग्य का। मेरे सिर पर बाल

भी दो रंग के हैं - काले और सफेद। मेरी एक टाँग जवानी में है और दूसरी बुढ़ापे में। बुढ़ापा और जवानी हमेशा आपस में जूझते रहते हैं और उनकी रंग-भूमि है मेरी आत्मा।

प्यारा मुझे चिनार, तने दो बड़े-बड़े
एक सूखता, मगर दूसरा, पत्तों पर इतराता
प्यारा मुझे उकाब, पंख दो बड़े-बड़े
गिरता जाए एक, दूसरा, नभ में शान दिखाता।

टीस रहे हो घाव वक्ष में भी मेरे
रिसे एक तो, मगर दूसरा प्रतिदिन भरता जाता
ऐसे ही होता है, आती खुशी कभी
उसे हटाकर एक तरफ, दुख फिर से वापस आता।

जीवन की सीमाएँ हैं, वह छोटा है और कल्पनाएँ है असीम। खुद मैं अभी सड़क पर चला जा रहा हूँ, मगर कल्पना घर पर पहुँच चुकी है। खुद मैं प्रेमिका के घर जा रहा हूँ, मगर कल्पना उसकी बाँहों में भी पहुँच चुकी है। खुद मैं इस वक्त साँस ले रहा हूँ, मगर कल्पना कई साल आगे पहुँच जाती है। वह उन सीमाओं से भी दूर पहुँच जाती है, जहाँ जीवन अँधेरे में जाकर खत्म हो जाता है। कल्पना अगली सदियों की उड़ान भरती है।

अपनी कल्पनाओं में मैं जिन खेतों को जोतता हूँ, वे उनकी तुलना में कहीं अधिक विस्तृत हैं, जिन्हें मैं वास्तव में जोतता हूँ। प्रतिभा, तुम किसकी सेवा करोगी, मेरी या मुझसे बहुत दूर उड़ जानेवाली मेरी कल्पनाओं की?

हाँ, तुम कभी न बुझनेवाली आग हो। तुम वह गीत हो, जिसे कोई भी अंत तक नहीं गा सकता। तुम वह उड़ान हो, जो किसी के बस की बात नहीं। मगर तुम्हारे चिरंतन गीत में क्या मैं अपनी एक धुन, अवार धुन जोड़ सकता हूँ? संभव है कि तब सारा गीत ही अधिक सुंदर हो जाए?

क्या मैं तुम्हारी अमर ज्वाला से ली गई एक चिनगारी से दागिस्तान के शिखरों पर छोटी-सी आग जला सकता हूँ? क्या मैं तुम्हारी अनंत और अंतहीन उड़ान को थोड़ा-सा, बेशक एक चट्टान से दूसरी तक ही, बढ़ा सकता हूँ?

मेरा गाँव है - त्सादा। इसका अर्थ है - आग। एक बार किसी दूसरे गाँव के एक आदमी ने मुझसे पूछा -

'कहाँ के रहनेवाले हो तुम, नौजवान?'

'त्सादा का।'

वह बोला -

'पहले अपनी कुछ कविताएँ सुनाओ और तब मैं तुम्हें यह बताऊँगा कि उनमें आग है या ठंडी राख।'

संदेह मुझ पर हावी हो जाते हैं। क्या मैं उस वक्त तो अपना नमदे का लबादा नहीं पहन रहा हूँ, जब ठंडे-बुरे मौसम का अंत हो चुका है और छिन्न-भिन्न होते बादलों के पीछे से सूरज फिर झाँकने लगा है? क्या मैं उस वक्त तो बाड़े के दरवाजे को ताला नहीं लगा रहा हूँ, जब चोर बैल को भगा भी ले जा चुके हैं? क्या वही कुछ नहीं सुना रहा हूँ, जिसे सभी अनेक बार सुन चुके हैं? क्या उन लोगों को मैं दावत पर नहीं बुला रहा हूँ, जो अभी-अभी किसी अच्छे मेजबान के यहाँ से खूब खा-पीकर निकले हैं? मुझे अपनी किताब लिखनी भी चाहिए या नहीं?

'अगर लिखे बिना रह सकते हो, तो न लिखो।'

'क्या मैं लिखे बिना रह सकता हूँ? रोगी को जब बहुत पीड़ा होती है, तो क्या वह कराहे बिना रह सकता है, क्या कोई सुखी आदमी मुस्कराए बिना रह सकता है? क्या बुलबुल चाँदनी रात की निस्तब्धता में गाए बिना रह सकती है? जब नम और गर्म मिट्टी में बीज फूट चुका है, तो घास बढ़े बिना कैसे रह सकती है? वसंत का सूरज जब कलियों को गर्माता है, तो फूल कैसे खिले बिना रह सकते हैं? जब बर्फ पिघल जाती है और पत्थरों से टकराता तथा शोर मचाता हुआ पानी नीचे बहने लगता है, तो पहाड़ी नदियाँ सागर की ओर बहे बिना कैसे रह सकती हैं? टहनियाँ अगर सूख चुकी हों और उनमें शोला भड़क चुका हो, तो अलाव कैसे जले बिना रह सकता है?'

बचपन में ही मुझे अलावों से प्यार हो गया था। मैं रातों को चरवाहों के यहाँ, नदी-तट पर, चट्टान के दामन में, इर्द-गिर्द के पहाड़ों की चोटियों या घरेलू चूल्हों में आग जलते देखा करता था। मैं जानता हूँ कि आग जलाना तो आधा काम है और बुरे मौसमवाली लंबी रात में उस आग को जलाए रखना कहीं अधिक कठिन होता है।

मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे दिल में आग है। लेकिन मैं क्या करूँ, किस तरह का व्यवहार करूँ कि यह आग ठंडी न हो जाए, किसी को गर्माए बिना, अँधेरे में किसी का पथ रोशन किए बिना बुझ न जाए? अपनी प्रतिभा को सुरक्षित रखने और सुदृढ़ बनाने के लिए मैं क्या करूँ?

पिता जी के संस्मरण से। एक पहाड़ी आदमी ने पिता जी के पास आकर कहा -

'मैं कोशिश करके देख चुका हूँ और मुझे इस बात का विश्वास हो गया है कि मैं तुक मिला सकता हूँ। मगर मुझे यह मालूम नहीं कि वास्तविक कविता रचने के लिए क्या करना चाहिए।'

पिता जी ने जवाब दिया -

'वायलिन के तारों को सुर में करना ही काफी नहीं, उसे बजाना आना चाहिए। जमीन का होना ही काफी नहीं, उसे जोतना-बोना आना चाहिए।'

'कविता रचने के लिए मैं क्या करूँ?'

'क्या करूँ? काम में जुटा जाओ

काम

अगर किसी को काम हमारा लगे शहद जैसा
वह कूबाची में आ देखे सचमुच वह कैसा।
कूबाची की कला-वस्तु पर आलेख

मैं गुलाम हूँ अपनी इन कविताओं का श्रम करता रहता डटकर
हाड़ तोड़ता, कमर झुकाता रात-दिवस, बहे पसीना माथे पर
फिर भी मेरी मालिक, मेरी कविताएँ, मुझ से तुष्ट न हो पातीं,
बहुत रात को, बहुत देर से वे मुझको जब मन आता, दौड़ातीं।
मैं रिक्शा हूँ, मेरी दोनों बगलों से, बम भिड़ते हैं, टकराते,
जहाँ-तहाँ से मेरी त्वचा उधड़ जाती, वे धचके दे, धकियाते।
पहिए, जिनसे जुता हुआ चिर तन मेरा भारी ही होते जाते।

यह घटना बहुत पहले घटी थी, मगर मुझे आज भी वह इतनी अच्छी तरह और इतनी साफ तौर पर याद है मानो कल ही घटी हो। मैं तो इस पर एक कविता भी रच चुका हूँ, मगर यहाँ दोहराए बिना नहीं रह सकता।

दागिस्तान के कवि हमजात का मैं बेटा, जिसे उस वक्त कोई नहीं जानता था, अपना गाँव छोड़कर पहले मखचकला और फिर मास्को चला गया। साल बीते। मैंने साहित्य-संस्थान की पढ़ाई समाप्त की, दस कविता-संग्रह निकाल दिए। एक संकलन के लिए मुझे स्तालिन पुरस्कार भी मिल गया। मैंने शादी की। थोड़े में यह कि कवि रसूल हमजातोव बन गया। तभी मेरे दिल में फिर से अपने गाँव जाने का ख्याल आया।

सारा-सारा दिन मैं उन जगहों पर घूमता रहता, जहाँ कभी बचपन और किशोरावस्था में भागा फिरता रहा था। मैं चट्टानों और गुफाओं को देखता, लोगों से बातें करता, निर्झरों के गीत सुनता, कब्रिस्तान में चुपचाप बैठा रहता और फिर से खेतों में घूमने लगता।

सं.रा. अमरीका में मैंने फोर्ड के कारखाने में वह जगह देखी, जहाँ नई कारों की आजमाइश की जाती है। लेखक के लिए ऐसा परीक्षण-स्थल वह होना चाहिए, जहाँ उसका जन्म हुआ है।

औरतें गेहूँ के खेतों में निराई करके घर लौट रही थीं। वे थकी-हारी और धूल से लथ-पथ थीं, पैनी घास से उनके हाथों पर खरोंचें आ गई थीं, उनमें चीर पड़ गए थे। औरतें आराम करने के लिए सड़क किनारे बैठ गईं। मैं उनके पास गया।

मालूम नहीं कि या तो मुझे देखकर वे मेरी चर्चा करने लगी थीं या पहले से ही मेरा जिक्र छिड़ा हुआ था, मगर अचानक मैंने मुट्ठी भर घास से माथे का पसीना पोंछनेवाली नारी को यह कहते सुना -

'अगर मुझसे कोई यह पूछे कि मैं सबसे अधिक क्या चाहती हूँ, तो मेरा जवाब होगा - रसूल हमजातोव का बेफिक्र दिल और उसके जैसी मजे की जिंदगी।'

'तुम क्या समझती हो कि रसूल के सीने में दिल की जगह पनीर का टुकड़ा है और वह कभी नहीं कसकता?' मेरी एक रिश्तेदार ने मेरा पक्ष लिया।

'पनीर का टुकड़ा तो चाहे न हो, मगर फिर भी उसे गेहूँ के खेत की निराई नहीं करनी पड़ती। सामूहिक फार्म की घंटी उसे काम पर नहीं बुलाती और दोपहर का खाना खाने की अनुमति नहीं देती। उसे यह मालूम नहीं कि श्रम-दिवस किसे कहते हैं, कैसे उसके लिए काम किया जाता है और क्या मुआवजा मिलता है। मजे से अंट-शंट, अल्लम-गल्लम लिखता रहता है... उसे किस बात की चिंता हो सकती है? किसलिए उसका दिल टीस सकता है? इससे ज्यादा क्या मौज हो सकती है?'

ओ भली मानस! कैसे मैं तुम्हें अपने काम, अपने अविराम और कठिन श्रम के बारे में बताऊँ?

उदास-उदास-सा मैं खेत से गाँव की ओर चला गया। गाँव के चौपाल में पके बालोंवाले बुजुर्ग ठंडे पत्थरों को गर्मा रहे थे। बड़े इतमीनान से वे आपस में जमीन, भावी फसल, पहाड़ों, चरागाहों, बीमारियों और जड़ी-बूटियों तथा हमारे

गाँव के बीते दिनों की चर्चा कर रहे थे। मैं उनके पास गया, सलाम-दुआ की और ठंडे पत्थर पर बैठ गया।

एक बुजुर्ग के पास ताजा अखबार था, जिसमें मेरी कविताएँ छपी हुई थीं। उन्हीं के बारे में बातचीत होने लगी। घुड़सवार को अपने घोड़े की तारीफ से खुशी होती है। मुझे भी उम्मीद थी कि मेरे गाँववासी अभी मेरी कविता की प्रशंसा करेंगे। बात यह है कि मास्को और मखचकला में मैं तारीफ सुनने का आदी-सा हो चला था। उस बुजुर्ग ने, जिसके हाथ में अखबार था, कहा -

'तुम्हारे पिता हमजात कविता रचते थे। तुम, हमजात के बेटे भी कविता लिखते हो। तुम काम कब करोगे? या तुम रोटी के टुकड़े से कुछ अधिक भारी चीज उठाए बिना ही अपनी सारी जिंदगी बिता देने का इरादा रखते हो?'

'कविता ही तो मेरा काम है,' मैंने यशाशक्ति धीरज से जवाब दिया। बातचीत के ऐसा रुख ले लेने पर मैं सकते में आ गया था।

'अगर कविता लिखना ही काम है, तो निठल्लापन किसे कहते हैं? अगर गीत ही श्रम है, तो मौज और मनोरंजन क्या है?'

'गीत गानेवालों के लिए वह सचमुच मनोरंजन हैं, मगर जो उन्हें रचते हैं, उनके लिए वही काम है। नींद और आराम, साप्ताहिक और वार्षिक छुट्टियों के बिना काम। मेरे लिए कागज वही मानी रखता है, जो खेत तुम्हारे लिए। मेरे शब्द - मेरे दाने हैं। मेरी कविताएँ - मेरे अनाज की बालें हैं।'

'हाँ, ये सब तो बहुत सुंदर शब्द हैं। खेत मेरे घर की छत पर नहीं आ जाता। मुझे खेत में काम करने जाना पड़ता है। मगर तुम तो कहीं भी क्यों न हो, चाहे बिस्तर में ही, गीत अपने आप ही तुम्हारे पास आ जाता है। तुम्हारा हर गीत तो जैसे तुम्हारा मेहमान होता है, जो तुम्हारे घर पर दस्तक देता है। इसका मतलब यह है कि हर गीत एक पर्व है। मगर हमारा खेत तो रोजमर्रा की आम जिंदगी है।'

हमारे गाँव के बुजुर्गों ने इस तरह या लगभग इस तरह अपने विचार प्रकट किए।

'मगर गीत ही तो मेरी जिंदगी है।'

'इसका यह मतलब है कि तुम्हारी जिंदगी तो स्थायी पर्व है। बात यह है कि गीत तो प्रतिभा का मामला है। जिसके पास प्रतिभा है, उसके लिए अच्छा गीत रचना बहुत आसान काम है। मगर जिसके पास उसकी कमी है, उसे श्रम करना पड़ता है। हाँ, इस संबंध में श्रम से बहुत लाभ नहीं होता।'

'नहीं, आपकी बात सही नहीं है। जिसके पास कम प्रतिभा होती है, वह कला को बच्चों का खेल समझता है। वही एक गीत से दूसरे गीत पर उड़ता फिरता है। जैसा कि कहा जाता है, घास काटता है। बड़ी प्रतिभा के साथ-साथ उसके प्रति जिम्मेदारी भी आती है और वास्तविक प्रतिभावाला व्यक्ति अपनी कविताओं को बहुत कठिन और महत्वपूर्ण काम मानता है। गाई जानेवाली हर चीज गीत नहीं होती, सुनाई जानेवाली हर चीज कहानी नहीं होती।'

'तो बताओ कि तुम कैसे काम करते हो और तुम्हारे धंधे में क्या कठिनाइयाँ होती हैं?'

मेरे इर्द-गिर्द बुजुर्ग हलवाहे बैठे थे। मैं उन्हें अपने काम के बारे में बताने लगा, मगर जल्दी ही यह समझ गया कि मेरे लिए बहुत ही साधारण बातों को, जिन्हें मैं बहुत ही अच्छी तरह समझता हूँ, दूसरों को समझाना मुश्किल है। मैं अटकने और बेचैनी महसूस करने लगा और खामोश हो गया। बाजी बुजुर्गों के हाथ रही थी। मैं उन्हें यह नहीं समझा पाया कि कविता रचना क्यों मुश्किल है और कुल मिलाकर कविता रचना काम ही क्या है।

तब से अब तक बहुत साल बीत चुके हैं। मगर आज भी अगर कोई मुझसे यह पूछता कि मेरा काम क्या है, कि वह क्यों मुश्किल और दूसरे कामों से कैसे भिन्न है, तो शायद मैं साफ तौर पर यह न समझा पाता।

मेरे काम की जगह कहाँ है? मेज पर, हाँ, काम की मेज पर। मगर सैर के वक्त वह पहाड़ी पर भी होती है, जब मैं अपनी कविता की कल्पना करता हूँ और शब्द तथा ध्वनियाँ मेरे पास आती हैं, मगर मैं उन्हें ठुकराकर एक तरफ को फेंक देता हूँ। मेरे काम की जगह रेलगाड़ी भी है, जिसमें बैठकर मैं किसी दूसरे देश को जाता हूँ। कारण कि इस वक्त भी मेरे दिमाग में नई कविता के विचार आ सकते हैं। हवाई जहाज, ट्राम, लाल चोक, नदी-तट, जंगल और किसी मंत्री का स्वागत-कक्ष भी मेरे काम की जगह हो सकती है। पृथ्वी पर हर जगह ही मेरा कार्य-स्थल, मेरा खेत है, जहाँ मैं रहता और हल चलाता हूँ।

किस वक्त मैं काम करता हूँ? सुबह को या शाम को? कितना बड़ा है मेरा कार्य-दिवस? आठ घंटे का या छह घंटे का, बारह घंटे का, बारह घंटे का या इससे अधिक लंबा है वह? पर यदि इससे बड़ा है, तो मैं क्यों हड़ताल नहीं करता, आठ घंटे के कार्य-दिवस के लिए संघर्ष क्यों नहीं करता?

बात यह है कि जब से मुझे होश है, मैं हमेशा ही काम करता रहा हूँ। खाने के वक्त और थिएटर में, बैठक में और शिकार के समय, चाय पीते और मातम मनाते हुए भी, मोटर में और शादी के मौके पर भी। यहाँ तक कि नींद में भी कविता की पंक्तियाँ, उपमाएँ और विचार तथा कभी-कभी तो पूरी की पूरी तैयार कविताएँ दिखाई देती हैं। इसका मतलब यह है कि नींद में भी मेरा कार्य-दिवस जारी रहता है। बहुत पहले ही हड़ताल कर देनी चाहिए थी मुझे।

मैं कैसे काम करता हूँ? इस सवाल का जवाब देना सबसे ज्यादा मुश्किल है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरा काम दूसरे सभी लोगों के काम के समान है। कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह बिल्कुल अनूठा है और दुनिया के लोग जितने भी काम कर रहे हैं, उनमें से किसी के साथ भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

कभी-कभी मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि इर्द-गिर्द सभी लोग काम करते हैं और मैं अकेला ही कुछ नहीं करता। कभी-कभी मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि सिर्फ मैं ही काम करता हूँ और मेरी तुलना में बाकी सभी निठल्ले हैं।

पक्षियों के बड़े मजे हैं। वे जिंदगी भर वही गीत गाते रहते हैं, जो उनके माँ-बाप उन्हें सिखा देते हैं। नदी भी मौज करती है। हजारों सालों से वह एक ही धुन गाती चली जा रही है। मगर मुझे तो अपनी छोटी-सी जिंदगी में इतने गीत रचने हैं, जो बहुत-बहुत सालों तक काफी हों।

जमीन का छोटा-सा टुकड़ा जोतनेवाले पहले आदमी का काम शायद काफी मुश्किल रहा होगा। पहला गीत रचनेवाले का काम भी आसान नहीं रहा होगा।

यदि एक हजार आदमी जमीन जोत चुके हों, एक हजार एकवें के लिए यह काम अपेक्षाकृत आसान होगा। पर यदि एक हजार आदमी कविताएँ लिख चुके हैं, तो एक हजार एकवें के लिए यह और भी ज्यादा मुश्किल काम होगा।

हाँ, खेतिहर, कुछ हद तक तो मेरा काम तुम्हारे काम जैसा ही है। इसलिए कृपया, मुझे ऐसा निठल्ला नहीं समझो, जिसका जीवन स्थायी रूप से मनोरंजन और मौज-बहार ही है। लंबी और उनींदी रातों में मैं तुम्हारी ही तरह अपने खेत के बारे में सोचता रहता हूँ। तुम अपने खेत के लिए बढ़िया बीज चुनते हो और मैं कुल शब्दों में से सबसे अच्छे शब्द चुनता हूँ। हजारों में से मुझे केवल एक ही चुनना होता है। मेरी भी अपनी जोत है, उसमें भी बीज फूटते हैं, जिनसे मुझे खुशी होती है, मुझे भी अपने श्रम के फल मिलते हैं। मैं भी अपने ढंग की बोवाई-

निराई करता हूँ, क्योंकि मेरे खेत में भी काँटे और घास-पात हैं। मशीन की मदद से भी अच्छे-बुरे बीजों को अलग करना मुश्किल होता है। उपयोगी, हितकर और अच्छे शब्दों को गंदे-गंदे शब्दों से अलग करना और भी ज्यादा मुश्किल होता है।

किसान, तुम ओलों, पाले और सूखे से अपने खेत की रक्षा करते हो। मेरे लिए ऐसे गीत रचना जरूरी है, जो अपने सबसे भयानक शत्रु यानी समय के भय से मुक्त हों, क्योंकि मैं ऐसे गीत रचना चाहता हूँ, जो सदियों तक जिंदा रहें।

मुझे भी अपने ढंग के हानिकारक जीव-जंतुओं, कीड़ों-मकोड़ों, टिड्डियों और चूहों-से निपटना पड़ता है। वे मेरी फसल को कम कर सकते हैं या बिल्कुल ही नष्ट कर सकते हैं अथवा ऐसी बदमजा कर सकते हैं कि लोग मेरे श्रम के फलों से मुँह मोड़ लेंगे।

इतना ही नहीं, तुम्हारे चूहों और धानीमूषों के मुकाबले में मेरे खेत के फसल-नाशक चूहे कहीं बड़े और भयानक हैं, उनके विरुद्ध संघर्ष करना कहीं अधिक कठिन और कभी-कभी तो बिल्कुल व्यर्थ होता है।

चूल्हा जलता, छत के ऊपर टेढ़ा-मेढ़ा धुआँ दिखे
फिर भी है यदि सेंध कहीं पर, छोटी-सी भी उस घर में,
तब तो हवा किसी भैंसे-सा, अपना भारी सिर लेकर
घुस आएगी भीतर झटपट, बर्फ जमेगी घर भर में।

मेरी कविता के संग भी तो, ऐसा ही कुछ होता है
उसकी सेंधों का मैं भी तो, मूल्य चुकाता हूँ भारी,
ढीले-ढाले शब्दों में तो हवा तुरत घुस आती है
और बर्फ-सी जम जाती है, कविता तब मेरी सारी।

बाद में मुझे अपने फल लोगों में बाँट देने होते हैं। दागिस्तान और दूसरे देशों के लोगों को उन्हें चखना होता है, उनकी मिठास या कड़वाहट, उनके विशेष स्वाद को जानना होता है। मेरे फल का स्वाद अन्य सभी फलों के स्वाद से भिन्न होना चाहिए।

मुझे याद है कि कैसे मेरे बचपन के दिनों में पिता जी मुझे पूले बाँधना सिखाते थे। जब मैं घुटना टेककर पूरे जोर से पूले को कसता था, तो पिता जी कहते थे -

'रसूल, ध्यान से। पूले का गला नहीं घोटों।'

अब, जब कभी कोई कविता नहीं बनती, मेरे बहुत धकेलने पर भी कोई पंक्ति बाहर निकल आती है और मैं कविता को जैसे-तैसे खत्म कर डालने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाता हूँ, तो ऐसे क्षणों में मुझे अक्सर पिता जी की यह सीख याद आ जाती है - 'रसूल, ध्यान से। पूले का गला नहीं घोंटो।'

खेतों में हर साल एक जैसी फसलें नहीं होतीं। एक साल तो इतना अनाज हो जाता है कि बखार और एलीवेटर भी काफी नहीं होते और फिर ऐसा भी होता है कि तीन साल तक कुछ भी पैदा नहीं होता। मेरा भी ऐसा ही हाल है। हमेशा एक ही तरह से काम नहीं कर पाता। वैसे खाद और बीज तो मैं बढ़िया डालता हूँ, जुताई भी ढंग से करता हूँ, मगर अनाज पैदा नहीं होता। ऐसे वक्तों में अनुवाद करना और अनाज कहीं आस्ट्रेलिया या कनाडा से खरीदना पड़ता है। जब मेरी काव्य-दीप्ति मंद पड़ जाती है और कविताएँ मेरी आत्मा से निकलकर कागज पर नहीं आना चाहतीं, तब किसी भी तरह के रासायनिक पदार्थ मेरी मदद नहीं कर पाते।

मगर क्या किया जाए? अगर हर अभियान और शुरू किया गया हर काम सिरे ही चढ़ जाता, तो सभी संतुष्ट और खुश रहते। अगर जमीन हर साल भरपूर फसल देती, तो दुनिया में कोई भी भूखा न रहता। अगर कागज पर लिखी हर चीज गीत होती, तो लोग कभी के साधारण भाषा में बातचीत करने के बजाय गाते ही रहते। मगर गीत रचना बहुत टेढ़ी खीर है।

मुझे दागिस्तान, जार्जिया, आर्मीनिया और बल्गारिया के शराब के कारखानों तथा पील्जेन की बीयर-फैक्टरियों में भी जाने का मौका मिला है। मुझे लगता है कि कवियों और शराब बनानेवालों में बहुत कुछ साझा है। दोनों की अपनी बारीकियाँ और रहस्य हैं। शराब की तरह कविता भी आत्मा में उठनी चाहिए, उसे वहाँ ही पकना चाहिए। शराब की तरह अच्छी कविता में भी आत्मा को खुश करनेवाला कोई रहस्यपूर्ण खुमार छिपा रहता है। इस दृष्टि से कविता और शराब एक-दूसरी के बहुत निकट हैं।

कभी-कभी किसी पहाड़ी गाँव में, जहाँ दुकान है, शराब के पीपे लादे हुए ट्रक आती है। एक पीपा इस गाँव में, दूसरा उस गाँव में - बूयनाक्स्क से लाई गई शराब को ड्राइवर इस तरह पहाड़ी गाँवों में पहुँचाते हैं।

ऐसी ट्रक को देखते ही नौजवान लोग ऐसा जाहिर करते हुए कि न तो उन्हें कोई उतावली है और न जल्दी, मगर वास्तव में बेहद बेसब्र होते हुए, गाँव के

सभी कोनों से उस दुकान की ओर चल पड़ते हैं। वे पीपे को ऐसे घेर लेते हैं जैसे चरवाहे द्वारा रखे हुए नमक के डले को भेड़ें।

शराब को घड़ों में डाला जाता है, सभी चखने लगते हैं और तब सभी को भारी निराशा होती है। ऐसी आवाजें सुनने को मिलती हैं -

'यह भी कोई शराब है। यह तो पानी है।'

'नाले का मामूली पानी।'

'बेचनेवाले खुद ही पी लें ऐसी शराब।'

'मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हैं?' विक्रेता विरोध करता है। 'आप लोगों ने तो देखा है कि पीपा ट्रक में लाया गया है। आपके सामने ही नीचे उतारा गया है। आप लोगों ने उसे उतरवाने में भी मदद की है। तो फिर मेरा क्या दोष है? जैसी शराब आई है, वैसी ही बेच रहा हूँ। नहीं चाहते, तो नहीं खरीदिए।'

असल बात यह है कि शहर के गोदाम में ऐसे लोग हैं, जो हल्के में शराब भेजने के पहले पीपे में से जितनी भी चाहते हैं, शराब निकाल लेते हैं और उसकी जगह शुद्ध जल डाल देते हैं। 'हलकों में तो ऐसी शराब पाकर भी बहुत खुश होंगे।' हलके के गोदाम से गाँवों को शराब रवाना करने के पहले वहाँ के कर्मचारी भी यह किस्सा इसी तरह दोहराते हैं। 'गाँवों के लिए तो ऐसी शराब भी चलेगी।' वे कहते हैं। रास्ते में ड्राइवर और कुली तन गर्माने तथा लंबे सफर की ऊब मिटाने के लिए कई लीटर शराब निकाल लेते हैं और किसी निर्झर या नदी से निर्मल जल डाल लेते हैं। तो इस तरह या तो पानी से खराब हुई शराब या शराब से खराब हुआ पानी बन जाता है।

कुछ कविताओं को पढ़ते हुए भी यह समझ में नहीं आता कि उनमें कवित्व अधिक है या कोरी शब्द-भरमार। काहिल कवि ही, जो मेहनत करने से घबराते हैं, ऐसी कविताएँ रचते हैं। मगर उछल-कूद करनेवाली नदी शायद ही कभी सागर तक पहुँच पाती है। आलसी यात्री शायद ही कभी मक्का तक पहुँच पाता है। जब दो सवारों को एक ही घोड़े पर जाना होता है, तो वे एक-दूसरे को सहारा देते हैं। प्रतिभा और श्रम भी एक ही घोड़े पर सवारी करते हैं।

अबूतालिब कहा करते थे कि प्रतिभा और श्रम को कविता में ऐसे घुल-मिल जाना चाहिए जैसे खंजर और म्यान मिलकर एक हो जाते हैं।

नोटबुक से। उन दिनों मैं घर के बजाय बाहर सड़क पर ज्यादा वक्त बिताता था। मैं स्कूल में पढ़ता था, और कविता रचने लगा था। मगर मुझमें कविता रचने,

पढ़ने और घर पर तैयार करने के लिए दिए गए स्कूली पाठों को पूरा करने का धीरज नहीं होता था। मेज के पास टिककर बैठना तो मैं जानता ही नहीं था। बहुत जल्दी ही मैं बेचैनी महसूस करने लगता, मेज पर से उठता और मौका मिलते ही बाहर सड़क पर भाग जाता। अभी भी मैं न तो बहुत टिककर बैठ सकता हूँ और न मुझमें बहुत धीरज ही है।

एक दिन पाठ तैयार करने या कविता रचने के लिए मुझे बैठाकर पिता जी थोड़ी देर को बाहर गए। दरवाजा बंद हुआ ही था कि मैं झटपट मेज पर से उठा और अपने घर की छत पर जा पहुँचा। मुझे वहाँ देखकर पिता जी ने माँ को पुकारा और कहा -

'जरा मुझे वह रस्सा ला दो जो कील पर लटका हुआ है।'

'क्या जरूरत है तुम्हें उसकी?'

'मैं रसूल को कुर्सी के साथ बाँधना चाहता हूँ, वरना वह कभी काम का आदमी नहीं बनेगा।' पिता जी ने बड़े इतमीनान से और कसकर मुझे कुर्सी के साथ बाँध दिया, धीरे-से मेरे माथे पर चपत लगाई और कागज की तरफ इशारा करके बोले -

'भेजे में जो कुछ है, यहाँ लिखो।'

काश कि हम लेखकों को अब भी कोई जब-तब कुर्सी पर बाँध देता।

मुमकिन है कि दिमाग तो काम करता हो, मगर यदि दिमाग काम करता है और हाथ कुछ नहीं करते, तो यह तो वैसी ही बात होगी कि चक्की आटा पीसने के बजाय खाली ही घूमती जाए।

शानगिराई, उसके बेटे और पाँच रूबलों का किस्सा। कुछ अर्से पहले की बात है कि खूंजह में शानगिराई नाम का एक धनी और सर्वसम्मानित व्यक्ति रहता था। उसका इकलौता और इसलिए बिगड़ा हुआ तथा सनकी बेटा था। पिता ने चाहा कि उसका बेटा गाँव के अन्य लोगों की तरह काम करे और इस तरह सही अर्थ में इनसान बने। मगर बेटा काम करना नहीं चाहता था। पिता के दोस्त और रिश्तेदार उसे बिगाड़ते थे। कोई उसे घोड़ा भेंट कर देता, कोई चेर्केसी कोट, कोई पैसे और कोई खंजर।

एक बार शानगिराई बहुत सख्त बीमार हो गया। दवाइयों से उसे कोई फायदा न हुआ। सभी रिश्तेदार, दोस्त-मित्र बीमार के पास जमा हुए।

'तुम अच्छे हो जाओ, इसके लिए हम क्या करें?'

'मैं तो जानता हूँ कि कैसे मैं भला-चंगा हो सकता हूँ मगर तुम लोग मेरी इच्छा पूरी करने में असमर्थ हो।'

'तुम अपनी इच्छा तो प्रकट करो। हम उसे पूरा करने के लिए कोई कसर न उठा रखेंगे।'

'अगर मेरा बेटा खुद कमाकर पाँच रूबल लाए और मुझसे कहे : 'पिता जी, इन्हें ले लो, ये आपके हैं,' तो मैं ठीक हो जाऊँगा।'

दो दिन बाद बेटा अपने बाप के पास आया और पाँच रूबल का नोट बढ़ाते हुए बोला -

'पिता जी, ये रूबल ले लीजिए। गोईसुव खड्ड में से तने बहाकर मैंने कमाए हैं।'

पिता ने नोट की तरफ, फिर बेटे की तरफ देखा और नोट को आग में फेंक दिया। बेटा बुत बना खड़ा रह गया। उसके चेहरे का ऐसे रंग उड़ गया मानो किसी ने तमाचा रसीद कर दिया हो।

वास्तव में बीमार शानगिराई की इच्छा जानकर लड़के की मदद करने के लिए वे पाँच रूबल उसके चाचा ने दिए थे।

कुछ दिन बाद बेटा फिर से बाप के पास आया और पाँच रूबल का नोट बढ़ाते हुए बोला -

'मैंने गूनीब में बन रही नई सड़क की तामीर में हिस्सा लेकर इन्हें खुद कमाया है।'

पिता ने बेटे की तरफ, फिर नोट की तरफ देखा और उसे मोड़कर खिड़की से बाहर फेंक दिया।

बेटा बुत बना खड़ा रहा। उसे ये रूबल होत्सातल में रहनेवाले पिता के एक दोस्त ने दिए थे।

बेटा तीसरी बार पिता के पास आया और तीसरी बार उसने पाँच रूबल का नोट पिता की तरफ बढ़ाया। पिता ने बेटे की तरफ देखे बिना ही नोट लिया और उसके दो टुकड़े कर डाले। बेटा बाज की तरह नोट के उन दो टुकड़ों पर झपटा और उन्हें उठाकर जोड़ने लगा। उसने चिल्लाकर पिता से कहा -

'मैंने इसलिए पेत्रोव्स्क में घुड़सालों की सफाई करके ये रूबल नहीं कमाए थे कि आप इन्हें मामूली कागज की तरह फाड़कर फेंक दें। मेरे हाथों पर गट्टे पड़

गए हैं।'

'हाँ, अब यह बात बिल्कुल साफ है कि तुमने खुद ही ये रूबल कमाए हैं।'

शानगिराई खुश हो उठा, उसकी तबीयत सँभलने लगी और जल्दी ही वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

अपनी मेहनत से कमाई गई दौलत का ही वास्तविक मूल्य होता है।

शायद कविता के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। अगर कविता रचने के लिए कवि को खुद कष्ट उठाना पड़ा है, तो हर शब्द और हर कॉमा भी उसे प्यारा होगा। अगर उसने राह चलते पराये विचार इकट्ठे कर लिए हैं, तो उनसे बढ़िया कविता नहीं बनेगी।

मेरे घर के पास सुनार कई रहते
देख चुका हूँ कभी-कभी जा उनके घर,
घिसकर ताँबा, सोना तनिक कसौटी पर
आसानी से बतलाते उनका अंतर।

मेरे पाठक - मेरी तुम्हीं कसौटी हो
तुम ही मुझको मेरा सत्य दिखा पाते,
चालाकी से बुनी पंक्तियों में मेरी
सोने-ताँबे का तुम अंतर दिखलाते।

अगर तुम यह चाहते हो कि मछली मजेदार हो, तो झील पर जाकर उसे खुद पकड़ो। उकाब हवा के रुख के विपरीत उड़ता है। मछली बहाव के प्रतिकूल तैरती है। कवि भी प्रबल भावनाओं की और बढ़ता हुआ ही, वे चाहे सुखद होने के बजाय दुखद हों, काव्य-रचना करता है। एक बार अबूतालिब ने मुझे कुछ ऐसा ही किस्सा सुनाया था।

बालखारी के कुम्हारों, उनके मिट्टी के बर्तनों और शैतान गाहकों का किस्सा। बालखारी के कुम्हारों ने मिट्टी से बनाई हुई अपनी चीजों को बड़ी-बड़ी टोकरियों में रखा, उन्हें गधों और खच्चरों पर लादा और बेचने शहर चल दिए। रास्ते में उन्हें अपने निकटवर्ती गाँव के शरारती लड़के मिले।

'कुम्हारो, बहुत दूर जा रहे हो क्या?'

'बर्तन बेचने।'

'क्या कीमत है इनकी?'

'छोटों की बीस कोपेक और बड़ों की पाँच।'

'ऐसा क्यों?'

'इसलिए कि बड़े बर्तनों की तुलना में छोटे बर्तन बनाना ज्यादा मुश्किल होता है।'

शरारती लड़कों ने बालखारीवासियों से उनके सारे बर्तन खरीद लिए।

'हमारे माल से बहुत खुशी होगी तुम्हें,' कुम्हारों ने लड़कों से विदा लेते और अपने गधों-खच्चरों को गाँव की ओर मोड़ते हुए कहा। 'बहुत मन लगाकर हमने अपना माल तैयार किया है। तुम्हारे पोते-पोतियों तक हमारे बनाए हुए ये बर्तन काम देते रहेंगे।'

पहाड़ पर चढ़कर कुम्हार आराम करने के लिए बैठ गए। उन्होंने दूर से पहाड़ी सड़क पर नजर डाली और अचानक उन्हें यह जानने की कुरेद हुई कि लड़के उनके बनाए हुए टनकते और सुंदर बर्तनों का क्या कर रहे हैं। लड़कों ने उन बर्तनों को खड्ड के सिरे पर रख दिया था और खुद उनसे बीस कदम हटकर उनपर कंकड़ फेंक रहे थे। शायद उनमें होड़ हो रही थी कि कौन ज्यादा बर्तन तोड़ता है। बर्तन टनकती आवाज करते हुए टूटते और उनके टुकड़े खड्ड में बिखर जाते। लड़कों को इससे बहुत खुशी हो रही थी।

कुम्हार एक साथ ऐसे उछलकर खड़े हुए मानो उन्हें फौजी हुक्म मिला हो और म्यानों से खंजर निकालकर वे उन बदमाश लड़कों की ओर भागे।

'अरे दुष्ट लड़को, यह तुम क्या कर रहे हो।' वे चिल्लाए। 'हमने तो अपने बहुत ही अच्छे बर्तन बेचे हैं और तुम... कोई शर्म-हया है तुममें?'

'किसलिए बिगड़ रहे हैं आप?' कुछ न समझते हुए लड़कों ने पूछा। 'आपने अपना माल हमें बेच दिया, हमने आपको उसके अच्छे पैसे दे दिए, अब ये बर्तन हमारे हैं। हम इनका क्या करते हैं, आपको इससे मतलब? जी में आएगा, तो फोड़ेंगे, जी में आएगा, तो घर ले जाएँगे और जी में आएगा, तो यहीं सड़क पर छोड़ देंगे।'

मगर इन बर्तनों के साथ हमारा भी तो नाता है। बर्तन बनने के पहले हमने इनके लिए मिट्टी तैयार करने में बहुत मेहनत की। हमने बड़े मन से उसे गूँधा

ताकि उसके सुंदर बर्तन बनें, ताकि लोग उन बर्तनों को देखकर मुग्ध हों। हमने तो यह सोचा था कि हमारी बनाई चीजों से लोगों को खुशी मिलेगी, कि वे किसी के जीवन में रंगीनी लाएँगे। तुम्हें इन बर्तनों को बेचते हुए हमने यह आशा की थी कि एक गागर से तो तुम अपने मेहमानों को बूजा पिलाओगे, दूसरी में चश्मे का ठंडा पानी रखोगे और कुछ गमलों में सुंदर फूल उगाओगे। मगर तुम तो बड़े ही बेहया हो, इन सभी बर्तनों के टुकड़े कर डाले। हमारी सारी मेहनत, हमारी सारी कोशिश, हमारे सारे सपनों को तुमने खड्ड के सिरे पर चूर-चूर कर डाला। तुमने हमारी बनाई हुई चीजों पर वैसे ही कंकड़ फेंके है, जैसे कि नासमझ बालक गानेवाले सुंदर पक्षियों पर कंकड़ फेंकते हैं।'

कुम्हारों ने लड़कों से वे सभी बर्तन, जो वे तोड़ नहीं पाए थे, दृढ़तापूर्वक छीन लिए और अपने घर लौट गए।

कुम्हारों के दिल को लगी ठेस को हर वह आदमी समझ जाएगा, जो खुद कड़ी मेहनत करता है, अपने काम में पूरी तरह से अपना मन लगा देता है और अपने श्रम के फल पर मुग्ध होता है। इस तरह अबूतालिब ने अपना यह किस्सा खत्म किया।

अबूतालिब का सुनाया हुआ यह किस्सा मुझे न जाने क्यों, तब याद हो आया, जब दूरस्थ जापान में मैंने मोती खोजनेवाली लड़कियों को देखा। जवान और हष्ट-पुष्ट सुंदरियाँ सागर-तल में गहरे गोते लगातीं और वहाँ बड़ी मुश्किल से साँस लेती हुई अपनी जाँघ के साथ लटकते थैले में कुछ सीपियाँ डाल पातीं। ऐसी ही किसी एक सीपी में शायद कोई मोती हो सकता है। मगर मोतीवाली ऐसी एक खुशकिस्मत सीपी पाने के लिए हजारों सीपियाँ निकालनी पड़ती हैं। अब कल्पना कीजिए कि असली मोतियों की माला बनाने के लिए कितनी बार गोते लगाना और कितनी हजार सीपियाँ निकालना जरूरी होगा?

तो क्या उन्हीं शब्दों से, जिनका लोग हर दिन की बातचीत में इस्तेमाल करते हैं, गीतों की माला तैयार करना आसान है? सभी साधारण शब्द, सभी घटनाएँ, सभी भावनाएँ, जीवन के सभी अनुभव - यह है वह महासागर, जिसमें ढेरों सीपियाँ बिखरी पड़ी हैं। मगर मोती की तालश करनेवाले को अत्यधिक कठिन श्रम करना पड़ता है, लगातार महासागर की गहराइयों में गोते लगाने पड़ते हैं। इसके लिए अत्यधिक दक्षता, धीरज, स्वास्थ्य और सहनशीलता तथा प्रयास आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि किस्मत साथ दे। मोती खोजनेवाले का

धीरज, चाँदी पर काली नक्काशी करनेवाले कूबाची कारीगर का धीरज - इस सब का प्रतिभा से संबंध है, यह सब एक साथ प्रतिभा और श्रम है।

अधिक समय तक जी पाए कविता मेरी
सीख रहा हूँ मैं तो सुखी, दुखी होकर
उस कूबाची के कारीगर-सा कैसे
धीरज, दृढ़ता पा जाऊँ मैं भी आखिर।

नियम, जिन्हें हर पहाड़ी जानता है।
बालिग होने से पहले बेटी की शादी नहीं करो।
पानी तक पहुँचने से पहले जूते नहीं उतारो।

जब तक जानवर जंगल में है और तुमने उसका शिकार नहीं कर लिया, उसे पकाने के लिए पतीला आग पर नहीं चढ़ाओ।

रुपहली लोमड़ी उसकी नहीं है, जिसने उसे देखा, बल्कि उसकी है, जिसने उसे पकड़ा।

संस्मरण। मैं एक घटना लोगों को बताना तो नहीं चाहता, क्योंकि उसमें मेरी तारीफ की कोई बात नहीं है। पर जब सिलसिलेवार सब कुछ बताना शुरू ही कर दिया, तो अब इसे ही क्या छिपाना? पहाड़ों में ठीक ही कहा जाता है - 'अगर पेट तक पानी में चले गए, तो पूरी तरह ही घुस जाओ,' 'अगर बोरी का मुँह खोल ही दिया, तो उसमें जो कुछ भी है, झटककर बाहर निकाल दो।'

यह किताब, जो मैं इस वक्त लिख रहा हूँ, कभी की पूरी हो गई होती, अगर यह मूर्खतापूर्ण घटना न घट जाती, जिसकी मैं अब चर्चा करने जा रहा हूँ।

आम तौर पर ऐसा होता है कि अगर मैं कोई किताब लिखना शुरू कर चुका हूँ और तभी मुझे कहीं जाना पड़ जाए, तो उसकी पांडुलिपि मैं अपने साथ ले जाता हूँ। इस तरह मेरी पांडुलिपियाँ विभिन्न देशों की लंबी यात्राएँ कर चुकी हैं। जाहिर है कि मैं उन्हें यों ही अपने साथ नहीं ले लेता - होटल में हमेशा ही कोई न कोई ऐसी सुबह मिल जाती है, जब पांडुलिपि लेकर बैठा जा सकता है, उस पर विचार करना और एकाध पृष्ठ लिखना संभव होता है। तो इस तरह यह किताब भी मेरे साथ समुद्रों, महासागरों और महाद्वीपों की सैर कर आई है।

एक बार ब्रसेल्स से लौटते हुए मैं मास्को के 'मोस्क्वा' होटल में आठवीं मंजिल पर ठहरा। अब जब इस होटल का जिक्र आ ही गया है, तो यह भी बता दूँ कि

यह मेरे लिए महज होटल नहीं है। यह एक तरह से मेरा दूसरा घर है। अगर उन सालों को ध्यान में रखा जाए, जब से मैं लेखक बना हूँ और तरह-तरह के कामों के सिलसिले में राजधानी आता-जाता रहा हूँ, तो लगभग मेरी आधी जिंदगी इसी होटल में गुजरी है।

सभी प्रबंधक, सभी मंजिलों पर ड्यूटी देनेवाली और सफाई करनेवाली नारियाँ मुझे अच्छी तरह जानती हैं और मैं भी उन्हें जानता हूँ। मास्को के मेरे दोस्तों को भी यह मालूम है कि मैं हमेशा 'मोस्क्वा' होटल में ही ठहरता हूँ। इन दोस्तों में सचमुच कुछ तो ऐसे भी हैं, जिनके लिए 'रसूल मास्को में' शब्दों का यही अर्थ होता है कि फुरसत का वक्त काटने का एक अच्छा संयोग बना है।

मैं हाथ-मुँह भी नहीं धोने पाता हूँ कि रह-रहकर टेलीफोन की घंटी बजने लगती है, दरवाजे पर बार-बार दस्तक होने लगती है और कुछ ही देर बाद कमरे में कहीं बैठने या हिलने-डुलने तक की जगह नहीं रहती। होटल का कमरा बेशक पहाड़ी घर नहीं होता, फिर भी पुरानी परंपरा के अनुसार हम पहाड़ी लोग तीसरे दिन ही मेहमान का नाम पूछते हैं। पर चूँकि तीन दिनों तक कोई मेहमान भी होटल के कमरे में बैठा नहीं रहता, इसलिए अपने पास आनेवाले बहुत-से लोगों के नाम मुझे कभी मालूम ही नहीं हो पाते।

तो खैर, ब्रसेल्स से लौटने पर एक बार मैं 'मोस्क्वा' होटल में ठहरा। हमेशा की तरह मेरे कमरे में लोगों की भीड़ थी। कुछ मेरे विदेश से लौटने की बधाई और कुछ दागिस्तान की मेरी यात्रा के लिए शुभकामनाएँ देने आए थे और कुछ ऐसे ही, किसी भी काम के बिना आ गए थे। कुछ को मैंने खुद बुलाया था और कुछ बिन बुलाए मेहमान थे।

हो-हल्ला करते हुए हमने कुछ की तारीफ की और इसलिए जाम चढ़ाए; शोर मचाते हुए दूसरों की आलोचना की और इसलिए पी। हम बातें करते थे और पीते थे। खिलखिलाकर हँसते थे और पीते थे। गाने गाते थे और पीते थे। इसके अलावा कमरे में इतना धुआँ फैला हुआ था मानो मेज या पलंग के नीचे गीली लकड़ियों का अलाव जल रहा हो।

अबूतालिब कहा करते थे कि तीन कारणों से वे बुढ़ा गए हैं।

सबसे पहले तो इस कारण से कि जब सभी आमंत्रित मेहमान आ जाते हैं और एक उस मेहमान का इंतजार करना पड़ता है, जो वक्त पर नहीं पहुँचता।

दूसरा कारण यह है कि बीवी ने तो मेज पर खाना लगा दिया है, मगर वोद्का की बोतल के लिए भेजा हुआ बेटा आने का नाम नहीं लेता।

तीसरा कारण यह है कि जब सारे मेहमान चले जाते हैं और सिर्फ वही एक जो सारी शाम गुम-सुम बैठा रहा है, दहलीज के पास रुककर बोलना शुरू कर देता है और अपनी खामोशी के घंटों की कमी पूरी करने लगता है तथा ऐसा अनुभव होता है कि उसकी बातों का कभी अंत नहीं होगा।

हम चाहे कितने भी थके हुए क्यों न हों, हमारी आँखें चाहे नींद से घुटी क्यों न जा रही हों, मगर हमें उसकी सारी बकवास सुननी पड़ती है। हम उसकी हर बात से सहमत होने की कोशिश करते हैं ताकि वह जल्दी से चलता बने। मगर हमारे इस तरह सहमत होने से उसे और प्रेरणा मिलती है और वह नई से नई बकवास जारी रखता है।

ऐसा ही एक मेहमान उस शाम को, जिसका इतना भयानक अंत हुआ और जिसकी अब मैं चर्चा करना चाहता हूँ, होटल के मेरे कमरे में आ गया। सभी मेहमानों के चले जाने के बाद यह नशे में धुत्त मेहमान मेरी खोपड़ी पर सवार रहा, कमरे की हर मुमकिन जगह पर उसने सिगरेट के टोटे बुझाए। ऐसा करते हुए उसने न तो पर्दों का छोड़ा, न कुर्सी की टेक को, न मेरे सूटकेस और न ही मेज पर रखे मेरे कागजों को ही।

शुरू में उसने मेरी तारीफ की और मैंने उसकी हाँ में हाँ मिलाई। फिर उसने अपनी तारीफ की, मैंने सहमति प्रकट की। उसके बाद उसने अपनी बीवी की तारीफ की, मैं इससे भी सहमत रहा। आखिर वह मुझे भला-बुरा कहने और मुझ पर सभी तरह का कीचड़ उछालने लगा, मैंने इसके साथ भी सहमति प्रकट की। 'अब यह अपने को और फिर अपनी बीवी को भला-बुरा कहना शुरू करेगा,' मैंने घबराकर मन ही मन सोचा। मगर उस स्थल तक पहुँचते न पहुँचते, जहाँ तर्कसंगत ढंग से उसे अपने को कोसना चाहिए था, मेरे मेहमान ने अचानक जल्दबाजी दिखानी शुरू की और अपने कमरे मैं सोने चला गया। हाँ, इस ख्याल से कि उसके जाने से मुझे बहुत दुख न हो, वह अगले रोज आने का वादा कर गया।

कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि मेहमान हर पहलू से सुंदर होता है, पर फिर भी उसकी पीठ सबसे अधिक सुंदर होती है। इस दिन मैं इस कहावत का सही अर्थ समझा। अपने इस जाते हुए मेहमान की पीठ मुझे बहुत ही खूबसूरत लगी।

'तो आज की शाम की सारी मुसीबतों से पिंड छूटा,' मैंने राहत की साँस लेते हुए मन ही मन सोचा, 'अब चैन से सोया जा सकता है।' मैंने झटपट दरवाजा बंद किया, दबे पाँव कंबल के नीचे जा दुबका और फौरन ही मेरी आँख लग गई। मुझे ऐसी मजे की नींद आई जैसी उस समय लंबे गर्म लबादे के नीचे आती है, जब बाहर बारिश पटापट का अपना राग अलापती होती है। सपने में मुझे दिखाई दिया कि मैं सचमुच ही अलाव के पास लंबा गर्म लबादा ओढ़े पड़ा हूँ और मेरे इर्द-गिर्द चरवाहे बैठे हैं। वे अलाव में चैलियाँ डाल रहे हैं। अलाव से धुआँ निकल रहा था, जिससे मेरी आँखों में जलन और नाक में खुजली हो रही थी। इसके बाद मैंने अपने को मानो बेकरी में पाया, जहाँ न जाने किस कारण जली हुई रोटी की गंध आ रही थी। इसके बाद मैंने यह देखा कि इतवार के दिन मैं दोस्तों के साथ शहर के बाहर गया हूँ और वहाँ हम जायकेदार सीख-कबाब भून रहे हैं।

आँखों में असह्य जलन अनुभव होने पर मेरी आँख खुली। मैं झटपट उठा, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। कमरा धुएँ से भरा हुआ था और दरवाजे के करीब भी मानो आग जल रही थी। मैं आग की तरफ लपका, तो देखा कि मेरा सूटकेस जल रहा है।

मेरे सूटकेस पर दुनिया के बेहतरीन होटलों के निशान लगे हुए थे। कितने देशों की मैंने इसके साथ यात्रा की थी। कितने चुंगीघरों से हम किसी परेशानी के बिना निकले थे। यह सही है कि उसमें कभी कोई आपत्तिजनक चीज नहीं होती थी, मगर फिर भी वोद्का की बोतल, जो दोस्तों को भेंट करने के लिए होती है, या सिगरेटों का फालतू पैकेट या बीवी के लिए सुंदर ब्लाउज देखकर भी चुंगीवाले कभी-कभी चमक उठते हैं।

तो मेरा यह सूटकेस जो इतने चुंगीघरों से सही-सलामत निकल आया था, मास्को होटल के शांत कमरे में आकर जल गया।

मैंने जलते हुए सूटकेस के बचे-बचास हिस्सों को जल्दी से उठाया, नहाने के टब में डाला और नल चला दिया। धुएँ के नए बादल उठे। मेरे हाथ और शायद चेहरा भी कुछ जल गया था। मगर जिस कुर्सी पर पहले सूटकेस रखा था, अब उसकी तथा कालीन और पर्दों की आग बुझाना जरूरी था। मैंने लपककर अपनी मंजिल पर ड्यूटी देनेवाली औरत को टेलीफोन किया।

'मैं जला जा रहा हूँ' मैंने चिल्लाकर कहा, 'मेरी मदद को आइए।'

मगर ड्यूटीवाली ने शायद यही सोचा कि रसूल तो सिर्फ प्यार की आग में ही जल सकता है और इस वक्त उसी की मुहब्बत की आग में जल रहा है। इसलिए उसने बड़े इतमीनान से, माँ के से अंदाज में जवाब दिया -

'रसूल, बस, यह सब रहने दो, अब सो जाओ। सुबह तक बिल्कुल ठीक-ठाक हो जाओगे।'

ओ नारियो। कितनी बार मैंने उनसे मजाक में यह कहा था कि मैं जला जा रहा हूँ और मुझ पर विश्वास करके वे मरी मदद को आई थीं। मगर जब जिंदगी में सिर्फ एक बार ही असली आग ने मुझे आ घेरा था, तो किसी ने मुझ पर एतबार नहीं किया।

आग बुझानेवाले एक बहादुर आदमी की तरह मैंने आग के विरुद्ध मोर्चा लिया। आखिर मुझे कालीन, कुर्सी और पर्दों की आग और लकड़ी के फर्श की सुलगती तख्तिओं को बुझाने में भी कामयाबी मिल गई। हाँ, मैंने आग पर विजय तो प्राप्त कर ली थी, मगर ऐसा कर पाने के पहले उसने मेरा काफी नुकसान कर दिया था।

शायद नशे में धुत्त मेहमान ने मेरे सूटकेस में सिगरेट का टोटा घुसेड़ दिया था और वहीं से यह सारी मुसीबत शुरू हुई थी। मेरी कमीजें, सूट और ब्रसेल्स से लाए गए सारे तोहफे जल गए। होटल के प्रबंधकों ने कालीन, कुर्सी और पर्दों का हिसाब जोड़कर खासी बड़ी रकम का बिल मेरे सामने पेश कर दिया। खुद मुझे अस्पताल जाना पड़ा। घर पर बीवी को टेलीफोन किया कि जरूरी काम से रुक रहा हूँ। पर चूँकि अभी यह नहीं सोचा था कि किस जरूरी काम से रुक रहा हूँ इसलिए फिर टेलीफोन करने का वादा किया। तो कंबख्त एक टोटे ने क्या गजब कर डाला था।

मगर सच तो यह है कि मेरे सबसे बड़े नुकसान के मुकाबले में यह सब हानि तो बड़ी तुच्छ-सी प्रतीत हुई। सूटकेस के तल में वह पांडुलिपि पड़ी थी, जिस पर मैं पिछले दो साल से काम कर रहा था...

कहते हैं कि सबसे बड़ी मछली वह होती है, जो काँटे से निकल जाए, सबसे मोटा पहाड़ी बकरा वह होता है, जिस पर साधा हुआ निशाना चूक जाए, सबसे ज्यादा खूबसूरत औरत वह होती है, जो तुम्हें छोड़ जाए।

मेरी पांडुलिपि के बहुत-से पृष्ठ जल गए। अब मुझे लगता है कि वे ही मेरे सबसे अच्छे पृष्ठ थे।

इसके अलावा, काँटे से निकल जानेवाली मछली तो मेरी थी ही नहीं, जिस पहाड़ी बकरे पर साधा गया निशाना चूका, वह भी मेरा नहीं था। छोड़कर जानेवाली नारी भी मेरी नहीं थी। मगर जल जानेवाले पृष्ठ मेरे थे। उनकी मैंने खुद कल्पना की थी, मैंने उन्हें जिया था और व्यथित होकर रचा था। बड़े धैर्य से अनेक उनींदी रातों और दिनों में मैंने उन पर श्रम किया था। इसीलिए अपनी पांडुलिपि के नष्ट होने से मुझे इतना दुख हुआ था। इसीलिए मैं यह सोचता हूँ कि वह मेरी सबसे अच्छी पुस्तक थी।

मैं आन की आन में उस खेत की तरह वीरान-सा हो गया, जिस पर से पूले उठा लिए जाते हैं या उस आखिरी पूले जैसा हो गया, जिसे लोग ले जाना भूल गए थे।

जले हुए पृष्ठों का हर शब्द मुझे मोती-सा प्रतीत होने लगा। पंक्तियाँ मेरी कल्पना में कीमती हार बन गईं।

मुझे ऐसा धक्का लगा था कि दो साल तक मैं नष्ट हुई पांडुलिपि को बहाल करने नहीं बैठ सका। आखिर जब शांत हो गया, तो यह बात मेरी समझ में आई कि बेशक मैं लगभग उन्हीं चीजों के बारे में फिर से लिख सकता हूँ, मगर पहलेवाले पृष्ठों को लौटाना संभव नहीं।

यह बिल्कुल वैसी ही बात थी कि जैसे किसी माँ-बाप का बहुत प्यारा बच्चा मर जाता है, तो कुछ वक्त गुजरने पर उनका दूसरा बच्चा हो सकता है और उसे भी वे उतना ही प्यार करेंगे, मगर फिर भी वह वही नहीं, जिसे वे खो चुके हैं, बल्कि दूसरा व्यक्ति होगा।

कहते हैं कि कविता पानी से घबराती है। कविता तो आग है और कवि का सृजन उस आग में उसका दहन। हाँ, कविताओं में पानी नहीं होना चाहिए। मगर अल्लाह उन्हें ऐसी आग से भी बचाए, जिससे होटल के कमरे में मेरी कविताओं का वास्ता पड़ा।

अबूतालिब के फ्लैट में कैसे चोरी हुई। मैं नहीं जानता कि यह कैसे हुआ, किसने यह चाल चली और क्यों ऐसे हुआ कि अबूतालिब के घर पर कोई नहीं था और उसके फ्लैट में चोरी हो गई। जब जाँच की गई, तो बेटी की सोने की घड़ी, सोने की अँगूठी, काँटे और ऐसे ही कुछ दूसरे गहने गायब मिले। फर-कोट, फ्राक, सैंडल, जूते और रुपए भी नहीं थे... अबूतालिब की बीवी तो गश खाते-खाते

बची, बेटी तख्ते पर गिरकर रोने लगी। मगर अबूतालिब दूसरे कमरे में जाकर फर्श पर बैठ गए और जुरना बजाने लगे।

अबूतालिब की बीवी झटपट वहाँ आकर बिगड़ी -

'कोई शर्म-हया है तुम्हें। इतनी बड़ी मुसीबत और तुम क्या कर रहे हो। जल्दी से मिलीशियामैन या प्रोसीक्यूटर को बुलाना चाहिए...'

'ऐसी भी क्या मुसीबत है। मेरी कविताएँ सही-सलामत हैं। देखो तो, मेरे सभी कागज पहले की तरह ही पड़े हुए हैं। चोरों ने उन्हें छुआ तक नहीं। मुझे तो दुखी होने की कोई वजह नजर नहीं आती।'

'किसे जरूरत है तुम्हारी कविताओं की, सो भी लाक भाषा में?'

'अरी, मेरी भोली बीवी, तुम कुछ भी तो नहीं जानतीं। ऐसे भी लोग हैं, जो कवि भी कहलाते हैं और वैसे, पराई कविताएँ ही चुराया करते हैं। शुक्र है अल्लाह का कि मेरी कविताएँ नहीं चुराई गईं। साल भर मैंने इन पर मेहनत की है और अगर इनमें से एक भी खो जाती, तो मेरे लिए बड़े दुख की बात होती। इसके अलावा मेरा जुरना भी कायम है। तो फिर मैं खुश होकर इसे क्यों न बजाऊँ?'

और अबूतालिब अपनी बीवी-बेटी की चीख-पुकार पर और ध्यान न देकर मजे से जुरना बजाते रहे।

आफंदी कापीयेव ने मुझे यह बात सुनाई। गर्मी के एक सुहाने दिन सुलेमान स्ताल्स्की अपने पहाड़ी घर की छत पर लेटा हुआ आसमान को ताक रहा था। आस-पास पक्षी चहचहा रहे थे, झरने झर-झर कर रहे थे। हर कोई यही सोचता था कि सुलेमान आराम कर रहा है। उसकी बीवी ने भी ऐसा ही सोचा। छत पर चढ़कर उसने पति को आवाज दी -

'खीनकाल तैयार हो गए। मैंने मेज पर भी लगा दिए हैं। खाने का वक्त हो गया।'

सुलेमान ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर तक नहीं घुमाया।

कुछ देर बाद ऐना ने दूसरी बार पति को पुकारा -

'खीनकाल ठंडे हुए जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद खाने लायक नहीं रहेंगे।'

सुलेमान हिला-डुला तक नहीं।

तब उसकी बीवी यह सोचकर कि पति नीचे नहीं आना चाहता, छत पर ही खाना ले आई। उसने यह कहते हुए उसकी तरफ तश्तरी बढ़ाई -

'तुमने सुबह से कुछ नहीं खाया। देखो तो, मैंने तुम्हारे लिए कैसे मजेदार खीनकाल तैयार किए हैं।'

सुलेमान आपे से बाहर हो गया। वह अपनी जगह से उठा और चिंताशील पत्नी पर बरस पड़ा -

'तुम तो हमेशा मेरे काम में खलल डालती रहती हो।'

'मगर तुम तो योंही बेकार लेटे हुए थे। मैंने सोचा...'

'नहीं, मैं काम कर रहा हूँ। फिर कभी मेरे काम में खलल नहीं डालना।'

हाँ, इसी दिन सुलेमान ने अपनी नई कविता रची थी।

तो कवि जब लेटा हुआ आकाश को ताकता है, तब भी काम करता होता है।

पत्नी के प्रति कवि ने ऐसे भाव जताए -

'तुम प्रकाश मेरे जीवन का, तुम प्रभात, तुम तारा
जब तुम निकट, पास में मेरे, सुखद, मधुरतम जीवन
जब तुम दूर, तभी बनता वह, कटुमय, सागर खारा।'

पर प्रकाश वह, तारा जिस क्षण, कवि के सम्मुख आया,
उसे देख वह चौंका, चमका, घबराकर चिल्लाया।
'फिर से तुम आ गई यहाँ पर, हाय राम जी
मुझे काम करने दो कुछ तो, मैं तुमसे भर पाया।'

पिता जी ने यह बात सुनाई। प्रेम का महान गायक महमूद किसी सम्मानित व्यक्ति के यहाँ आमंत्रित था। दूसरे कई मेहमान भी थे। आधी रात तक कवि ने एकत्रित लोगों को अपनी कविताओं का रस-पान कराया। इसके बाद सभी सोने चले गए। महमूद को सबसे अच्छा कमरा सोने के लिए दिया गया। गृह-स्वामी ने वहाँ हाथ-मुँह धोने के लिए चिलमची और गागर रख दी, शुभरात्रि की कामना की और चला गया।

सुबह को इस डर से कि महमूद सुबह की नमाज के वक्त कहीं सोया ही न रह जाए, गृह-स्वामी ने दबे पाँव महमूद के कमरे में झाँका। उसने देखा कि कवि ने तो सोने की बात ही नहीं सोची। कालीन पर उकडूँ बैठा हुआ वह तो बोल-बोलकर यह कविता लिख रहा था -

नहीं चाहिए जन्नत का वह चमन मुझे
सच कहता हूँ, उससे मुझे बचाओ,
बड़ी खुशी से ले लो तुम जन्नत सारी
मेरे दिल का प्यार मगर देते जाओ।

'महमूद, सुबह की नमाज का वक्त हो गया, कविता छोड़कर अल्लाह की बंदगी करो।'

'मेरी तो यही बंदगी है,' महमूद ने जवाब दिया। तो इस तरह कवि पूजा-पाठ के समय भी काम करता रहता है।

नोटबुक से। अब मैं खुद एक अवार कवि का किस्सा सुनाता हूँ। मैं उसका नाम नहीं बताऊँगा। मैं नहीं चाहता कि बाद में आप उस पर उँगलियाँ उठाएँ और उसका मजाक उडाएँ। कारण कि मजाक उड़ाने की बात भी है।

इस कवि ने शादी की, खूब धूम-धाम रही। आखिर मेहमान नवदंपति को उनके लिए विशेष रूप से तैयार किए गए कमरे में छोड़कर चले गए। दुलहन सुहाग-रात के अरमान लिए पलंग पर जा लेटी और दूल्हे का इंतजार करने लगी। मगर दूल्हा अपनी दुलहन के पास जाने के बजाय मेज पर बैठकर कविता लिखने लगा। रात भर वह कविता लिखता रहा और सुबह होने पर ही उसने प्यार, दुलहन और सुहाग-रात के बारे में अपनी कविता खत्म की।

तो क्या हम यह नतीजा निकालें कि कवि प्यार की रात में भी काम करता रहता है? अगर मैं भी इस अवार कवि की तरह काम करता, तो जितनी अब मेरी किताबें हैं, उससे पचास गुना ज्यादा होतीं। मगर मेरे ख्याल से उनमें बनावट ही बनावट होती।

दुलहन जब अपने दूल्हे को बाँहों में भरने को बेकरार हो, तो उस वक्त जो मेज पर लिखने बैठ जाता है, रूप-रानी की उपस्थिति में जो कागज और लेखनी को उठाकर एक तरफ नहीं रख देता, वह सिर्फ ढोंगी है। बेशक वह दस या बीस गुना ज्यादा लिख ले, मगर उसके शब्दों में ईमानदारी नहीं होगी।

हाँ, मेहनत करना जरूरी है। कहते हैं कि कोई अक्लमंद आदमी इस उम्मीद में पेड़ के नीचे जाकर लेट रहा कि कब सेब उसके मुँह में आकर गिरता है। सेब नहीं गिरा।

पर काम और शायद प्रतिभा से भी ज्यादा कवि के लिए दूसरों के और खुद अपने सामने भी ईमानदार होना जरूरी है।

कहते हैं कि बहादुर या तो जीन पर होता है या जमीन में।

कहते हैं - 'दुनिया में सबसे बुरा और घृणित क्या है?'

'डर से काँपनेवाला मर्द।'

'इससे भी बढ़कर बुरा और घृणित क्या है?'

'डर से काँपनेवाला मर्द।'

सचाई। साहस

मजलिस में यह कहा एक नायब ने उठकर
'वह ही बने इमाम कि जो हो सबसे चतुर सुजान'
मगर दूसरे नायब ने कुछ कहा और ही -
'वह ही बने इमाम कि जो सबसे ज्यादा बलवान'
कविता पर अधिकार कि जिसका उस गायक, कवि की तुलना में
शायद है आसान कि सारी दुनिया पर करना शासन,
उक्त गुणों के साथ-साथ ही उसे चाहिए
कितना कुछ ही और जानना, और समझ पाना जीवन।

अवार सुनाते हैं। युग-युगों से सच और झूठ एक-दूसरे के साथ-साथ चल रहे हैं। युग-युगों से उनके बीच यह बहस चल रही है कि उनमें से किसकी अधिक जरूरत है, कौन अधिक उपयोगी और शक्तिशाली है। झूठ कहता है कि मैं और सच कहता है कि मैं। इस बहस का कभी अंत नहीं होता।

एक दिन उन्होंने दुनिया में जाकर लोगों से पूछने का फैसला किया। झूठ तंग और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर आगे-आगे भाग चला, वह हर सेंध में झाँकता, हर सूराख में सूँघा-साँघी करता और हर गली में मुड़ता। मगर सच गर्व से गर्दन ऊँची उठाए सिर्फ सीधे, चौड़े रास्तों पर ही जाता। झूठ लगातार हँसता था, पर सच सोच में डूबा हुआ और उदास-उदास था।

उन दोनों ने बहुत-से रास्ते, नगर और गाँव तय किए, वे बादशाहों, कवियों, खानों, न्यायाधीशों, व्यापारियों, ज्योतिषियों और साधारण लोगों के पास भी

गए। जहाँ झूठ पहुँचता, वहाँ लोग इतमीनान और आजादी महसूस करते। वे हँसते हुए एक-दूसरे की आँखों में देखते, यद्यपि इसी वक्त एक-दूसरे को धोखा देते होते और उन्हें यह भी मालूम होता कि वे ऐसा कर रहे हैं। मगर फिर भी वे बेफिक्र और मस्त थे तथा उन्हें एक-दूसरे को धोखा देते और झूठ बोलते हुए जरा भी शर्म नहीं आती थी।

जब सच सामने आया, तो लोग उदास हो गए, उन्हें एक-दूसरे से नजरें मिलाते हुए झेंप होने लगी, उनकी नजरें झुक गईं। लोगों ने (सच के नाम पर) खंजर निकाल लिए, पीड़ित पीड़कों के विरुद्ध उठ खड़े हुए, गाहक व्यापारियों पर, साधारण लोग खानों पर और शाहों पर झपटे, पति ने पत्नी और उसके प्रेमी की हत्या कर डाली। खून बहने लगा। इसलिए अधिकतर लोगों ने झूठ से कहा -

'तुम हमें छोड़कर न जाओ। तुम हमारे सबसे अच्छे दोस्त हो। तुम्हारे साथ जीना बड़ा सीधा-सादा और आसान मामला है। और सच, तुम तो हमारे लिए सिर्फ परेशानी ही लाते हो। तुम्हारे आने पर हमें सोचना पड़ता है, हर चीज को दिल से महसूस करना, घुलना और संघर्ष करना होता है। तुम्हारी वजह से क्या कम जवान योद्धा, कवि और सूरमा मर चुके हैं?'

'अब बोलो,' झूठ ने सच से कहा, 'देख लिया न कि मेरी अधिक आवश्यकता है और मैं ही अधिक उपयोगी हूँ। कितने घरों का हमने चक्कर लगाया है और सभी जगह तुम्हारा नहीं, मेरा स्वागत हुआ है।'

'हाँ, हम बहुत-सी आबाद जगहों पर तो हो आए। आओ, अब चोटियों पर चलें। चलकर निर्मल जल के ठंडे चश्मों, ऊँची चरागाहों में खिलनेवाले फूलों, सदा चमकनेवाली बेदाग सफेद बर्फों से पूछें।

'शिखरों पर हजारों बरसों का जीवन है। वहाँ नायकों, वीरों, कवियों, बुद्धिमानों और संत-साधुओं के अमर और न्यायपूर्ण कृत्य, उनके विचार, गीत और अनुदेश जीवित रहते हैं। चोटियों पर वह रहता है, जो अमर है और पृथ्वी की तुच्छ चिंताओं से मुक्त है।'

'नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा,' झूठ ने जवाब दिया।

'तो तुम क्या ऊँचाई से डरते हो। सिर्फ कौवे ही निचाई पर घोंसले बनाते हैं और उकाब तो सबसे ऊँचे पहाड़ों के ऊपर उड़ान भरते हैं। क्या तुम उकाब के बजाय कौवा होना ज्यादा बेहतर समझते हो? हाँ, मुझे मालूम है कि तुम डरते हो। तुम तो हो ही बुजदिल। तुम तो शादी की मेज पर, जहाँ शराब की नदी बहती

होती है, बहसना पसंद करते हो, मगर बाहर अहाते में जाते हुए डरते हो, जहाँ जामों की नहीं, खंजरों की खनक होती है।'

'नहीं, मैं तुम्हारी ऊँचाइयों से नहीं डरता। मगर मैं वहाँ करूँगा ही क्या, क्योंकि वहाँ लोग नहीं हैं। मेरा तो वहीं बोल-बाला है, जहाँ लोग रहते हैं। मैं तो उन्हीं पर राज करता हूँ। वे सब मेरी प्रजा हैं। केवल कुछ साहसी ही मेरा विरोध करने की हिम्मत करते हैं और तुम्हारे पथ पर, सचाई के पथ पर चलते हैं, मगर ऐसे लोग तो इने-गिने हैं।'

'हाँ, इने-गिने हैं। मगर इसीलिए इन लोगों को युग-नायक माना जाता है और कवि अपने सर्वश्रेष्ठ गीतों में उनका स्तुति-गान करते हैं।'

अकेले कवि का किस्सा। यह किस्सा मुझे अबूतालिब ने सुनाया। किसी खान की रियासत में बहुत-से कवि रहते थे। वे गाँव घूमते और अपने गीत गाते। उनमें से कोई वायलिन बजाता, कोई खंजड़ी, कोई चोंगूर और कोई जुरना। खान को जब अपने काम-काजों और बीवियों से फुरसत मिलती, तो वह शौक से उनके गीत सुनता।

एक दिन उसने एक ऐसा गीत सुना, जिसमें खान की क्रूरता, अन्याय और लालच का बखान किया गया था। खान आग-बबूला हो उठा। उसने हुक्म दिया कि ऐसा विद्रोह भरा गीत रचनेवाले कवि को पकड़कर उसके महल में लाया जाए।

गीतकार का पता नहीं लग सका। तब वजीरों और नौकरों-चाकरों को सभी कवि पकड़ लाने का आदेश दिया गया। खान के टुकड़खोर शिकारी कुत्तों की तरह सभी गाँवों, रास्तों, पहाड़ी, पगडंडियों और सुनसान दर्रों में जा पहुँचे। उन्होंने सभी गीत रचने और गानेवालों को पकड़ लिया और महल की काल-कोठरियों में लाकर बंद कर दिया। सुबह को खान सभी बंदी कवियों के पास जाकर बोला -

'अब तुममें से हरेक मुझे एक गीत गाकर सुनाए।'

सभी कवि बारी-बारी से खान की समझदारी, उसके उदार दिल, उसकी सुंदर बीवियों, उसकी ताकत, उसकी बड़ाई और ख्याति के गीत गाने लगे। उन्होंने यह गाया कि पृथ्वी पर ऐसा महान और न्यायपूर्ण खान कभी पैदा ही नहीं हुआ था।

खान एक के बाद एक कवि को छोड़ने का आदेश देता गया। आखिर तीन कवि रह गए, जिन्होंने कुछ भी नहीं गाया। उन तीनों को फिर से कोठरियों में बंद

कर दिया गया और सभी ने यह सोचा कि खान उनके बारे में भूल गया है।

मगर तीन महीने बाद खान फिर से इन बंदी कवियों के पास आया।

'तो अब तुममें से हरेक मुझे कोई गीत सुनाए।'

उन तीनों कवियों में से एक फौरन खान, उसकी समझदारी, उदार दिल, सुंदर बीवियों, उसकी बड़ाई और ख्याति के बारे में गाने लगा। उसने यह भी गाया कि पृथ्वी पर कभी कोई ऐसा महान खान नहीं हुआ।

इस कवि को भी छोड़ दिया गया। उन दो को जो कुछ भी गाने को तैयार नहीं हुए, मैदान में पहले से तैयार किए गए अलाव के पास ले जाया गया।

'अभी तुम्हें आग की नजर कर दिया जाएगा,' खान ने कहा। 'आखिरी बार तुमसे यह कहता हूँ कि अपना कोई गीत सुनाओ।'

उन दो में से एक की हिम्मत टूट गई और उसने खान, उसकी अक्लमंदी, उदार दिल, सुंदर बीवियों, उसकी ताकत, बड़ाई और ख्याति के बारे में गीत गाना शुरू कर दिया। उसने गाया कि दुनिया में ऐसा महान और न्यायपूर्ण खान कभी नहीं हुआ।

इस कवि को भी छोड़ दिया गया। बस, एक वही जिद्दी बाकी रह गया, जो कुछ भी गाना नहीं चाहता था।

'उसे खंभे के साथ बाँधकर आग जला दो।' खान ने हुक्म दिया।

खंभे के साथ बँधा हुआ कवि अचानक खान की क्रूरता, अन्याय और लालच के बारे में वही गीत गाने लगा, जिससे यह सारा मामला शुरू हुआ था।

'जल्दी से इसे खोलकर आग से नीचे उतारो।' खान चिल्ला उठा। 'मैं अपने मुल्क के अकेले असली शायर से हाथ नहीं धोना चाहता।'

'ऐसे समझदार और नेकदिल खान तो शायद ही कहीं होंगे,' अबूतालिब ने यह किस्सा खत्म करते हुए कहा, 'मगर ऐसे कवि भी बहुत नहीं होंगे।'

पिता जी ने यह बात सुनाई। एक बार महान शामिल से घनिष्ठता रखनेवालों ने पूछा -

'इमाम, यह बताइए कि आपने कविताएँ रचने और उन्हें गाने की क्यों मनाही कर दी?'

इमाम ने जवाब दिया -

'मैं चाहता हूँ कि केवल असली कवि ही कवि रह जाएँ। असली शायर तो फिर भी शायरी करेंगे ही। मगर ढोंगी, पाखंडी, तुकबंद और झूठमूठ अपने को कवि कहनेवाले मेरे हुक्म से डर जाएँगे, उनकी हिम्मत टूट जाएगी और वे खामोश हो जाएँगे। इस तरह वे लोगों को और खुद अपने को धोखा नहीं दे सकेंगे।'

कहते हैं कि जब महान कवि महमूद की मृत्यु हो गई, तो दुख-सागर में बुरी तरह डूबे हुए उनके पिता ने महमूद की पांडुलिपियों से भरा सूटकेस उठाकर आग में डाल दिया।

'लानत के मारे कागजो, जल जाओ। तुम्हारे कारण ही मेरे बेटे की वक्त से पहले मौत हो गई।'

सभी कागज जल गए, मगर महमूद की कविताएँ फिर भी जिंदा रह गईं। उनके रचे हुए गीतों की एक भी पंक्ति नहीं भुलाई गई। वे गीत लोगों के दिलों में जी रहे हैं। उन्हें न तो आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, क्योंकि उनमें कवि की आत्मा की आवाज है।

मेरे पिता जी उन लोगों पर हँसा करते थे, जो इस डर से कि उन्हें किसी की बुरी नजर न लग जाए, रात को चोरी-छिपे सफर पर निकलते थे;

उन पर भी, जो खुरजी में इसलिए पत्थर भर लिया करते थे कि दूसरे यह समझें कि उसमें रोटी भरी है;

उन शिकारियों पर भी, जो तीतर की जगह कौवा लेकर घर लौटते थे।

अबूतालिब ने यह बात सुनाई। कहीं कोई गरीब आदमी रहता था, जिसे अपने को अमीर दिखाने का चाव चढ़ा। हर दिन वह बहुत खुश-खुश और मुस्कराता हुआ चौपाल में आता और उसकी मूँछें चिकनाई से चमकती होतीं मानो वह अभी-अभी जवान और बढ़िया भेंड़ खाकर आया हो। गरीब आदमी सबको सुनाकर डींग मारता -

'अहा, कैसा मोटा मेमना मैंने आज खाने के लिए काटा। कितना नर्म और मजेदार था उसका मांस।'

'हर दिन उसके पास मेमना कहाँ से आ जाता है?' गाँव के लोग हैरान होते। 'मामले की जाँच करनी चाहिए।'

'हर दिन उसके पास मेमना कहाँ से आ जाता है?' गाँव के लोग हैरान होते। 'मामले की जाँच करनी चाहिए।'

चुस्त नौजवान उसके घर की छत पर चढ़ गए और चौड़े धुआँदान में से उन्होंने नीचे नजर दौड़ाई। उन्होंने गरीब आदमी को पुरानी, फेंकी हुई हड्डी उबालते देखा। उसने ऊपर आ जानेवाली थोड़ी-सी चर्बी इकट्ठी की और उससे मूँछें चिकनी कर लीं। इसके बाद उसने थोड़ा-सा सफेद जीरा खा लिया। उसके घर में खाने के लिए बस यही था।

नौजवान झटपट छत पर से नीचे उतरे और गरीब आदमी के घर में गए।

'सलाम अलैकुम। हम लोग इधर से गुजर रहे थे। सोचा कि अमीर आदमी के यहाँ चलें।'

'जरा देर से आए, मैंने अभी-अभी मोटी भेंड़ खत्म की है। अब घर से बाहर जाने ही वाला था।'

'तो तुम यही बताओ कि ऐसा खुशबूदार और मजेदार जीरा कहाँ से लाते हो?'

गरीब समझ गया कि नौजवानों को सब कुछ मालूम है और उसका सिर झुक गया। इसके बाद उसकी मूँछों पर कभी चिकनाई नजर नहीं आई।

संस्मरण। बचपन में पिता जी ने एक बार मुझे बहुत ही कड़ी सजा दी थी। पिटाई तो मैं भूल गया, मगर पिटाई का कारण मुझे अभी तक बहुत अच्छी तरह याद है।

एक दिन सुबह को मैं स्कूल जाने के लिए घर से निकला, मगर स्कूल गया नहीं। एक गली से दूसरी गली में मुड़ गया और शाम तक आवारा लड़कों के साथ जुआ खेलता रहा। पिता जी ने किताबें खरीदने के लिए मुझे कुछ पैसे दिए थे और उन्हीं के साथ मैं दुनिया की सुध-बुध भूलकर दाँव लगाता रहा। पैसे जल्द ही खत्म हो गए। अब मुझे यह फिक्र हुई कि और पैसे कहाँ से हासिल किए जाएँ। हम जब जुआ खेलते हैं और आखिरी कौड़ी तक हार जाते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि अगर कहीं से पाँच कोपेक का एक सिक्का और हाथ लग जाए, तो न सिर्फ हारे हुए पैसे ही वापस आ जाएँगे, बल्कि कुछ और भी जीत लेंगे। मुझे भी ऐसा ही लगा कि अगर कहीं से कुछ पैसे और मिल जाएँ, तो हारे हुए पैसे वापस आ जाएँगे।

मैं जिन लड़कों के साथ खेल रहा था, उनसे उधार माँगने लगा। मगर कोई भी ऐसा करने को राजी नहीं हुआ। बात यह है कि जुआरियों में ऐसा माना जाता है कि जो कोई हारनेवाले को उधार देता है, वह खुद हार जाता है।

तब मैंने एक तरकीब निकाली। मैं गाँव में घर-घर जाने और यह कहने लगा कि कल यहाँ पहलवान आएँगे और मुझे उनके लिए पैसे जमा करने का काम सौंपा गया है।

दर-दर जानेवाले भूखे कुत्ते को क्या मिलता है? या तो हड्डी या डंडे की मार। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ - कुछ ने इनकार कर दिया, कुछ ने कुछ दे दिया। हाँ, जिन्होंने कुछ दिया, वह भी शायद मेरे पिता के नाम की इज्जत करते हुए।

गाँव का चक्कर लगाने के बाद मैंने पैसे गिने, तो इस नतीजे पर पहुँचा कि जुआ जारी रखा जा सकता है। मगर किस्मत के मारे ये पैसे भी जल्दी ही खत्म हो गए। यह खेल जमीन पर घुटनों के बल रेंगकर खेला जाता था। दिन भर में मेरा पतलून बिल्कुल फट गया और घुटनों पर खरोंचें आ गईं।

इसी बीच घर पर मेरी फिक्र हुई। बड़े भाई मुझे सारे गाँव में ढूँढ़ने लगे।

गाँववाले, जिन्हें मैंने पहलवानों के आने की मनगढ़ंत बात कही थी, उनके आगमन के बारे में विस्तारपूर्वक जानने के लिए हमारे घर पहुँचने लगे। मतलब यह कि जब कान से पकड़कर मुझे घर लाया गया, तो मेरी करतूतों का पूरा पता चल चुका था।

तो मैं पिता जी की अदालत में खड़ा था। उनकी इस अदालत से ही मैं दुनिया में सबसे ज्यादा डरता था। पिता जी ने सिर से पाँव तक मुझे बहुत गौर से देखा। मेरे नंगे, सूजे हुए लाल घुटने सूराखों में से ऐसे झाँक रहे थे जैसे पंखों से भरे हुए तकिए, जिन्हें पहाड़ी घरों की खिड़कियों में खोंस दिया जाता है, झाँकते दिखाई देते हैं।

'यह क्या है?' पिता जी ने मानो शांति से पूछा।

'घुटने हैं,' फटे पतलून के सूराखों को हाथों से छिपाने की कोशिश करते हुए मैंने जवाब दिया।

'घुटने हैं, यह मैं भी जानता हूँ, मगर वे उघाड़े क्यों हैं? यह बताओ कि पतलून कहाँ फाड़ा?'

मैं अपने पतलून को ऐसे देखने लगा मानो अभी मैंने उनमें सूराख देखे हों। अजीब मनोदशा होती है झूठे और कायर की। वह समझता है कि बड़ों को सब कुछ मालूम है और हकीकत से इनकार करना महज अपना मजाक उड़वाना है

और इससे कोई फायदा नहीं होगा, मगर फिर भी वह साफ-साफ और सच्चे जवाब देने से कतराता है और अपने मन से तरह-तरह की बातें बनाता है।

पिता जी की आवाज में गुस्सा झलकने लगा। परिवार के लोग घर के मुखिया का मिजाज समझते थे और इसलिए मेरी रक्षा को मेरे आस-पास आ गए। मगर पिता जी ने उन सब को दूर हटने के लिए हाथ का इशारा किया और फिर मुझसे पूछा -

'तो तुमने पतलून कैसे फाड़ा?'

'स्कूल में फट गया... कील में उलझकर...'

'कैसे, कैसे, जरा दोहराओ तो...'

'कील में उलझकर।'

'किस जगह?'

'स्कूल में।'

'कब?'

'आज।'

पिताजी का तमाचा जोर से मेरे गाल पर पड़ा।

'अब बताओ कि पतलून कैसे फटा?'

मैं चुप रहा। पिता जी ने दूसरे गाल पर एक और तमाचा मारा।

'अब बताओ।'

मैं रो पड़ा।

'रोना बंद करो।' पिता जी ने आदेश दिया और कोड़ा उठा लिया।

मैंने रोना बंद कर दिया। पिता जी ने कोड़ा सटकारा।

'अगर अभी सब कुछ सच-सच नहीं बता दोगे, तो कोड़े से पिटाई करूँगा।'

मैं जाता था कि सिरे पर सख्त गाँठवाला यह कोड़ा क्या मुसीबत है। कोड़े के डर ने सच के डर पर बाजी मार ली और मैंने अपनी दिन भर की सारी हरकतें सिलसिलेवार कह सुनाईं।

मुकदमे की कार्रवाई खत्म हो गई। तीन दिन तक मैं बहुत परेशान रहा। घर और स्कूल का जीवन तो जैसे अपने आम ढंग से ही चलता रहा, मगर मेरे मन को चैन नहीं था। मैं जानता था कि अभी पिता जी से एक बार फिर बातचीत होगी।

इतना ही नहीं, अब मैं खुद इस बातचीत के लिए बड़ा उत्सुक था, इसकी प्रतीक्षा में था। इन दिनों में मेरे लिए सबसे अधिक यातना की बात तो यह थी कि पिता जी मेरे साथ बातचीत नहीं करना चाहते।

तीसरे दिन मुझसे कहा गया कि पिता जी ने बुलाया है। उन्होंने मुझे अपने पास बैठाया, सिर पर हाथ फेरा, यह पूछा कि स्कूल में हम आजकल क्या पढ़ रहे हैं, मुझे कैसे अंक मिल रहे हैं। इसके बाद अचानक यह सवाल किया -

'जानते हो कि मैंने किसलिए तुम्हारी पिटाई की थी?'

'हाँ, जानता हूँ।'

'जरा सुनूँ तो कि तुम क्या समझते हो?'

'इसलिए कि मैंने जुआ खेला था।'

'नहीं, इसके लिए नहीं। बचपन में कौन जुआ नहीं खेलता? मैंने भी खेला और तुम्हारे बड़े भाइयों ने भी।'

इसलिए कि पतलून फाड़ डाला।'

'नहीं, इसके लिए भी नहीं, बचपन में हममें से किसने पतलून या कमीजें नहीं फाड़ी? इतनी ही गनीमत है कि सिर सलामत हैं। तुम कोई लड़की तो हो नहीं कि नाक की सीध में आओ-जाओ।'

'इसलिए कि स्कूल नहीं गया।'

'हाँ, यह तुम्हारी बहुत बड़ी गलती थी। इसी से उस दिन तुम्हारी सारी मुसीबतें शुरू हुईं। इसके लिए और इसी तरह पतलून फाड़ने तथा जुआ खेलने के लिए तुम्हारी डाँट-डपट होनी चाहिए थी। ज्यादा से ज्यादा मैंने तुम्हारे कान ऐंठे होते। मेरे बेटे, मैंने तुम्हारे झूठ के लिए ही तुम्हारी पिटाई की। झूठ - यह भूल नहीं, संयोग से होनेवाली बात नहीं, यह हमारे चरित्र का एक लक्षण है, जो जड़ जमा सकता है। यह तुम्हारी आत्मा के खेत में भयानक जंगली घास है। अगर उसे वक्त पर न उखाड़ फेंका जाए, तो वह सारे खेत में फैल जाएगी और अच्छे बीज के फूट निकलने की कहीं भी जगह नहीं बचेगी। झूठ से ज्यादा खतरनाक और कोई चीज इस दुनिया में नहीं है। इससे पिंड छुड़ाना मुमकिन नहीं होता। अगर तुम एक बार फिर मुझसे झूठ बोलोगे, तो मैं तुम्हें मार डालूँगा। इस घड़ी से तुम हमेशा सिर्फ सच ही बोलोगे। टेढ़े नाल को तुम टेढ़ा नाल, घड़े के टेढ़े हत्थे को टेढ़ा हत्था और टेढ़े वृक्ष को टेढ़ा वृक्ष ही कहोगे। समझ गए?'

'समझ गया।'

'तो जाओ।'

मैं वहाँ से चल दिया और मैंने मन ही मन कभी भी झूठ न बोलने की कसम खाई। इसके अलावा मैं यह भी तो जानता था कि अगर मैंने फिर से झूठ बोला, तो पिता जी अपने कहे हुए शब्दों को सच कर दिखाएँगे और चाहे मुझे कितना ही अधिक प्यार क्यों न करते हों, वे मुझे मार डालेंगे।

बहुत सालों बाद मैंने अपने एक दोस्त को यह घटना सुनाई।

'अरे?' मेरे दोस्त ने हैरान होकर कहा, 'तुम अभी तक अपने उस छोटे-से, उस तुच्छ झूठ को नहीं भूले?'

मैंने जवाब दिया -

'झूठ, झूठ है और सच, सच। वे छोटे-बड़े नहीं हो सकते। जीवन, जीवन है, मौत, मौत। जब मौत आती है, तो जिंदगी खत्म हो जाती है। इसके उलट, जब तक जिंदगी की गर्मी बनी रहती है, तब तक मौत नहीं आती। वे साथ-साथ नहीं रह सकतीं। एक दूसरी का अंत कर देती है। सच और झूठ के बारे में भी ऐसा ही है।'

झूठ - यह है शर्म की बात, यह है गंदगी और कूड़ा-करकट। सच - यह है सुंदरता, स्वच्छता और निर्मल आकश। झूठ-कायरता है, सच - साहस है। या तो सच है या झूठ और इन दोनों के बीच की कोई चीज नहीं हो सकती।

अब जिस वक्त मुझे झूठे लेखकों की झूठी रचनाएँ पढ़नी पड़ती हैं, तो मुझे पिता जी के कोड़े की बहुत याद आती है। कितनी सख्त जरूरत है उसकी। कितनी सख्त जरूरत है कठोर और न्यायपूर्ण पिता की, जो सही वक्त पर यह धमकी दे सके - 'अगर झूठ बोलोगे, तो मार डालूँगा।' मगर हे अल्लाह, कितना झूठ बोला जाता है आजकल और उसकी सजा भी कोई नहीं।

काश झूठ ही सजा पाए बिना रहता। क्या सच के लिए लोगों को दंड नहीं मिलता? क्या इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी है, जब लोगों को सच के लिए सजा दी गई, जब सच के लिए उन पर कोड़े बरसाए गए?

बचपन में मुझे सच से इनकार करने के लिए बहुत साहस की जरूरत महसूस होती थी। कारण कि उससे इनकार करने पर राहत मिलने के बजाय सबसे भयानक यातना यानी आत्मा की भर्त्सना का सामना करना पड़ता है।

साहसी लोग अपनी आस्थाओं को कभी नहीं बदलते। उन्हें मालूम है कि पृथ्वी घूमती है। उन्हें मालूम है कि सूरज पृथ्वी के गिर्द नहीं, बल्कि पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है। उन्हें मालूम है कि रात के बाद जरूर सुबह होती है, फिर दिन निकलता है और दिन के बाद रात आती है... जाड़े के बाद वसंत आता है और वसंत के बाद प्यारी गर्मी...

और कुछ ऐसा ही होता है कि आखिर आत्मा का कोड़ा, प्रतिष्ठा का कोड़ा, सच का कोड़ा झूठों और ढोंगियों को चित कर देता है और झूठ कभी भी सच पर विजयी नहीं हो पाता।

गाँव के चौपाल में हुई बातचीत से।

'सच और झूठ के बीच कितना फासला है?'

'दो इंच का।'

'वह क्यों?'

'क्योंकि कान से आँख तक भी दो इंच का ही फासला है। जो कुछ अपनी आँखों से देखा गया है, वह सच है, और जो कुछ कानों से सुना गया है, झूठ है।'

खैर, ऐसा ही सही। इसमें कोई संदेह नहीं कि सौ बार सुनने के बजाय एक बार देख लेना ज्यादा अच्छा होता है। मगर लेखक को तो हर चीज से सचाई ग्रहण करनी चाहिए - उससे भी जो देखे, उससे भी जो सुने, जो पढ़े और जो स्वयं जिये।

क्या लेखक के लिए सिर्फ आँखों पर भरोसा करना ही काफी होगा? जिंदगी को देखता है वह अपनी आँखों से, मगर संगीत सुनता है कानों से और अपने देश के इतिहास को पढ़ता है। कुछ लेखक तो न आँखों और न कानों को, बल्कि अपनी सूँघने की शक्ति को ही प्रथम स्थान प्रदान करते हैं।

लेखक को सभी तरह के काम करने लायक मजबूत हाथों, मजबूत टाँगों और मजबूत दाँतों की जरूरत होती है। इसलिए कि वह जो कुछ देखता है, सुनता और पढ़ता है, उस सब में हमेशा झूठ-सच, सोने और दूसरी चमकीली सस्ती धातुओं, अनाज और भूसे का अंतर कर सके, उसे अक्ल और ज्ञान की भी जरूरत होती है। अक्ल और ज्ञान के बिना आदमी अपनी आँखों पर भी भरोसा नहीं कर सकता।

किसी पहाड़ी गाँव के अबोध लोगों को, जिन्होंने सोने को कभी देखा नहीं था, मगर उसके बारे में सुना बहुत था, एक भारी संदूक कहीं पड़ा मिल गया। उन्होंने सोचा - 'चूँकि भारी है, इसलिए जरूर सोने का है।' हाथ आये इस माल के लिए वे आपस में भिड़ गए और उन्होंने एक-दूसरे की जान ले ली। मगर संदूक तो ताँबे का था।

प्रतिभा - आग है। मगर किसी मूर्ख के हाथ में आग सब कुछ जलाकर राख कर सकती है। अक्ल ही उसे रास्ता दिखाती है। अक्ल तो खूबसूरती को भी उसी तरह काबू में करती है जैसे अनुभवी घुड़सवार तेज घोड़े को।

दो पहाड़ी आदमियों से पूछा गया : तुम क्या चाहते हो - जवान आदमी का खूबसूरत चेहरा या बूढ़े की समझदारी?

बुद्धू ने खूबसूरत चेहरा चुना, मगर बेवकूफ ही बना रहा। खूबसूरत बेवकूफ को उसकी बीवी छोड़कर चली गई। अक्लमंद ने समझ चुनी और समझदारी की बदौलत उसकी बीवी उसके पास ही बनी रही। एक लोक-कथा में भी यही बताया गया है कि समुद्री घोड़े के जीन पर सुंदरी को वही सवार कर पाया था, जिसने अपने लिए अक्ल को चुना था। एक अन्य लोक-कथा में तीन भाइयों, तीन राहों और तीन बुद्धिमत्तापूर्ण नसीहतों का जिक्र आता है। जिसने इन नसीहतों पर कान दिया, वह तो अपनी घर लौट आया और जिसने इनकी परवाह नहीं की, वह पराई धरती पर ही ढेर होकर रह गया। ओ मेरी वरदायिनी सुनहरी मछली, मुझे प्रतिभा दो, लगन दो, जवान का सच्चा और उत्साही दिल दो और बुजुर्ग की सुलझी हुई अक्ल दो। सही रास्ता चुनने में मेरी मदद करो।

यह रास्ता बेशक कंकड़ों-पत्थरोंवाला हो, मुश्किल और खतरनाक हो। मगर मैं उस पर साँप की भाँति दाएँ-बाएँ बल नहीं खाना चाहता। 'साँप टेढ़े-मेढ़े क्यों होते हैं?' पहाड़ी लोग यह सवाल करते हैं और खुद ही जवाब देते हैं - 'क्योंकि वे सूराख और खड्ड टेढ़े-मेढ़े होते हैं, जिनमें से उन्हें रेंगना पड़ता है।' मगर मैं तो साँप नहीं, आदमी हूँ। मुझे ऊँचाई, स्वच्छ हवा और सीधे रास्ते पसंद हैं।

मुझे बीमारी और भय, बोझिल ख्याति और हल्के-सतही विचारों से बचाओ।

मुझे नशे से बचाओ, क्योंकि नशे में आदमी को हर अच्छी चीज सौ गुना बुरी लगती है।

मुझे सूफी होने से भी बचाओ, क्योंकि सूफी को हर बुरी चीज सौ गुना ज्यादा बुरी लगती है।

सचाई के लिए मुझमें ऐसी भावना पैदा करो कि मैं टेढ़े को टेढ़ा और सीधे को सीधा कह सकूँ।

'बड़ी बुरी है, बड़ी बेतुकी है यह दुनिया,'
इतना कहकर ऊबे कवि ने, छोड़ा जग, संसार,
'बड़ी सुहानी, बेहद सुंदर है यह दुनिया,'
कहा दूसरे कवि ने इतना, जग से गया सिधार।

मगर तीसरे कवि ने दुनिया ऐसे छोड़ी
मौत न जिस पर विजयी होती, समय न करता वार,
बुरा बुरे को, सुंदर को सुंदर कहता था
इसीलिए तो सदा अमर वह, यही अमरता-सार।

किसी पहाड़ी आदमी ने अपनी गाय के कानों में झुमके डाल दिए ताकि पराई गउओं से उसका भेद हो सके। किसी पहाड़ी आदमी ने अपने घोड़े की गर्दन में घंटियाँ डाल दीं ताकि पड़ोसी के घोड़ों के साथ अपने घोड़े को न गड़बड़ाए। मगर वह जीगित तो किसी भी काम का नहीं, जो रात के वक्त भी अपने प्यारे घोड़े को दूर से ही न पहचान ले।

मेरी किताब आपके सामने है। मैं इसे न तो झुमके पहनाना चाहता हूँ, न घंटियाँ और न कोई दूसरे गहने ही। अपनी या पराई अन्य किताबों के साथ मैं इसे नहीं गड़बड़ाऊँगा। ऐसे ही लोग भी न गड़बड़ाएँ। चाहे इस किताब का मुखावरण फटा हुआ हो, फिर भी जो कोई इसे पढ़े, फौरन यह कह दे कि इसे त्सादा गाँव के हमजात के बेटे रसूल ने लिखा है।

कहते हैं कि साहस यह नहीं पूछता कि चट्टान कितनी ऊँची है।

संशय

मेरी सभी किताबें मेरी राहें हैं
जिन पर कभी बढ़ा सहमा-सा, कभी निडर,
कभी गिरा जाकर खड्डों में, गड्ढों में
कभी चढ़ा ऊँचे-ऊँचे, छू लिया शिखर।

मेरी सभी किताबें खूनी जीतों-सी
क्या हमको मालूम कि जब चढ़ते ऊपर,
नाम हमारा चमकेगा इस दुनिया में
या कि व्यर्थ ही रक्त बहेगा धरती पर।

दागिस्तान में बहुत-सी भाषाएँ हैं, बहुत-से स्थानीय रंग-ढंग हैं! वहाँ के लोग बहुत-से विभिन्न रस्म-रिवाजों को सुरक्षित रखे हुए हैं। तात लेखक हिजगील अवशालूमोव ने ऐसे ही एक रिवाज की मुझसे चर्चा की।

किसी पहाड़ी के यहाँ अगर बच्चे नहीं होते थे, तो पति ऊन की पेटी बाँध लेता था ताकि अल्लाह दूसरे पहाड़ी लोगों में उसे अलग से पहचान ले। साथ ही वह अल्लाह से यह दुआ भी करता था -

'ओ अल्लाह, अपने इस बेचारे गुलाम पर रहम करो। उसे बेटा दे दो।'

ऐसी ही पेटियाँ वे भी बाँधते थे, जिनके सिर्फ बेटियाँ ही पैदा होती थीं और वे भी, जिनके बच्चे दुबले-पतले, अंधे-बहरे, लंगड़े-लूले, टेढ़े-मेढ़े अंगोंवाले, गूँगे, कुबड़े या कुछ-कुछ पागल होते थे। ऐसी पेटी पहननेवाला पहाड़ी यह यकीन

करता था कि अगली बार अल्लाह उसे स्वस्थ और तगड़ा बेटा देगा, जो सचमुच ही असली बहादुर जीगित बनेगा।

मेरे मन में भी ऐसे ही संशय होते हैं : क्या मैं भी वैसी ही पेटी न बाँधना शुरू कर दूँ जैसी कि यह संशय करनेवाले तात लोग पहनते हैं कि उनका भावी बच्चा स्वस्थ होगा या नहीं स्वस्थ होगा? मेरी नई किताब बेटा और जीगित होगी या वह विकलांग, कुबड़े और गूँगे-बहरे बच्चे का रूप लेगी?

हाँ, हर माँ को अपना बच्चा बहुत प्यारा लगता है। माताएँ अपने बच्चों की त्रुटियों को देखती भी हैं और फिर भी अनदेखा कर देती हैं। मेरी किताब के सिलसिले में भी कहीं ऐसा ही न हो जाए।

मेरा दिल डरता है। मेरी लेखनी काँपती है। संदेह मुझ पर हावी होते हैं। मैं बिल्ली को उकाब समझकर तो कहीं, निशाना नहीं साध रहा हूँ? गधे को घोड़ा समझकर कहीं मैं उसी पर तो सवारी नहीं कर रहा हूँ? क्या मैं उस आखालचीवासियों की भाँति शहतीर को लंबाई के रुख रखने की बेकार कोशिश तो नहीं कर रहा हूँ, जबकि उसे चौड़ाई के रुख रखना चाहिए था और इसीलिए वह छोटा पड़ रहा था? क्या मैं हारीकुलीवासी की तरह अपने चूल्हे के पास बैठा-बैठा ही आनदी के किले पर तो धावा नहीं बोल रहा हूँ?

पुस्तक की समाप्ति के पहले मैं अपने को उस कसाई की तरह महसूस कर रहा हूँ, जो भेड़ का कूल्हा काटते-काटते दुम तक जा पहुँचे और तभी उसका छुरा टूट जाए। मैं अलम तक पहुँच सकूँगा? क्या फल सामने आएगा? सागर की गहराई से मैं खाली सीपी लेकर आ रहा हूँ या उसमें से बढ़िया मोती निकलेगा?

तेज आँधी वृक्ष की टहनी या उसका तना भी तोड़ सकती है। मगर वसंत में जड़ों से पुनः नई शाखाएँ निकल आएँगी और नया वृक्ष बढ़ने लगेगा। पर यदि वृक्ष को फफूँद लग जाए, वह उसे भीतर से खा जाए, अगर वह वृक्ष की जड़ों को ही खोखला कर डाले, तब कुछ भी नहीं हो सकेगा। इनसान के बारे में भी ऐसी ही बात है। अगर उसे कोई बाहरी चोट आ जाए, घाव हो जाए, यहाँ तक कि अगर उसकी हड्डी भी टूट जाए, तो वह भी जल्दी से ठीक हो सकती है। पर शरीर के अंदर, कहीं गहराई में पैदा हो जानेवाली बीमारी तो जरूर ही जान लेकर जाती है। मेरी किताब स्वस्थ है या नहीं, उसकी जड़ें काफी मजबूत और भरोसे के लायक हैं या नहीं?

मेरी किताब जवान हो गए बेटे के समान है; पहाड़ी घर उसे तंग महसूस होता है; अब उसे लोगों में भेजने, अपनी राह पकड़ने, बड़ी दुनिया में रवाना करने का वक्त आ गया है। कैसा बर्ताव होगा उसके साथ वहाँ - उसे प्यार मिलेगा या डाँट-फटकार? खिला-पिलाकर सुलाया जाएगा या दहलीज से दुतकार दिया जाएगा? अब मेरे बस में कुछ नहीं है।

कविता हुई समाप्त, तुम्हारा बुना गया कालीन
किंतु रुको कुछ देर, अभी मत इतराओ,
कोने साधो, इधर-उधर धागे काटो
नजर नमूनों पर तुम फिर से दौड़ाओ।

कविता हुई समाप्त, कि पूरा खेत जुता
पर यह कल का श्रम है, थोड़ा रुक जाओ,
फिर से जाकर देखो हल-रेखाओं को
संभव है तुम दोष, कहीं, कोई पाओ।

मेरी किताब तो समाप्त हो चुके ऐसे कालीन के समान है, जिसे बिछा दिया गया है ताकि पहली बार उसे पूरी तरह एकबारगी देखा जा सके। मुझे उसमें अनेक गलत रेखाएँ, दोषपूर्ण नमूने और अस्पष्ट बेल-बूटे दिखाई दे रहे हैं, सजावट कहीं-कहीं कच्ची और टेढ़ी-मेढ़ी है। मगर इन गलतियों को अब ठीक करना मुमकिन नहीं, क्योंकि कालीन बुना जा चुका है। उसका छोटे से छोटा दोष दूर करने के लिए भी सारे कालीन को उधेड़ना होगा।

मेरी किताब तो बहुत लंबे और कठिन रास्ते के बाद घर लौटने के समान है; दो साल तक मैं घर पर नहीं रहा; गाँववाले, पड़ोसी, यार-दोस्त और बूढ़े-जवान दो साल तक मेरे बारे में कुछ नहीं सुन पाए। तो मैं गाँव के छोरवाले घर के पास ही घोड़े से नीचे उतर जाता हूँ और लगाम थामकर धीरे-धीरे घोड़े के साथ चल पड़ता हूँ। पहाड़ी औरत ने अपनी खिड़की में जो दीपक जलाकर रख दिया था, ताकि मेरा रास्ता रोशन रहे, उसे अब बुझाया जा सकता है। मैं घर लौट रहा हूँ। सलाम, मेरे गाँववालो! मैं दो साल की यात्रा के बाद घर लौट रहा हूँ। इन दो सालों के दौरान मेरा घोड़ा बूढ़ा गया है। मेरे बाल भी कुछ और ज्यादा पक गए हैं। घोड़े की लगाम थामे हुए मैं धीरे-धीरे गाँव का सड़क पर जा रहा हूँ और हर मिलनेवाले से कहता हूँ -

'असलामालैकुम!'

'वालैकुम सलाम, हमजात के बेटे रसूल! तुम्हारा सफर कैसा रहा? थक तो नहीं गए? क्या लेकर आए हो? तुम्हारी खुरजियों में क्या भरा हुआ है?'

मैं लोगों से कहना चाहता हूँ कि उनके लिए एक नई किताब लाया हूँ। मगर किताब तो ऐसी चीज है, जो न तो गाँववालों और न ही किसी अन्य व्यक्ति के हाथों में दी जा सकती है। सबसे पहले तो उसे प्रकाशक के हाथ में जाना होगा और वही उसकी किस्मत का फैसला करेगा।

प्रकाशक ने मुझसे पांडुलिपि लेकर उसे हाथों में तौला, इधर-उधर घुमाया, उसके पृष्ठ उलटे-पलटे - सबसे पहला, फिर एक बार ही सत्तरवाँ और फिर आखिरी पृष्ठ और पांडुलिपि को सुरक्षित जगह पर एक तरफ को रख दिया।

'मुमकिन है कि तुम्हारी किताब अच्छी ही हो, मगर हमारी तो इस साल और अगले साल की प्रकाशन योजनाएँ बन चुकी हैं, उनकी पुष्टि भी हो चुकी है। तुम्हारी किताब तो हमारी योजनाओं में नहीं है।'

'वह तो मेरी अपनी योजना में भी नहीं थी। बिल्कुल अचानक ही आ गई है। अब क्या किया जाए इसका?'

'अपनी तरफ से अर्जी लिख दो। इसे देख लेंगे, सोच-विचार कर लेंगे, किसी नतीजे पर पहुँच जाएँगे। संपादक मंडल की विशेष योजना में स्थान दे देंगे। एक साल बाद इसी वक्त या तो आ जाना या टेलीफोन कर लेना।'

प्रकाशनगृह के नाम अबूतालिब का पत्र। 'दागिस्तान के आदरणीय प्रकाशनगृह! मैं आपका जन-कवि हूँ, दागिस्तान की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष मंडल का सदस्य हूँ, विशेष पेंशन पाता हूँ। इस साल मैं पचासी बरस का हो जाऊँगा। मैं जानता हूँ कि अगर किस्मत की मुझ पर टेढ़ी नजर हो जाए और मैं इस दुनिया के कूच कर जाऊँ, तो आप मेरी कविताओं के दो बड़े ग्रंथ निकालने का निर्णय करेंगे। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि उन दो ग्रंथों के बजाय, जो आप मेरी मौत के बाद छापने का इरादा रखते हैं, अभी, जबकि मैं जिंदा हूँ, मेरी एक किताब छाप दें। सादर, आपका अबूतालिब।'

ऐसी अर्जी लिखते हैं शांत और भले लोग। मगर ऐसी भी अर्जियाँ होती हैं, जिनमें शिकायतें भरी रहती हैं, खूब कोसा जाता है। ऐसी भी अर्जियाँ होती हैं, जिनमें अपनी तारीफों के पुल बाँधे जाते हैं। चापलूसी से भरी अर्जियाँ भी होती हैं। खीझ-गुस्से और चीख-चिल्लाहटवाली अर्जियाँ भी लिखी जाती हैं।

प्रकाशनगृहों को लिखी जानेवाली नहीं, बल्कि उनके विरुद्ध लिखी जानेवाली अर्जियाँ ही सबसे ज्यादा खतरनाक होती हैं। प्रकाशकों की कठिनाइयों को भी समझना चाहिए। अगर कुर्सी पर एक ही आदमी के बैठने की जगह है, तो उस पर तीन या चार आदमी तो नहीं बैठ सकते। अगर दो भी देर तक बैठे रहें, तो उन्हें भी तकलीफ होगी। कोई कहता है - 'आप अहमद की किताब क्यों छाप रहे हैं और मेरी किताब क्यों नहीं छापना चाहते? क्या मैं उससे बुरा हूँ?' दूसरा चिल्लाता है - 'मेरी किताब उन सभी किताबों से अच्छी है, जो तुमने पिछले सालों में छापी हैं? इस बार भी मुझे योजना में क्यों नहीं रखा गया?'

नहीं, मैं प्रकाशक से झगड़ा नहीं करना चाहता। मैं इंतजार करने को तैयार हूँ। मुझे मालूम है कि प्रकाशकों के पास हमेशा कागज की कमी रहती है। कागज चला कहाँ गया? उसे लेखक, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, खराब करते हैं। इसलिए मैं क्यों उन्हें भला-बुरा कहूँगा! हाँ, कभी-कभी कागज खराब होने के बजाय उस पर कुछ ऐसा रचा जाता है कि वह लेखक और प्रकाशक के इस दुनिया से चले जाने पर भी जिंदा रहता है। ओह, मेरी यह बहुत ही बड़ी अभिलाषा है कि कागज के किसी टुकड़े पर ऐसे शब्द लिखे जाएँ, जो अमृत की भाँति उसका उस हरे-भरे और सजीव वृक्ष में कायाकल्प कर दें, जिससे कभी वह कागज बनाया गया था।

नहीं, मैं प्रकाशक से झगड़ा नहीं करना चाहता। मैं तो शांतिपूर्वक उससे यह कहता हूँ -

'आप मेरे और मेरे गाँववालों के बीच, मास्को और अन्य नगरों के मेरे पाठकों और मेरे बीच खड़े हैं। आप तो हमारी बीच की, हमें जोड़नेवाली कड़ी हैं। कृपया, मेरा अनुरोध मानते हुए कुछ ऐसा कीजिए कि हमारे हाथ दोस्ताना ढंग से मिल जाएँ। मैं आपकी मिन्नत करता हूँ...'

प्रकाशक मेरे इस शांतिपूर्ण अनुरोध के सामने झुक जाता है और मेरी पांडुलिपि फौरन संपादक के हाथ में पहुँच जाती है।

संपादक

'संक्षिप्त करो!' उसके दरवाजे पर यह लिखा है।

प्रकाशक ने कहा था - 'एक साल बाद आना। संपादक ने तीन हफ्ते बाद आने को कहा। इस अवधि से तो मुझे खुशी भी हुई, क्योंकि इसी बीच आपको छोटे-छोटे तीन किस्से भी सुना लूँगा।

एक संपादक को कैसे खिड़की से बाहर फेंक दिया गया। एक अवार कवि नववर्ष के अंक में प्रकाशित कराने के लिए अपनी कविताएँ लेकर एक अखबार के दफ्तर में पहुँचा। कविताएँ पसंद आईं और छाप दी गईं।

कवि बहुत खुश हुआ और उसी दिन उसके घर पर यार-दोस्तों की महफिल जमी। कवि ने बड़ी शान से अखबार खोला और ऊँचे-ऊँचे अपनी कविताएँ सुनाने लगा। अचानक उसके चेहरे का रंग उड़ गया, उसने बाएँ हाथ से ऐसे दिल थाम लिया मानो उसमें तीर जा लगा हो। अखबार उसके हाथ से नीचे गिर गया। दोस्त लपककर उसके पास आए, उन्होंने उसे सँभाला, पानी पिलाया : कवि के होश ठिकाने होने पर उसकी ऐसी हालत हो जाने का कारण पता चला। हुआ यह था कि उसकी कविताओं में से चार पंक्तियाँ गायब थीं। कवि अखबार के दफ्तर में भागा गया।

'आपकी अखबार रूपी चरागाह में मैंने जो अपनी भेंड़ें चरने के लिए छोड़ी थीं, उनमें से चार सबसे अच्छी भेड़ों को किसने जिबह किया है?'

समाचार पत्र के संपादक ने बड़ी शांति से जवाब दिया -

'मैंने... क्या बात है?'

'तुमने ऐसा क्यों किया?'

'इसलिए कि कुछ बहुत जरूरी सामग्री आ गई थी, जगह की कमी थी।'

'पर यदि तुम कवि की अनुमति के बिना उसकी कविता की पंक्तियाँ निकाल फेंक सकते हो, तो मैं खुद तुम्हें ही अभी खिड़की से बाहर फेंक देता हूँ।'

कवि की रगों में गर्म अवार खून था। उसने संपादक को गर्दन और टाँगों से पकड़कर सचमुच ही खिड़की से बाहर फेंक दिया। इतनी ही खैरियत कहिए कि यह घटना दूसरी मंजिल पर घटी और खिड़की के नीचे नर्म क्यारी थी। अदालत में कवि ने कहा - 'खून का बदला खून! दाँत के बदले दाँत! उसने मेरा संपादन किया और मैंने उसका संपादन कर डाला।'

कहते हैं कि यह 'संपादित' संपादक अभी भी कविताओं की काँट-छाँट करता रहता है (इसके बिना तो वह शायद संपादक ही नहीं हो सकता), मगर अब वह कवियों की पहले से अनुमति ले लेता है।

नोटबुक से। मेरे पिता जी ने 'मोची' और 'कोदोलाव की शादी' नामक दो नाटक लिखे। शुरू में वे थियेटर में गए, फिर संस्कृति-विभाग में और उसके बाद

दागिस्तान के कला-संचालन-कार्यालय में जा पहुँचे। पिता जी को पक्की तरह यह मालूम था कि वे वहाँ गए हैं और वहाँ से किसी दूसरी जगह नहीं गए हैं। मगर वहाँ भी उनका कोई अता-पता नहीं था।

बुरे मौसम के बावजूद जिस तरह चरवाहा चरागाह में रह गई भेड़ों की खोज में निकल पड़ता है, वैसे ही पिता जी भी अपने नाटकों की तलाश में निकल पड़े।

संचालन-कार्यालय में केवल नाटकों से संबंध रखनेवाला एक आदमी बैठा था। उसे भी संपादक ही कहा जाता था। पिता जी कोई एक घंटे से ज्यादा वक्त उससे बातचीत करते रहे और अचानक उन्हें यह महसूस हुआ कि जब तक मौसम, चरागाहों, भेड़ों और गउओं तथा घोड़ों का जिक्र होता रहता है, तो बातचीत में रंगीनी रहती है, मगर जैसे ही साहित्य और नाटक-कला की चर्चा होने लगती थी, वैसे ही उनके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता था। इस पर तुर्रा यह कि संपादक लगातार नाटक-कला की ही चर्चा करने की कोशिश करता था, पिता जी को अच्छे नाटक लिखने के बारे में उपदेश और नसीहतें देता था। आखिर पिता जी को अच्छे नाटक लिखने के बारे में उपदेश और नसीहतें देता था। आखिर पिता जी से बर्दाश्त न हुआ और उन्होंने साफ-साफ ही पूछ लिया कि वह आदमी है कौन, उसने क्या शिक्षा पाई है और कला-संचालन-कार्यालय में आने से पहले कहाँ काम कर चुका है।

'मैं उच्च शिक्षा प्राप्त हूँ,' संपादक ने शान से जवाब दिया। 'पेशे से पशु-चिकित्सक हूँ। अब इस काम पर लगा दिया गया हूँ।'

'तो क्या मेरे नाटक गउएँ हैं कि तुम उनका इलाज करने की कोशिश कर रहे हो! कवि भला पशु-चिकित्सकों को कभी सलाह क्यों नहीं देते? मगर कवियों को जिसका भी जी चाहता है, सीख देने लगता है।'

कहीं मेरी किताब भी तो किसी ऐसे ही संपादक के हाथों में नहीं पड़ रही है, जो पहले पशु-चिकित्सक था?

अबूतालिब और संपादक। अबूतालिब की पांडुलिपि को संपादक ने वैसे ही नोच-खसोट डाला जैसे रण-क्षेत्र में खेत रहे सैनिक की लाश को कौवा नोच डालता है। इसी नुची हालत में उसके प्रूफ अबूतालिब के पास आए। अबूतालिब ने उन्हें पढ़ा और हैरान होकर कहा -

'मेरे हरे-भरे मैदान को घोड़ों ने रौंद डाला है। जहाँ पहले फूल थे, वहाँ अब दलदल है। अगर कोई छात्र इमले में कुछ गलतियाँ करता है, तो अध्यापक उन्हें

सुधारता है। मगर यह कौन-सा अध्यापक है, जो यह जानता है कि मेरे जीवन में क्या सही और क्या गलत था?'

अबूतालिब ने बहुत ध्यान से प्रूफ पढ़े और अचानक कह उठे -

'मैं जानता हूँ कि मेरा संपादक किस गाँव का रहनेवाला है। वह मेरी किताब को अपने गाँव की बोली के मुताबिक सुधारना चाहता है। बेशक बोलियाँ अनेक हैं,पर भाषा एक, जनता एक है! अगर हर संपादक अपने गाँव की बोली की तरफ ही खींचने की कोशिश करेगा, तो हम अपनी कविता का गाँव कभी नहीं बसा पाएँगे।'

मेरे संपादक, यह याद रखना कि तुम्हारे गाँव के अलावा दुनिया में और स्थान भी हैं, तुम्हारे अलावा और लोग भी हैं। वैसे तो हमारे बीच मतभेद नहीं हो सकता। तुम्हारी टिप्पणियों से अगर कोई लाभ हो सकेगा, तो मैं जरूर उनका उपयोग करूँगा। मगर तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि अपने गीत के प्रति मैं कुल बैर की-सी गहरी भावना रखता हूँ। ऐसी भावना मुझमें अभी नहीं आई है। जवानी के दिनों में लिखी गई मेरी एक कविता ऐसे ही शुरू हुई थी -

अपने दिल में रहा सहेजे, मैं वांछित प्रतिशोध-सा
अपनी कविताओं का स्पंदन, औ, सिहरन,
गुप्त प्यार-सा रहा बचाता, अपने प्यारे गीतों को
जग की बुरी-बुरी नजरों से, मैं हर क्षण।

बड़े प्यार से पाला-पोसा उन्हें कि जब वे थे नन्हें
उनकी हर आवाज सुनी, कातर रोदन,
ऐसे बाँधा मैंने उनको, छंदों-बंदों में, तुक में
घड़ीसाज जड़ता है जैसे पुर्जे चुन।

मिलते-जुलते एक तरह के, ढेरों शब्दों में से मैं
चुन लेता था कुछ को ऐसे, कोशिश कर,
जैसे बढ़िया से भी बढ़िया, हम चुन लेते हैं मदिरा
प्यारे किसी अतिथि के घर आ जाने पर।

अपनी कविता की यात्रा पर, रात हुए चल देता था

और सुबह तक चुनता रहता, छवि माला,
जैसे सुंदर, मनमोहक-सा, प्रिय कालीन बनाने को
रंग सुहाने चुनती है, पर्वतबाला।

औरों ने तो गाया बढ़-चढ़, गाया है मुझसे बेहतर
दुख है, किंतु नहीं मैंने ऐसा गाया,
सफल ढंग से व्यक्त किया है या कि नहीं मनभावों को?
शब्दों का सुंदर-सा चोला, पहनाया!

बेशक ये कविताएँ मेरी इतनी अच्छी नहीं बनीं।
पर शब्दों में मेरा कुल जीवन उभरा,
मुझे बताओ, मेरे प्यारे, समझदार संपादकगण
क्यों तुम करते हो उनको कुछ और बुरा?

मैं हूँ इनका बाप, कि इनको मैं ही सिर्फ समझ सकता
किसी और के लिए काम है यह मुश्किल,
मुझे बताओ तुमको इनमें क्या-क्या दोष अखरता है
कान ऐंठ मैं खुद कर दूँगा ठीक अकल।

उन दिनों मैंने 'पहाड़िन' नाम का एक नाटक लिखा था। वह दागिस्तान के कई थियेटरों में खेला गया और उसका जो हाल हुआ, वह यह था।

नाटक के अंत में घटनाचक्र ऐसा रूप लेता है कि नायक नायिका की हत्या कर डालता है। अपनी पहाड़िन के लिए मुझे बहुत अफसोस था और जब मैंने हत्या का दृश्य लिखा, तो मेरा हाथ काँप रहा था और दिल खून के आँसू रो रहा था। मगर मैं कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता था। घटनाचक्र ही पहाड़िन की मौत की माँग करता था। अवार थियेटर ने उसे इसी रूप में प्रस्तुत किया। दर्शकों को नायिका के लिए चाहे दुख और मुझसे भी ज्यादा अफसोस हुआ, मगर वे समझ गए कि इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था।

दार्गिन थियेटर में नाटक का संपादन कर दिया गया। लड़की की हत्या के बजाय उन्होंने उसकी चोटी कटवा दी। बेशक यह सही है कि किसी पहाड़िन की

चोटी काट देना उसके लिए बहुत ही शर्म की बात होती है। शायद ऐसा करना मौत से भी बुरा होता है, फिर भी यह मौत तो नहीं होती।

कुमीक थियेटरवालों ने न तो उसकी हत्या कराई और न ही चोटी काटी, बल्कि उसे अंधा कर दिया। यह तो बहुत भयानक बात है। शायद यह हत्या करने या चोटी काटने से ज्यादा भयानक बात है। मगर फिर भी पहाड़ी लड़की चोटी सहित जिंदा रह गई, क्योंकि कुमीक थियेटरवालों ने ऐसा चाहा।

चेचेनों ने अपने थियेटर में सबसे ज्यादा आसान रास्ता अपनाया। 'किसलिए हत्या कराई जाए,' उन्होंने तय किया, 'चोटी काटने या अंधा करने की भी क्या जरूरत है? पहाड़िन को जीने और मौज करने दो।'

तो इस तरह हर निर्देशक ने अपनी इच्छा और विचार के अनुसार नाटक को बदल दिया। मगर किसी ने भी उन्हें यह नहीं समझाया कि मेरी नायिका पर तरस खाते और उसकी जान बचाते हुए वे नाटक की हत्या कर रहे हैं और नाटककार की बात तो एक तरफ रही, दर्शकों के साथ भी अन्याय कर रहे हैं।

पिता जी ने एक बार वह अखबार मिलने पर जिसमें उनकी कविता छपी थी, हमसे कहा -

'लगता है कि मेरी कविता किन्हीं कसाइयों के हाथों में हो आई है। उसका कोई हिस्सा भी तो सही-सलामत नहीं बचा।'

महमूद... महमूद ने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि उसके जीवनकाल में उसकी एक भी किताब नहीं छपी थी। पर यदि वह यह देख पाता कि इसी तरह के किसी संपादक ने उसकी कविताओं को कैसे बदल डाला है, तो वह दूसरी बार मर जाता।

आधुनिक कार में पहाड़ी पगडंडी पर जाना मुमकिन नहीं। अगर संपादकगण परलोक सिधार गए लेखकों को भी नहीं छोड़ते, तो भला मैं उनसे यह कैसे कह सकता हूँ कि वे मेरी रचना को न छुएँ?

मगर, मेरे संपादक , मैंने जो कुछ कहा है, उस सबको अपने ऊपर ही लागू नहीं कर लेना। मैं ऐसे संपादकों को भी जानता हूँ, जो बड़े समझदार और सुलझे हुए सलाहकारों के रूप में लेखक के पास आते हैं। मैं जानता हूँ कि तुम भी ऐसे ही हो। लगता है कि तुम्हारे साथ काम करने में बड़ा सुख और चैन मिलता है। तुम निश्चिंत रह सकते हो कि मैं अपनी पांडुलिपि के हाशिये में तुम्हारी खुशी व्यक्त करनेवाले विस्मयचिह्नों, तुम्हारी परेशानी जाहिर करनेवाले प्रश्न-चिह्नों

और उन 'तीरों' की तरफ पूरा ध्यान दूँगा, जो यह जाहिर करेंगे कि पुस्तक को बेहतर बनाने के लिए तुम इंगित पंक्तियों को बदल देना चाहते हो।

मेरी किताब में संभवतः ऐसी पंक्तियाँ है, जो ढंग से कसी हुई नहीं हैं और पुराने सड़े हुए दाँत की तरह हिलती-डुलती हैं। संभवतः मैंने अपने को दोहराया भी है। तुमसे अनुरोध करता हूँ कि ऐसे स्थल खोज निकालो, उनके नीचे निशान लगा दो, उन्हें मुझे दिखाओ। एक सिर अच्छा होता है और डेढ़ बेहतर! मुझे आशा है कि हमारे तो एक जैसे अच्छे दो सिर और चार हाथ होंगे और हमारा काम खूब बढ़िया ढंग से चलेगा! कल झगड़ा करने के बजाय आज झड़प हो जाए तो ज्यादा अच्छा है। उम्र भर झगड़ते रहने के बजाय एक बार लड़ लेना बेहतर है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मेरी बहुत ज्यादा तारीफ नहीं करना।

किसी शिकारी ने इसलिए एक खरगोश की तारीफ की कि वह डरा नहीं और उछलकर खुले टीले पर सामने आ गया। शिकारी ने तो उस पर गोली भी नहीं चलाई। खरगोश को घमंड हो गया और वह किसी दूसरे शिकारी के सामने भी उसी तरह कूदकर टीले पर आ गया। मगर यह शिकारी दूसरे ढंग का था। आप आसानी से ही यह समझ सकते हैं कि इसका क्या नतीजा निकला होगा।

मैं जानता हूँ कि कुल मिलाकर तो तुम्हारा काम ऐसा है, जिसके लिए कोई भी तुम्हें धन्यवाद नहीं देता। पाठक जब किताब हाथ में लेता है, तो यह देखता है कि किसने उसे लिखा है, किसने उसके चित्र बनाए हैं, मगर वह यह कभी नहीं देखता कि उसका संपादक कौन है। बस, कुछ ऐसा ही ढंग है लोगों का!

आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि कवि जनता का प्रवक्ता होता है। मगर पता चलता है कि कभी-कभी संपादक भी जनता की ओर से बोलता है। एक बार मैं संपादक के पास अपने दिल की रानी के बारे में एक प्रेम-गीत लेकर गया। संपादक ने उसे एक तरफ को रखते हुए कहा कि वह उसे नहीं छाप सकता।

'क्यों?'

'जनता इसे नहीं पढ़ेगी। जनता को तुम्हारी पत्नी से संबंधित कविता से क्या लेना-देना है!'

उसी वक्त मैंने यह चतुष्पदी लिखी -

तुझे समर्पित थी जो कविता, संपादक ने फिर ठुकराई,
कहा, तुम्हारी इस कविता को, जनता नहीं पढ़ेगी भाई
लेकिन हाँ, मेरी यह कविता, नहीं मुझे उसने लौटाई,
कहा, सुनाऊँगा पत्नी को, इतनी उसके मन पर छाई।

पिता जी कहा करते थे कि लेखक और कवि मोटर ड्राइवरों के समान होते हैं, जो कुल मिलाकर ढंग से मोटर चलाते रहते हैं, मगर कभी-कभी उनसे गलती भी हो जाती है और ये यातायात के नियमों का उल्लंघन कर जाते हैं। इस सिलसिले में संपादक मिलीशियामैनों के समान होते हैं। पिता जी ने कुछ देर सोचकर एक बार यह पूछा -

'तुम्हारा क्या ख्याल है, एक ड्राइवर के लिए तीन मिलीशियामैन कुछ ज्यादा नहीं हैं?'

मगर मिलीशियामैनों के बिना भी काम नहीं चल सकता। एक दावत में उपस्थित हर व्यक्ति के लिए बारी-बारी से जाम उठाया जाता था। वहाँ एक मिलीशियामैन भी था। दावत के तामादा (चौधरी) ने मिलीशियामैन के नाम का जाम उठाया। मगर तभी उपभोक्ता सहकारी समिति के अध्यक्ष ने, जो वहाँ हाजिर था, अपना जाम नीचे रखकर कहा -

'कम्युनिज्म में मिलीशियामैन नहीं होंगे। उनका कोई भविष्य नहीं है। किसलिए उसका जाम पिया जाए!'

मिलीशियामैन ने इसका यह जवाब दिया -

'कम्युनिज्म में मिलीशियामैन होंगे या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ उपभोक्ता सहकारी समिति होगी या नहीं।'

खैर, मजाक तो मजाक रहे, मेरे संपादक, आओ मैं तुम्हें यह बताऊँ कि कौन-से क्षण मुझे सबसे ज्यादा अच्छे लगते हैं? वे जब हम-तुम कागजों के ढेर के बीच काम की मेज पर नहीं, बल्कि ढंग से सजी हुई खाने की मेज पर बैठे होते हैं। हाँ, और वे सुखद क्षण भी बीत चुके हैं, जब तुम मेरी पांडुलिपि पर 'कंपोजिंग के लिए!' इसके बाद 'प्रेस के लिए!' और बाद में 'प्रकाशन के लिए!' लिखते हो। तुम्हारे इशारे के मुताबिक ही किताब की कंपोजिंग होती है, वह छपती है और पाठकों के हाथ में पहुँचती है। जरा ख्याल तो करो कि तुम कैसे शब्द लिखते हो - 'प्रकाशन के लिए!' केवल इसी के लिए तुम्हारे सारे गुनाह माफ किए जा सकते

है। सिर्फ इसी के लिए जाम उठाया जा सकता है। जल्दी से ये शब्द लिख दो और मैं तुम्हें अपने हस्ताक्षर सहित पहली प्रति भेंट कर दूँगा।

निश्चय ही मैं यह चाहता हूँ कि वह वक्त जल्दी-से आ जाए, जब दुनिया में कोई भी रहस्य न रहे। मगर क्या हम उसे कवि कह सकते हैं, जो दुनिया के सामने किसी भी रहस्य का उदघाटन नहीं करता यानी वह नहीं बताता, जो उसे उसके पहले मालूम नहीं होता? मैं कवि हूँ और दुनिया में आकर दिक् और काल पर से ठीक वैसे ही पर्दा हटाता हूँ, जैसे दूल्हा दुलहन के मुँह पर से घूँघट हटाता है। शादी के वक्त केवल दूल्हे को ही ऐसा करने का अधिकार होता है और इसके बाद दुलहन का चेहरा सभी देख पाते हैं। केवल कवि ही जीवन में ऐसा करने में समर्थ है और लोगों का वास्तविकता से साक्षात्कार होता है, वे उसे देखकर आश्चर्यचकित होते हैं, उन्हें उन चीजों के बारे में हैरानी होती है, जिन्हें वे पहले नहीं देख पाए थे - संसार का सौंदर्य या मानवीय आत्मा का सौंदर्य, जो बुराई की शक्तियों का विरोध करते हैं।

संपादक, मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि बातूनियों को वह सब नहीं कहने दो, जो अनकहा ही रहना चाहिए, मगर उसे भी नहीं छिपाओ, जो मैं कवि के रूप में सामने ला रहा हूँ। मेरे बेल-बूटों, मेरी सजावट और मेरे नमूनों को संदेह की दृष्टि से नहीं देखो। अगर मेरे कालीन के बेल-बूटों में कहीं कोई गलती भी रह गई है, तो ऐसा न करना कि उस जगह पर स्याही फेर दो या उसे काट डालो। ऐसा करने से या तो वहाँ धब्बा पड़ जाएगा या सूराख हो जाएगा।

इसके अलावा, किसी विचार को इसलिए गलत नहीं कहना, कि वह तुम्हारे विचार जैसा नहीं है!

इसके अलावा, रोटी, चीनी, मक्खन और कीलों को तुला पर तोला जाता है, मगर प्यार को नहीं!

इसके अलावा, छींट, कमरे की ऊँचाई, कब की बाड़ को मीटरों में मापा जाता है, मगर सौंदर्य को नहीं!

इसके अलावा, जो सबसे ज्यादा समझदार बनने की कोशिश करता है, वह वास्तव में जितना मूर्ख होता है, उससे भी ज्यादा मूर्ख सिद्ध होता है!

इसके अलावा, मैं भी वयस्क हूँ और मुझ पर किसी बात के लिए थोड़ा-सा विश्वास तो करो!

मैं यह समझता हूँ कि एक आदमी के पास अधिक और दूसरे के पास कम रहस्य होते हैं, क्योंकि अबूतालिब ने कहा है कि अगर पानी सड़ जाए, तो चाहे वह घुटनों तक ही ऊँचा हो, तल दिखाई नहीं देगा।

नोटबुक से। जब मैं छोटा था, तो मुझे घर में सबसे ज्यादा बातूनी माना जाता था। बाहर गली में जो कुछ सुनता, वह जरूर ही घर पर कह सुनाता और जो कुछ घर पर सुनता, जरूर ही गली में जा सुनाता।

जब-तब एक बुजुर्ग मेरे पिता जी के पास आते। वे इधर-उधर नजर दौड़ाते और बड़े महत्वपूर्ण ढंग से फुसफुसाकर कहते -

'हमजात, तुमसे दूसरे कमरे में दो-चार बातें कर सकता हूँ?'

वे दूसरे कमरे में चले जाते और वहाँ कुछ खुसुर-फुसुर करते। कई बार ऐसा ही हुआ। बुजुर्ग एक बार फिर आए।

'हमजात, दूसरे कमरे में तुम से दो-चार बातें कर लूँ!'

'बस काफी हो चुका यह खेल!' पिता जी ने जवाब दिया। 'तुम छिपा-छिपाकर जो कुछ फुसफुसाते हो, उसे तो हमारे रसूल के सामने भी कहा जा सकता है। इसलिए जो कहना है, कहो और बिल्कुल नहीं डरो।'

हाँ, मुझे तो बचपन से ही रहस्य पसंद नहीं थे।

गीतों को खुलकर, ऊँची आवाज में और ऊँची जगह पर चढ़कर गाया जाता है ताकि ज्यादा-से-ज्यादा लोग उन्हें सुन सकें।

इसके अलावा, अपने हर शब्द के लिए मैं ही जिम्मेदार नहीं हूँ। मेरा अनुवादक भी तो है।

अनुवादक

मैं अवार हूँ, अवार ही पैदा हुआ था और दूसरा कुछ नहीं बन सकता। आँख खोलते ही जिन लोगों को मैंने सबसे पहले देखा, वे भी अवार थे। पहले शब्द भी मैंने अवार भाषा ही के सुने। मेरे पालने पर झुककर मेरी माँ ने जो पहली लोरी गाई, वह भी अवार भाषा में ही थी। अवार भाषा मेरी मातृभाषा बन गई। मेरी ही क्यों, सभी अवार लोगों की यही सबसे मूल्यवान चीज है।

अवार लोगों की संख्या कुछ ज्यादा नहीं है, वे सिर्फ तीन लाख हैं। मगर यह संख्या कुछ कम भी नहीं है। दागिस्तान में उस भाषा के कवि भी हैं, जो सिर्फ दो हजार लोगों की भाषा है।

राज्य-सीमा लोगों को अलग करती है, मगर उनकी भाषाएँ उन्हें और भी अधिक अलग करती हैं। सीमाएँ तो बदल जाती हैं और कभी-कभी तो बिल्कुल खत्म हो जाती हैं या केवल औपचारिकता ही बनकर रह जाती हैं। मगर भाषा तो किसी जाति के लोगों को सदा-सदा के लिए मिलती है और उसे बदलना या मिटा देना मुमकिन नहीं।

उस जमाने की कल्पना करना भी मुश्किल है, जब अवार लोग पुश्किन से अनभिज्ञ थे, लेर्मोंतोव को नहीं पढ़ते थे, तोलस्तोय को नहीं जानते थे और चेखोव की रचनाओं का रस-पान नहीं करते थे।

पिता जी कहा करते थे कि यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि पहाड़ों में भी पुश्किन का पेड़ लग गया है। इस पेड़ को चाहे कितना ही क्यों न झाड़ो, उसके मीठे और रसीले फलों का कभी अंत ही नहीं होता।

अबूतालिब कहा करते थे कि उन्हें धन्यवाद देता हूँ, जिनकी बदौलत मेरे अँधेरे तलघर में प्यारे चेखोव पहुँचे! उनका भी शुक्रिया अदा करता हूँ, जो तलघर से मेरे गीतों को मास्को के क्रेम्लिन की दीवारों तक ले गए!

और मैं कहता हूँ कि काकेशिया ने जनरल के सामने नहीं, जवान लेफ्टीनेंट की कविताओं के सामने सिर झुकाया।

मेरे साथ एक बार एक अनोखी घटना घटी। दागिस्तान में मेरी कविताओं और खंड-काव्यों के रूसी अनुवाद का संकलन निकलनेवाला था। संपादक ने पांडुलिपि के पृष्ठ उलटे-पलटे और बोला -

'तुमने इसमें 'पोल्तावा' खंड-काव्य क्यों नहीं शामिल किया!'

'मगर वह तो मेरी रचना नहीं, पुश्किन की रचना है। मैंने तो अवार भाषा में उसका केवल अनुवाद किया है। पुश्किन के खंड-काव्य को रूसी भाषा के अपने संकलन में कैसे शामिल कर सकता हूँ!'

पर खैर, हम संपादक के प्रति कठोरता से काम नहीं लेंगे। वास्तव में दूसरी भाषाओं से अवार भाषा में अनूदित अच्छी रचनाओं के अवार लोग अपनी अवार रचनाओं की तरह ही अभ्यस्त हो गए हैं और उनके बिना हम अपने अवार साहित्य की कल्पना ही नहीं कर सकते।

मुझे मालूम है कि कभी-कभी मेरी पीठ-पीछे ऐसा कहा जाता है - 'अरे हाँ, रसूल है तो लायक आदमी, मगर बहुत नहीं। मास्कोवासी अनुवादकों ने उसके लिए बहुत कुछ किया है।'

मैं इससे इनकार नहीं करूँगा। सच तो यह है कि अगर अनुवादक न होते, तो मैं भी न होता।

पहली बात तो यह है कि उन्होंने मुझे हाइने, बर्न्स, शेक्सपीयर, शेख सादी, सेर्वांतेस, गेटे, डिकंस, लांगफेलो, हिटमैन और उन सभी से परिचित होने की संभावना दी, जिन्हें मैंने अपने जीवन में पढ़ा और जिनके बिना मैं लेखक ही न बन सकता।

दूसरे, इन अनुवादकों ने ही मेरी कविताओं के लिए मार्ग प्रशस्त किए। वे उन्हें तूफानी नदियों, ऊँचे पर्वतों, मोटी दीवारों, सीमा-चौकियों और सबसे मजबूत हदों - दूसरी भाषा की हदों, बहरेपन, अंधेपन और गूँगेपन की हदों के पार ले गए।

कभी-कभी मैं अपने से यह सवाल करता हूँ कि क्या चीज अधिक महत्वपूर्ण है - अनुवादक का मेरी भाषा जानना (चाहे मेरी कविता उसके लिए पराई हो) या यह कि वह मेरे काव्य को अपनी आत्मा, अपने हृदय से जाने-समझे और उसे अपना ही माने?

1937 में मखचकला में पुश्किन की कविता 'गाँव' के सर्वश्रेष्ठ अनुवाद की प्रतियोगिता आयोजित की गई। चालीस कवियों ने अवार भाषा में उसका अनुवाद किया। उनमें से अधिकांश रूसी भाषा जानते थे। फिर भी प्रथम पुरस्कार हमजात त्सादासा को मिला, जो उस समय तक रूसी भाषा बिल्कुल नहीं जानते थे।

यह जरूरी है कि अनुवादक भी कवि, लेखक, कलाकार हो। यह भी जरूरी है कि वह वह अपने को उसी तरह अपनी जनता का बेटा अनुभव करे, जैसे मैं अपने को अनुभव करता हूँ।

ऐसे रूसी हैं, जो अवार भाषा पढ़ सकते हैं, मगर हाय, वे कवि नहीं हैं। रूसी कवि तो हैं, मगर हाय, वे अवार भाषा नहीं जानते। तो क्या किया जाए? शब्दशः पंक्ति-अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है।

रूसी गाँवों में लट्ठों के घर को एक गाँव से दूसरे गाँव में कैसे ले जाया जाता है। मैंने यह देखा है। पूरे का पूरा झोंपड़ा ले जाना तो मुमकिन नहीं। उसके लट्ठे-कुंदे और तख्ते अलग करके दूसरी जगह ले जाए जाते हैं और फिर उन्हें वहाँ जोड़ा जाता है।

शब्दशः पंक्ति-अनुवाद भी झोंपड़ा ही है, जिसे दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए खंड-खंड किया जाता है। यह लट्ठों, तख्तों, छत की लोहे की चादरों और ईंटों का

ढेर है। अनुवादक इस आकृतिहीन ढेर से नया झोंपड़ा बनाता है। अगर कोई लट्ठा गल-सड़ गया है, तो वह उसे बदल डालता है, अगर कोई तख्ता रास्ते में खो गया है, तो वह नया तख्ता लगा देता है। अगर खिड़की की नक्काशीवाली तख्ती का कोई बेल-बूटा खराब हो गया है, तो वह उसे ठीक-ठाक कर देता है।

खिड़कियों के शीशे साफ कर दिए जाते हैं, चूल्हे में आग जला दी जाती है ताकि चिमनियों में से धुआँ निकलने लगे, दरवाजे के पास बच्चे खेलने-कूदने लगते हैं और छत के नीचे अबाबीलें घोंसले बना लेती हैं।

शब्दशः पंक्ति-अनुवाद क्या है? वह व्यक्ति जिसकी आँखों की ज्योति जाती रही है और जिसके हृदय की धड़कन बंद हो गई है। मगर डॉक्टर आता है, सूई लगाता है, खून देता है, हृदय की मांसपेशियों की मालिश करता है और मानवीय शरीर में फिर से जीवन आ जाता है।

शब्दशः पंक्ति-अनुवाद क्या है? एक नाई ने मेरे बाल काटे, दाढ़ी बनाई, बालों को सँवारा और यह कहकर विदा किया -

'शब्दशः पंक्ति-अनुवाद के रूप में मेरे पास आए थे और अनुवाद बनकर जा रहे हो।'

चूँकि नाई का जिक्र आ ही गया है, तो लगे हाथों आपको एक घटना भी सुना देता हूँ।

यह घटना क्यूबा के सांतियागो शहर में घटी। मैं वहाँ पहुँचा ही था कि मैंने बाल कटवाने तथा दाढ़ी बनवाने का फैसला किया। मैं नाई के पास गया और संकेतों से उसे अपनी बात समझाई।

क्यूबा में दाढ़ी बनाते समय आरामकुर्सी में वैसे ही लिटा दिया जाता है जैसे कि पलंग पर। मुझे भी लिटा दिया गया। साबुन लगाया जाने लगा। जब तक क्यूबाई नाई के उस्तरे ने मेरे गालों को नहीं छुआ, सब कुछ ठीक-ठाक रहा। या तो उस्तरा बिल्कुल कुंद था या नाई निकम्मा था, कारण कुछ भी हो, मगर मैं तो दर्द के मारे बड़ी मुश्किल से ही अपनी चीख को रोक पा रहा था। कुछ देर तक तो मैंने दर्द बर्दाश्त किया और आखिर यह समझ गया कि पूरी दाढ़ी बनने तक मैं यह सहन नहीं कर सकूँगा। रूसी और अवार भाषा बोलते हुए मैं अपने गालों की ओर संकेत करने लगा। नाई घबरा गया, भागकर बाहर गया और थोड़ी देर बाद सफेद लबादा पहने एक व्यक्ति को साथ लिए हुए लौटा। इस व्यक्ति ने अपना बक्स खोला और दाँत निकालनेवाले औजार निकाल-निकालकर बाहर रखने

लगा। दाढ़ी बनाने की आरामकुर्सी से मैं अचानक दाँतों के डॉक्टर की कुर्सी में बैठा नजर आया। तो यह नतीजा निकला मेरे और नाई के एक-दूसरे को न समझ पाने का। बस, अगर जरा-सी देर और हो जाती, तो मैं अपने अच्छे-भले दाँतों से हाथ धो बैठता।

अनुवादक अक्सर कविताओं के सारे दाँत निकाल डालते हैं और उन्हें सिसकारते-फुसकारते हुए पोपले मुँह के साथ दुनिया में घूमने के लिए भेज देते हैं।

नोटबुक से। जब हम विदेश जाते हैं, तो जातीय कारीगरी की कुछ चीजें भी इसलिए अपने साथ ले जाते हैं कि आतिथ्य-सत्कार के लिए किसी को उन्हें उपहारस्वरूप दे सकें। चुनांचे जब मैं जापान गया, तो बालखारी के कारीगरों के कलापूर्ण हाथों की बनी हुई कुछ सुरहियाँ अपने साथ ले गया। हिरोशिमा में एक चित्रकार-दंपति मेरे यहाँ मेहमान आए। हम बहुत देर तक बातें करते रहे और मानो दोस्त-से बन गए। 'अगर चित्रकारों को नहीं, तो और किसे मैं बालखारी की कलात्मक वस्तुएँ भेंट करूँगा,' मैंने मन-ही-मन सोचा। बड़े उत्साह से मैंने अपना सूटकेस खोला और तभी मेरा कलेजा धक से रह गया - मेरी सुराहियों के तो बस टुकड़े ही बाकी रह गए थे। ऐसा लगता था मानो उन पर हथौड़ा चलाया गया हो - ऐसे चकनाचूर हो गई थीं वे। बहुत मुमकिन है कि मास्को, भारत या टोकियो के हवाई अड्डे पर कुलियों ने मेरे सूटकेस को बहुत लापरवाही से फेंका हो। मुझे यह मालूम नहीं। मगर उस वक्त तो मैं यह चाहता था कि जमीन फट जाए और मैं उसमें समा जाऊँ। कारण कि मैं उपहार देने की बात कह चुका था और जापानी चित्रकार-दंपति मेज के गिर्द उसकी प्रतीक्षा की मुद्रा में बैठे थे। वे भी परेशानी से मेरी ओर देखने लगे, क्योंकि मैं तो सूटकेस के ऊपर बुत बना खड़ा रह गया था। न हिला-डुला और न मेरे मुँह से कोई शब्द ही फूटा।

आखिर मेरे जापानी मेहमान भी समझ गए कि कहीं कुछ गड़बड़ हो गई है। वे मेरे करीब आए और उन्होंने सुराहियों के टुकड़े देखे। उन्होंने दुखी होकर सिर हिलाया और कंधा थपथपाते हुए मुझे तसल्ली देने लगे। किसी दूसरे वक्त वे कभी कंधा न थपथपाते, क्योंकि वे बहुत ही सलीकेदार लोग हैं और घनिष्ठता जताना पसंद नहीं करते। इसका मतलब तो यही है कि मैं बहुत ही दुखी, बहुत ही परेशान हो उठा था।

मैंने अखबार में टुकड़े समेटे और उन्हें कूड़ेदान में डाल देना चाहा। मगर चित्रकारों ने मुझे ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने बड़ी सावधानी से एक-एक टुकड़ा

लपेटा और अपने घर ले गए।

कुछ दिनों बाद इन्हीं चित्रकार-दंपति ने मुझे अपने घर आमंत्रित किया। अपनी उन सुराहियों को मैंने जब सही-सलामत और ऐसी अच्छी हालत में पाया मानो वे अभी-अभी कुम्हार के चक्के से उतरी हों, तो मेरी हैरानी का कोई ठिकाना न रहा। मैं अब तक यह नहीं समझ पाता कि ऐसे चूरे को इतनी होशियारी से जोड़ना कैसे संभव था।

कहते हैं कि तड़क जानेवाली सुराही कभी साबुत नहीं हो पाती, हर हालत में उससे पानी रिसेगा। जापानी चित्रकारों द्वारा जोड़ी गई सुराहियों में हमने दागिस्तानी ब्रांडी भी डाली और जापानी साके भी डाली, मगर एक बूँद भी नहीं रिसी।

जापानी चित्रकारों को देखते हुए मुझे अपने श्रेष्ठ अनुवादकों का ध्यान हो आया। मेरी कविताओं के शब्दशः पंक्ति-अनुवाद टूटी सुराही के टुकड़ों जैसे लगते थे। बाद में उन्हें जोड़ा गया और वे नई-सी हो गई और उनके अवार बेल-बूटे भी ज्यों-की-त्यों उनकी शोभा बढ़ाते रहे।

जाहिर है कि अगर सुराही का हत्था नहीं है, तो अनुवादक को उसे लगाना नहीं चाहिए या एक की जगह दो तल नहीं बनाने चाहिए।

कुछ ही समय पहले दागिस्तान के प्रकाशनगृह ने 'हाजी मुराद' का अवार भाषा में नया अनुवाद प्रकाशित किया। मैं उसे पढ़ने लगा तो क्या देखा कि 'हाजी मुराद' के दो परिच्छेद बढ़ गए हैं। मैंने अनुवादक से पूछा -

'ये दो परिच्छेद कहाँ से आ गए?'

'बात यह है कि तोलस्तोय ने तो यह लघु-उपन्यास अक्तूबर क्रांति से पहले लिखा था। इसलिए उसमें कुछ गलत दृष्टिकोण हैं। इसके अलावा, पाठकों को हाजी-मुराद के सिर और वंशजों के भविष्य के बारे में बताना भी जरूरी था।'

नोटबुक से। पिता जी की एक कविता का रूसी में अनुवाद किया गया। अनुवादक संभवतः कच्चा था। पिता जी ने रूसी और अवार भाषा जाननेवाले एक आदमी से अनुवाद का फिर से अनुवाद करके उसका सार बताने को कहा। जब ऐसा किया गया, तो पिता जी ने हैरानी से कहा -

'मेरा बेटा लंबे सफर से लौटा है और मैं उसे पहचान नहीं पाया। नहीं, ऐसे कायाकल्प से तो यह कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि मेरे बच्चे यहीं पहाड़ों में बैठे रहें।'

हाँ, कविताओं के अनुवाद उन बेटों के समान होते हैं, जिन्हें माँ-बाप पढ़ने या काम करने के लिए गाँव से भेजते हैं। बेशक हर हालत में ही बेटे उसी रूप में गाँव नहीं लौटते, जिस रूप में वे घर छोड़कर जाते हैं।

बेटा कुछ पाकर या गँवाकर, डिप्लोमा लेकर या अदालत में पेशी भुगतकर, तगड़ा या कमजोर और बीमार होकर, विद्वान या औरतबाज का नाम पैदा करके, सभी रिश्तेदारों के लिए कीमती तोहफे लेकर या अपने कपड़े तक खोकर घर लौट सकता है।

मैं भी अपनी किताब को बड़े शहरों और लोगों में भेज रहा हूँ। अजनबी जगहों पर उसका कैसा रंग-ढंग रहेगा? क्या वह अपनी जनता, अपने तौर-तरीकों को भूल जाएगी?

मैं यह अच्छी तरह समझता हूँ कि पहाड़ पर बैठा बुरा आदमी (यामान) केवल इसलिए अच्छा आदमी (याक्शी) नहीं बन जाएगा कि वह घाटी में उतर आया है। इसलिए मैं अपनी पुस्तक के अनुवादक से अनुरोध करता हूँ कि अगर वह 'यामान' है, तो उसे वैसा ही रहने दीजिए। अगर मैं लंगड़ा और अंधा हूँ, तो मेरी बाँह पकड़कर मुझे मेरे घर से बाहर नहीं ले जाइए, मुझे अपने चूल्हे के पास, अपनी दहलीज पर ही बैठा रहनी दीजिए। मेरे ताँबे के बर्तनों पर कलई नहीं कीजिए, मेरी चाँदी पर सोने का मुलम्मा नहीं चढ़ाइए।

अबूतालिब ने यह बात सुनाई।

'मेरा एक बेटा और एक बेटी है। बेटी बहुत अच्छी है, बड़ी अनुशासित है और दूसरों के लिए मिसाल मानी जाती है। मगर बेटा शरारती और नटखट है। बेटी की रेडियो पर चर्चा होती है, अखबारों में उसके बारे में बहुत कुछ लिखा जाता है, क्योंकि वह अग्रणी कामगारिन है। बेटे के बारे में कभी स्कूल से तो कभी मिलीशिया के दफ्तर से शिकायतें आती हैं। बेटी के संबंध में यह कहा जाता है कि स्कूल, पायनियर संगठन, युवा कम्युनिस्ट संघ और देश ने उसका शिक्षण किया, उसे इतना अच्छा बनाया। मगर बेटे के बारे में यह कहा जाता है कि जन-कवि अबूतालिब ने उसे बड़े बुरे ढंग से पाला-पोसा है।'

यह किस्सा सुनकर मैंने सोचा कि कविताओं के अनुवाद के संबंध में भी ऐसी ही बात होती है। अनुवाद अच्छे होने पर मूल रचयिता की प्रशंसा की जाती है और यह भुला दिया जाता है कि अनुवादक कौन है। अगर अनुवाद बुरे होते हैं,

तो अनुवादक को कोसा जाता है और मूल रचयिता का नाम बचा जाने की कोशिश की जाती है।

नहीं, मेरे अनुवादक-मित्र, भले-बुरे की जिम्मेदारी हम दोनों एक साथ अपने ऊपर लेंगे। हम दोनों का एक ही छकड़ा है। आओ, मिल-जुलकर उसे पहाड़ पर चढ़ाएँ और अपनी-अपनी दिशा में न खींचें। नहीं तो छकड़ा और उसके साथ-साथ हम दोनों भी जहाँ-के-तहाँ ही बने रहेंगे।

हमारे इलाके में एक अद्भुत घटना घटी। एक बड़ा पहाड़ अचानक अपनी जगह से हिला और नीचे की तरफ खिसक चला। वह मोचोख गाँव से थोड़ी दूर इधर की पहाड़ी नदी को रोककर रुक गया। भेड़ों के रेवड़ चरवाहे, चरवाहों के अलाव और उनके झोंपड़े किसी भी तरह की हानि के बिना बड़े शांत ढंग से पहाड़ के साथ-साथ नीचे आ गए। अब वह ज्यों-का-त्यों खड़ा है, मगर उसके दामन में झील बन गई है। और झील में ट्राउट मछलियाँ पाली जाती हैं। जब तक यह पहाड़ अपनी पुरानी जगह पर खड़ा था, कोई उस पर नहीं चढ़ता था। पर अब उसके इर्द-गिर्द हमेशा यात्रियों, अभियान-दलों, मछुओं और सैर-सपाटे के लिए आए स्कूली बालकों को देखा जा सकता है।

मैं चाहता हूँ कि मेरी किताब भी किसी तरह की हानि के बिना नई भाषा में पहुँच जाए। वह भी बाद में उसी तरह लोगों को अपनी तरफ खींचे जैसे मोचोख गाँव के पासवाला पहाड़। मुसलमानों में यह कहा जाता है कि जन्म के वक्त जैसी लकीरें पड़ जाती हैं, वैसा ही होकर रहता है। यह संभवतः इस रूसी कहावत - मेरे मन कुछ और है, साईं के मन कुछ और - के अनुरूप ही है। या और भी अधिक संक्षिप्त रूप से यों कहा जा सकता है - किस्मत का लिखा होकर रहेगा।

आलोचक

उसके बारे में लिखना सबसे ज्यादा मुश्किल काम है। अगर उसे भला-बुरा कहा जाए, तो यह समझा जाएगा कि हजरत उसकी आलोचनात्मक टिप्पणियों से तिलमिला उठे हैं और बदला ले रहे हैं। अगर तारीफ करें, तो यह सोचा जाएगा कि भविष्य को ध्यान में रखते हुए चापलूसी हो रही है।

पिता जी कहा करते थे कि वे और आलोचक दोनों ही कवि हैं। मैं कविताएँ लिखता हूँ और वह मेरी कविताओं के बारे में लिखता है।

अबूतालिब ने कहा है एक दागिस्तानी आलोचक से -

'मैं अंगूरों की शराब बनाता हूँ और तुम उसका जायका चखते हो।'

आलोचक के बारे में अपने विचार प्रकट नहीं करूँगा, मगर उसे कुछ सलाहें देना चाहता हूँ।

1. बुरे को हमेशा बुरा और अच्छे को अच्छा कहो।

2. जिस चीज की तारीफ करते हो, बाद में उसी को बुरा नहीं कहो। अगर बुरा कहते हो, तो बाद में तारीफ नहीं करो।

3. राई को पहाड़ नहीं बनाओ और पहाड़ को राई बनाने की तो और भी कम कोशिश करो।

4. किताब में जो कुछ है, उसकी चर्चा करो, न कि उसकी, जो नहीं है।

5. अपने विचारों की पुष्टि के लिए बेलीन्स्की से शुरू करके सभी विद्वानों को उद्धृत नहीं करो। अगर ये विचार वास्तव में तुम्हारे ही हैं, तो अपनी ही अक्ल से उन्हें पुष्ट करने की कोशिश करो।

6. स्पष्ट विचारों को स्पष्ट और समझ में आनेवाली भाषा में व्यक्त करो। अस्पष्ट विचारों को व्यक्त ही नहीं करो।

7. हवा के रुख के साथ बदलनेवाले बादनुमा नहीं बनो।

8. जो कुछ अभी खुद नहीं समझते, उसके बारे में दूसरों को उपदेश देने की कोशिश नहीं करो।

9. अगर तुम्हारी जेब में सौ रूबल नहीं हैं, तो ऐसा ढोंग नहीं करो कि मानो वे तुम्हारे पास हैं।

10. अगर तुम बहुत अर्से से अपने गाँव नहीं गए और तुम्हें यह मालूम नहीं कि वहाँ क्या हाल-चाल है, तो यह दावा नहीं करो कि तुम अभी-अभी अपने गाँव से लौटे हो।

मेरी इन अभिलाषाओं में कुछ नई बात नहीं है। वे गुना की तालिका की पहली पंक्ति के समान हैं। फिर भी अगर हमारा हर आलोचक इन पर ईमानदारी से अमल करे, तो हमारी आलोचना कहीं अधिक अच्छी हो सकती है।

पाठक

मैंने संपादक, प्रकाशक, अनुवादक और आलोचक से तो बातचीत कर ली। अब सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति, जिसके लिए सभी किताबें लिखी जाती हैं, उस पाठक से कुछ शब्द कहना चाहता हूँ।

पाठक, मेरे मित्र! निश्चय ही तुम्हारी अपनी मनपसंद किताबें हैं। हम लेखकों की भी ऐसी किताबें हैं। कहा जाता है कि लेखक की प्रमुखतम पुस्तक वह है, जो वह अभी लिख नहीं पाया, मगर लिखेगा जरूर। मालूम नहीं कि बाकी लेखकों के बारे में यह कहाँ तक ठीक है, मगर मेरे संबंध में तो सोलह आने सही है।

हाँ, मैं एक जमाने से अपनी मातृभूमि के बारे में एक किताब लिखने का सपना देख रहा हूँ। बहुत अर्से से यह विचार मेरे दिमाग में घूम रहा है, मगर उसे किसी तरह भी अमली शक्ल नहीं दे पाया। संभव है कि प्रतिभा की कमी है, मुमकिन है कि हर दिन की दौड़-धूप इसमें रूकावट डालती है, या सब्र की कमी है या फिर हिम्मत साथ नहीं देती।

जैसे-जैसे वक्त गुजरता है, वैसे-वैसे खुद अपने और पाठक के सामने जिम्मेदारी का एहसास बढ़ता जाता है। हर विचार को लिख डालने के लिए हाथ लेखनी की तरफ बेधड़क नहीं बढ़ पाता। मातृभूमि के बारे में किताब, सभी किताबों से ज्यादा जिम्मेदारी का काम है।

यह किताब मैंने अभी तक लिखी तो नहीं, मगर मैंने उसके बारे में सोचा बहुत है और अब मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि यह कैसी होनी चाहिए। इस किताब - अपने जीवन की सबसे महत्वपूर्ण किताब - के बारे में अपने विचारों को ही लिख डालने का आखिर मैंने निर्णय किया।

यह कोट नहीं, कोट का कपड़ा है। यह कालीन नहीं, कालीन के लिए धागे ही हैं। यह गीत नहीं, केवल हृदय की धड़कन है, जिससे गीत का जन्म होगा।

कहते हैं कि अगर तुमने प्रार्थना नहीं की, पर इतना सोच ही लिया कि प्रार्थना करना बुरा नहीं, तो इसी की बदौलत नरक में जाने से बच जाओगे।

कहते हैं कि दोस्त के पास जो कुछ है, दोस्त को उसी से खुशी होती है। अगर दोस्त के घर में सिर्फ बूजा ही है, तो क्या मेहमान दोस्त इसलिए नाराज हो जाएगा कि विदेशी शराबों से, जो न तो घर में और न आसपास ही कहीं पर हैं, उसकी खतिरदारी नहीं की गई?

कहते हैं कि अगर तुमने कोई नेकी नहीं की, तो इसके लिए भी शुक्रिया कि ऐसा करने का इरादा रखते थे।

पाठक, मेरे मित्र, हर पुस्तक तुम्हारे लिए ही लिखी जाती है। मैं प्रकाशक को अपनी बात का यकीन दिला सकता हूँ, संपादकों और आलोचकों से बहस कर

सकता हूँ। मगर तुम्हारा फैसला ही असली और आखिरी होता है। जजों की भाषा में, उसके खिलाफ अपील नहीं हो सकती।

लेखक तो तुमसे भेंट करने के लिए ही जीता है। मेरे समूचे जीवन में तीन तरह की परेशानियाँ लगातार बनी रही हैं। तुमसे भेंट होने के पहले मैं प्रतीक्षा में और यह अनुमान लगाते हुए परेशान होता रहता हूँ कि हमारी यह भेंट कैसी रहेगी। फिर भेंट के समय मुझे परेशानी होती रहती है, जो कि स्वाभाविक है और समझ में आ सकती है। अंत में मैं भेंट की हर तफसील को याद करते और यह अंदाज लगाते हुए परेशान होता रहता हूँ कि मैंने कैसा प्रभाव छोड़ा।

अपने पाठकों के तरह-तरह के चेहरे मुझे दिखाई देते हैं। कुछ के माथों पर बल पड़ गए हैं। भला मैं ऐसे शब्द कहाँ से लाऊँ कि उनके ये बल दूर हो जाएँ? दूसरों ने ऐसा मुँह बना लिया है मानों कोई बदजायका और अटपटी चीज उसके मुँह में चली गई हो। तीसरों के चेहरे पर ऊब का भाव है, जो सबसे अधिक भयानक और निराशाजनक चीज है।

पहाड़ी लोगों से पूछा गया - किसलिए आप इतनी दूर और दुर्गम पहाड़ों में अपने गाँव बसाते हैं? आप तक पहुँचना लगभग असंभव और साथ ही खतरनाक भी है - पगडंडियाँ खड्डों के सिरों पर हैं, ऊपर से पत्थर और चट्टानें टूटकर गिर सकती हैं। पहाड़ी लोगों ने जवाब दिया, 'अच्छे दोस्त तो सभी तरह के खतरों का सामना करते हुए मुश्किल रास्तों से भी हम तक पहुँच जाएँगे और बुरे दोस्तों की हमें जरूरत नहीं।'

पाठक, मेरे मित्र, मेरी उम्र चवालीस साल है। इस उम्र में आदमी को हर तरह की जिम्मेदारी के काम सौंपे जा सकते हैं। इस उम्र में लेखक को अपने हर शब्द के लिए जवाबदेह होना चाहिए।

अगर मेरी किताब में तुम्हें कोई ऐसा विचार मिले, जो किसी दूसरी किताब में रैन-बसेरा कर चुका है, तो उसे अपने दिमाग से ऐसे ही निकाल फेंकना, जेसे कभी पहाड़ों में सुहागरात के बाद उस दुलहन को निकाल दिया जाता था, जिसने उस रात तक अपनी इज्जत को बचाकर नहीं रखा होता था।

अगर मेरी पुस्तक में तुम्हें कोई सही विचार मिले, तो उसके नीचे रेखा खींच देना। अगर कोई गलत विचार मिले, तो दो रेखाएँ खींच देना।

अगर तुम्हें इसमें रत्ती भर भी झूठ मिले, तो किताब को ही फौरन दूर फेंक देना - यह कौड़ी काम की नहीं।

विदा लेने से पहले एक किस्सा और सुनाए देता हूँ।

अमीर खान, उसके बेटे और भेड़ की मोटी दुम के लहसुनवाले खीनकालों का किस्सा। कहते हैं कि अवारिस्तान में कभी एक बहुत ही अमीर रहता था। बेटे की तमन्ना में उसने तीन बार शादी की, मगर एक भी बीवी ने न सिर्फ वारिस ही पैदा किया, बल्कि खान को बेटी तक का मुँह देखना न नसीब हुआ। चुनांचे उसे चौथी शादी करनी पड़ी।

आखिर खान के यहाँ बेटा हुआ। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। ढोल-नगाड़े और तुरहियाँ-नफीरियाँ बजाई गईं, खूब नाच-गाना हुआ। तीन दिन और तीन रातों तक दावतें उड़ती रहीं।

मगर खान के आलीशान महल में बहुत अर्से तक यह खुशी न बनी रह सकी। बेटा बीमार हो गया और उसकी बीमारी किसी की भी समझ में न आई। कैसी भी लोरियाँ क्यों न गाई जातीं, मगर उसकी आँख न लगती। कितनी भी बढ़िया खुराक उसे क्यों न गाई जातीं, मगर उसकी आँख न लगती। कितनी भी बढ़िया खुराक उसे क्यों न दी जाती, वह कुछ भी न खाता-पीता। सब समझने लगे कि अब वह कुछ ही दिनों का मेहमान है। न तो विदेशों से बुलाए गए हकीम-वैद्य, न हिंदुस्तानी गंडे-तावीज और न तिब्बती जड़ी-बूटियाँ ही खान के इकलौते बेटे को तंदुरुस्त कर सकीं। बेटे की मौत शायद खान की मौत भी होती।

पड़ोस के गाँव से एक मामूली गरीब आदमी खान के पास आया। उसे तो कोई आदमी भी मानने को तैयार न था। उसने कहा कि वह वारिस को बचा सकता है। खान के अमीर-उमरा ने उसे भगा देना चाहा, मगर खान ने उन्हें ऐसा करने से रोका। 'बेटा तो यों भी मर ही जाएगा,' उसने मन में सोचा, 'इसका इलाज भी आजमाकर देख लेने में क्या हर्ज है?'

'मेरे बेटे की जान बचाने के लिए तुम्हें किस चीज की जरूरत है?'

'मुझे तुम्हारी बीवी से एकांत में कुछ बात करनी होगी।'

'क्या कहा? मेरी बीवी के साथ एकांत में? तुम्हारा दिमाग चल निकला है! दफा हो जाओ मेरी आँखों के सामने से!'

गरीब आदमी मुड़ा और चल दिया। खान ने सोचा, 'बेटा तो यों भी मर ही जाएगा। अगर वह मेरी बीवी से एकांत में बात कर लेगा, तो मेरा इससे क्या बिगड़ जाएगा?'

'ए गरीब आदमी, लौट आओ, हमने अपना ख्याल बदल लिया है। हम तुम्हें अपनी बीवी से बात करने की इजाजत देते हैं।'

गरीब आदमी और खान की बीवी जब अकेले रह गए, तो गरीब आदमी ने पूछा - 'तुम यह चाहती हो कि तुम्हारा बेटा जिंदा और तंदुरुस्त रहे?'

खान की बीवी ने कोई जवाब देने के बजाय उसके सामने घुटने टेक दिए और मिन्नत-समाजत करने लगी।

'तो मुझे यह बता दो कि इसका असली बाप कौन है?'

खान की बीवी ने घबराकर इधर-उधर नजर दौड़ाई।

'डरो नहीं। हमारी बातचीत हमारे साथ ही कब्र में जाएगी। नहीं तो तुम्हारा बेटा जिंदा नहीं रहेगा।'

'खान को बेटे की बड़ी चाह थी। मैं जानती थी कि अगर बेटा पैदा नहीं करूँगी तो मुझे भी उसकी पहली बीवियों की तरह निकाल दिया जाएगा। इसलिए मैं पहाड़ पर गई और वहाँ एक मामूली नौजवान चरवाहे के साथ मैंने रात बिताई। उसके बाद ही खान के वारिस का जन्म हुआ...'

'ओ ऊँचे नामवाले खान,' इस बातचीत के बाद तथाकथित हकीम ने कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम्हारा बेटा कैसे बच सकता है। इसी घड़ी से उसका पालना ऐसे अलाव के पास रखवा देना चाहिए जैसे कि चरवाहे पहाड़ों में जलाते हैं। उसके पालने में भेड़ की खाल बिछाई जाए और उसे ऐसी खुराक दी जाए जैसी कि तुम्हारे चरवाहे खाते हैं।'

'मगर... मगर वे तो भेड़ की मोटी दुम के लहसुनवाले खीनकाल खाते हैं। मेरा यह नन्हा-सा वारिस भला उन्हें कैसे खाएगा...'

गरीब आदमी मुड़ा और चल दिया। 'बेटा तो यों भी मर जाएगा,' खान ने सोचा और तश्तरी में खीनकाल लाने का हुक्म दिया।

खान की बीवी अपने हाथों से उन्हें तैयार करने लगी। उसने उसी तरह खीनकाल तैयार किए जैसे पहाड़ों में बिताई गई रात के पहले, जो उसके जीवन की सबसे प्यारी रात थी, नौजवान चरवाहे के लिए तैयार किए थे। उसने बेटे के सामने वैसे ही लकड़ी की तश्तरी रखी जैसे तब नौजवान चरवाहे के सामने रखी थी।

खीनकाल बड़े-बड़े पत्थरों जैसे बड़े और गोल-गोल थे। भेड़ों की उबली हुई मोटी दुमों से चर्बी चू रही थी। नजदीक ही गागर में पहाड़ी चश्मे का पानी रख दिया गया।

जैसे ही लहसुन और उबली चर्बी की गंध वारिस की नाक में पहुँची, उसने आँखें खोल दीं, उठकर बैठ गया और अचानक दोनों हाथों से सबसे बड़ा खीनकाल उठा लिया। इसी क्षण से पिता की ताकत बेटे की रगों में दौड़ने लगी। वह भूखे बबर की तरह खीनकालों को हड़पने लगा। वह दिनों के बजाय घंटों में बढ़ने लगा और जल्द ही गठा हुआ खूबसूरत जवान बन गया। उसकी बीमारी का तो नाम-निशान ही बाकी न रहा।

शायद ऐसी घटना कभी न घटी हो, मगर मैं एक बात जानता हूँ कि साहित्य जब अपने बाप-दादों की खुराक छोड़कर पराये, बढ़िया विदेशी भोजनों के फेर में पड़ जाता है, जब वह अपनी जनता की परंपराओं और रीति-रिवाजों, भाषा और मिजाज से नाता तोड़ लेता है, उसके साथ विश्वासघात करता है, तो वह बीमार हो जाता है, उसका दम निकलने लगता है और कोई भी दवाई उसे बचा नहीं पाती।

मेरे ख्याल में बस, इन शब्दों के साथ ही मैं अपनी इस किताब को खत्म करूँगा। गर्मी के एक गर्म दिन मैंने इसे शुरू किया था और अब ठिठुरी हुई पतझर है। इसे शुरू किया था एक पहाड़ी गाँव में और खत्म कर रहा हूँ एक बड़े, भीड़-भड़क्केवाले नगर में। पहली पंक्ति तड़के ही लिखी थी, मगर अब आधी रात होनेवाली है और शहर में भी सब बत्तियाँ बुझती जा रही हैं।

मैं लंबे सफर से लौटा हूँ। गाँव के छोर पर मैं घोड़े से नीचे उतर गया हूँ। उसकी लगाम थामकर मैं उसे लंबी और टेढ़ी-मेढ़ी गली में से ले गया हूँ। अब तो यही ठीक होगा कि घोड़े का जीन उतारा जाए, उसकी गर्दन थपथपाई जाए और उसे चरने के लिए खुले मैदान में छोड़ दिया जाए।

मेरे ख्याल में मैं खुद तो आग के पास बैठकर सिगरेट जलाऊँगा और उसके कश लगाऊँगा। कहते हैं कि खुद अल्लाह भी अपनी कोई नसीहत भरी कहानी सुनाने के बाद तंबाकूनोशी करता है। वह सिगरेट जलाता है, कश खींचता है और सोच में डूब जाता है।

आइए हम भी सोंचे। हर मंजिल खुशी बनकर नहीं आती। हर किताब कामयाब नहीं रहती। नई सुबह होने पर नई किताब शुरू करूँगा, नए सफर पर

निकलूँगा।

फिलहाल तो मैं सफर करता-करता थक गया हूँ। अपना बड़ा नमदे का लबादा ओढ़कर मैं सोने जा रहा हूँ। शुभरात्रि, भले लोगो! सलाम-दुआ से ही मैंने इसे शुरू किया था और सलाम-दुआ के साथ ही खत्म करता हूँ। वासलाम, वाकलाम, अमीन!

खंड – दो

दो पुस्तकों के बीच का विराम

छोटी-सी चाबी से बड़ा संदूक खोला जा सकता है - मेरे पिता जी कभी-कभी ऐसा कहा करते थे। अम्माँ तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ सुनाया करती थीं - 'सागर बड़ा है न? हाँ, बड़ा है। कैसे बना सागर? छोटी-सी चिड़िया ने अपनी और भी छोटी चोंच जमीन पर मारी - चश्मा फूट पड़ा। चश्मे से बहुत बड़ा सागर बह निकला।'

अम्माँ मुझसे यह भी कहा करती थीं कि जब काफी देर तक दौड़ लो - तो दम लेना चाहिए, बेशक तब तक, जब तक कि हवा में ऊपर को फेंकी गई टोपी नीचे गिरती है। बैठ जाओ, साँस ले लो।

आम किसान भी यह जानते हैं कि अगर एक खेत में, वह चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, जुताई पूरी कर दी गई है और दूसरे खेत में जुताई शुरू करनी है तो जरूरी है कि इसके पहले मेंड़ पर बैठकर अच्छी तरह से सुस्ता लिया जाए।

दो पुस्तकों के बीच का विराम - क्या ऐसी ही मेंड़ नहीं है? मैं उस पर लेट गया, लोग करीब से गुजरते थे, मेरी ओर देखते और कहते थे - हलवाहा हल चलाते-चलाते थक गया, सो गया।

मेरी यह मेंड़ दो गाँवों के बीच की घाटी या दो घाटियों के बीच टीले पर बसे गाँव के समान थी।

मेरी मेंड़ दागिस्तान और बाकी सारी दुनिया के बीच एक हद की तरह थी। मैं अपनी मेंड़ पर लेटा हुआ था, मगर सो नहीं रहा था।

मैं ऐसे लेटा हुआ था, जैसे पके बालोंवाली बूढ़ी लोमड़ी उस समय लेटी रहती है, जब थोड़ी ही दूरी पर तीतर के बच्चे दाना-दुनका चुग रहे होते हैं। मेरी एक आँख आधी खुली हुई थी और दूसरी आधी बंद थी। मेरा एक कान पंजे पर टिका हुआ था और दूसरे पर मैंने पंजा रख लिया था। इस पंजे को मैं जब-तब जरा ऊपर उठा लेता था और कान लगाकर सुनता था। मेरी पहली पुस्तक लोगों तक पहुँच गई या नहीं? उन्होंने उसे पढ़ लिया या नहीं? वे उसकी चर्चा करते हैं या नहीं? क्या कहते हैं वे उसके बारे में?

गाँव का मुनादी करनेवाला, जो ऊँची छत पर चढ़कर तरह-तरह की घोषणाएँ करता है, उस वक्त तक कोई नई घोषणा नहीं करता, जब तक उसे यह यकीन नहीं हो जाता कि लोगों ने उससे पहलेवाली घोषणा सुन ली है।

गली में से जाता हुआ कोई पहाड़ी आदमी अगर यह देखता है कि किसी घर में से कोई मेहमान नाक-भौंह सिकोड़े, नाराज और झल्लाया हुआ बाहर आता है तो क्या वह उस घर में जाएगा?

मैं पुस्तकों के बीच की मेंड़ पर लेटा हुआ था और यह सुन रहा था कि मेरी पहली पुस्तक के बारे में अलग-अलग लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई है।

यह बात समझ में भी आती है - किसी को सेब अच्छे लगते हैं और किसी को अखरोट। सेब खाते वक्त उसका छिलका उतारा जाता है और अखरोट की गिरियाँ निकालने के लिए उसे तोड़ना पड़ता है। तरबूज और खरबूजे या सरदे में से उनके बीज निकालने पड़ते हैं। इसी तरह विभिन्न पुस्तकों के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण होना चाहिए। अखरोट तोड़ने के लिए खाने की मेज पर काम आनेवाली छुरी नहीं, मुंगरी की जरूरत होती है। इसी तरह कोमल और महकते सेब को छीलने के लिए मुंगरी से काम नहीं लिया जा सकता।

किताब पढ़ते हुए हर पाठक को उसमें कोई न कोई खामी, कोई त्रुटि मिल जाती है। कहते हैं कि खामियाँ-कमियाँ तो मुल्ला की बेटी में भी होती हैं, फिर मेरी किताब की तो बात ही क्या की जाए।

खैर, मैंने थोड़ा-सा दम ले लिया और अब मैं अपनी दूसरी किताब लिखना शुरू करता हूँ। कितने पाठकों के लिए मैं इसे लिखने जा रहा हूँ, मुझे मालूम नहीं। इसकी कितनी प्रतियाँ छपेंगी, इससे तो कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा

सकता। ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी एक-एक लाख प्रतियाँ छपी हैं, मगर उन्हें कोई नहीं पढ़ता, वे किताबों की दुकानों और पुस्तकालयों के ताकों पर या अलमारियों में पड़ी रहती हैं। लेकिन किसी दूसरी किताब की केवल एक ही प्रति होती है और वह लगातार एक पाठक से दूसरे पाठक के हाथ में जाती रहती है और उसे अनेक लोग पढ़ते हैं। मुझे तो न पहली चीज की जरूरत है और न दूसरी की। अगर एक पाठक भी मेरी पुस्तक को पढ़ लेगा तो मुझे खुशी होगी। मैं इस पाठक को अपने छोटे-से, साधारण और गर्वीले देश के बारे में बताना चाहता हूँ। यह बताना चाहता हूँ कि यह देश कहाँ है, इसके निवासी कौन-सी भाषा बोलते हैं, किन बातों की चर्चा करते हैं और कैसे गीत गाते हैं।

मैं सब कुछ तो नहीं बता सकता। बड़े-बूढ़ों ने हमें यह सीख दी थी - 'सभी कुछ तो केवल सभी बता सकते हैं। लेकिन तुम वह बताओ, जो बता सकते हो और तब सभी कुछ बता दिया जाएगा। हर किसी ने अपना घर बनाया और नतीजा यह हुआ कि गाँव बन गया। हर किसी ने अपना खेत जोता और नतीजे के तौर पर सारी पृथ्वी ही जोती गई।'

तो मैं तड़के ही उठ गया। आज मैं पहली हल-रेखा बनाऊँगा। नए खेत में नई हल-रेखा। प्राचीन परंपरा के अनुसार एक ही अक्षर से शुरू होनेवाली सात चीजें मेज पर होनी चाहिए। मैं अपनी मेज पर नजर दौड़ाता हूँ और मुझे सातों चीजें वहाँ दिखाई देती हैं। ये हैं वे चीजें -

1. कोरा कागज।
2. अच्छे ढंग से गढ़ी हुई पेंसिल।
3. माँ का फोटो।
4. देश का नक्शा।
5. दूध के बिना तेज कॉफी।
6. उच्चतम कोटि की दागिस्तानी ब्रांडी।
7. सिगरेटों का पैकेट।

अगर अब भी मैं अपनी किताब नहीं लिख सकूँगा तो कब लिखूँगा?

चूल्हा गर्म हो गया है। उस पर रखी हुई देगची में से भाप निकलने लगी है। बाहर हल्की-हल्की और विरली बूँदा-बाँदी में से सूरज की किरणें छन रही हैं। कहते हैं कि ऐसे दिन पहाड़ों में सभी जानवर रज्जुनटों की तरह सतरंगे इंद्रधनुष

पर नाचते हैं। जब कभी ऐसे दिन आते थे तो अम्माँ कहा करती थीं कि आसमान बारिश के धागों से कढ़ा हुआ है और सूरज की किरणें सुइयाँ हैं।

आज पहाड़ों में वसंत है, वसंत का पहला दिन है। मेरी तरह वह भी आज पहली हल-रेखा बनाना शुरू कर रहा है।

'दागिस्तान के वसंत, यह बताओ कि तुम्हारे पास ऐसे कौन से सात उपहार हैं जो एक ही अक्षर से शुरू होते हों?'

'मेरे पास ऐसे उपहार हैं,' वसंत ने उत्तर दिया, 'दागिस्तान ने ही उन्हें मुझे भेंट किया है। मैं अपनी भाषा में इन उपहारों के नाम लूँगा और तुम उँगलियों पर उन्हें गिनते जाना।

1. त्सा - आग। जिंदगी के लिए। प्यार और नफरत के लिए।

2. त्सार - नाम। इज्जत के लिए। बहादुरी के लिए। किसी को नाम से पुकारने के लिए।

3. त्साम - नमक। जिंदगी के जायके के लिए, जीवन की मर्यादा के लिए।

4. त्स्वा - सितारा। उच्चादर्शों और आशाओं के लिए। उज्ज्वल लक्ष्यों तथा सीधे मार्ग के लिए।

5. त्सूम - उकाब। उदाहरण और आदर्श के लिए।

6. त्स्मूर - घंटी, बड़ा घंटा, ताकि सभी को एक जगह पर एकत्रित किया जा सके।

7. त्सल्कू - छाज, छलनी, ताकि अनाज के अच्छे दानों को निकम्मी और हल्की भूसी-करकट से अलग किया जा सके।'

दागिस्तान! ये सात चीजें - तुम्हारे मजबूत जड़ोंवाले वृक्ष की सात शाखाएँ हैं। इन्हें अपने सभी बेटों को बाँट दो, मुझे भी दे दो। मैं आग और नमक, उकाब और सितारा, घंटा और छाज-छलनी बनना चाहता हूँ। मैं ईमानदार आदमी का नाम पाना चाहता हूँ।

मैं नजर ऊपर उठाकर देखता हूँ और वहाँ मुझे सूरज और बारिश, आग और पानी से बुना हुआ आसमान दिखाई देता है। अम्माँ हमेशा कहा करती थीं कि सपने के समय ही आग और पानी से दागिस्तान बनाया गया था।

आग पिता, पानी माँ

आग के साथ खिलवाड़ नहीं करो
मेरे पिता जी कहा करते थे।
पानी में कंकड़-पत्थर नहीं फेंको
अम्माँ अनुरोध किया करती थीं।

विभिन्न लोगों को उनकी माँ विभिन्न रूपों में याद आती है। मैं अपनी माँ को सुबह, दुपहर और शाम को याद करता हूँ।

सुबह को वह पानी से भरा हुआ घड़ा लेकर चश्मे से लौटती थीं। वह बहुत ही कीमती चीज की तरह उसे लेकर आती थीं। वह पत्थर की सीढ़ियाँ चढ़तीं, घड़े को जमीन पर रख देतीं और चूल्हे में आग जलाने लगतीं। आग भी वह बहुत ही कीमती चीज की तरह जलातीं। वह कभी चिंता तो कभी मुग्ध भाव से उसकी ओर देखतीं। आग के अच्छी तरह से जल जाने तक अम्माँ पालना झुलाती रहतीं। उसे भी किसी बहुत ही कीमती चीज की तरह झुलातीं। दुपहर के वक्त अम्माँ खाली घड़ा लेकर पानी लाने को चश्मे पर जातीं। इसके बाद आग जलातीं, इसके बाद पालना झुलातीं। शाम को अम्माँ घड़े में पानी लातीं, पालना झुलातीं, आग जलातीं।

वह वसंत, गर्मी, पतझर और जाड़े में हर दिन ऐसा ही करतीं। वह धीरे-धीरे, बड़ी गंभीरता से ऐसा करतीं जैसे कि कोई अत्यधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण

काम कर रही हों। वह पानी लाने जातीं, पालना झुलातीं, आग जलातीं। आग जलातीं, पानी लाने जातीं, और पालना झुलातीं। पालना झुलातीं, आग जलातीं, पानी लाने जातीं। मेरे मन में मेरी माँ की स्मृति इसी रूप में अंकित है। पानी लाने के लिए जाते वक्त वह हमेशा मुझसे कहती थीं - 'आग का ध्यान रखना।'

आग की चिंता करते हुए मुझे नसीहत देती थीं - 'इसे बुझने नहीं देना, पानी नहीं गिराना।' मुझे लोरी देते हुए वह यह भी कहा करती थीं - 'दागिस्तान के लिए आग पिता है, पानी माँ है।'

हमारे पर्वत तो सचमुच अश्मीभूत आग जैसे लगते हैं। तो आइए आग की चर्चा करें।

पत्थर से पत्थर टकराओ - निकलेगी उनसे चिनगारी।
दो चट्टानों को टकराओ - निकलेगी उनसे चिनगारी।
करतल से करतल टकराओ - निकलेगी उनसे चिनगारी।
शब्द-शब्द को यदि टकराओ - निकलेगी उनसे चिनगारी।
जुरने के तारों को छेड़ो - निकलेगी उससे चिनगारी।
वादक, गायक की आँखों में झाँको, पाओगे चिनगारी।

मेमने की खाल से सिली हुई पहाड़ी आदमी की टोपी से भी चिनगारियाँ निकलती हैं, खास तौर पर जब उसे हाथ से सहलाया जाता है।

पहाड़ी आदमी समूर की ऐसी टोपी पहने हुए जब अपने घर की छत पर आता है तो पड़ोस के पहाड़ पर बर्फ पिघलने लगती है।

खुद बर्फ में से भी आग की चिनगारियाँ निकलती रहती हैं। पौ फटने के वक्त पहाड़ की चोटी पर खड़े पहाड़ी बकरे के सींग पर भी आग चमकती होती है। सूर्यास्त के समय पहाड़ी चट्टानें भी लाल-लाल आग में पिघलती होती हैं।

पहाड़ी कहावत और पहाड़ी औरत के आँसू में भी आग होती है। बंदूक की नली के सिरे और म्यान से निकाले गए खंजर की धार में भी आग होती है। किंतु सबसे अधिक दयालु और स्नेहपूर्ण आग माँ के हृदय और हर घर के चूल्हे में होती है।

पहाड़ी आदमी जब अपने बारे में कुछ अच्छे शब्द कहना चाहता है या केवल अपनी डींग हाँकना चाहता है तो कहता है - 'मुझे किसी से आग माँगने के लिए तो अब तक जाना नहीं पड़ा।'

पहाड़ी आदमी जब किसी बुरे, किसी अप्रिय व्यक्ति के बारे में कुछ कहना चाहता है तो कहता है - 'उसकी चिमनी से निकलनेवाला धुआँ चूहे की पूँछ से बड़ा नहीं है।'

जब दो पहाड़ी बूढ़ियाँ एक-दूसरे से झगड़ती हैं तो उनमें से एक चिल्लाकर कहती है - 'तुम्हारे चूल्हे में कभी आग न जले।' - 'तुम्हारे चूल्हे में वह आग बुझ जाए जो जल रही है,' दूसरी जवाब देती है।

किसी बहादुर-दिलेर आदमी की चर्चा करते हुए पहाड़ी लोग कहते हैं - 'वह तो आदमी नहीं, आग है।'

एक नौजवान की नीरस और ऊबभरी कविताएँ सुनने के बाद मेरे पिता जी बोले -'इन कविताओं में एक तरह से सब कुछ है। लेकिन ऐसा भी होता है कि घर है, चूल्हा है, लकड़ी है, देगची है और देगची में गोश्त भी है, मगर आग नहीं। घर में ठंडक है, देगची में कुछ उबलता नहीं, गोश्त जायकेदार नहीं। आग नहीं - जिंदगी नहीं! इसलिए तुम्हारी कविताओं को आग की जरूरत हैं!'

शामिल से एक बार पूछा गया - 'इमाम, यह बताओ, भला यह कैसे हुआ कि छोटा-सा और अधभूखा दागिस्तान सदियों तक बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्यों के विरुद्ध जूझता और उनका मुकाबला करता रहा? कैसे वह पूरे तीस सालों तक बहुत ही शक्तिशाली गोरे जार के विरुद्ध संघर्ष करता रहा?'

शामिल ने जवाब दिया - 'अगर दागिस्तान की छाती में प्यार और नफरत की आग न जलती होती तो वह कभी भी ऐसा संघर्ष न कर पाता। इसी आग ने चमत्कार किए और बहादुरी के कारनामे कर दिखाए। यह आग ही दागिस्तान की आत्मा यानी खुद दागिस्तान है।'

'मैं स्वयं भी कौन हूँ,' शामिल कहता गया, 'गीमरी नाम के एक दूरस्थ गाँव के माली का बेटा। दूसरे लोगों के मुकाबले में मैं न तो लंबा और न चौड़ी छातीवाला हूँ। बचपन में मैं तो बहुत कमजोर और दुबला-पतला लड़का था। मुझे देखकर वयस्क लोग अफसोस से सिर हिलाते थे और कहते थे - बहुत दिनों तक जिंदा नहीं रहेगा यह। शुरू में मेरा नाम आली था। जब मैं बीमार रहता तो यह उम्मीद करते हुए कि पुराने नाम के साथ मेरी बीमारी भी खत्म हो जाएगी, मेरा नाम दिलकर शामिल रख दिया गया। मैंने बड़ी दुनिया नहीं देखी थी, बड़े शहरों में मेरा लालन-पालन नहीं हुआ था। मेरे पास ज्यादा धन-दौलत नहीं थी। अपने गाँव के मदरसे में मैंने तालीम हासिल की। मेरे माता-पिता गधे पर गीमरी के आड़ू

लादकर मुझे तेमीरखान-शूरा मंडी में बेचने के लिए भेजते थे। बहुत समय तक मैं गधे को हाँकते हुए पहाड़ी पगडंडियों पर आता-जाता रहा। एक दिन मेरे साथ एक घटना हुई। यह बहुत पुरानी बात है, मगर मैं इसे भूल नहीं सकता और भूलना भी नहीं चाहता। वह इस कारण कि उसी वक्त मेरी हिम्मत, मेरे अंदर आग जागी। उसी वक्त मैं शामिल बना।

'तेमीरखान-शूरा मंडी के नजदीक, एक गाँव के छोर पर मुझे कुछ शरारती लड़के मिले जिन्होंने मेरा मजाक उड़ाना चाहा। एक छोकरे ने मेरे सिर से समूरी टोपी उतारी और उसे लेकर भाग गया। जब तक मैं इस शैतान को पकड़ने के लिए उसके पीछे भागता रहा, इसी बीच दूसरे लड़के मेरे गधे पर से फलों की टोकरियाँ उतारने लगे। मेरी असहाय और रोनी-सी सूरत देखकर वे सभी ठहाके लगाते थे, खूब मजे लेते थे। उनके ये मजाक मुझे अच्छे नहीं लगे और मेरे भीतर वह आग जल उठी जिससे मे अभी तक अनजान था। मैंने हड्डी के सफेद हत्थेवाला खंजर म्यान से बाहर निकाल लिया। उस लड़के को, जो मेरी समूरी टोपी लेकर भागा था, मैंने गाँव के फाटक पर जा पकड़ा। उसे गंदी नाली में गिराकर मैंने उसके गले पर तेज खंजर रख दिया। उसने माफी माँगी।

'तुम आग के साथ खिलवाड़ नहीं करो।'

'इस शरारती छोकरे को गंदी नाली में ही छोड़कर मैंने इधर-उधर नजर दौड़ाई। मेरे आडुओं को जहाँ-तहाँ बिखरानेवाले विभिन्न दिशाओं में भाग गए। तब मैं एक घर की छत पर चढ़कर चिल्लाया -

'अरे, कान खोलकर सुनो! अगर मेरे खंजर की आग से अपने पेट नहीं जलाना चाहते तो सब कुछ वैसे ही कर दो, जैसे था।'

'मजाक करनेवाले इन छोकरों ने मुझे दूसरी बार अपने शब्द दोहराने को मजबूर नहीं किया।

'उसी दिन मैंने बड़े-बूढ़ों को मंडी में यह कहते सुना - 'यह लड़का अभी बहुत कुछ करके दिखाएगा।'

'मैंने अपनी समूरी टोपी को भौहों तक नीचे खींच लिया और अपने अच्छे गधे को हाँकते हुए आगे चल दिया। क्या मैंने शोर-शराबा और लड़ाई-झगड़ा चाहा था? उन्होंने ही मेरे सब्र का प्याला छलका दिया था, मेरे दिल की आग को बाहर आने के लिए मजबूर कर दिया था।

'इसके बाद कई साल बीत गए। एक सुबह को मैं बाग में काम कर रहा था। आस्तीनें चढ़ाकर मैं उपजाऊ मिट्टी को नीचे से ऊपर ले जा रहा था और उसे हर पेड़ के इर्द-गिर्द डाल रहा था। मैं पुरानी समूरी टोपी में मिट्टी भर-भरकर ले जाता था। इस वक्त तक मेरे बदन पर कई घाव हो चुके थे। ये घाव विभिन्न मुठभेड़ों में मेरे जिस्म पर हुए थे। तो दूसरे गाँवों के, बहुत दूर के गाँवों के हमारे पहाड़ी लोग मेरे पास आए और बोले कि मैं अपने घोड़े पर जीन कस लूँ तथा हथियार बाँध लूँ। मैं हथियार बाँधना नहीं चाहता था, मैंने इनकार कर दिया, क्योंकि लड़ाई के मुकाबले में मुझे बागवानी कहीं ज्यादा पसंद थी।

'तब विभिन्न गाँवों से आनेवाले ये पहाड़िये मुझसे बोले -

'शामिल! पराये घोड़े हमारे चश्मों से पानी पीते हैं, पराये लोग हमारे चिराग बुझाते हैं। तुम खुद घोड़े पर सवार होते हो या हम तुम्हारी मदद करें?'

'और मेरे दिल में उसी तरह से आग भड़क उठी, जैसे उस वक्त भड़की थी। जब लड़कों ने मेरे सिर पर से समूरी टोपी उतारकर और आड़ू बिखराकर मेरे दिल को ठेस लगाई थी। उसी तरह, बल्कि उससे भी ज्यादा जोर से मेरे दिल में आग भड़क उठी। मुझे अपने बाग और दुनिया की किसी चीज की सुध-बुध न रही। वह आग, जो पच्चीस सालों से मुझे पहाड़ों में जहाँ-तहाँ ले जा रही है, उसे न तो बारिश, न हवा और न ठंड ही बुझा सकती है। गाँव धू-धू जल रहे हैं, जंगलों से धुआँ उठ रहा है, लड़ाई के वक्त धुएँ में से आग की लपटें चमकती हैं, पूरा काकेशिया ही जल रहा है। तो ऐसी चीज है आग!'

हमारे लोग सुनाते हैं कि पुराने वक्तों में अगर दुश्मन दागिस्तान की सीमा में घुस आते थे तो सबसे ऊँचे पहाड़ पर मीनार जितनी ऊँची आग जला दी जाती थी। इसे देखते ही सभी गाँव अपने अलाव जला लेते थे। यही वह जोरदार पुकार होती थी जो पहाड़ी लोगों को अपने जंगी घोड़ों पर सवार होने को प्रेरित करती थी। हर घर से घुड़सवार रवाना होते थे, हर गाँव से तैयार दस्ते रवाना होते थे। आग के आह्वान पर घुड़सवार और पैदल लोग दुश्मन से लोहा लेने को चल पड़ते थे। जब तक पहाड़ों पर अलाव जलते रहते थे, गाँवों में पीछे रह जानेवाले बूढ़ों, औरतों और बच्चों को यह मालूम होता था कि दुश्मन अभी दागिस्तान की सीमाओं में ही है। अलाव बुझ जाते तो इसका मतलब होता कि खतरा टल गया है और पूर्वजों की धरती पर फिर से शांति का समय आ गया है। सदियों के लंबे इतिहास में पहाड़ी लोगों को बहुत बार पहाड़ों की चोटियों पर लड़ाई का संकेत देनेवाली इस तरह की आग जलानी पड़ी है।

इस तरह की आग लड़ाई का झंडा भी होती थी और उसका आदेश भी। पहाड़ी लोगों के लिए यह आधुनिक तकनीकी साधनों-रडियो, तार और टेलीफोन-का काम देती थी। पहाड़ी ढालों पर अभी भी ऐसी वनहीन जगहें देखी जा सकती हैं, जहाँ ऐसा लगता है मानो विराटकाय भैंसे लेटे हुए हों।

पहाड़ी लोगों का कहना है कि खंजर के लिए सबसे ज्यादा भरोसे की जगह म्यान है, आग के लिए - चूल्हा और मर्द के लिए - घर। लेकिन अगर आग चूल्हे से बाहर आकर पहाड़ों की चोटियों पर भड़कने लगती है तो म्यान में चैन से पड़ा रहनेवाला खंजर खंजर नहीं और घर के चूल्हे के करीब बैठा रहनेवाला मर्द-मर्द नहीं।

दागिस्तान के चरवाहों के कर्तव्य बड़ी कड़ाई से विभाजित होते हैं। कुछ चरवाहे दिन को भेड़ें चराते हैं, दूसरे रात के वक्त उनकी जगह ड्यूटी ले लेते हैं और भेड़ों के रेवड़ों की भेड़ियों से रक्षा करते हैं। किंतु उनके बीच एक ऐसा भी आदमी होता है जो न तो भेड़ों और न भेड़ियों से उन्हें बचाने की ही चिंता करता है। उसका काम आग की रक्षा करना, उसे जलाए रखना, उसे बुझने न देना होता है। उसे अग्नि-रक्षक, आग को जलाए रखनेवाला कहा जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं होगा कि किसी एक आदमी को विशेष रूप से यही काम सौंप दिया जाता है, कि यह आदमी सिर्फ आग की ही रक्षा करता है। किंतु रात होने से पहले चरवाहे अवश्य ही एक ऐसे आदमी को चुन लेते हैं और उसे आग की चिंता करने का काम सौंप देते हैं।

यह बहुत जरूरी और मुश्किल काम है! खाना पकाना, गर्माहट पाना, गीले कपड़ों को सुखाना, प्रकाश, अच्छी बातचीत तथा पुरुषों की गंभीर बातचीत के समय अत्यधिक आवश्यक धूम्रपान को जारी रख सकना - यह सभी कुछ आग पर निर्भर करता है।

चरवाहों के झोपड़ों में चूल्हे नहीं होते। आग बाहर जलती रहती है और उसके लिए खास दौड़-धूप तथा चिंता की आवश्यकता होती है। हथेलियों, समूरी टोपी, लबादे के पल्ले से आग को बुरे मौसम-बारिश, बर्फ और बर्फ के तूफान से बचाना पड़ता है।

क्या बहादुरों, कवियों, गीतकारों, कथाकारों, नर्तकों और संगीतज्ञों-स्वरकारों को अग्नि-रक्षक कहना ठीक नहीं होगा? हमारे यहाँ बहुत-से ऐसे लोग हैं, जिनके

दिलों में कविता, समर्पण और मातृभूमि के प्रति प्यार की शाश्वत आग जलती है, जो उसे सहेजते हैं और दूसरे लोगों तक पहुँचाते हैं।

मैं भी अपने हृदय में इस शाश्वत आग को अनुभव करता हूँ। मैं भी इसे अपना कर्तव्य मानता हूँ कि इस चिनगारी को बुझने न दूँ। इसे और अधिक तेज होने और ज्यादा रोशनी और गर्माहट देने के लिए मजबूर करना मेरा फर्ज है ताकि मेरे पीछे-पीछे आनेवाला व्यक्ति इस मशाल को मेरे हाथ से लेकर इसे आगे ले जाए।

अपने दिल में आग को उसी तरह से सहेजना चाहिए, जैसे हम बाहर की आम आग से अपने को सहेजते और बचाते हैं।

किसी जश्न के मौके पर गाँव में गानेके बाद हमेशा हँसी-मजाक होता है, संगीत और नाच के बाद-बातचीत होती है। समारोही शब्दों में अग्नि का गुणगान करने के बाद लोग यह सुनाते हैं कि कैसे हमारे दागिस्तान में हिम-मानव की खोज की गई।

मैं खुद उस बहुत बड़े तमाशे का साक्षी रहा हूँ, जो हिम-मानव की खोज करने के लिए हमारे यहाँ आनेवाले कुछ वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं के समय पहाड़ी लोगों ने देखा था।

अवार जाति के लोगों ने उनसे कहा - 'आप दारगीनों के यहाँ जाएँ, शायद वह, जिसे आप खोज रहे हैं, उनके यहाँ रहता हो।'

दारगीनों ने उन्हें लाक्तियों के यहाँ भेज दिया, लाक्तियों ने लेज्गीनों के यहाँ, लेज्गीनों ने कुमिकों के यहाँ, कुमिकों ने स्तेपी में रहनेवाले नोगाइयों के यहाँ, नोगाइयों ने ताबासारान्त्सियों के यहाँ। ये वैज्ञानिक कार्यकर्ता सारे दागिस्तान में भटकते रहे। बुरी तरह से थक-हारकर वे किकूनी गाँव में आकर ठहरे, जहाँ हमारा महाबली ओसमान अब्दुर्रहमानोव रहता है। मुमकिन है कि इन पंक्तियों को पढ़नेवाले कुछ लोगों ने ओसमान को 'खजानों का द्वीप' फिल्म में देखा हो। वहाँ वह तीन आदमियों को एक साथ ही पकड़कर जहाज के डेक से सागर में फेंक देता है।

कुछ ऐसा हुआ कि इन वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की कार किकूरी गाँव के नजदीक एक छोटी-सी नदी में फँस गई। वैज्ञानिक उसे आगे-पीछे धकेलते रहे, मगर कार को नदी से निकाल नहीं पाए।

इस वक्त ओसमान अपने घर की छत पर बैठा था। उसने देखा कि कैसे असहाय लोग परेशान होते हुए कार के आस-पास कुछ कर रहे हैं। वह नीचे

उतरा और महाबली की धीमी-धीमी चाल से उनके करीब गया। उसने उस तिलचट्टे की तरह, जो चर्बी पुते मिट्टी के प्याले से बाहर निकलने में असमर्थ हो, कार को ऊपर उठाया और तट पर ले जाकर रख दिया।

वैज्ञानिक आपस में खुसर-फुसर और कानाफूसी करने लगे कि कहीं हिम-मानव ही तो उनकी मदद को नहीं आया है? लेकिन ओसमान उनकी बातचीत समझ गया और बोला -

'व्यर्थ ही आप लोग उसे यहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हैं। हम पहाड़ी लोग हिम के नहीं, बल्कि आग के बने हुए हैं। अगर मेरे भीतर आग न होती तो आपकी कार को मैं कीचड़ में से कैसे बाहर निकाल ले जाता?'

इसके बाद उसने बड़े इतमीनान से सिगरेट लपेटी, चैन से चकमक निकाला, उससे चिनगारी पैदा करके सिगरेट जलाई और मुँह से धुएँ का बादल निकाला। तब धुएँ के साथ ओसमान की चौड़ी छाती से बादल की गड़गड़ाहट जैसा ठहाका गूँज उठा। पहाड़ों में चट्टान के टूटकर गिरने पर ऐसी आवाज होती है, पत्थरों को लुढ़काता हुआ पानी ऐसा शोर पैदा करता है, पहाड़ों को झकझोरता हुआ भूकंप ऐसी गरज उत्पन्न करता है।

इस किस्से को सुनकर अबूतालिब ने इतना और कह दिया - 'व्यर्थ के ऐसे कामों में उलझनेवाले लोगों की कारें कीचड़ में फँसे बिना नहीं रह सकतीं।'

मैं रोशनियों के त्योहार (दीवाली) के अवसर पर भारत गया था। कितनी अच्छी बात है कि लोगों के यहाँ ऐसे पर्व-त्योहार भी हैं! मुझे वहाँ जलता हुआ दीपक भेंट किया गया और मैं उसे अपने पहाड़ी क्षेत्र के प्रति दूरस्थ देश के अभिवादन के रूप में अपने साथ ले आया। रूसी तथा हमारी कई अन्य भाषाओं में हम अक्सर कहते हैं - 'दहकता अभिवादन! उनका दहकता हुआ अभिवादन करें!' शायद कभी ऐसा भी वक्त रहा हो जब अभिवादन को शब्द के रूप में अभिव्यक्त करने के बजाय अग्नि, ज्वाला या मशाल भेजी जाती हो। शांतिपूर्ण ज्वाला। भस्म करनेवाली आग और लड़ाई की ज्वाला नहीं, बल्कि चूल्हे की आग, गर्माहट और प्रकाश की आग।

हमारे यहाँ एक परंपरा है - जाड़े के पहले दिन की शाम को (कभी-कभी वसंत के पहले दिन की शाम को भी) पहाड़ी गाँवों में चट्टानों पर अभिवादन करनेवाले अलाव जलाए जाते हैं। हर गाँव एक अलाव जलाता है। ये अलाव दूर तक दिखाई देते हैं। खड्डों, खाइयों और चट्टानों के बीच से गाँव एक-दूसरे को जाड़े या

वसंत के आगमन की बधाई देते हैं। अग्निरूपी अभिवादन, अग्निरूपी शुभकामनाएँ भेजते हैं! खुद मैंने भी हमारे त्सादा गाँव के ऊपर खड़ी खामीरखो चट्टान पर अनेक बार ऐसा अलाव जलाया है।

यह संयोग की बात नहीं कि दागिस्तान के पहले कारखाने को 'दागिस्तान के दीपक' नाम दिया गया था। अब अलावों के अतिरिक्त अनेक अन्य नए प्रकाश-स्रोत सामने आ गए हैं। बिजली के खंभों पर पक्षी वैसे ही साधारण ढंग से बैठते हैं, जैसे वृक्षों पर। चट्टानों के ऊपर जलती बिजली की रोशनियों से कबूतर जरा नहीं डरते हैं।

एक बार मैंने कास्पी सागर को जलते देखा। पूरे एक हफ्ते तक लहरें उसे बुझा नहीं पाई। यह इज्बेरबाश नगर के करीब की बात है। आखिर जब आग बुझने लगी और धीरे-धीरे बुझ गई तो उसने डूबते हुए जहाज की याद ताजा कर दी।

सागर की आग बुझ सकती है, मगर दागिस्तान के दिल में दहकती आग कभी नहीं बुझ सकती। क्या आदमी के दिल में दहकती आग पानी से डरती है? वह तो पानी को ढूँढ़ती है, पानी माँगती है। भीतर की आग से सूखने, फटने, दहकने और जलनेवाले होंठ क्या यह नहीं फुसफुसाते - 'पानी, पानी!'

इसका मतलब यह है कि पानी और आग के बीच चोली और दामन का साथ है।

मेरी माँ कहा करती थीं कि चूल्हा घर का दिल है और चश्मा गाँव का दिल है।

पहाड़ों को आग चाहिए और घाटियों को पानी। दागिस्तान - वहाँ तो पहाड़ भी हैं और घाटियाँ भी, उसे आग भी चाहिए और पानी भी।

अगर कोई आदमी सफर के लिए रवाना होते वक्त या लौटते समय गाँव के छोर पर एक दर्पण की तरह चश्मे में झाँक लेता है तो इसका अर्थ होता है कि इस व्यक्ति के हृदय में प्यार है, आग है। पहाड़ी लोग ऐसा मानते हैं।

किंतु क्या सारा दागिस्तान ही कास्पी सागर के उजले दर्पण में अपने आपको नहीं देखता है? क्या वह अभी-अभी पानी में से बाहर आनेवाले सुघड़-सुडौल और उत्साही तरुण जैसा नहीं है?

मेरा दागिस्तान कास्पी सागर के ऊपर ऐसे झुका हुआ है जैसे पहाड़ी आदमी चश्मे के ऊपर। वह अपनी पोशाक ठीक-ठाक करता है, मूँछों पर ताव देता है।

पहाड़ी लोग एक बद्दुआ यह देते हैं - 'जो आदमी चश्मे को गंदा करता है, उसका घोड़ा मर जाए।' एक अन्य शाप यह है - 'तुम्हारे घर के आस-पास सारे चश्मे सूख जाएँ।' प्रशंसा करते हुए पहाड़िए कहते हैं, - 'शायद इस गाँव के वासी अच्छे हैं - यहाँ चश्मा और कब्रिस्तान अच्छी हालत में हैं, साफ-सुथरे हैं।'

हमारे यहाँ वीरगति को प्राप्त हुए लोगों के सम्मान में अनेक चश्मे और कुएँ खोदे गए हैं, उन्हें तो उनके नाम भी दिए गए हैं - अली का चश्मा, ओमार का चश्मा, हाजी-मुरात का कुआँ, महमूद का चश्मा।

युवतियाँ जब कंधों पर घड़े रखकर चश्मों की ओर जाती हैं तो युवक भी उन्हें देखने और अपने लिए दुलहन चुनने की खातिर यहाँ आते हैं। न जाने कितनी प्रेम-भावनाएँ जागी हैं इन चश्मों के पास, न जाने कितने भावी परिवारों के प्रणय और संबंध-सूत्र यहाँ बने हैं।

नहीं तुम्हें मालूम कि किसके बारे में यह गीत रचा?

चश्मे पर आकर खुद देखो, कौन गीत में छिपा हुआ।

हमारे शायर महमूद ने ऐसा लिखा है।

एक बार पर्वत की ओर जाते हुए मैं गोत्साल्ल गाँव के चश्मे के करीब रुका। मैंने क्या देखा कि एक राहगीर चश्मे पर झुका हुआ चुल्लू भर-भरकर निर्मल जल पी रहा है और कहता जा रहा है -

'ओह, मजा आ गया!'

'मग ले लीजिए,' मैंने प्रस्ताव किया।

'मैं दस्ताने पहनकर खाना नहीं खाता हूँ,' राहगीर ने जवाब दिया।

पिता जी को यह कहना अच्छा लगता था - बारिश तथा नदी के शोर से अधिक मधुर और कोई संगीत नहीं होता। बहते पानी की कल-छल सुनते और उसे देखते हुए कभी मन नहीं भरता।

वसंत में जब पहाड़ों में बर्फ पिघलने लगती थी तो मेरी अम्माँ घाटी में तेजी से बहती आनेवाली जल-धाराओं को घंटों तक देखती रह सकती थीं। वह तो जाड़े में ही लकड़ी के पीपे तैयार करने लगती थीं, ताकि गर्मियों में उन्हें परनालों के नीचे रखकर बारिश का पानी जमा कर सकें।

मेरा सबसे प्यारा शौक तो बारिश के पानी से भरे डबरों में नंगे पाँव छपछप करते फिरना था। बारिश से जरा भी डरे बिना हम जल-धाराओं को रोकनेवाले

बाँध खड़े करते थे और इस तरह छोटे-छोटे ताल बनाते थे।

मैं कल्पना कर सकता हूँ कि परिंदे जब पथरीले प्यालों से बारिश का पानी पीते हैं तो उन्हें कैसा आनंद प्राप्त होता होगा!

शामिल अपने सूरमाओं से कहा करता था - 'कोई बात नहीं कि दुश्मन ने हमारे सारे गाँव, हमारे सारे खेतों पर कब्जा कर लिया। लेकिन चश्मा तो अभी हमारे पास है, हम जीतेंगे।'

दुश्मनों का हमला होने पर कठोर इमाम शामिल सबसे पहले तो गाँव के चश्मे की रखवाली करने का हुक्म देता था। जब खुद दुश्मनों पर हमला करता था तो सबसे पहले गाँव के चश्मे पर कब्जा करने का आदेश देता था।

पुराने वक्तों में अगर कोई आदमी अपने जानी दुश्मन को नदी में नहाते देखता था तो उसके पानी से बाहर आ जाने और अपने हथियार बाँध लेने से पहले वह कभी उस पर वार नहीं करता था।

किंतु अक्सर ही मुझे एक अत्यधिक शांतिपूर्ण प्रथा की याद आती है और वह भी पानी से ही संबंध रखती है। इसे 'नन्हा बारिशी गधा' कहा जाता था।

'दागिस्तानी घाटी की जलती दोपहरी में'(लेर्मोंतोव की एक कविता की पहली पंक्ति) - यह यों ही नहीं लिखा गया है। दुपहर की गर्मी हमारे यहाँ बड़ी भयानक और सब कुछ सुखा देनेवाली होती है। गर्मी से धरती फट जाती है, चट्टानों से धधकती हुई भट्ठी की तरह गर्म हवा के लहरे आते हैं। वृक्षों की शाखाएँ झुक जाती हैं, खेत सूख जाते हैं, सभी कुछ - पेड़-पौधे, पक्षी, भेड़ें और निश्चय ही लोग भी आसमान के पानी यानी बारिश के लिए तरसते हैं। उस समय गाँव के किसी छोकरे को पकड़कर धूप में मुरझाई तरह-तरह की घासों की पोशाक पहनाकर रेड इंडियन-सा बना देते हैं। यही है 'नन्हा बारिशी गधा'। उस बालक के समान दूसरे बालक उसे रस्सी बाँधकर गाँव में घुमाते हैं और यह भजन या प्रार्थना-गीत गाते हैं -

'अल्ला, अल्ला, जल्दी से बारिश भेजो
आसमान से धरती तक पानी कर दो!
परनालों में बारिश, जल का शोर मचे
पानी बरसाओ, हर कोई यही कहे।
बादल और घटाओ, नभ में छा जाओ

पानी की नदियाँ बन धरती पर आओ!
प्यारी, प्यारी सारी धरती धुल जाए
खेतों में फिर से हरियाली छा जाए!'

गाँव के बालिग लोग बाहर गली में आ जाते हैं, 'नन्हे बारिशी गधे' पर घड़े या चिलमची से पानी डालते हैं और बच्चों के उक्त गीत को दोहराते हुए 'आमीन! आमीन!' कहते हैं।

एक बार मैं भी 'नन्हा बारिशी गधा' बना। मुझ पर इतना पानी उड़ेला गया जो सचमुच आधी बारिश के लिए काफी होता।

किंतु अल्ला या आसमान हमारे ऐसे गानों को बहुत कम ही सुनते थे। सूरज आग बरसाता रहता था। वह मारे दागिस्तान पर मानो गर्म इस्तरी फेरता रहता था। वह दुख-कष्ट देता था। हम उसे दुखदायी सूरज ही कहते थे। सैकड़ों, हजारों सालों तक धरती दुखदायी सूरज की आग के नीचे झुलसती रही। अगर यूरोप को ध्यान में रखा जाए तो सबसे ज्यादा धूपवाले दिन दागिस्तान के गुनीब गाँव के ही हिस्से आते हैं। मेरा त्सादा गाँव भी उससे कुछ पीछे नहीं है। बाकी गाँवों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। व्यर्थ ही तो इन्हें 'पानी के प्यासे' नहीं कहा जाता।

मुझे अम्माँ का थका हुआ चेहरा याद आता है, जब वह पानी से भरा घड़ा पीठ पर लादे और गागर हाथ में लिये हुए लौटती थीं। पानी हमारे गाँव से तीन किलोमीटर दूर था।

मुझे अम्माँ का खुशी से खिला हुआ चेहरा याद आता है, जब बारिश होती थी, धरती भीग जाती थी और परनालों के नीचे रखे पीपों में पानी गिरता था, वे पानी से भर जाते थे और उनके किनारों से पानी छलककर नीचे गिरने लगता था।

मुझे याद आती है अपने गाँव की बूढ़ी, झुकी पीठवाली हबीबात की। हर सुबह को कंधे पर फावड़ा रखकर वह गाँव की सीमा से परे जाती और जहाँ-तहाँ जमीन खोदने लगती। उसके दिमाग में पानी ढूँढ़ने की सनक थी और वह लगातार उसे खोजती रहती थी।

सभी यह जानते थे कि वह व्यर्थ ही कोशिश करती है, लेकिन कोई भी उससे कभी कुछ नहीं कहता था। सिर्फ मैंने, नादान छोकरे ने ही एक बार उससे कहा -

'मौसी हबीबात, आप बेकार ही मेहनत करती रहती हैं, यहाँ पानी नहीं है।'

इस बात को लेकर मेरे पिता जी मुझ पर बहुत बिगड़ उठे।

'लेकिन वहाँ तो पानी है ही नहीं।'

'ऐसा भी होता है कि लोगों के पास रोटी नहीं होती। लेकिन क्या उन पर हँसा जाए? मेरे बेटे, इस बात को याद कर लो कि गरीबी और उन लोगों की कभी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिए जो पानी खोजते हैं।'

'किंतु आपने तो स्वयं ही इस बारे में एक विनोदपूर्ण कविता रखी थी कि कैसे इन्क्वाचूलीनियों ने इस उद्देश्य से पुल को लंबा करने की कोशिश की थी कि उन्हें ज्यादा पानी मिल सके।'

'इस मजाक में तो आँसू मिले हुए हैं। जवान लोग इसे नहीं समझ सकते। तुम अभी यह नहीं जानते कि दागिस्तान के लिए पानी का क्या महत्व है। तुम सोचो कि मौसी हबीबात के मन में कितनी तीव्र इच्छा होगी कि वह उस जगह पानी ढूँढ़ रही है जहाँ वह नहीं है। लेकिन खैर, अब यही अच्छा होगा कि तुम चुप रहो - बारिश आ रही है।'

इस समय वास्तव में ही हल्की-हल्की, सरसराती फुहार पड़ने लगी थी।

- किसलिए खामोश हो तुम भोर से ही पक्षियो?
- हो रही बारिश, उसे हम सुन रहे!
- किसलिए खामोश हो तुम शायरो, कवियो सभी?
- हो रही बारिश, उसे हम सुन रहे!

पिता जी हमेशा यह कहा करते थे कि उनके जीवन में सबसे अधिक खुशी का दिन वह था, जब दूरस्थ पर्वत से पाइपों में बहता पानी उनके गाँव में आया। इसके पहले पिता जी हर दिन कुदाल लेकर अन्य सभी लोगों के साथ पानी का नल बनाने के लिए काम करते रहते थे। हमारे गाँव में पानी आने का यह दिन मुझे बहुत अच्छी तरह से याद है। जब पानी बहने लगा तो पिता जी ने उसमें फूल तक डालने से मना कर दिया।

गाँववालों ने सौ वर्षीया एक बुढ़िया को पानी का पहला घड़ा भरने के लिए चुना। बुढ़िया ने घड़ा भर लिया और उसमें से पानी का पहला मग भरकर वह उसे मेरे पिता जी के पास ले गई।

तमगों और पदकों से सम्मानित पिता जी ने कहा कि इतना कीमती पुरस्कार उनहें पहले कभी नहीं मिला था। उसी दिन उन्होंने पानी के बारे में एक कविता रची। इस कविता में उन्होंने पक्षियों को संबोधित करते हुए कहा कि वे अब

अपनी डींग नहीं हाँकें, कि उनकी तुलना में अब हम भी कुछ बुरा पानी नहीं पीते हैं। उन्होंने कहा कि किसी शादी और किसी भी जश्न के मौके पर उन्होंने पानी की कल-कल से ज्यादा मधुर और प्यारा संगीत नहीं सुना। उन्होंने विश्वास दिलाया कि कदम-कदम चलनेवाला कोई घोड़ा या कोई जवान घोड़ी अब पानी लाने के लिए जानेवाली औरत की चाल से मुकाबला नहीं कर सकती। उन्होंने कुदाल और फावड़े तथा नल को धन्यवाद दिया। उन्होंने उस समय की याद दिलाई, जब पानी जमा करने के लिए चूल्हों के करीब बर्फ पिघलाई जाती थी। तब हर दिन पानी से भरे भारी घड़े लाने के कारण हमारी पहाड़ी औरतों की वक्त से पहले ही कमर झुक जाती थी। हाँ, पिता जी के लिए यह महान दिन था!

मुझे मखाचकला में जुलाई की भयानक गर्मी भी याद आ रही है। पिता जी सख्त बीमार थे, डाक्टरों और दवाइयों से घिरे रहते थे। वह बोले - 'मुझे बहुत तकलीफ हो रही है। दसियों चिमटियाँ और संडसियाँ मेरे बदन को विभिन्न दिशाओं में खींच रही हैं।'

वह यह मानते हुए कि दवाइयाँ पीने के मामले में बहुत देर हो चुकी है और उनसे कोई फायदा नहीं होगा, अब उन्हें नहीं पीते थे। वह तो तकिया ठीक करने में भी कोई तुक न देखते हुए उसे भी ठीक नहीं करने देते थे। जब उनकी तबीयत बहुत ही ज्यादा खराब हो गई तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाकर कहा -

'एक ऐसी दवाई है जिसे पीने से मेरी तबीयत बेहतर हो जाएगी।'

'कौन-सी?'

'बुत्सराब खड्ड में एक छोटा-सा कुआँ है... एक चश्मा है... मैंने ही उसे ढूँढ़ा था... वहाँ से एक घूँट पानी मँगवा दो...'

अगले दिन एक पहाड़ी औरत उस चश्मे से पानी ले आई। पिजा जी ने आँखें मूँदकर उसे छककर पिया।

'शुक्रिया, मेरे डाक्टर।'

हमने उनसे यह नहीं पूछा कि उन्होंने किसे डाक्टर कहा था - पानी को, पानी लानेवाली पहाड़ी औरत को, दूर खड्ड के चश्मे या उस चश्मे को जन्म देनेवाली अपनी सारी मातृभूमि को।

अम्माँ मुझसे कहा करती थीं - हर किसी का वांछित स्रोत होना चाहिए। वह यह भी कहा करती थीं कि अगर खेत के करीब ठंडे पानी का चश्मा बहता हो तो फसल काटनेवाली औरत कभी नहीं थकेगी।

एक किस्सा आज तक सुनने को मिलता है कि जवानी के दिनों में ही शामिल और उसके उस्ताद काजी - मुहम्मद गीमरी खड्ड की एक बुर्जी में दुश्मनों से घिर गए थे। शामिल दुश्मनों की संगीनों के बीच बुर्जी से नीचे कूद गया और उसने खंजर चलाते हुए अपने निकल जाने का रास्ता बना लिया। तब उसके बदन पर उन्नीस घाव हुए थे, फिर भी वह बच निकला था, पहाड़ों में भाग गया था। पहाड़ी लोगों का ख्याल था कि वह मर गया। जब वह गाँव में लौटा तो उसकी माँ ने, जो मातमी पोशाक पहन चुकी थी, हैरान और खुश होते हुए पूछा -

'शामिल, मेरे बेटे, तुम जिंदा कैसे बच गए?'

'ऊपर पहाड़ों में मुझे एक चश्मा मिला था,' शामिल ने जवाब दिया।

और जब पहाड़ी लोगों ने यह सुना कि उनका इमाम, उनका बूढ़ा शामिल अरबी रेगिस्तान में ऊँट से गिरकर मर गया तो अपने गाँवों में घरों की दहलीजों पर बैठे हुए उन्होंने कहा -

'अफसोस, पास में कोई दागिस्तानी चश्मा नहीं था।'

नूहा में मैं हाजी-मुरात की कब्र पर हो आया हूँ, मैंने कब्र पर लगे पत्थर और उस पर लिखे हुए ये शब्द भी पढ़े हैं - 'यहाँ दागिस्तान का शेर बबर दफन है।' मैंने इस शेर बबर का कटा हुआ सिर भी देखा है।

'अरे सिर, तुम बदन से अलग कैसे हो गए?'

'दागिस्तान, अपनी मातृभूमि, अपने चश्मे का रास्ता भूल गया था, भटक गया था।'

मेरा गाँव पहाड़ के दामन में बसा हुआ है। उसके सामने समतल पठार है, जहाँ काफी दूरी पर खूँजह दुर्ग नजर आता है। दुर्ग के सभी ओर खासी दूरी पर बसे गाँव उसे घेरे हुए हैं। सभी दिशाओं में दुर्ग से गोलियाँ चलाने के लिए उसमें बनाए गए छेद नजर आते हैं - दुर्ग धमकाता-डराता, आगे बढ़ने से रोकता और सब कुछ देखता प्रतीत होता है। दुर्ग के छेदों में से चैन न जानने और किसी के सामने न झुकनेवाले पहाड़ी लोगों पर अक्सर गोलियाँ चली हैं। मेरे त्सादा गाँव के कबूतर इस दुर्ग की गोलियों की आवाज के कारण बहुत बार डरकर उड़े हैं और गाँव के ऊपर चक्कर काटते रहे हैं। 'किसकी सबसे खतरनाक नजर और ऊँची आवाज है?' पहाड़ी लोग पूछा करते थे। 'खूँजह दुर्ग की।'

किंतु मेरे जमाने में खूँजह दुर्ग की रौद्रता केवल किस्से-कहानियों में रह गई है। गोलियाँ चलाने के लिए बनाए गए उसके छेदों में से हम स्कूल के छात्र एक-दूसरे

पर सेबों के टुकड़े या बर्फ के गोले फेंका करते थे अथवा बिगुल बजाया करते थे और ऐसा करते हुए हम भी इर्द-गिर्द की चट्टानों से कबूतरों को उड़ने के लिए विवश कर दिया करते थे। हाँ, खूँजह दुर्ग को स्कूल बना दिया गया था जहाँ मैंने सात साल तक तालीम हासिल की।

अब मैं कहीं भी क्यों न जाऊँ, किसी भी जगह पर क्यों न होऊँ, सिंफोनी की जोरदार गूँज और नाच की धुनों में मुझे अपने बचपन का मधुर संगीत सुनाई देता है, स्कूल की घंटी की प्यारी टनटन सुनाई देती है, खास तौर पर उस घंटी की सुखद आवाज जो पाठों की समाप्ति की सूचना देती थी। मैं अब भी उसे सुन रहा हूँ और वह मुझे दालान या गली की ओर नहीं, बल्कि, इसके विपरीत, स्कूल की ओर, कक्षा और छात्रावास की ओर बुलाती है।

हमारी कक्षा में हम तीस छात्र थे। महीने में एक बार हममें से हर किसी को पढ़ाई से मुक्त कर दिया जाता था और उसे पानी लाने का काम करना पड़ता था। सजा के रूप में दो दिन तक भी यह ड्यूटी बजारी पड़ सकती थी। वैसे मैं तो किसी अपराध के दंड के बिना भी हमेशा लगातार दो दिन तक पानी लाता था। वह इसलिए कि मेरा एवजी अब्दुलगफूर युसूपोव उसकी बारी आने पर हमेशा ही बीमार हो जाता था। मुझे याद आ रहा है कि हमेशा हर महीने की सातवीं-आठवीं तारीखों को ही मेरी बारी आती थी।

पानी का चश्मा दुर्ग से बाहर था। वहाँ जाना तो आसान होता था - सबसे पहले तो इसलिए कि बाल्टी खाली होती थी, दूसरे इसलिए कि पगडंडी सीधी नीचे जाती थी। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि लौटते वक्त सब कुछ बेहद बदल जाता था। इसके अलावा एक तंग-सी गली में एल्युमीनियम के मग हाथों में लिए छात्रों की भीड़ मेरा इंतजार करती होती थी। वे पानी पीना चाहते थे। वे मेरी बाल्टी पर टूट पड़ते थे, आधा पानी पी जाते थे, आधा छलका देते थे - उनसे बचना आसान नहीं होता था। लेकिन मेरे लिए स्कूल तक पानी पहुँचाना जरूरी होता था।

इस चश्मे के बारे में बहुत से किस्से-कहानियाँ हैं। उनमें से एक हिस्सा मैं यहाँ उस रूप में दे रहा हूँ जिस रूप में मेरे पिता जी ने सुनाया था।

इस दुर्ग की दीवारें गोलियों के निशानों से छलनी हुई पड़ी हैं। इसकी बुर्जियों पर कई बार झंडे बदले हैं। गृहयुद्ध के दिनों में इस दुर्ग पर रह-रहकर कब्जा बदलता रहा था - कभी सफेद गार्ड तो कभी लाल सैनिक इस पर अधिकार कर

लेते थे। छापेमारों ने छह महीनों तक इस दुर्ग की शत्रुओं से रक्षा की। किंतु हर दिन दो घंटों के लिए गोलाबारी बंद कर दी जाती थी। इन दो घंटों के दौरान दुर्ग-रक्षकों की पत्नियाँ पानी लाने के लिए दुर्ग से बाहर जाती थीं। एक दिन कर्नल अलीखानोव ने कर्नल जफारोव से कहा -

'आओ, हम औरतों को चश्मे पर जाने से रोक दें। अतायेव के दस्ते को प्यास से मरने दिया जाए।'

कर्नल जफारोव ने जवाब दिया -

'अगर हम पानी लाने के लिए जानेवाली औरतों पर गोलियाँ चलाएँगे तो सारा दागिस्तान हमसे मुँह फेर लेगा।'

तो इस तरह जब तक औरतें चश्मे से पानी लेकर वापस नहीं चली जाती थीं, दोनों पक्ष किसी समझौते के बिना शांति बनाए रहते थे।

जब मेरी अम्माँ को, जो उस वक्त बीमार थीं, यह बताया गया कि उनके बेटे को लेनिन पुरस्कार दिया गया है तो उन्होंने आह भरी और बोलीं - 'अच्छी खबर है। किंतु मुझे यह सुनकर ज्यादा खुशी होती कि मेरे बेटे ने किसी गरीब आदमी या यतीम की मदद की है। मैं तो यही चाहती हूँ कि वह पानी के लिए तरस रहे किसी गाँव में पानी पहुँचाने की खातिर यह रकम दे दे। लोग उसकी तारीफ करेंगे। उसके पिता जी को जब पुरस्कार मिला था तो उन्होंने उसकी सारी रकम नए चश्मों की तलाश के लिए दे दी थी। जहाँ चश्मा है, वहाँ पगडंडी है, जहाँ पगडंडी है, वहाँ रास्ता है। और रास्ते की सभी लोगों को, हर किसी को जरूरत है। रास्ते के बिना आदमी अपना घर नहीं ढूँढ़ पाएगा, किसी खड्ड-खाईं में लुढ़क जाएगा।'

मेरे पिता जी हमेशा दोहराया करते थे कि मेरा उस साल में जन्म हुआ था, जब दागिस्तान में पहली नहर खोदी गई थी। उसे सुलाक से मखाचकला तक बनाया गया था। 'पानी नहीं, जिंदगी नहीं' - प्लाईवुड की तख्ती पर लिखा हुआ यह नारा नहर खोदनेवाले अपने साथ लेकर आए थे।

पानी! लीजिए, अब चट्टानों से पानी बहता है मानो किसी का शक्तिशाली हाथ उन्हें निचोड़ रहा हो। लीजिए, जल-धाराएँ बड़ी तेजी से पर्वत से नीचे बहती हैं, पत्थरों के बीच से छलाँगें लगाती हैं, चट्टानों से नीचे कूदती हैं, जख्मी दरिंदे की तरह दर्रों में गरजती-दहाड़ती हैं और हरी-भरी घाटियों में मेमने की तरह उछलती-कूदती हैं।

मेरे दागिस्तान के गिर्द चार रुपहली पेटियाँ बँधी हुई हैं, चार कोइसू नदियाँ उसके गिर्द बहती हैं। सुलाक और सामूर नगर सगी बहनों की तरह उनका स्वागत करते हैं। इसके बाद ये सभी - दागिस्तान की नदियाँ - सागर की गोद में चली जाती हैं।

आग और पानी - जनगण का भाग्य हैं, आग और पानी - दागिस्तान के माता-पिता हैं, आग और पानी - वे खुरजियाँ हैं जिनमें हमारी सारी दौलत जमा है।

हमारे दागिस्तान में बुजुर्ग और एकाकी लोगों के पास युवक-युवतियाँ आते हैं, ताकि घर-गिरस्ती के काम-काज में उनकी कुछ मदद कर दें। सबसे पहले वे क्या करते हैं? आग जलाने के लिए लकड़ी चीरते हैं और घड़ों में पानी लाते हैं। काले कौवे न जाने यह कैसे अनुभव कर लेते हैं कि किस पहाड़ी घर में आग बुझ गई है। वे फौरन उड़कर वहाँ जा बैठते हैं और काँय-काँय करने लगते हैं।

आग और पानी - ये दो हस्ताक्षर, दो प्रतीक हैं जो दागिस्तान की रचना के समझौते के नीचे अंकित हैं।

दागिस्तान की आधी लोक-कथाएँ उस दिलेर नौजवान के बारे में हैं जो अजगर की हत्या करके आग लाता है ताकि गाँव में गर्माहट और रोशनी हो।

दागिस्तान की लोक-कथाओं का दूसरा भाग - उस समझदार लड़की के संबंध में है जो चालाकी से अजगर को सुलाकर पानी लाती है ताकि गाँव के लोग जी भरकर पानी पी सकें और खेत सींचे जा सकें।

साहसी नौजवान और समझदार युवती द्वारा मारा गया अजगर पर्वत और कत्थई रंग के पर्वत-श्रृंगों में बदल गया।

दाग का अर्थ है पर्वत और स्तान का अर्थ है देश। दागिस्तान का मतलब है पर्वत का देश, पर्वत-देश, पहाड़ी मुल्क, गर्वीला देश - दागिस्तान।

हिज्जे जोड़-जोड़कर जैसे
पढ़ता है बालक,
उसी तरह से मैं दोहराऊँ
कभी न कहता थक पाऊँ -
दागिस्तान, दागिस्तान!
कौन और क्या? दागिस्तान।

किसके बारे में मैं गाऊँ, केवल उसके बारे में।
और सुनाऊँ यह मैं किसको? उसको, दागिस्तान को।

हमारे छोटे-से जनगण को इस हेतु कि उसके पास हमेशा आग और पानी हो, अनेक अजगरों को जीतना पड़ा। नदियाँ अब प्रकाश देती हैं, पानी आग का रूप लेता है। अनादिकाल के ये दो प्रतीक अब एक में बदल गए हैं।

चूल्हा और चश्मा - पहाड़ी लोगों के लिए ये दो शब्द सबसे प्यारे हैं। दिलेर आदमी के बारे में कहा जाता है - 'वह आदमी नहीं, आग है।' गुणहीन, नालायक आदमी के बारे में कहा जाता है - 'बुझा हुआ दीपक है।' बुरे आदमी के संबंध में कहा जाता है - 'वह उनमें से है जो चश्मे या स्रोत में थूक सकते हैं।'

मदिरा से भरा हुआ जाम हाथ में लेकर हम भी यही कहेंगे -

चूल्हा, चश्मा - दो अनादि आधारों का
जो गुणगान करें, हो उनकी कीर्ति अमर
अधिक बढ़े यश उनका, चैली एक जला दें जो केवल
और फावड़ा खोद सके जिनका निर्झर।

एक बुजुर्ग पहाड़ी आदमी ने जवान पहाड़िये से पूछा -

'तुमने अपनी जिंदगी में आग देखी है, कभी उसमें से गुजरे हो?'

'मैं उसमें ऐसे कूदा था जैसे पानी में।'

'बर्फ जैसे ठंडे पानी से कभी तुम्हारा वास्ता पड़ा है, कभी उसमें कूदे हो?'

'जैसे आग में।'

'तब तुम बालिग हो चुके पहाड़ी आदमी हो। अपने घोड़े पर जीन कसो, मैं तुम्हें पहाड़ों में ले चलता हूँ।'

दो पहाड़ी आदमियों के बीच झगड़ा हो जाने पर एक ने दूसरे से कहा –

'क्या मेरे घर की छत के ऊपर तुम्हारे घर की छत की तुलना में कम घना धुआँ है? क्या मैं कभी किसी से पानी माँगने गया हूँ? अगर तुम ऐसा समझते हो तो आओ, उस पहाड़ी के पीछे चलें और मामला तय कर लें।'

दरवाजों पर मैंने यह लिखा देखा है - 'चूल्हे में आग जल रही है, मेहमान भीतर आने की मेहरबानी करें।' बड़े अफसोस की बात है कि दागिस्तान में ऐसे फाटक

नहीं हैं जिन पर ये शब्द लिखे जा सकें - 'चूल्हे में आग जल रही है, मेहमान भीतर आने की मेहरबानी करें।'

आग तो सचमुच जल रही है। केवल कहने के लिए, सुंदर शब्दाडंबर के रूप में ही आपको आने की दावत नहीं दी जा रही है - शरमाइए नहीं, भीतर आइए, चूल्हे में आग जल रही है और चश्मों में निर्मल जल है, स्वागत है आपका!

घर

अवार भाषा के 'रीग' शब्द के दो भिन्न अर्थ हैं - 'उम्र' और 'घर'। मेरे लिए ये दोनों अर्थ एक में ही घुल-मिल जाते हैं। उम्र - घर। उम्र हो गई तो अपना घर भी होना चाहिए। अगर अवार भाषा की इस कहावत का उच्चारण किया जाए (हमारे यहाँ एक ऐसी कहावत है) तो ऐसा शब्द-खिलवाड़ सामने आता है जिसका अनुवाद संभव नहीं - 'रीग - रीग', उम्र - घर।

तो ऐसा माना जा सकता है कि दागिस्तान बहुत पहले ही बालिग हो चुका है और इसलिए इस दुनिया में उसका यथोचित और ठोस स्थान है।

मैं अक्सर अम्माँ से पूछा करता था -

'दागिस्तान कहाँ है?'

'तुम्हारे पालने में,' मेरी समझदार अम्माँ जवाब देतीं।

'तुम्हारा दागिस्तान कहाँ है?' आंदी गाँव के एक व्यक्ति से किसी ने पूछा।

उसने चकराते हुए अपने इर्द-गिर्द देखा।

यह टीला - दागिस्तान है, यह घास - दागिस्तान है, यह नदी - दागिस्तान है, पर्वत पर पड़ी हुई बर्फ - दागिस्तान है, सिर के ऊपर बादल, क्या यह दागिस्तान नहीं है? तब सिर के ऊपर सूरज भी क्या दागिस्तान नहीं है?

'मेरा दागिस्तान हर जगह है!' आंदी गाँव के वासी ने उत्तर दिया।

गृह-युद्ध के बाद, 1921 में हमारे गाँव तबाहहाल थे, लोग भूखे रहते थे और नहीं जानते थे कि आगे क्या होगा। उसी वक्त तो पहाड़ी लोगों का एक प्रतिनिधिमंडल लेनिन से मिलने गया। लेनिन के कमरे में जाकर दागिस्तान के ये प्रतिनिधि कुछ भी कहे बिना दुनिया का एक बहुत बड़ा नक्शा खोलने लगे।

'यह नक्शा आप किसलिए लाए हैं?' लेनिन ने हैरान होते हुए पूछा।

'आपको अनेक जनगण की बहुत-सी चिंताएँ हैं, आप यह याद नहीं रख सकते कि कौन लोग कहाँ रहते हैं। इसलिए हम आपको यह दिखाना चाहते हैं कि दागिस्तान कहाँ पर है।'

लेकिन हमारे पहाड़ी लोग चाहे कितना ही क्यों न खोजते रहे, अपने क्षेत्र को ढूँढ़ नहीं पाए, बड़े नक्शे के गड़बड़-झाले में फँस गए, अपने छोटे से देश को खो बैठे। तब लेनिन ने किसी तरह की खोज-तलाश किए बिना फौरन ही पहाड़ी लोगों को वह दिखा दिया जो वह ढूँढ़ रहे थे।

'यही तो है आपका दागिस्तान,' और वह चहकते हुए हँस पड़े।

'इसे कहते हैं दिमाग,' हमारे पहाड़ियों ने सोचा और लेनिन को बताया कि उनके पास आने के पहले वे जन-कमिसार के यहाँ गए थे और वह लगातार उनसे यही बताने को कहता रहा था कि दागिस्तान कहाँ है। जन-कमिसार के सहकर्मी तरह-तरह के अनुमान-अटकलें लगाते रहे थे। एक ने कहा कि वह कहीं जार्जिया में है, दूसरे ने कहा कि तुर्किस्तान में। एक सहकर्मी ने तो यह दावा भी किया कि वह दागिस्तान में ही बसमाचियों से लोहा लेता रहा है।

लेनिन तो और भी ज्यादा जोर से हँस पड़े -

'कहाँ, कहाँ, तुर्किस्तान में? बहुत खूब। यह तो कमाल ही हो गया।'

लेनिन ने उसी वक्त टेलीफोन का रिसीवर हाथ में लिया और उस जन-कमिसार को यह स्पष्ट किया कि तुर्किस्तान कहाँ है, दागिस्तान कहाँ है, बसमाची और म्युरीद कहाँ हैं।

क्रेमलिन में लेनिन के कमरे में अभी तक काकेशिया का बहुत बड़ा नक्शा लटका हुआ है।

अब दागिस्तान - एक जनतंत्र है। वह छोटा है या बड़ा, इस चीज का कोई महत्व नहीं। वह वैसा ही है, जैसा होना चाहिए। हमारे सोवियत देश में तो शायद अब कोई यह नहीं कहेगा कि दागिस्तान तुर्किस्तान में है, लेकिन दूर-दराज के

किसी देश में तो मुझे स्पष्टीकरण देनेवाली इस तरह की बातचीत अवश्य करनी पड़ती है -

'आप कहाँ से हमारे यहाँ आए हैं?'

'दागिस्तान से।'

'दागिस्तान... दागिस्तान... यह कहाँ है?'

'काकेशिया में।'

'पूरब में या पश्चिम में?'

'कास्पी सागर के तट पर।'

'अच्छा, बाकू?'

'अजी बाकू नहीं। कुछ उत्तर की तरफ।'

'आपकी सीमाएँ किससे मिलती हैं?'

'रूस, जार्जिया और आजरबाइजान से...'

'लेकिन क्या वहाँ पर चेर्केस नहीं रहते? हमने तो सोचा था कि वहाँ चेर्केस रहते हैं।'

'चेर्केस तो चेर्केसिया में रहते हैं और दागिस्तान में दागिस्तानी रहते हैं। तोलस्तोय... हाजी-मुरात... तोलस्तोय की यह रचना पढ़ी है? बेस्तूजेव-मारलीन्स्की ...या फिर लेर्मोंतोव : 'दागिस्तानी घाटी की जलती दोपहरी में' पढ़ी है?'

'क्या यह वहीं है जहाँ एलब्रूस है?'

'एलब्रूस तो काबारदीनो-बल्कारिया में है, कज्बेक - जार्जिया में और हमारे यहाँ ...गुनीब गाँव है, त्सादा गाँव है।'

दूर-दराज के किसी देश में मुझे कभी-कभी यह सब कहना पड़ता है। यह तो सभी जानते हैं कि पुत्र-वधू को इशारे से कोई बात समझाने के लिए बिल्ली को डाँटा-डपटा जाता है। शायद हमारे देश में भी कोई ऐसा छिछला आदमी मिल जाए जो अभी तक ऐसा सोचता है कि दागिस्तान में चेर्केस रहते हैं या शायद ऐसा कहना और ज्यादा सही होगा कि वह कुछ भी न सोचता हो।

मुझे बहुत दूर के देशों में जाने का मौका मिला है, मैंने विभिन्न सम्मेलनों, कांग्रेसों और परिगोष्ठियों में भाग लिया है।

विभिन्न महाद्वीपों - एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमरीका और आस्ट्रेलिया से लोग जमा होते हैं। वहाँ, जहाँ सभी चीजों की महाद्वीपों के स्तर पर चर्चा की जाती है, मैं तो वहाँ भी यही कहता हूँ कि मैं दागिस्तान से आया हूँ।

'आप एशिया या यूरोप के प्रतिनिधि हैं, यह स्पष्ट करने की कृपा कीजिए,' मुझसे अनुरोध किया जाता है। 'आपका दागिस्तान किस महाद्वीप में है?'

'मेरा एक पाँव एशिया में है और दूसरा यूरोप में। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो मर्द एक साथ घोड़े की गर्दन पर अपने हाथ रख देते हैं - एक मर्द एक तरफ से और दूसरा दूसरी तरफ से। ठीक इसी तरह से दागिस्तान के पहाड़ों की चोटी पर दो महाद्वीपों ने एक साथ अपने हाथ रख दिए हैं। मेरी धरती पर उनके हाथ मिल गए हैं और मुझे इस बात की बड़ी खुशी है।'

परिंदे और नदियाँ, पहाड़ी बकरे और लोमड़ियाँ तथा बाकी सब जानवर भी एक साथ यूरोप और एशिया के हैं। मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने यूरोप और एशिया की एकता की समिति बनाई है। अपनी कविताओं के साथ मैं बड़ी खुशी से ऐसी समिति का सदस्य बनने को तैयार हूँ।

फिर भी कुछ लोग मानो मेरा मुँह चिढ़ाते हुए जान-बूझकर ही मुझसे यह कहते हैं - 'तुमसे कोई कहे भी तो क्या - तुम एशियाई ठहरे।' या इसके विपरीत, एशिया के किसी दूरस्थ स्थान पर मुझसे ऐसा कहा जाता है - 'तुमसे कोई दूसरी उम्मीद ही क्या की जा सकती है - तुम यूरोपीय आदमी जो हो।' मैं न तो पहले और न दूसरे लोगों की बात का खंडन करता हूँ। दोनों ही सही हैं।

जब कभी मैं किसी औरत के प्रति अपनी प्रेम-भावना प्रकट करने लगता हूँ तो वह संदेहपूर्वक अपना सिर हिलाकर कहती है -

'ओह, यह चालाकी और मक्कारी से भरा पूरब!'

जब कभी मेरे यहाँ दागिस्तानी मेहमान आते हैं, मेरी गतिविधि में उन्हें कोई अजीब बात दिखाई देती है तो वे अपने सिर हिलाते हैं और कह उठते हैं -

'ओह, ये यूरोपीय अंदाज!'

हाँ, दागिस्तान पूरब को प्यार करता है, मगर पश्चिम भी उसके लिए पराया नहीं है। वह तो उस पेड़ की तरह है जिसकी जड़ें एक साथ दो महाद्वीपों की धरती में हैं।

क्यूबा में मैंने फिडेल कास्त्रो को दागिस्तानी लबादा भेंट किया।

'इसमें बटन क्यों नहीं है?' फिडेल कास्त्रो ने हैरान होते हुए पूछा।

'इसलिए कि जरूरत होने पर इसे झटपट कंधे से उतार फेंका जाए और हाथ में तलवार ली जा सके।'

'असली छापेमारों की पोशाक है,' छापेमार फिडेल कास्त्रो ने सहमति प्रकट की।

दूसरे देशों के साथ दागिस्तान की तुलना करने में कोई तुक नहीं है। वह जैसा है, वैसा ही अच्छा है। उसकी छत से पानी नहीं चूता है, उसकी दीवारें टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हैं, दरवाजे चरमर नहीं करते हैं, खिड़कियों से तेज हवा नहीं आती है। पहाड़ों में जगह तंग है, मगर दिल बड़े हैं।

'तुम्हारा कहना है कि मेरी धरती छोटी और तुम्हारी बड़ी है?' आंडी गाँव के एक वासी ने किसी आदमी से चुनौती के अंदाज में कहा। 'तो आओ, इस चीज का मुकाबला करें कि हम किसकी धरती का जल्दी से पैदल चक्कर लगाते हैं, तुम मेरी धरती का और मैं तुम्हारी का? मैं भी देखूँगा कि कैसे तुम हमारी पहाड़ी चोटियों पर चढ़ोगे, चौपायों की तरह हाथों-पैरों के बल कैसे चट्टानों पर ऊपर जाओगे, हमारे खड्डों में कैसे रेंगोगे, हमारी खोहो-खाइयों में कैसे कलाबाजियाँ करोगे।'

मैं दागिस्तान की सबसे ऊँची पहाड़ी चोटी पर चढ़ जाता हूँ और वहाँ से सभी ओर नजर दौड़ाता हूँ। दूर-दूर तक रास्ते दिखाई देते हैं, दूर-दूर तक रोशनियाँ झिलमिलाती नजर आती हैं और अधिक दूरी पर कहीं घंटियाँ बजती सुनाई देती हैं, धरती नीले-नीले धुएँ की चादर में लिपटी हुई है। अपने पैरों के नीचे अपनी मातृभूमि को अनुभव करते हुए मेरे लिए दुनिया पर नजर दौड़ाना अच्छा है।

आदमी जब इस दुनिया में जन्म लेता है तो वह अपनी मातृभूमि चुनता नहीं - जो भी मिल जाती है, सो मिल जाती है। मुझसे भी किसी ने यह नहीं पूछा कि मैं दागिस्तानी बनना चाहता हूँ या नहीं। बहुत संभव है कि अगर मैं दुनिया के किसी दूसरे भाग में जनम लेता, मेरे दूसरे ही माता-पिता होते तो मेरे लिए उस धरती से ज्यादा प्यारी और कोई धरती न होती, जहाँ मैं पैदा हुआ होता। मुझसे इसके बारे में पूछा नहीं गया। लेकिन अगर अब पूछा जाता है तो मैं क्या उत्तर दूँ?

दूरी पर मुझे पंदूरा बजता सुनाई दे रहा है। धुन जानी-पहचानी है, शब्द भी जाने-पहचाने हैं।

नद-नाले तो सदा तड़पते, सागर से मिल जाएँ
नद-नालों के बिना चैन पर, सागर भी कब पाएँ?
दो हाथों में दिल को ले लें, ऐसा तो है मुमकिन
किंतु समा लें दिल में दुनिया, यह तो है नामुमकिन।
और देश दुनिया के अच्छे, सभी देश हैं सुंदर
प्यारा दागिस्तान मुझे है, वह ही अंकित दिल पर।

पंदूरा बजाकर गानेवाला नहीं, बल्कि अपने मुँह से खुद दागिस्तान यह कहता है -

मुझे देखकर जो भी नाक चढ़ाए
अच्छा है, वह वापस घर जाए।

हमारे यहाँ एक पुरानी परंपरा है - जाड़े की लंबी रातों में नौजवान लोग किसी बड़े घर में जमा होते हैं और तरह-तरह के खेल खेलते हैं। मिसाल के तौर पर किसी लड़के को कुर्सी पर बिठा दिया जाता है। उसके गिर्द एक लड़की चक्कर काटती हुई कुछ गाती है। लड़के को भी गाने में ही उसके सवालों का जवाब देना होता है। इसके बाद लड़की को कुर्सी पर बिठा दिया जाता है और लड़का उसके गिर्द चक्कर काटता हुआ गाता है। ये गाने पूरी तरह से रूसी भाषा में प्रचलित चतुष्पदियों जैसे तो नहीं होते, लेकिन उनमें कुछ समानता जरूर होती है। इस तरह जवान लोगों के बीच एक प्रकार का वार्तालाप होने लगता है। तीखे-चुभते शब्द के जवाब में और भी अधिक तीखा-चुभता शब्द कहा जाना चाहिए, नपे-तुले सवाल का नपा-तुला जवाब होना चाहिए। इस प्रतियोगिता में जो भी जीत जाता है, उसे सींग से बनाया गया जाम शराब से भरकर दिया जाता है।

इस तरह के खेल हमारे घर की पहली मंजिल पर भी खेले जाते थे। मैं तब छोटा था, खेलों में हिस्सा नहीं लेता था, इन बेंतबाजी को सिर्फ सुना करता था। मुझे याद है कि चूल्हे के करीब फेनिल सुरा और घर में बनाई गई तली हुई सासेजें रखी रहती थीं। कमरे के बीचोंबीच तीन टाँगोंवाली कुर्सी रख दी जाती थी। लड़के और लड़कियाँ बारी-बारी से इस कुर्सी पर बैठते रहते थे। गानों के वार्तालापों में उनके बीच तरह-तरह की बातें होती रहती थीं, किंतु वार्तालाप का अंतिम भाग दागिस्तान को समर्पित होता था। ऐसे प्रश्नों का कमरे में उपस्थित सभी लोग मिलकर जवाब देते थे।

'तुम कहाँ हो, दागिस्तान?'

'ऊँची चट्टान पर, कोइसू नदी के तट पर।'

'तुम क्या कर रहे हो, दागिस्तान?'

'मूँछों पर ताव दे रहा हूँ।'

'तुम कहाँ हो दागिस्तान?'

'घाटी में मुझको ढूँढ़ो।'

'तुम क्या कर रहे हो, दागिस्तान?'

'जौ की बालों का पूला बनकर खड़ा हूँ।'

'तुम कौन हो, दागिस्तान?'

'मैं - खंजर पर चढ़ाया गया गोश्त हूँ।'

'तुम कौन हो, दागिस्तान?'

'खंजर, जो अपने फल पर गोश्त को चढ़ाए है।'

'तुम कौन हो, दागिस्तान?'

'नदी से पानी पीनेवाला हिरन।'

'तुम कौन हो, दागिस्तान?'

'हिरन को पानी पिलानेवाली नदी।'

'तुम कैसे हो, दागिस्तान?'

'मैं छोटा-सा हूँ, मुट्ठी में समा सकता हूँ।'

'तुम किधर चल दिए, दागिस्तान?'

'अपने लिए कुछ बड़ा ढूँढ़ने को।'

तो युवक-युवतियाँ एक-दूसरे को जवाब देते हुए ऐसे गाते थे। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी सारी किताबों में इसी तरह के सवाल-जवाब हैं। सिर्फ कुर्सी पर बैठी हुई वह लड़की नहीं है जिसके गिर्द मैं चक्कर काटता रहता। खुद ही सवाल करता हूँ, खुद ही जवाब देता हूँ। अगर कोई बढ़िया जवाब सूझ जाता है तो कोई भी मुझे शराब से भरा हुआ सींग पेश नहीं करता है।

'तुम कहाँ हो, दागिस्तान?'

वहाँ जहाँ मेरे सभी पहाड़ी लोग हैं।'

'तुम्हारे पहाड़ी लोग कहाँ हैं?'

'ओह, अब वे कहाँ नहीं हैं!'

'दुनिया - बहुत बड़ी तश्तरी है और तुम छोटा-सा चम्मच। क्या इतनी बड़ी तश्तरी के लिए वह बहुत ही छोटा नहीं है?'

मेरी अम्माँ कहा करती थीं कि छोटा मुँह भी बड़ा शब्द कह सकता है।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि छोटा-सा पेड़ भी बड़े बाग की शोभा बढ़ाता है।

शामिल भी कहा करता था कि छोटी-सी गोली बड़े जहाज में छेद कर देती है। अपनी कविताओं में तुमने तो खुद ही यह कहा है कि छोटे से दिल में विराट संसार और बहुत बड़ा प्यार समा जाता है।

'जाम उठाते हुए तुम हमेशा यह क्यों कहते हो - 'नेकी के लिए!'

'क्योंकि खुद नेकी की तलाश में हूँ।'

'तुम पत्थरों और चट्टानों पर क्यों घर बनाते हो?'

'इसलिए कि नर्म धरती पर तरस आता है। वहाँ मैं थोड़ा-सा अनाज उगाता हूँ। मैं तो समतल छतों पर भी अनाज उगाता हूँ। चट्टानों पर मिट्टी ले जाता हूँ और वहाँ अपना अनाज उगाता हूँ। ऐसा ही है मेरा अनाज।'

दागिस्तान के तीन खजाने

हमारे पहाड़ी लोग - चिर पथिक हैं। उनमें से कुछ धन-दौलत के लिए यात्रा पर जाते हैं, दूसरे नाम कमाने के लिए और तीसरे सचाई की खोज में।

और लीजिए, वे, जो धन-दौलत कमाने के लिए गए थे, उसे प्राप्त करके वापस आ गए और अब अपनी यात्रा के फलों से आनंदित हो रहे हैं।

और ये रहे वे, जो नाम कमाने के लिए गए थे, उन्होंने मशहूरी हासिल कर ली और अब यह समझते हुए जिंदगी बिता रहे हैं कि इसकी दो कौड़ी भी कीमत नहीं और व्यर्थ ही इसके लिए इतनी दौड़-धूप की।

किंतु जो सचाई की खोज में निकले थे, उनका रास्ता सबसे लंबा और अंतहीन रहा। सचाई की खोज करनेवाले ने अपने भाग्य को शाश्वत मार्ग को समर्पित कर दिया।

कोई पहाड़ी आदमी जब कहीं जाता है तो वह अपने गधे को अवश्य ही अपने साथ ले जाता है। इस दयालु जानवर की पीठ पर हमेशा तीन चीजें लदी दिखाई देती हैं - किसी चीज से भरी हुई बड़ी बोरी, उसके करीब ही खाल का बना शराब का छोटा-सा थैला और उसके पास ही गगरी।

सैकड़ों साल से पहाड़ी आदमी यात्रा कर रहा है, एक गाँव से दूसरे गाँव और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाता है। उसके आगे-आगे अनिवार्य रूप से उसका गधा चलता है और गधे की पीठ पर बोरी, खल का बना शराब का छोटा-सा थैला और गगरी होती है।

एक समृद्ध प्रदेश में पहाड़ी आदमी के गधे से कहीं दूर हट जाने पर अच्छे खाते-पीते निकम्मे लोगों ने बेचारे जानवर को तंग करना शुरू कर दिया। वह उसके बदन पर नुकीले डंडे और काँटे चुभोने लगे तथा उसे दुलत्ती चलाने को मजबूर करने लगे। इन बेहूदा लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि गधा उनके द्वारा चुभोए जानेवाले इन काँटों के कारण उछलता-कूदता है।

पहाड़ी आदमी ने देखा कि उसके वफादार दोस्त यानी गधे की खिल्ली उड़ाई जा रही है और उसने खंजर निकाल लिया।

'पहाड़ी आदमी को चिढ़ाने के बजाय तुम किसी भालू को चिढ़ाते तो तुम्हारे लिए यह ज्यादा अच्छा होता,' उसने कहा।

लेकिन ये जवान काहिल लोग डर गए, उन्होंने माफी माँगी, तरह-तरह के मीठे शब्द कहे और इस प्रकार पहाड़ी आदमी को खंजर म्यान में रखने को राजी कर लिया। जब शांतिपूर्ण बातचीत शुरू हुई तो जवान लोगों ने पूछा -

'तुम्हारे गधे पर यह क्या बँधा हुआ है? तुम इसे हमें बेच दो।'

'तुम लोगों के पास इसे खरीदने के लिए न तो सोना और न चाँदी ही काफी होगी।'

'तुम अपनी कीमत बताओ और फिर देखा जाएगा।'

'इसकी कोई कीमत नहीं हो सकती।'

'तुम्हारी बोरियों में ऐसा क्या है जिसकी कोई कीमत ही नहीं हो सकती?'

'मेरा वतन, मेरा दागिस्तान।'

'गधे की पीठ पर वतन लदा हुआ है!' जवान लोग ठठाकर हँस पड़े। 'तो जरा दिखाओ तो अपना वतन!'

पहाड़ी आदमी ने बोरी खोली और लोगों को उसमें आम मिट्टी दिखाई दी।

लेकिन यह आम मिट्टी नहीं थी। उसमें तीन-चौथाई कंकड़-पत्थर थे।

'बस, यही है इसमें? यही तुम्हारा खजाना है?'

'हाँ, यह मेरे पहाड़ों की मिट्टी है। यह मेरे पिता जी की पहली प्रार्थना है, मेरी माँ का पहला आँसू है, मेरी पहली कसम है, मेरे दादा द्वारा छोड़ी गई अंतिम चीज है, वह आखिरी चीज है जो मैं अपने पोते के लिए छोड़ दूँगा।'

'और यह दूसरी क्या चीज है?'

'पहले तो मुझे अपनी बोरी बाँध लेने दो।'

बोरी बाँधकर और उसे गधे की पीठ पर टिकाकर पहाड़ी आदमी ने गगरी का ढक्कन उतारा। सभी लोगों ने देखा कि उसमें मामूली पानी है। इतना ही नहीं, यह पानी तो कुछ-कुछ नमकीन भी था।

'तुम ऐसा पानी अपने साथ लिए घूमते हो जिसे पीना भी संभव नहीं!'

'यह कास्पी सागर का पानी है। कास्पी सागर में एक दर्पण की तरह दागिस्तान प्रतिबिंबित होता है।'

'और खाल के इस थैले में क्या है?'

'दागिस्तान के तीन हिस्से हैं : पहला - धरती, दूसरा - सागर और तीसरा - बाकी सब कुछ।'

'मतलब यह कि खाल के इस थैले में बाकी सब कुछ है?'

'हाँ, सब कुछ है।'

'किसलिए तुम यह बोझ अपने साथ लिए फिरते हो?'

'इसलिए कि मेरी मातृभूमि, मेरा वतन हमेशा मेरे साथ रहे। अगर कहीं रास्ते में ही मुझे मौत आ जाए तो मेरी कब्र पर यह मिट्टी डाल दी जाए और कब्र के ऊपर लगाए जानेवाले पत्थर को सागर के पानी से धो दिया जाए।'

पहाड़ी आदमी ने अपने वतन की चुटकी भर मिट्टी ली, उसे उँगलियों से मला और फिर उँगलियों को सागर के पानी से धो दिया।

'किसलिए तुमने ऐसा किया है?'

'इसलिए कि जिन हाथों का निकम्मे और काहिल लोगों के हाथों से स्पर्श हुआ हो, उन्हें इसी तरह से धोना चाहिए।'

पहाड़ी आदमी आगे चल दिया। उसका सफर अभी भी जारी है।

इस तरह दागिस्तान के तीन खजाने हैं - पर्वत, सागर और बाकी सब कुछ।

पहाड़ी लोगों के तीन ही गीत हैं। प्रार्थना करनेवालों की तीन ही प्रार्थनाएँ हैं। पथिक के तीन ही उद्देश्य हैं - धन-दौलत, मशहूरी और सचाई।

बचपन में अम्माँ मुझसे कहा करती थीं - दागिस्तान - यह एक पक्षी है और उसके पंखों में तीन बहुमूल्य रोएँ हैं।

पिता जी कहा करते थे - तीन कारीगरों ने तीन मूल्यवान वस्तुओं से हमारा दागिस्तान बनाया है।

किंतु वास्तव में तो जिन चीजों और पदार्थों से दागिस्तान की रचना हुई है, उनकी संख्या कहीं अधिक है। एक कटु अनुभव के आधार पर मुझे इसका विश्वास हुआ।

कोई पच्चीस साल पहले मुझे दागिस्तान के बारे में एक पटकथा लिखने को कहा गया और मैंने उसे लिखा। उसपर विचार-विमर्श होने लगा। उस वक्त बहुत-से लोगों ने अपने विचार प्रकट किए।

कुछ ने कहा कि फूलों की चर्चा नहीं की गई है, दूसरों ने आपत्ति की कि मधुमक्खियों का उल्लेख नहीं हुआ, कुछ अन्य ने मत प्रकट किया कि पेड़ों का जिक्र नहीं है। हर वक्ता ने किसी न किसी चीज की कमी का जिक्र किया। यह कहा गया कि अतीत पर कम रोशनी डाली गई है तो यह भी कहा गया कि वर्तमान पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया। आखिर बात यहाँ आकर खत्म हुई कि पटकथा में गधे तथा गधी को जगह नहीं दी गई और इनके बिना दागिस्तान की कल्पना ही कैसे की जा सकती है।

अगर फिल्म में वह सब कुछ दिखाया जाता जिसकी उस वक्त चर्चा की गई थी तो फिल्म की शूटिंग अब तक जारी रही होती।

फिर भी दागिस्तान के तीन ही भाग हैं - पर्वत (धरती), सागर (कास्पी) और अन्य सभी कुछ।

हाँ, धरती का मतलब है - पर्वत, खड्ड, पहाड़ी पगडंडियाँ और चट्टानें। फिर भी यह हमारी मातृभूमि है, हमारे पूर्वजों के खून-पसीने से सींची हुई। यह कहना कठिन है कि यहाँ पसीना ज्यादा बहा है या खून। लंबे युद्ध, छोटी-छोटी लड़ाइयाँ-मुठभेड़ें और खून का खून से बदला लेने की प्रथा... पहाड़ी लोगों की बगल में केवल सुंदरता के लिए ही सदियों तक खंजर नहीं लटकता रहा है।

एक लोक-गीत में ऐसा कहा गया है -

> अन्न जहाँ पर तीन किलो पैदा होता
> दसियों वीरों का उस भू पर खून बहा,
> पंद्रह किलो उगाया जाए अन्य जहाँ
> वहाँ सैकड़ों ही वीरों का अंत हुआ।

मेरे पिता जी ने हमारी धरती के बारे में यह लिखा था -

> बहुत बड़ी संख्या में मुर्दे दफन यहाँ
> मरे हुओं से मारे गए कही ज्यादा।

भूगोल की पाठ्यपुस्तक में सूचना देनेवाला यह आँकड़ा छपा हुआ है कि हमारी धरती का एक-तिहाई भाग बंजर चट्टानों का है।

मैंने भी इसके बारे में यह लिखा है -

> धूमिल-धुँधली वहाँ घाटियाँ
> पेड़ सींग से फलों बिना,
> उँट पीठ से ऊँचे पर्वत
> झरझर झरने बहें जहाँ,
>
> मानो शेर दहाड़ रहे हों
> गरजें यों पर्वत-नदियाँ,
> जल-प्रपात मानो अयाल-से
> विहग-नयन-से स्रोत वहाँ,
>
> खड़ी हुई चट्टानों से ज्यों
> पथ निकले पाषाणों से
> और गीत गूँजे टीले से
> छू ले दिल इनसानों के।

सुबह को रेडियो पर मौसम का हाल सुनते हुए यह पता चलता है कि खूँजह में बर्फ गिर रही है, आख्ता में बारिश हो रही है, देर्बेंत में खूबानियों के पेड़ों पर बौर आ रहा है और कुमुख में सख्त गर्मी है।

छोटे-से दागिस्तान में एक ही वक्त में जाड़ा, पतझर, वसंत और गर्मी होती है। पथरीले, शांत, गड़गड़ाते और ऊँचे-ऊँचे पर्वत साल के इन मौसमों को एक-दूसरे से अलग करते हैं।

अवार भाषा के 'मेएर' शब्द के दो अर्थ हैं - पर्वत और नाक।

मेरे पिता जी ने इन दोनों अर्थों के बीच इस तरह मेल बिठाया - पर्वत विश्व की हर घटना और मौसम के हर परिवर्तन की गंध लेते हैं।

मैदान यह देखने के लिए अपने पिछले पैरों पर खड़े हो गए कि कौन उनकी ओर आ रहा है। ऐसे पर्वतों का जन्म हुआ। हाजी-मुरात ऐसा कहा करता था।

अम्माँ मेरे पालने के ऊपर फुसफुसाकर कहा करती थीं कि मैं पर्वत की तरह बड़ा हो जाऊँ।

कैसे बुद्धू पर्वत-नदिया के पानी
नमी बिना चट्टानें यहाँ चटकती हैं,
क्यों तुम जल्दी-जल्दी उधर बहे जाते
लहरें बिना तुम्हारे जहाँ मचलती हैं?

बड़ी मुसीबत हो तुम मेरे दिल पागल
जो प्यारे हैं, उनको प्यार नहीं करते
खिंचे चले जाते हो तुम उस ओर सदा
जहाँ न नयन तुम्हारी राह कभी तकते।

मेरी अम्माँ जब कभी बल्हार जाति के लोगों को घड़े, मिट्टी के बर्तन और रकाबियाँ बेचते हुए देखतीं तो हमेशा यह कहतीं - 'इतनी मिट्टी बरबाद करते हुए क्या इन्हें अफसोस नहीं हुआ? मिट्टी बेचनेवाले तो मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाते!'

इसमें तो जरा भी शक नहीं कि बल्हार लोग अपने फन के बड़े माहिर हैं। किंतु पहाड़ों में, जहाँ इतनी कम मिट्टी है, हमेशा यह माना जाता रहा है कि बल्हारों के घड़ों के मुकाबले में मिट्टी ज्यादा कीमती है।

पुराने जमाने की बात है कि एक हरकारा सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ गाँव में आया। उस वक्त सभी मर्द मसजिद में नमाज पढ़ रहे थे। घुड़सवार, जो चरवाहा था, जूते पहने हुए ही मसजिद में घुस गया।

'अरे बुद्धू, ओ काफिर,' मुल्ला ने चिल्लाकर कहा, 'क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि मसजिद में दाखिल होने से पहले जूते उतारने चाहिए?'

'मेरे जूतों पर लगी मिट्टी मेरी प्यारी घाटी की धूल है। वह इन कालीनों से ज्यादा कीमती है, क्योंकि इस मिट्टी पर दुश्मन टूट पड़ा है।'

पहाड़ी लोग भागकर मसजिद से बाहर आए और अपने घोड़ों को सरपट दौड़ाने लगे।

'दूर से आनेवाला मेहमान ज्यादा प्यारा होता है,' अबूतालिब को ऐसा कहना अच्छा लगता है। दूर-दराज से आनेवाला मेहमान बड़ी खुशी, बड़ा प्यार या बड़ा दुख-गम लेकर आता है। कोई उदासीन व्यक्ति दूर से नहीं आएगा।

ऐसी परंपरा भी है - अगर मेहमान को तुम्हारे घर में कोई चीज पसंद आ जाती है और वह उसकी प्रशंसा करता है तो बेशक तुम्हें आँसू बहाने पड़ें, लेकिन तुम वह चीज उसे भेंट कर दो। कहते हैं कि एक नौजवान ने अपनी मंगेतर तक, जिस पर गाँव के चश्मे के करीब उसके दोस्त की नजर टिक गई थी, उसे भेंट कर दी। किंतु यही मानना चाहिए कि वह नौजवान दो सौ प्रतिशत, उच्चतर पहाड़ी था।

बेहया किस्म का मेहमान हमेशा ही हमारे पुराने रीति-रिवाजों से फायदा उठा सकता है। लेकिन पहाड़ी लोग भी अब ज्यादा समझदार हो गए हैं - सुंदर चीजों को मेहमानों की नजरों से दूर हटा देते हैं।

तो बहुत पहले एक बार ऐसा हुआ कि कुमुख से एक मेहमान आया और सभी चीजों की तारीफ करने लगा। वे सारी चीजें ही, जिन्हें उसने ललचाई नजरों से देखा, उसे भेंट कर दी गईं। किंतु विदा करने के पहले उसे अपने बूटों पर से मिट्टी झाड़ने को मजबूर किया गया।

'मिट्टी भेंट नहीं की जाती,' पहाड़ी लोगों ने उससे यह भी कह दिया, 'मिट्टी की तो खुद हमारे यहाँ भी कमी है। लोग बूटों पर सारी मिट्टी ले जाएँगे तो हम अनाज कहाँ बोएँगे।'

एक विदेशी ने हमारी धरती को पथरीले बोरे की संज्ञा दी।

हाँ, हमारी धरती में कोमलता की कमी है। पहाड़ों पर पेड़ भी अक्सर नजर नहीं आते। हमारे पहाड़ मुरीदों के मुँड़े सिरों, हाथियों के सपाट, चिकने कंधों जैसे हैं। बुवाई के लिए जमीन थोड़ी है, उससे हासिल होनेवाली फसल भी बहुत कम होती है।

कभी हमारे यहाँ कहा जाता था - 'इस बेचारे की फसल तो पड़ोसी के नथुनों में ठोंसने के लिए भी काफी नहीं होगी।'

हाँ, हमारे पहाड़ी लोगों की नाकें भी खूब बड़ी-बडी़ बहुत गजब की हैं। दुश्मन खर्राटों की आवाज सुनकर ही बहुत दूर से यह जान जाते थे कि पहाड़ी लोग सो रहे हैं और इसी निशानी से कभी-कभी अचानक हमला कर देते थे।

किसी के चेहरे पर चेचक के ढेर सारे निशान देखकर अबूतालिब ने कहा - मेरे पिता जी के खेत में उगे अनाज के सारे दाने इस बेचारे के चेहरे पर जा चिपके ताकि उस पर अपने निशान छोड़ दें।

पहाड़ी लोगों के पास जमीन कम और कम उपजाऊ भी है। इसके बारे में एक किस्सा है जिसे शायद कई बार सुना गया हो, क्योंकि वह बहुत अरसे से एक भाषा से दूसरी भाषा में और एक सपाट छत से दूसरी सपाट छत तक सुनाया जाता रहा है। बेशक वे लोग मुझे कोसें जो इसे पहले सुन चुके हैं, फिर भी मैं उसे सुनाए बिना नहीं रह सकता।

किसी पहाड़िये ने अपना खेत जोतने का इरादा बनाया। उसका खेत गाँव से दूर था। वह शाम को ही वहाँ चला गया ताकि तड़के काम में जुट जाए। यह पहाड़ी आदमी वहाँ पहुँचा, उसने अपना लबादा वहाँ बिछाया और सो गया। वह सुबह ही जाग गया, ताकि खेत जोतना शुरू करे, लेकिन खेत तो कहीं था ही नहीं। उसने इधर-उधर नजर दौड़ाई, मगर खेत कहीं दिखाई नहीं दिया। गुनाहों की सजा देने के लिए क्या अल्लाह ने उसे छीन लिया या ईमानदार आदमी की खिल्ली उड़ाने के लिए शैतान ने उसे कहीं छिपा दिया।

कोई चारा नहीं था। पहाड़ी आदमी मन ही मन दुखी होता रहा और आखिर उसने घर लौटने का फैसला किया। उसने जमीन पर से लबादा उठाया और - हे भगवान! - यह रहा लबादे के नीचे उसका खेत!

पहाड़ी लोगों के लिए ऊँची पहाड़ी जमीन बहुत मूल्यवान है, यद्यपि वहाँ उनकी जिंदगी खासी मुश्किल है। राहगीर पर्वतों की ढालों और कभी-कभी तो चट्टानों पर खेतों के इन टुकड़ों, पत्थरों के बीच उगाए गए बाग-बगीचों और खड्ड के ऊपर पगडंडी पर जाती हुई भेड़ों को देखकर हैरान रह जाते हैं, जो रज्जुनटों की कुशलता-फुर्ती से खड़े गड्ढों-खड्डों को लाँघती हैं।

यह सब देखने में तो असाधारण रूप से सुंदर है, इसलिए बनाया गया है कि कविताओं में इसका गुणगान किया जाए, किंतु यहाँ काम करना और जीना कठिन है।

इसके बावजूद अगर किसी पहाड़ी आदमी को मैदानों में जाकर बसने को कहा जाए तो वह ऐसे प्रस्ताव को अपना अपमान मानेगा। लोग बताते हैं कि एक पहाड़ी आदमी का बेटा शहर से आया और अपने बूढ़े बाप को शहर चलने के लिए मनाने लगा।

'ऐसे शब्दों से मेरा दिल दुखाने के बजाय यही बेहतर होता कि तुम खंजर मारकर मेरा पेट चीर डालते,' बूढ़े पहाड़िये ने जवाब दिया।

यह समस्या विद्यमान है और काफी जटिल है। बहुत साल पहले ही पहाड़ी गाँवों में बहुत प्रभावपूर्ण यह नारा लगाया गया था - 'हम पथरीले बोरों से निकलकर फूलोंवाले मैदानों में जा बसेंगे।'

'पहाड़ों में धुएँवाले चूल्हे के करीब मैदान की बढ़िया भट्ठी से कहीं ज्यादा मजा है।' 'जिसे पेट की चिंता है, वह बेशक वहाँ चला जाए और जिसे दिल की चिंता है, वह यहाँ रहेगा।' 'हमने किसी की हत्या नहीं की, किसी के घर नहीं जलाए तो फिर किसलिए हमें जलावतन किया जा रहा है।' 'मशीनें तो यहाँ भी काम कर सकती हैं।' 'खंभों पर बत्तियाँ तो यहाँ भी लटक सकती हैं।' 'तार तो यहाँ से भी चला जाएगा।' 'मच्छरों और मक्खियों का पेट भरने के लिए हमने जन्म नहीं लिया है।' 'पेट्रोल की गंध से उपले का धुआँ कहीं बेहतर है।' 'पहाड़ी फूल ज्यादा चटकीले हैं।' 'नल के पानी से चश्मे का पानी कहीं ज्यादा मीठा है।' 'हम यहाँ से कहीं नहीं जाएँगे!'

'हम पथरीले बोरों से निकलकर फूलोंवाले मैदानों में जा बसेंगे,' इस नारे का हर पहाड़ी आदमी ने अपने ढंग से ऐसे जवाब दिया।

पहाड़ी लोग इसी सिलसिले में सलाह लेने के लिए मेरे पिता जी के पास भी आए कि वे कहीं दूसरी जगह जा बसें या यहीं रहें। कोई निश्चित जवाब देते हुए पिता जी ने झिझक महसूस की।

'अगर यहीं रहने की सलाह दे दूँगा और बाद में इन्हें पता चलेगा कि मैदानों में जिंदगी बेहतर है तो मुझे भला-बुरा कहेंगे। अगर यह सलाह देता हूँ कि नीचे जा बसें और वहाँ जिंदगी किसी काम की नहीं होगी तो भी मुझे कोसेंगे।'

'खुद ही तय कीजिए,' मेरे पिता हम्जात त्सादासा ने तब उन्हें जवाब दिया।

वक्त बदलता है और उसके साथ जिंदगी भी। सिर की टोपियाँ ही नहीं बदलीं, (फर की टोपियों की जगह छज्जेदार हल्की टोपियाँ) बल्कि टोपियों के नीचे जवान लोगों के दिमागों में विचार भी बदल गए हैं। तरह-तरह की जातियों, कबीलों और जनगण का आपस में मेल हो रहा है। हमारे बेटों की कब्रें पिताओं के गाँवों से अधिकाधिक दूर होती जा रही हैं... पत्थर, सिलें, बड़े-बड़े पत्थर, छोटे-छोटे कंकड़, गोल पत्थर, नुकीले पत्थर। इन पत्थरों पर कुछ उगाने के लिए पहाड़ के दामन से टोकरियाँ भर-भरकर मिट्टी ऊपर ढोई जाती है। पतझर और

जाड़े में घास से ढँकी ढालों को जलाया जाता था ताकि ज्यादा अच्छी घास उगे। पहाड़ों में इन अनेक ज्वालाओं की मुझे याद है। पहली हल-रेखा के पर्व की भी मुझे याद है। वसंत। तब बूढ़े एक-दूसरे पर मिट्टी के गोले फेंकते थे।

काम-काजी आदमी के बारे में हमारे यहाँ कहा जाता है - 'बहुत-से पर्वत और चोटियाँ लाँघी हैं उसने।'

निकम्मे आदमी के बारे में कहा जाता है - 'उसने तो पत्थर पर एक बार भी कुदाल नहीं चलाई।'

'आपके खेत में फसलों की इतनी अधिक बालें हों कि उनके लिए जगह काफी न रहे,' पहाड़ी लोगों की यह सबसे अच्छी शुभकामना होती है।

'तुम्हारी जमीन सूख जाए, बंजर हो जाए,' सबसे बड़ा शाप होता है।

'इस धरती की कसम,' सबसे पक्की कसम यही होती है।

किसी पराये खेत में आ जानेवाले गधे की हत्या की जा सकती थी और इसके लिए कोई सजा नहीं होती थीं। एक पहाड़ी आदमी चिल्लाकर कहता रहा था - 'अगर हाजी-मुरात का गधा भी मेरी धरती पर आ जाएगा - तो उसकी भी खैर नहीं!'

हर गाँव के अपने नियम थे। किंतु सभी जगहों पर खेत या धरती को हानि पहुँचाने के लिए सबसे बड़ा जुर्माना वसूल किया जाता था।

सन 1859 के अगस्त महीन में गुनीब पर्वत पर इमाम शामिल अपने जंगी घोड़े से नीचे उतरा और उसने एक महान बंदी के रूप में खुद को प्रिन्स बर्यातीन्स्की के सामने पेश किया। बाएँ पाँव को थोड़ा आगे बढ़ाकर और उसे एक पत्थर पर टिकाकर तथा दाएँ हाथ को तलवार की मूठ पर रखकर और इर्द-गिर्द के पहाड़ों पर धुँधली-सी नजर डालकर शामिल ने कहा -

'हुजूर! इन पहाड़ों और इन पहाड़ी लोगों की इज्जत बचाते हुए मैं पच्चीस साल तक लड़ता रहा। मेरे उन्नीस घाव टीसते हैं और वे कभी नहीं भरेंगे। अब मैं कैदी के तौर पर अपने को पेश करता हूँ और अपनी धरती को आपके हवाले करता हूँ।'

'इसके लिए बहुत दुखी होने की क्या जरूरत है। खूब है तुम्हारी यह धरती भी - सिर्फ चट्टानें और पत्थर ही तो हैं!'

'हुजूर, यह बताएँ कि हमारी इस जंग में कौन ज्यादा सही था - हम, जो इस धरती को शानदार मानते हुए इसके लिए अपनी जानें कुर्बान करते रहे या आप लोग, जो इसे बुरी मानते हुए इसकी खातिर मरते रहे?'

कैदी शामिल को एक महीने तक का रास्ता तय करके पीटर्सबर्ग ले जाया गया।

पीटर्सबर्ग में सम्राट ने उससे पूछा -

'तुम्हें रास्ता कैसा लगा?'

'बड़ा मुल्क है। बहुत बड़ा मुल्क है।'

'इमाम, यह बताओ कि अगर तुम्हें यह पता चल जाता कि मेरा राज्य इतना बड़ा और इतना शक्तिशाली है तो क्या तुम इसके विरुद्ध इतनी देर तक लड़ते रहते या समझदारी दिखाते हुए ठीक वक्त पर ही हथियार डाल देत?'

'लेकिन आप भी तो यह जानते हुए कि हमारा देश इतना छोटा और कमजोर है, इतनी देर तक हमारे खिलाफ लड़ते रहे!'

मेरे पिता जी के पास शामिल का एक पत्र, अधिक सही तौर पर उसका विदा-पत्र सुरक्षित रहा है। यह है वह पत्र -

'मेरे पहाड़ी लोगो! अपनी नंगी और वीरान चट्टानों को प्यार करो! वे बहुत कम दौलत लाई हैं तुम्हारे लिए, लेकिन इन चट्टानों के बिना तुम्हारी धरती तुम्हारी धरती जैसी नहीं होगी और धरती के बिना बेचारे पहाड़ी लोगों के लिए आजादी नहीं होगी। इन चट्टानों के लिए जूझो, इनकी रक्षा करो। यही कामना है कि तुम्हारी तलवारों की टंकार मेरी कब्र की नींद को मधुर बना दे।'

शामिल ने पहाड़ी लोगों की तलवारों की टंकार और आवाज अनेक बार सुनी, यद्यपि पहाड़ी लोग अब एक अन्य ध्येय के लिए जूझते थे। दागिस्तानियों की मातृभूमि अब बड़ी हो गई है। उनकी कब्रें उक्रइना, बेलारूस, मास्को के उपांत, हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, कार्पेथिया तथा बाल्कान और बर्लिन के निकट तक बिखरी हुई हैं।

'एक गाँव के लोग पहले किस चीज के लिए लड़ते-भिड़ते थे?'

'दो पहाड़ी लोगों के खेतों के बीच की बालिश्त भर जमीन, छोटी-सी ढाल और पत्थर के लिए।'

'दो पड़ोसी गाँवों के लोग पहले किसलिए लड़ते-भिड़ते थे?'

'गाँवों के खेतों के बीच बालिश्त भर जमीन के लिए।'

'दागिस्तान किसलिए दूसरे जनगण से लड़ता-जूझता था?'

'दागिस्तान की हदों पर बालिश्त भर जमीन के लिए।'

'बाद में दागिस्तान किस चीज के लिए लड़ता-भिड़ता रहा?'

'महान सोवियत देश की हदों पर बालिश्त भर जमीन के लिए।'

'दागिस्तान अब किस चीज के लिए जूझ रहा है?'

'सारी दुनिया में शांति के लिए।'

शामिल के साथ उसके दो बेटे भी बंदी बनाए गए थे। उनके भाग्य अलग-अलग रहे। छोटा बेआ, मुहम्मद शफी जार का जनरल बन गया, जबकि बड़ा बेटा गाजी मुहम्मद तुर्की चला गया।

एक बार तुर्की पोशाक पहने एक बुजुर्ग औरत मेरे पास आई। जार्जियाई जाति की इस औरत ने जवानी के दिनों में ही एक तुर्क से शादी कर ली थी, चालीस साल तक इस्तंबूल में रह चुकी थी। बाद में पति की मृत्यु होने और अकेली रह जाने पर वह जार्जिया लौट आई थी। तो वह मेरे पास आई। उसके आने का कारण यह था - इस्तंबूल में रहते हुए शामिल के सबसे छोटे बेटे के वंशजों के साथ उसकी दोस्ती रही थी।

'कैसा हाल-चाल है उनका?' मैंने पूछा।

'बुरा हाल-चाल है।'

'किस कारण?'

'इस कारण कि उनका दागिस्तान नहीं है। काश! आपको मालूम होता कि कैसे वे वहाँ उदासी महसूस करते हैं! कभी-कभी सरकारी कर्मचारी यह धमकी देते हुए कि उनके पास जो जमीन है, वे उसे छीन लेंगे, उनका अपमान करते हैं। 'छीन लीजिए,' इमाम के वंशज जवाब देते हैं। 'दागिस्तान' तो हमारे पास है नहीं, दूसरी जमीन हमें प्यारी नहीं।' यह मालूम होने पर कि मैं मातृभूमि लौट रही हूँ,' जार्जियाई महिला कहती गई, 'उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं दागिस्तान जाऊँ, शामिल के जन्म-गाँव और उन पहाड़ों में भी जाऊँ, जहाँ वह लड़ता रहा था और आपसे भी मिलूँ। उन्होंने मुझे यह रूमाल दिया है कि आप इसमें दागिस्तान की थोड़ी-सी मिट्टी बाँधकर उन्हें भेज दें।'

मैंने रूमाल खोला। उस पर अरबी भाषा में 'शामिल' कढ़ा हुआ था।

जार्जियाई महिला ने जो कुछ बताया, उसने मेरे मर्म को छू लिया। मैंने मिट्टी भेजने का वचन दिया। इस संबंध में मैंने अनेक बुजुर्गों से सलाह-मशविरा किया।

'विदेश में रहनेवाले लोगों को हमारी मिट्टी भेजने में कोई तुक है?'

'दूसरों को भेजने की तो जरूरत नहीं थी, किंतु शामिल के वंशजों को भेज दो,' बुजुर्गों ने जवाब दिया।

एक बुजुर्ग ने शामिल के गाँव से मुट्ठी भर मिट्टी ला दी और हमने इस रूमाल में, जिस पर शामिल का नाम कढ़ा हुआ था, उसे लपेट दिया। बुजुर्ग ने कहा -

'उन्हें हमारी मिट्टी भेज दो, किंतु यह भी बता देना कि उसका प्रत्येक कण बहुत मूल्यवान है। उन्हें यह भी लिख देना कि हमारी इस धरती पर अब जिंदगी बदल गई है, यहाँ अब नया वक्त आ गया है। सभी कुछ के बारे में लिख देना ताकि उन्हें मालूम हो जाए।'

किंतु मुझे लिखना नहीं पड़ा। जल्दी ही मैं खुद तुर्की गया। मूल्यवान भेंट भी मैं अपने साथ ले गया।

मैंने शामिल के वंशजों को ढूँढ़ा, लेकिन उनसे मेरी मुलाकात नहीं हुई। मुझे बताया गया कि इमाम शामिल का परपोता शायद मक्का चला गया है। परपोतियाँ नजावत और नाजियात भी मुझसे मिलने नहीं आई। मुझे बताया गया कि एक के सिर में दर्द है और दूसरी को दिल का दौरा पड़ गया है। किसे मैं अपने वतन की मिट्टी दूँ? वहाँ अवार जाति के अन्य लोग भी थे, मगर वे अपनी इच्छा से दागिस्तान छोड़कर गए थे।

तब मैं समझ गया कि उनका शामिल और मेरा शामिल अलग-अलग शामिल हैं।

दूरस्थ तुर्की में मैं अपने प्यारे दागिस्तान की मुट्ठी भर मिट्टी हाथ में लिए था। इस थोड़ी-सी मिट्टी में मैं अपने गाँवों-गुनीब, चिरकोई, आख्ता, कुमुख, खूँजह, त्सादा त्सूंता और चारोदा की झलक पाता हूँ... यह सब मेरी धरती है। मैंने इसके बारे में बहुत कुछ लिखा है और लिखूँगा। इसे अब लबादे से नहीं ढका जा सकता, जैसा कि उस बदकिस्मत पहाड़ी आदमी के साथ हुआ था, जिसके बारे में मजाकिया किस्सा सुनाया जाता है।

दागिस्तान का दूसरा खजाना - सागर है।

मास्को और गुनीब गाँव के बीच टेलीफोन पर इस तरह की बातचीत होती है।

'हैलो, हैलो, गुनीब? ओमार, तुम बोल रहे हो? तुम मेरी आवाज सुन रहे हो? दिन कैसा है, मूड कैसा है?'

'सुन रहा हूँ। हमारे यहाँ सब कुछ ठीक-ठाक है। आज सुबह से सागर दिखाई दे रहा है...!'

या -

'हैलो, गुनीब? यह तुम बोल रही हो, फतिमा? क्या हाल-चाल हैं, मूड कैसा है?'

'मूड तो ऐसा-वैसा ही है। धुंध है। सागर दिखाई नहीं दे रहा।'

'अब्बा जान, समुंदर नजर नहीं आ रहा,' शामिल के बेटे जमालुद्दीन ने कहा।

वह जार का बंधक था - जार के फौजी कालेज में अफसर के तौर पर शिक्षा पा रहा था तथा मातृभूमि लौटने पर गोरे जार के विरुद्ध पिता और पहाड़ी लोगों के संघर्ष को बेकार मानता था।

'तुम समुंदर को देख सकोगे, मेरे बेटे,' शामिल ने जवाब दिया। 'लेकिन उसे मेरी आँखों से देखो।'

गुनीब पर्वत से सागर एक सौ पचास किलोमीटर दूर है। दिन कितना उजला, सागर कितना नीला और चमकता हुआ तथा नजरें कितनी तेज होनी चाहिए, पर्वत कितना ऊँचा होना चाहिए कि सहज भाव से यह कहा जा सके - 'सागर दिखाई दे रहा है।'

यहाँ तक कि उन गाँवों में, जहाँ से सागर देखना संभव नहीं, जब यह पूछा जाता है कि मूड कैसा है, तो कभी-कभी यह जवाब मिलता है - बहुत बढ़िया मूड है मानो सागर आँखों के सामने हो।

कौन किसकी शोभा बढ़ाता है - कास्पी सागर दागिस्तान की या दागिस्तान कास्पी सागर की? कौन किस पर गर्व करता है - पहाड़ी लोग सागर पर या सागर पहाड़ी लोगों पर?

जब मैं सागर को देखता हूँ तो सारे संसार को देखता हूँ। जब सागर में उथल-पुथल होती है तो लगता है कि सारी दुनिया में बेचैनी है, तूफानी मौसम है। जब वह शांत होता है तो लगता है कि सभी जगह शांति छाई है।

मैं लड़का ही था कि सागर से मेरा नाता जुड़ गया था। मैं खड़ी और टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी पगडंडियों से नीचे उतरकर सागर के पास पहुँचा था। उस वक्त से मेरे घर

की खिड़कियाँ सागर की ओर खुली हुई हैं। खुद दागिस्तान की खिड़कियाँ भी उधर ही देखती हैं।

मैं जब समुद्र-गर्जन नहीं सुनता हूँ तो मुझे कठिनाई से नींद आती है।

'लेकिन तुम क्यों नहीं सोते हो, दागिस्तान?'

'सागर शोर नहीं मचा रहा है, नींद नहीं आती है।'

बहुत चटक रंग के बारे में हम कहते हैं - सागर की रतह। बहुत तेज शोर के बारे में कहते हैं - सागर की तरह। कूटू के ऊँचे-ऊँचे और लहराते खेतों के बारे में कहते हैं - सागर की तरह।

बुद्धिमत्ता और आत्मा की गहराई के बारे में कहते हैं - सागर की तरह।

निर्मल आकाश तक के बारे में भी हम यही कहते हैं - सागर की तरह।

जब हमारी गाय बहुत दूध देती थी तो अम्माँ उसे 'मेरा सागर' कहा करती थीं।

मुझे खट्टी क्रीम का मटका हाथों में लिए छज्जे में खड़ी अपनी अम्माँ की याद आती है। वह अपने इर्द-गिर्द खेलते हम बच्चों को खिलाने के लिए उसमें से मक्खन निकाला करती थीं। उस मटके की गर्दन सागर की सीपियों की माला से सजी हुई थी।

'ताकि ज्यादा मक्खन निकले,' अम्माँ हमें माला का महत्व समझाती थीं। इसके अलावा वह यह भी कहा करती थीं कि सीपियाँ बुरी नजर से बचाती हैं।

दागिस्तान का पाषाणी वक्ष भी सीपियों की माला, तटवर्ती पत्थरों की माला, सागर-तरंगों की माला से सुसज्जित है।

दागिस्तान कास्पी सागर की लहरों के शोर का अभ्यस्त है, नीरवता-निस्तब्धता में उसे अचछी तरह से नींद नहीं आती और अगर वह सागर से वंचित हो जाता तो उसे बिल्कुल ही नींद न आती।

हिम-सी श्वेत-श्वेत सागर की लहरो, मुझे बताओ।
किस भाषा में बतियाती हो, मुझको यह समझाओ।

चट्टानों से टकराकर तुम शोर मचातीं ऐसे
गाँव-पैंठ में कोलाहल होता रहता है जैसे।

वहाँ दर्जनों भाषाओं की ऐसी खिचड़ी पकती
अल्ला भी चाहे तो उसके बात न पल्ले पड़ती।

जरा न गर्जन होता ऐसा कभी-कभी दिन आए
लहरें धीमे बहें कि मानो घास कहीं लहराए।

कभी-कभी लेने लगते हो ऐसी तेज उसाँसें
पुत्र-शोक में ज्यों माँ सिसके, ले ले भारी साँसें।

वारिस मर जाने पर बूढ़ा बाप भरे ज्यों आहें
जल में जैसे घोड़ा डोले, लहरें जिसे बहाएँ।

छलछल करते कभी, कभी तुम, ऊँचा शोर मचाते
अपनी भाषा में तुम सागर, मन की बात बताते।

तेरे-मेरे दिल की गहराई में है कुछ बंधन
और समझ सकता मैं तेरे सभी रूप-परिवर्तन।

क्या न कभी मेरे दिल में भी खून उबलने लगता
टकरा कटु जीवन-लहरों से वह अपना सिर धुनता?

किंतु बाद में धीरे-धीरे, शांत तुम्हीं हो जाते
शक्तिहीन हो ढालू तट को, क्या न तुम्हीं सहलाते?

गहराई में राज न तेरे, सागर छिपे हुए क्या?
क्या न एक सा रूप, हमारे दोनों के सुख-दुख का?

किंतु अलग है, खास दर्द, जो मेरा मैं बतलाऊँ,
पीना चाहूँ सागर, खारी, मगर नहीं पी पाऊँ।

मास्को से मखाचकला जानेवाली गाड़ी वहाँ तड़के पहुँचती है। रास्ते में बीतनेवाली यह रात मेरे लिए सर्वाधिक बेचैनी की रात होती है। मैं आधी रात को

उठकर अँधेरे में लिपटी खिड़की से बाहर झाँकता हूँ। खिड़की के बाहर अभी स्तेपी-मैदान होता है। गाड़ी शोर मचाती होती है, गाड़ी के डिब्बे के बाहर बहुत जोर से हवा सरसराती होती है, मैं दूसरी बार उठकर खिड़की से बाहर देखता हूँ - फिर वही स्तेपी-मैदान। आखिर तीसरी बार उठकर बाहर नजर दौड़ाता हूँ - सागर दिखाई देता है। इसका मतलब है कि यह मेरा दागिस्तान है।

शुक्रिया तुम्हारा, नीले सागर, विराट जल-विस्तार! तुम ही मुझे सबसे पहले यह सूचना देते हो कि मैं अपने घर पहुँच गया हूँ।

मेरे पिता जी को यह कहना अचछा लगता था - 'जिसके यहाँ समुंदर है, उसका घर मेहमानों का घर है।'

जवाब में अबूतालिब कहा करता था - 'जिसके यहाँ समुंदर है, उसका जीवन सुंदर और समृद्ध है। पहाड़ ही समुंदर से ज्यादा खूबसूरत हो सकते हैं, लेकिन हमारे यहाँ तो वे भी हैं।'

ये दो बुजुर्ग - मेरे पिता जी और अबूतालिब पहले से ही कुछ तय किए बिना जब कभी मिलते तो अक्सर सागर की ओर चले जाते। ये उस टीले पर चढ़ जाते, जहाँ से बंदरगाह में आनेवाले सभी जहाज नजर आते। मछलियों और नमक की गंध इन दोनों बुजुर्गों तक पहुँचती रहती। ये दोनों केवल सागर को अपनी बात कहने की संभावना देते हुए घंटों तक यहाँ चुपचाप बैठे रहते।

सागर अपनी बात कहे, तुम साधे मौन रहो
अपनी खुशियाँ और न अपने मन का दर्द कहो।
वह महान कवि दांते भी उस रात मूक था रहता
कहीं पास में जब उसके नीला सागर था बहता।

भीड़ लगी हो सागर-तट पर या सुनसान वहाँ हो
मुँह से शब्द न एक निकालो, सागर को गाने दो।
वह बातों के फन का माहिर, पुश्किन भी चुप रहता
जब-जब सागर अपने दिल की, अपने मन की कहता।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि सागर को सुनते हुए उसकी बात समझना सीखो। सागर ने बहुत कुछ देखा है, वह बहुत कुछ जानता है।

- सागर मुझको यह बतलाओ, क्यों है तेरा जल खारी?
- क्योंकि मिले हैं इसमें अक्सर, लोगों के आँसू खारी!
- सागर मुझे बताओ, किसने तेरा रूप सँवारा है?
- मूँगों और मोतियों ने ही मेरा रूप निखारा है!
- सागर मुझको यह बतलाओ, क्यों हो तुम इतने विह्वल?
- क्योंकि भँवर में डूब गए हैं कितने ही तो वीर प्रबल -
कुछ ने चाहा, सपना देखा, मीठा कर दें जल खारी
और दूसरों को मूँगों की खोज, चाह दिल में प्यारी!

पके बालोंवाले दो पहाड़ी बुजुर्ग, दो कवि, दो बूढ़े उकाबों की तरह टीले पर बैठे हैं। चुपचार और निश्चल बैठकर सागर को सुन रहे हैं। सागर शोर मचा रहा है, जीवन के बारे में, जो उसके समान ही है, सोचने को विवश करता है और उसके खुले तथा भयानक विस्तार में बेशक किसी भी तरह के मौसम का सामना न करना पड़े, उसके एक तट से दूसरे तट तक तो जाना ही होगा। किंतु सागर से भिन्न, जीवन में शांत बंदरशाह, शांत घाट नहीं हैं। कोई चाहे या न चाहे, जीवन-सागर के पार तो जाना ही होगा। सिर्फ एक, आखिरी बंदरशाह, केवल एक, अंतिम घाट ही होगा।

कास्पी सागर शोर मचाता रहता है, ख्वालीन्स्क सागर शोर मचाता रहता है। उसमें नदियाँ आकर गिरती हैं - एक ओर से वोल्गा, उराल और दूसरी ओर से कूरा, तेरेक, सुलाक। ये सभी आपस में घुल-मिल गई हैं और इन्हें एक-दूसरी से अलग नहीं किया जा सकता। उनके लिए सागर भी एक तरह से आखिरी घाट है। हाँ, यह सही है कि इनका पानी लुप्त नहीं होगा, जीवनहीन नहीं होगा, गतिहीन नहीं होगा, बहता रहेगा, नीली-नीली लहरों के रूप में ऊपर उठता रहेगा। इन लहरों पर दुनिया के विभिन्न कोनों तक बड़े-बड़े जहाज जाते रहेंगे।

पहाड़ी लोगो, दागिस्तान के बेटे-बेटियो, क्या आपका भाग्य भी इन नदियों के समान नहीं है? आप भी तो हमारे महान भ्रातृत्व के संयुक्त सागर में सम्मिलित होकर घुल-मिल गए हैं।

कास्पी सागर शोर मचा रहा है। पके बालोंवाले दो बुजुर्ग चुपचाप खड़े हैं और उनके साथ मैं, एक किशोर भी खड़ा हूँ। बाद में, जब हम घर की ओर रवाना हुए तो अबूतालिब ने मेरे पिता जी से कहा -

'तुम्हारा बेटा बड़ा होता जा रहा है। आज उसे उच्च भावना की अनुभूति हुई है।'

'जिस जगह पर हम खड़े थे, वहाँ किसी को भी छोटा नहीं होना चाहिए,' मेरे पिता जी ने अबूतालिब को जवाब दिया।

अब, जब कभी भी मैं सागर-तट पर जाता हूँ तो मुझे लगातार ऐसा लगता है कि पिता जी की बगल में खड़ा हूँ।

कहते हैं कि कास्पी साल-द-साल कम गहरा होता जा रहा है। जहाँ कभी पानी कल-छल करता था, वहाँ अब शहरी मकान खड़े हैं। शायद यह ठीक ही है कि सागर छिछला होता जा रहा है। किंतु मैं यह विश्वास नहीं करता कि सागर सागर नहीं रहेगा। संभव है कि वह कम गहरा होता जा रहा है, फिर भी उसमें तुच्छता नहीं आ रही है।

मैं तो लोगों से भी सदा यही कहता हूँ कि कम संख्यावाले होने पर भी तुममें तुच्छता नहीं आनी चाहिए।

पति विद्वान हिलाता है सिर दुख से व्याकुल होकर
कवि, लेखक भी व्यथित हो रहे दिल में दर्द सँजोकर,
इनकी पीड़ा यही कि कास्पी तट से हटता जाए
इसकी कम होती गहराई, उथला हो छिछलाए।
यह सब है बकवास मुझे तो कभी-कभी यह लगता
बूढ़ा कास्पी छिछला हो यह कभी नहीं हो सकता,
तुच्छ हो रहे कुछ लोगों के, दिल यह डर ही मुझको
और सभी चीजों से ज्यादा, चिंतित व्याकुल करता।

मखाच ने भी सागर की चर्चा की है। वह दागिस्तान की क्रांतिकारी कमेटी का पहला कमिसार था और हमारी राजधानी उसी के नाम पर मखाचकला कहलाती है। इसके पहले इसे पोर्ट-पेत्रोव्स्क कहा जाता था। गृह-युद्ध के समय में मखाच ने इसे अभेद्य दुर्ग बना दिया था।

तो सागर के बारे में मखाच ने कहा था - 'दुश्मन चाहे कितने ही क्यों न हों, हम उन सभी को सागर में फेंक देंगे। सागर गहरा है, उसके तल में सभी के लिए काफी जगह रहेगी।'

पहाड़ी लोग जब जिंदगी के मसलों पर सोच-विचार करने के लिए मसजिद के करीब या किसी पेड़ के नीचे जमा होते हैं तो ऐसी मजलिस को हमारे यहाँ गोदेकान का नाम दिया जाता है। ऐसी एक मजलिस में पहाड़ी लोगों से एक बार यह पूछा गया - कौन-सी आवाज आत्मा को सबसे ज्यादा प्यारी लगती है? पहाड़ी लोगों ने सोच-विचारकर जवाब देना शुरू किया -

'चाँदी की खनक।'

'घोड़े की हिनहिनाहट।'

'प्रेयसी का स्वर।'

'पहाड़ी दर्रे में घोड़े के नालों की गूँज।'

'बच्चे की हँसी।'

'माँ की लोरी।'

'पानी की कल-छल।'

लेकिन एक पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया -

'सागर की आवाज। कारण कि सागर में वे सब ध्वनियाँ सम्मिलित हैं जिनकी आपने गणना की है।'

किसी दूसरे मौके पर ऐसी ही एक मजलिस में पहाड़ी लोगों से यह पूछा गया -किस चीज का रंग आत्मा को सबसे अधिक प्यारा लगता है? पहाड़ी लोग कुछ देर सोचने के बाद जवाब देने लगे -

'निर्मल आकाश का।'

'श्वेत हिम से मढ़ित पर्वत-शिखरों का।'

'माँ की आँखों का।'

'बेटे के बालों का।'

'आड़ू के बौराए पेड़ का।'

'पतझर में सरपत का।'

'चश्मे के पानी का।'

लेकिन एक पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया -

'सागर का। कारण कि उसमें वे सभी रंग सम्मिलित हैं जिनकी आपने गणना की है।'

ऐसी ही मजलिसों में जब गंधों, पेयों या किसी अन्य चीज के बारे में पूछा गया तो हमेशा सागर पर आकर ही बात खत्म हुई।

सागर से प्रभावित होकर जनसाधारण ने नौजवान और समुद्री राजकुमारी और आसमानी रंग के उस पक्षी के बारे में किस्से गढ़ रखे हैं जो जहाँ भी चोंच मारता है, वहीं चश्मा फूट पड़ता है।

निश्चय ही मजलिस में हर कोई अपने घोड़े की तारीफों के पुल बाँधता है। अपने कास्पी सागर की तारीफ करते हुए क्या मैं भी यही नहीं कर रहा हूँ? कभी-कभी मुझसे कहा जाता है - कास्पी की क्या डींग मार रहे हो। यह तो सागर भी नहीं, बड़ी झील है। असली सागर तो काला सागर है।

हाँ, यह सही है कि कास्पी सागर काले सागर जैसा मखमली और कोमल नहीं है। अडरियाटिक या ईओनीचेस्की सागर जैसा भी नहीं है। किंतु वहाँ तो लोग मुख्यतः आराम करने या नहाने जाते हैं, जबकि कास्पी सागर पर मुख्यतः काम करने के लिए। कास्पी सागर-मछुओं, खनिज तेल निकालने वालों और मेहनतकशों का सागर है। इसलिए उसका मिजाज भी कुछ ज्यादा कठोर है। कोई कर ही क्या सकता है, हर साँड़ का अपना मिजाज, हर मर्द का अपना स्वभाव और हर सागर का अपना रवैया होता है... क्या दागिस्तान के पर्वत स्वभाव की दृष्टि से जार्जिया, अबखाजिया और अन्य स्थानों के पर्वतों से भिन्न नहीं हैं?

लेकिन सच कहूँ तो मुझे सभी सागर समान लगते हैं। जब जहाज पर काले सागर में यात्रा करता होता हूँ तो मुझे कास्पी की याद आती है, जब कास्पी में यात्रा करता होता हूँ तो महासागर को भी याद कर सकता हूँ। हमारा सागर दूसरे सागरों से किसी प्रकार भी उन्नीस नहीं है। अन्य सागरों की भाँति सभी लोग इस मान्यता के अनुसार उसमें भी इसीलिए कोई सिक्का फेंकते हैं कि फिर से इसी सागर पर आ सकेंगे।

पिता जी कहा करते थे कि अगर किसी व्यक्ति को सागर सुंदर नहीं लगता तो इसका यही मतलब है कि वह आदमी खुद सुंदर नहीं है।

किसी ने एक बार अबूतालिब से कहा -

'सागर आज बहुत बुरे ढंग से शोर मचा रहा है।'

'तुम मेरे कानों से सुनो।'

तो आप कास्पी सागर को दागिस्तान की नजरों से देखिए और तब वह आपको बहुत सुंदर दिखाई देगा।

दागिस्तान के मेगेब गाँव के रहनेवाले पनडुब्बी के दूसरी श्रेणी के विख्यात कप्तान मुहम्मद गाजीयेव के बहादुरी के कारनामों से सारा जंगी जहाजी बेड़ा परिचित है। उसने बाल्टिक, उत्तरी और बारेंत्सेव सागर में भी दुश्मन के खिलाफ लोहा लिया। मुहम्मद गाजीयेव के टारपीड़ों से अनेक फासिस्ट जंगी जहाजों की ठंडे पानी में कब्रें बनीं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के इतिहास में उसकी पनडुब्बी ने पहली बार फासिस्ट जंगी समुद्री बेड़े से आमने-सामने लड़ाई लड़ी थी। उसका एक नियम था - जब तक दुश्मन का कोई जंगी जहाज नहीं डुबो लो, तब तक मूँछें साफ नहीं करो।

मुहम्मद गाजीयेव से मेरी एक बार मुलाकात हुई। उस वक्त मैं बुईनाक्स्क शहर के अबाशीलोव नामक अध्यापक-प्रशिक्षण कालेज में पढ़ता था। मुहम्मद गाजीयेव छुट्टी पर था और हमने उसे अपने कालेज में निमंत्रित किया। हमने उससे पूछा -

'भला यह कैसे हुआ कि पहाड़ों-चट्टानों में जन्म लेनेवाले आप जहाजी बन गए?'

'बचपन में एक पर्वत के शिखर से मैंने कास्पी सागर देखा और हैरानी के कारण मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने मुझे पुकारा और मैं उसकी तरफ चल दिया। मैं सागर की पुकार की अवहेलना नहीं कर सकता था।'

पहाड़ों का रहनेवाला, सोवियत संघ का वीर, मुहम्मद गाजीयेव बारेंत्सेव सागर में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसी का नाम धारण करनेवाले कारखाने के सामने मखाचकला में बना हुआ उसका स्मारक कास्पी के विस्तार पर ही नजर टिकाए है। सेवेरोमोर्स्क नगर में उसके नाम का एक स्कूल भी है।

दिलेर लोग ही सागर में काम करने जाते हैं, मगर सभी वहाँ से वापस नहीं आते। इसलिए पहाड़ी लोग वसंत के पहले फूल सागर को भेंट करते हैं और इस तरह सदा को सागर में ही रह जानेवाले सभी वीरों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। मेरे फूल भी लहरों में अनेक बार तैरते थे।

बारेंत्सेव सागर में, उस जगह, जहाँ गाजीयेव और उसके साथी शहीद हुए, गाजीयेव की स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जहाज रुक जाते हैं।

कास्पी सागर में भी ऐसी ही परंपरा है। जहाज वहाँ रुकते हैं, वीरगति को प्राप्त होने वालों की स्मृति में जहाजी तीन मिनट तक मौन धारण किए रहते हैं।

हमारा शहर मखाचकला एक जहाज की तरह घाट पर खड़ा है। तटबंध के पार्क से पुश्किन की मूर्ति और उसके करीब ही सुलेमान स्ताल्स्की की मूर्ति सागर की ओर देख रही है, तरुपथ से मेरे पिता जी का बुत कास्पी पर नजर टिकाए है।

कहते हैं कि सागर की जगह कभी उदास और वनस्पतिहीन मरुस्थल था। बाद में उसने पर्वतों को देखा और हर्षोल्लास से ओत-प्रोत होकर उनके दामन में अपना नीला विस्तार फैला दिया।

कहते हैं कि पर्वत कभी आपस में लड़नेवाले अजगर थे। बाद में उन्होंने सागर को देखा और चकित होकर बुत बने रह गए तथा पाषाणों में बदल गए।

अम्माँ मेरे पालने के ऊपर गाया करती थीं -

बेटे, बनो बड़े, कि पाओ
पर्वत की ऊँचाई,
बेटे, बनो बड़े, कि पाओ
सागर की चौड़ाई।

युवती ने अपने जवान प्रियतम के लिए यह गाया -

जन्म हुआ ऊँचे पर्वत पर
साफ नजर यह आता है,
टेढ़ी टोपी पहन घमंडी
अपनी अकड़ दिखाता है।

जवान जिगीत यानी सूरमा ने सुंदर पहाड़ी युवती के लिए यह गाया -

सागर-तल से क्या तुम आई
अरी, रूप लेखा?
कभी न पहले ऐसा यौवन
जीवन में देखा।

एक सभा में मैंने निम्न बातचीत सुनी -

'हम लोग हर वक्त सागर और पहाड़ों, पहाड़ों और सागर का ही क्यों राग अलापते रहते हैं? हमारे यहाँ कुछ दूसरे प्रकार के पहाड़ और सागर भी हैं जिनकी हमें चर्चा करनी चाहिए। हमारे यहाँ लेज्गीनी उपवनों का सागर है, मवेशियों का सागर है, ऊन के पहाड़ हैं।'

लेकिन ठीक ही कहा जाता है - 'तीनों गाने खुद ही नहीं गाओ, एक हमारे लिए भी रहने दो। तीनों नमाजें खुद नहीं अदा करो, एक हमारे लिए भी रहने दो।'

दागिस्तान जिन भागों का बना हुआ है, मैंने उनमें से दो मुख्य भागों का वर्णन किया है। बाकी सब कुछ - उसका तीसरा भाग है। क्या उसके रास्तों और नदियों, पेड़ों और घास-पौधों की कम चर्चा की जा सकती है! सभी कुछ का वर्णन करने के लिए तो पूरी जिंदगी भी काफी नहीं होगी।

गीतों-गानों के बारे में भी यही सही है। दुनिया में सिर्फ तीन गीत हैं - पहला - माँ का गीत, दूसरा - माँ का गीत और तीसरा गीत - बाकी सभी गीत।

पहाड़ी लोग यह कहते हुए किसी को अपने यहाँ आमंत्रित करते हैं - 'हमारे यहाँ पधारिए। हमारे पर्वत, हमारा सागर और हमारे दिल आपकी सेवा में उपस्थित हैं। हमारी धरती-धरती है, घर-घर है, घोड़ा-घोड़ा है, आदमी-आदमी है। उनके बीच तीसरा कुछ नहीं।'

इनसान

अवार भाषा में इनसान और आजादी के लिए एक ही शब्द का उपयोग होता है। 'उज्देन' - इनसान, 'उज्देनली' - आजादी। इसलिए जब इनसान का उल्लेख किया जाता है तो यह अभिप्राय भी होता है कि वह आजाद है।

एक कब्र के पत्थर पर आलेख -

बुद्धिमान होने का उसने कभी न नाम कमाया,
बाँका वीर-सूरमा वह तो कभी नहीं कहलाया,
लेकिन उसके सम्मुख तुम सब अपना शीश झुकाओ
क्योंकि सही मानी में वह इनसान भला बन पाया।

खंजर पर आलेख -

शत्रु-भाव या मित्र-भाव से
कोई मिले कि जीवन में,
'वह इनसान', याद यह रखो
खंजरवाले, तुम मन में।

बहुत समय तक अनुपस्थित रहने के बाद एक पहाड़िया जब मातृभूमि लौटा तो उससे पूछा गया -

'यह बताओ कि वहाँ कैसा हाल-चाल है, वहाँ की जमीन कैसी है, वहाँ के तौर-तरीके कैसे हैं?'

'वहाँ इनसान रहते हैं,' पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया।

जब हाजी-मुरात और शामिल के बीच झगड़ा हो गया तो कुछ लोगों ने नायब (सहायक) यानी हाजी-मुरात को खुश करने के लिए शामिल को भला-बुरा कहना शुरू किया। कठोर संकेत से उन्हें चुप कराते हुए हाजी-मुरात ने कहा -

'खबरदार, जो ऐसे कुशब्द मुँह से निकाले। वह इनसान है और अपने झगड़े को हम खुद निपटा सकते हैं।'

हाजी-मुरात बेशक शामिल को छोड़कर चला गया, फिर भी गुनीब पहाड़ पर आखिरी लड़ाई के वक्त अपने नायब की बहादुरी और दिलेरी को याद करते हुए शामिल ने कहा -

'अब वैसे लोग नहीं रहे। वह इनसान था।'

अनेक सदियों से पहाड़ी लोग पहाड़ों में रह रहे हैं और हमेशा ही उन्हें इनसान की जरूरत महसूस होती रही है। इनसान की जरूरत है। इनसान के बिना किसी तरह भी काम नहीं चल सकता।

पहाड़ी आदमी विश्वास दिलाता है - इनसान के रूप में पैदा हुआ हूँ - इनसान के रूप में ही मरूँगा!

पहाड़ियों का यह नियम है - खेत और घर बेच दो, सारी संपत्ति खो दो, किंतु अपने भीतर के इनसान को न बेचो और न गँवाओ।

पहाड़ी लोग अपने को यों शाप देते हैं - हमारे वंश में न इनसान हो, न घोड़ा। तो पहाड़ी लोग उसे बीच में ही टोककर कहते हैं -

'उसके बारे में अपने शब्द बरबाद नहीं करें। वह तो इनसान ही नहीं है।'

जब कभी किसी आदमी की भूल, दोष-अपराध, त्रुटि-कमजोरी का जिक्र शुरू किया जाता है तो पहाड़ी लोग बीच में ही टोककर कहते हैं -

'वह इनसान है और उसके इस अपराध को माफ किया जा सकता है।'

जिस गाँव में कोई व्यवस्था नहीं होती, जो तंग और गंदा होता है, जहाँ लड़ाई-झगड़ा होता रहता है तथा जो किसी काम का नहीं होता, उसके बारे में पहाड़ी लोग कहते हैं -

'वहाँ इनसान नहीं है।'

जिस गाँव में व्यवस्था और शांति होती है, उसके बारे में कहा जाता है -

'वहाँ इनसान है।'

इनसान - यह मुख्य लक्षण, अमूल्य आभूषण और महान चमत्कार है। दागिस्तान में इनसान कहाँ से प्रकट हुआ, पहाड़ी लोगों के अनूठे कबीले की कैसे शुरुआत हुई, उसकी जड़ें कहाँ हैं? इसके बारे में बहुत-से किस्से-कहानियाँ और दंत-कथाएँ हैं। इनमें से एक मैंने बचपन में सुनी थी।

धरती पर तरह-तरह के जानवरों और परिंदों का जन्म हो चुका था तथा उनके निशान देखने को मिलते थे, मगर इनसान के पाँवों के चिह्न ही कहीं नहीं थे। तरह-तरह की आवाजें सुनाई देती थीं, लेकिन सिर्फ इनसान की आवाज सुनने को नहीं मिलती थी। इनसान के बिना धरती जबान के बिना मुँह और दिल के बिना छाती के समान थी।

इस धरती के ऊपर बड़े शक्तिशाली और बहादुर उकाब पक्षी आसमान में उड़ते रहते थे। जिस दिन की चर्चा चल रही है, उस दिन ऐसे जोर का हिमपात हो रहा था। मानो पृथ्वी के सारे पक्षियों के पंख नोचे जा रहे हों और वे हवा में उड़ रहे हों। काले बादलों ने आकाश को ढक दिया, धरती हिम से पट गई, सब कुछ गड्डमड्ड हो गया और यह समझ पाना कठिन था कि धरती कहाँ है तथा आकाश कहाँ। इस वक्त एक उकाब, जिसके पंख तलवारों जैसे और चोंच खंजर जैसी थी, अपने घोंसले की तरफ लौट रहा था।

या तो उकाब ऊँचाई के बारे में भूल गया या ऊँचाई उसके बारे में भूल गई, लेकिन उड़ते-उड़ते ही वह कठोर चट्टान से जा टकराया। अवार जाति के लोगों का कहना है कि गुनीब पर्वत पर ऐसा हुआ, लाक जातिवाले कहते हैं कि यह घटना तुर्चीदाग पर्वत पर घटी, लेज्गीन जाति के लोग विश्वास दिलाते हैं कि यह तो शाहदाग पर्वत पर हुआ था। किंतु यह घटना चाहे कहीं भी क्यों न घटी हो, चट्टान तो चट्टान है और उकाब उकाब है। व्यर्थ ही तो यह नहीं कहा जाता - 'परिंदे को पत्थर मारो - परिंदा मर जाएगा, परिंदे को पत्थर पर मारो - परिंदा मर जाएगा।'

संभवतः चट्टान पर गिरकर मरनेवाला यह पहला उकाब नहीं था। किंतु यह उकाब, जिसके पंख तलवारों जैसे थे और चोंच खंजर जैसी, चट्टान से टकराकर मरा नहीं। इसके पंख टूट गए, मगर दिल धड़कता रहा, तीखी चोंच और लोहे की तरह मजबूत पंजे ज्यों के त्यों बने रहे। इसे अपनी जिंदगी के लिए संघर्ष करना पड़ा। पंखों के बिना खुराक हासिल करना मुश्किल है, पंखों के बिना दुश्मन से

जूझना कठिन है। यह उकाब हर दिन एक पत्थर से दूसरे पत्थर और एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर अधिकाधिक ऊपर चढ़ता हुआ उसी चट्टान तक पहुँच गया जिसपर बैठकर इसे इर्द-गिर्द के पर्वतों पर नजर दौड़ाना अच्छा लगता था।

पंखों के बिना खुराक हासिल करना मुश्किल था, दुश्मन से अपने को बचाना कठिन था, ऊँचाई पर जाना और घोंसला बनाना आसान नहीं था। इन सभी कठिन कामों के दौरान उकाब की मांस-पेशियाँ बदल गईं और उसकी बाहरी शक्ल-सूरत भी बदलने लगी। जब घोंसला बन गया तो वह वास्तव में पहाड़ी घर ही था और पंखों के बिना उकाब पहाड़ी आदमी।

वह पाँवों पर खड़ा हो गया और टूटे हुए पंखों की जगह उसकी बाँहें निकल आईं। उसकी आधी चोंच सामान्य, लेकिन बड़ी नाक में बदल गई और बाकी आधी चोंच पहाड़ी आदमी की पेटी से लटकनेवाला खंजर बन गई। सिर्फ उसका दिल उसका दिल नहीं बदला, वह पहले की तरह उकाब का दिल ही बना रहा।

'तो देखा तुमने बेटे,' अम्माँ ने यह किस्सा खत्म करते हुए कहा - 'पहाड़ी आदमी बनने से पहले उकाब को कितनी अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। तुम्हें इस चीज के महत्व को समझना चाहिए।'

मैं नहीं जानता कि यह सब ऐसे ही हुआ था या नहीं, लेकिन एक बात निर्विवाद है कि परिंदों में पहाड़ी लोगों को उकाब ही सबसे ज्यादा प्यारा है। नेक और बहादुर आदमी को उकाब कहा जाता है। बेटे का जन्म होता है तो पिता यह घोषणा करता है - मेरे यहाँ उकाब का जन्म हुआ है। बेटी जब जल्दी-जल्दी और बड़ी फुर्ती से घर लौटती है तो माँ कहती है - मेरी उकाब बिटिया उड़ आई है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के समय दागिस्तान के वीरों के बारे में एक किताब लिखी गई थी जिसका शीर्षक 'पहाड़ी उकाब' था।

पुराने घरों के दरवाजों, पालनों और खंजरों पर अक्सर पच्चीकारी के रूप में या किसी अन्य रूप में उकाब की आकृति बनी दिखाई देती है।

यह सही है कि इस सिलसिले में दूसरे किस्से-कहानियाँ भी हैं।

जब इस दुनिया में भाग्य के उलट-फेर के बारे में सोचा जाता है, जब पिता मातृभूमि से दूर दूसरी दुनिया को कूच करनेवाले बेटों को याद करते हैं या जब बेटे परलोक सिधार गए पिताओं को स्मरण करते हैं तो ऐसा मानते हैं कि पहाड़ी आदमी उकाब से नहीं, बल्कि उकाब पहाड़ी आदमियों से बने हैं।

- नदियों-चट्टानों के ऊपर तुम ऊँचे उड़नेवाले
कौन तुम्हारा वंश उकाबो, अरे, कहाँ से तुम आए?
- बहुत तुम्हारे बेटे-पोते, मातृभूमि के लिए मिटे
हम उनके दिल, पंख लगाकर इस धरती पर जो आए!
- दूर गगन के अँधियारे में तुम झिलमिल करते तारो।
कौन तुम्हारा वंश बताओ और कहाँ से तुम आए?
- खेत रहे हैं रण-आँगन में, युवक तुम्हारे वीर बहुत
उनकी ही आँखों की हम तो चमक, रोशनी बन आए।

तो यही कारण है कि दागिस्तान के लोग प्यार और आशा से आकाश को ताकते हैं। उड़कर आने और उड़कर जानेवाले पक्षियों को भी वे ऐसे ही देखते हैं। पहाड़ी लोग नीलाकाश को बहुत चाहते हैं!

1942 का साल याद आ रहा है। फील्ड-मार्शल क्लेइस्ट की सेनाओं ने काकेशिया के ऊँचे स्थलों पर अधिकार कर लिया था। फासिस्टों के हवाई जहाज ग्रोज्नी शहर के खनिज-तेल के ठिकानों पर बमबारी करते थे। हमारे दागिस्तान की ऊँचाइयों से आग का धुआँ नजर आता था।

उन दिनों काकेशिया के सभी जनगण के युवजन के प्रतिनिधि ग्रोज्नी में जमा हुए। दागिस्तान के प्रतिनिधिमण्डल में मैं भी शामिल था। हमारी मीटिंग में सोवियत संघ के वीर, लेज्गीन जाति के मशहूर हवाबाजवालेन्तीन अमीरोव ने भाषण दिया। मैं न तो मंच पर से दिया गया उसका भाषण और न मीटिंग के बाद उसके साथ हुई अपनी थोड़ी-सी बातचीत ही कभी भूल सकूँगा। वहाँ से जाते वक्त उसने आँखों से आकाश की तरफ इशारा करते हुए कहा -

'वहाँ जाने की उतावली में हूँ। धरती की तुलना में मेरी वहाँ ज्यादा जरूरत है।'

दो हफ्ते बाद उसकी मौत की खबर आ गई। दागिस्तान का प्रसिद्ध सुपुत्र मौत के मुँह में चला गया, जल गया। किंतु हर बार ही, जब मैं चीख के साथ अपने सिर के ऊपर से उकाब को उड़ते हुए जाते देखता हूँ तो यह विश्वास करता हूँ कि उसके सीने मेंवालेंतीन का दहकता हुआ दिल है।

सन 1945। मास्को। हम विद्यार्थी पहाड़ी इलाके, मखाचकला की खबरें जानने के लिए मास्को में दागिस्तान के प्रतिनिधि-भवन में जाते थे। हमारा जनतंत्र उस समय अपनी रजत-जयंती मनाने की तैयारी कर रहा था। एक बार वहाँ नबी अमीनतायेव से मेरी मुलाकात हो गई। दागिस्तान में उस समय शायद ही कोई

ऐसा व्यक्ति होगा जो लाक ताति के नबी अमीनतायेव को न जानता हो। आकाश का छतरीबाज सूरमा, यह विनम्र व्यक्ति पैराशूट के सहारे अनेक बार शत्रु के क्षेत्र में उतरा था और हर बार ही सही-सलामात वापस आ गया था।

'अब तो जंग नहीं है, तुम दागिस्तान लौट आओ,' मैंने उससे कहा।

'आकाश तो है।'

कुछ दिनों के बाद 'प्राव्दा' समाचारपत्र ने उसका फोटो छापा। उसके नीचे यह लिखा था - 'नबी अमीनतायेव ने पैराशूट से छलाँगों का विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया है। नबी अमीनतायेव ने अपना रिकार्ड दागिस्तान को समर्पित किया है।'

कुछ दिनों के बाद मेरी फिर नबी से मुलाकात हुई।

'आओ, दागिस्तान चलें।'

'आकाश इतंजार कर रहा है। मैं आकाश के बिना नहीं रह सकता।'

लेकिन जिंदगी छोटी-सी है। एक बार पैराशूट ने दगा दे दिया और हमारा नबी मानो टूटे हुए पंखोंवाले उकाब की भाँति नीचे गिरकर मर गया। तब से अब तक अनेक वर्ष बीत चुके हैं, किंतु जब भी मैं आकाश में उकाब की चीख सुनता हूँ तो यही सोचता हूँ कि उसके सीने में नबी का दहकता हुआ दिल है।

सुंदर रेजेदा की भी मुझे याद आ रही है। दागिस्तान के आसमान से वह गुनीब पर्वत पर कूदी थी। उसकी खिड़की के नीचे तब कितने पंदूरा बाजे गूँज उठे थे। एक भी तो ऐसा जवान कवि नहीं था जिसने अपनी कविता उसे समर्पित न की हो। बुईनाक्स्क नगर में ईंटों का छोटा-सा पक्का घर है। उन दिनों कितनी नजरें उसकी खिड़की पर टिकी रही थीं! खूंजह, गुनीब और कुमुख गाँवों में घोड़ों पर जीन कसे गए ताकि लंबी चोटियोंवाली हसीना को अगवा कर लिया जाए। लेकिन एक लेनिनग्रादवासी आया और हमारी रेजेदा को हवाई जहाज में बिठाकर अपने साथ ले गया। उसने हवा में उड़ते हवाई जहाज से हाथ हिलाकर धरती पर रह जानेवाले अपने सभी प्रेम-दीवानों को अलविदा कह दिया। हमारे कवि मुँह बाए हुए उसे जाते देखते रहे और बाद में उस कबूतरी के बारे में कविताएँ रचने लगे जिसे उकाब अपने साथ उड़ा ले गया था...

दूसरे विश्व-युद्ध के समय रेजेदा लेनिनग्राद में थी। उसने लिखा - 'इस नगर में न केवल अब दूधिया रजत-रातें ही नहीं रहीं, बल्कि दिन भी काले हो गए। लेनिनग्राद आग की लपटों में है। मैं भी लपटों से घिरी हुई हूँ। धुएँ और आग में से आकाश को देखती हूँ। किंतु आकाश में भी लड़ाई चल रही है। मेरे पति सेईद

अनेक बार दुश्मन के चंडावल में जा चुके हैं। अब मैं इस सूचना के तीन पत्र पा चुकी हूँ कि वह वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। वह शत्रु के चंडावल में उतरने डाक्टर थे। मेरे पास वे लोग आते रहते हैं जिनकी उन्होंने जानें बचाईं।'

रेजेदा दागिस्तान लौट आई। अपने दागिस्तान के आकाश में जब वह उकाब की चीख सुनती है तो यही सोचती है कि उसके सीने में सेईद का दहकता हुआ दिल है।

मेरे भाई अखील्ची... तुम तो एकदम धरती से संबंधित, कृषि-संस्थान में शिक्षा पा रहे थे... किंतु युद्ध के समय तुमने आकाश को चुना, हवाबाज बन गए। काले सागर के ऊपर तुमने वीरगति पाई। उस वक्त तुम्हारी उम्र बाईस साल थी। मैं यह जानता हूँ कि तुम अपने जन्मस्थान के प्यारे पहाड़ी घर में अब कभी नहीं लौटोगे। किंतु हर बार ही जब मेरे ऊपर कहीं उकाब की चीख सुनाई देती है तो मैं यह मानता हूँ कि यह अखील्ची का दिल है जो मुझसे, अपने भाई से कुछ कह रहा है।

दागिस्तान के आकाश में उकाब उड़ते रहते हैं। बड़ी संख्या है उनकी। किंतु ऐसे वीरों की संख्या भी कुछ कम नहीं है जिन्होंने मातृभूमि के लिए अपनी जानें कुर्बान की हैं। उकाब की हर चीख में बहादुरी और दिलेरी की ललकार होती है। हर चीख - यह लड़ाई में कूदने का आह्वान होती है।

मैं जानता हूँ कि यह सुंदर किस्सा, मनगढ़ंत कहानी है। लोग चाहते हैं कि ऐसा ही हो। किंतु एक व्यक्ति को, जो बहुत ऊँचाई पर चढ़ गया था, आंदी जाति के एक आदमी ने कहा -

'इनसान बनने के लिए उकाब तक धरती पर उतर आते हैं। तुम भी अपनी ऊँचाइयों से नीचे आओ। सभी लोगों का यहाँ, धरती पर जन्म हुआ है। पहाड़िया इसीलिए पहाड़िया कहलाता है कि वह पहाड़ों का, धरती का आदमी है। हमारे यहाँ 'उड़ना' शब्द बहुत पसंद किया जाता है। घुड़सवार सरपट घोड़ा दौड़ाता है तो हम कहते हैं - उड़ा आ रहा है। गीत या गाना उड़ रहा है। हमारे अधिकतर गीत-गाने उकाबों के बारे में हैं।'

अनेक बार मेरी इस बात के लिए आलोचना की गई है कि अपनी कविताओं में मैं अक्सर उकाबों का जिक्र करता हूँ। लेकिन अगर दूसरे पक्षियों की तुलना में मुझे उकाब ज्यादा अच्छे लगते हैं तो मैं क्या करूँ? वे दूर-दूर तक और ऊँची उड़ान भरते हैं, जबकि दूसरे पक्षी जुआर-बाजरे के दानों के पास ही दौड़-धूप

करते और चहकते रहते हैं। उकाबों की आवाज भी ऊँची और साफ है। जैसे ही ठंड शुरू होती है, वैसे ही दूसरे पक्षी दागिस्तान के साथ गद्दारी करके पराये क्षेत्रों को उड़ जाते हैं। लेकिन उकाब तो कभी अपनी मातृभूमि को नहीं छोड़ते, चाहे कैसा भी मौसम क्यों न हो, गोलियों की कितनी ही ठाँय-ठाँय चाहे कैसी भी दहशत क्यों न पैदा करे। उकाबों के लिए गर्म, स्वास्थ्यप्रद स्थानों का अस्तित्व नहीं है। दूसरे पक्षी हर समय जमीन के साथ चिपके रहते हैं, एक छत से दूसरी छत और धुएँ की एक चिमनी से दूसरी पर, एक खेत से दूसरे में उड़ते रहते हैं। किसी छोटे-से दर्रे को हमारे यहाँ पक्षी का दर्रा कहते हैं।

किसी बहुत बड़ी चट्टान को हमारे यहाँ उकाब की चट्टान कहा जाता है।

इस धरती पर जन्म लेनेवाला हर आदमी इनसान नहीं होता। उड़नेवाला हर परिंदा उकाब नहीं होता।

पहाड़ी उकाब

...शक्ति और गरिमा से मेरी धरती ओत-प्रोत है
तरह-तरह के विहग कि जिनके प्यारे, मधुर तराने हैं,
उनके ऊपर उड़ते रहते, विहग देवताओं जैसे
वे उकाब, जिनके बारे में बहुत गीत हैं, गाने हैं।

इसी हेतु कि उनकी ऊँचे नभ में झलक मिले
बने संतरी रहें, भयानक, दुर्दिन जब आएँ;
दूर, पहुँच के बाहर जो ऊँची-ऊँची चट्टानें हैं
वे रहते हैं वहीं, नीड़ उनके नभ छू जाएँ।

कभी अकेला, बड़े गर्व से वह उड़ान जब भरता है,
धुंध-कुहासे को पंखों से चीर-चीर तब बढ़ता है,
और कभी खतरे में मानो झुंड, बड़ा-सा दल उनका
नीले सागर और महासागर के ऊपर उड़ता है।

बहुत दूर, ऊँचाई पर वे धरती के ऊपर उड़ते
अपनी तेज नजर से जैसे रक्षक वन भू को तकते
भारी, गहरे स्वर में उनकी चीख, किलक सुनकर कौवे
दूर भाग जाते हैं डरकर, दिल उनके धक-धक करते।

उसी तरह से मैं घंटों तक, जैसे अपने बचपन में
हिम से मढ़े हुए शिखरों को, देख अभी भी सकता हूँ,
कैसे उड़ते हैं उकाब, फैलाकर अपने पंख वहाँ
किसी प्रेम-दीवाने-सा मैं, मुग्ध अभी हो सकता हूँ।

कभी पहाड़ों पर से अपनी नजर दूर दौड़ाते हैं
और कभी स्तेपी-मैदानों में वे उड़ते जाते हैं
सबसे अधिक दिलेर, साहसी पर्वतवासी जो होते
ये उकाब मेरी धरती के, सभी जगह कहलाते हैं।

जापानी लोग सारसों को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण पक्षी मानते हैं। उनमें ऐसा माना जाता है कि अगर कोई बीमार आदमी कागज के एक हजार सारस बना लेता है तो वह स्वस्थ हो जाएगा। उड़ते हुए सारसों, खास तौर पर फूजीयामा पर्वत के ऊपर से उड़े जा रहे सारसों के साथ जापानी लोग अपनी खुशियों और गमों, मिलन और जुदाई, सपनों और प्यारी स्मृतियों के सूत्र-संबंध जोड़ते हैं।

सारस मुझे भी अच्छे लगते हैं। फिर भी जब जापानियों ने मुझसे यह पूछा कि कौन-सा पक्षी मुझे सबसे ज्यादा प्यारा लगता है तो मैंने जवाब दिया - उकाब। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा।

लेकिन कुछ ही समय बाद टोकियो में आयोजित प्रतियोगिता में जब हमारा पहलवान अली अलीयेव विश्व-चैंपियन बन गया तो मेरे एक जापानी दोस्त ने मुझसे कहा -

'आपके उकाब कुछ बुरे परिंदे नहीं हैं।'

अपने पहाड़ी लोगों से मैंने तुर्की के आकाश में उकाबों और सारसों के बीच हुई लड़ाई की चर्चा की। जब मैंने उन्हें यह बताया कि इस लड़ाई में उकाब हार गए तो पहाड़ी लोग हैरान रह गए और कुछ तो बुरा भी मान गए। उन्होंने मेरे शब्दों पर विश्वास नहीं करना चाहा। मगर जो सचाई थी, वह तो सचाई ही थी।

'तुम ठीक नहीं कह रहे हो, रसूल,' आखिर एक पहाड़िये ने कहा। 'शायद उकाब लड़ाई में हारे नहीं, बल्कि सभी मारे गए। मगर यह तो बिल्कुल दूसरी बात है।'

दो बार सोवियत संघ के वीर की उपाधि से सम्मानित मेरा एक मशहूर दोस्त था - अहमदखान सुलतान। उसके पिता दागिस्तानी और माँ तातार थी। वह मास्को में रहता था। दागिस्तानी उसे अपना और तातार उसे अपना वीर मानते थे।

'तुम किसके वीर हो?' मैंने एक बार उससे पूछा।

'मैं न तो तातारों और न दागिस्तान की लाक जाति के लोगों का ही वीर हूँ। मैं तो सोवियत संघ का वीर हूँ। किसका बेटा हूँ? अपने माता-पिता का। क्या उन्हें एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है? मैं - इनसान हूँ।'

शामिल ने अपने सेक्रेटरी मुहम्मद ताहिर अल-काराही से एक बार पूछा -

'दागिस्तान में कितने लोग रहते हैं?'

मुहम्मद ताहिर ने आबादी के आँकड़ों की किताब लेकर उनकी संख्या बता दी।

'मैं असली इनसानों के बारे में पूछ रहा हूँ,' शामिल ने झुँझलाकर कहा।

'लेकिन मेरे पास ऐसे आँकड़े तो नहीं हैं।'

'अगली लड़ाई में उनकी गिनती करना नहीं भूलना,' इमाम ने हुक्म दिया।

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है - 'किसी इनसान की असली कीमत जानने के लिए निम्नांकित सात से उसके बारे में पूछना चाहिए -

1. मुसीबत से।
2. खुशी से।
3. औरत से।
4. तलवार से।
5. चाँदी से।
6. बोतल से।
7. खुद उससे।

हाँ, इनसान और आजादी, इनसान और इज्जत, इनसान और बहादुरी - इन सबका एक ही अर्थ है। पहाड़ी लोग इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि उकाब दुरंगी चाल चलनेवाला भी हो सकता है। वे कौवे को दुरंगा मानते हैं।

इनसान - यह तो केवल नाम नहीं, उपाधि है, सो भी बहुत ऊँची और इसे हासिल करना कुछ आसान नहीं।

कुछ ही समय पहले मैंने बोत्लीख में एक औरत को ऐसे मर्द के बारे में, जो किसी लायक न हो, यह गीत गाते सुना -

तुममें कुछ तो घोड़े जैसा
कुछ है भेड़ समान,
अंश चील का, और लोमड़ी
की होती पहचान।
कुछ मछली-सा, किंतु वीरता
उसका नहीं निशान,
कहाँ मान-सम्मान?

एक अन्य नारी के मुँह से मैंने झूठे और कपटी पुरुष के बारे में यह गीत सुना -

तुम हो मानव, मैंने सोचा
राज कहा तुमसे खुलकर,
तुम अखरोट, गिरी बिन निकले
खड़ी अकेली मैं पथ पर।
बहुत देर से तुमको समझी
मेरा ही यह दोष, मगर
तन के बिना लबादा हो तुम
टोपीवाले, किंतु न सिर।

अपने लिए वर की तलाश करनेवाली युवती ने शिकवा करते हुए कहा -

'अगर मुझे समूर की टोपी पहननेवाले वर की तलाश होती तो मैंने उसे कभी का खोज लिया होता। अगर मूँछोंवाले वर की तलाश होती तो वह भी कभी का मिल गया होता। मैं इनसान की तलाश में हूँ।'

पहाड़ी लोग जब भेड़ खरीदते हैं तो उसकी दुम, ऊन और मोटापे या चर्बी की तरफ ध्यान देते हैं। जब वे घोड़ा खरीदते हैं तो उसके थूथन, टाँगों और पूरी बाहरी आकृति को जाँचते-परखते हैं। लेकिन इनसान का कैसे मूल्यांकन किया जाए? उसके किन लक्षणों की ओर ध्यान दिया जाए? उसके नाम और काम की ओर... प्रसंगवश यह बताना भी उचित होगा कि अवार भाषा में 'नाम' शब्द के दो अर्थ हैं। पहला अर्थ तो नाम ही है और दूसरा अर्थ है किसी आदमी का काम, उसकी

योग्यता-सेवा, उसके वीर-कृत्य। जब हमारे यहाँ बेटे का जन्म होता है तो यही कामना की जाती है - 'उसका काम उसका नाम पैदा करे।' किसी बड़े काम या उपलब्धि के बिना नाम तो निरर्थक ध्वनि है।

अम्माँ मुझे सीख दिया करती थीं - नाम से बड़ा कोई पुरस्कार नहीं, जिंदगी से बड़ा कोई खजाना नहीं। इसे सहेजकर रखो।

सींगी पर आलेख :

साल हजारों-लाखों बीते
धीरे-धीरे तब बंदर
मानव बना, पियक्कड़ फिर से
बना जानवर, हाय, मगर!

शामिल ने जब गुनीब पहाड़ पर मजबूत किलेबंदी कर ली तो उसे पराजित करना किसी तरह भी संभव नहीं रहा। किंतु एक ऐसा गद्दार निकल आया जिसने दुश्मन को गुप्त पगडंडी दिखा दी। फील्ड-मार्शल प्रिंस बर्यातीन्स्की ने इस पहाड़िये को बहुत-सा सोना इनाम दिया।

बाद में जब बंदी शामिल कालूगा पहुँच चुका था तो यह गद्दार अपने घर लौटा। लेकिन उसके पिता ने कहा -

'तू गद्दार है, पहाड़िया नहीं, इनसान नहीं। तू मेरा बेटा नहीं।'

इतना कहकर उसने उसकी हत्या कर दी, गला काट दिया और सोने के साथ उसे चट्टान से नदी में फेंक दिया। देशद्रोही का पिता भी अब अपने इस गाँव में नहीं रह सकता था और लोगों से नजरें नहीं मिला सकता था। बेटे के कारण उसका सिर भी शर्म से झुक जाता था। वह कहीं चला गया और तब से उसका कोई अता-पता नहीं।

उस जगह के करीब से गुजरते हुए, जहाँ गद्दार का सिर फेंका गया था, पहाड़ी लोग आज तक पत्थर फेंकते हैं। कहा जाता है कि इस चट्टान के ऊपर से उड़ते हुए परिंदे भी 'गद्दार, गद्दार!' चिल्लाते हैं।

एक बार मखाच दाखादायेव अपनी सेना में सैनिक भर्ती करने के लिए गाँव में आया। गोदेकान में उसने दो पहाड़ी लोगों को ताश खेलते देखा।

'अससलामालेकुम। आपके मर्द लोग कहाँ हैं, उन्हें जरा इकट्ठा करो।'

'हमारे सिवा गाँव में और कोई मर्द नहीं है।'

'भई वाह! मर्दों के बिना भी क्या गाँव! कहाँ हैं वे?'

'लड़ रहे हैं।'

'तो यह बात है! इसका यह मतलब हुआ कि आप दोनों के सिवा आपके गाँव में बाकी सब मर्द हैं।'

अबूतालिब के साथ एक बार यह किस्सा हुआ। एक घड़ीसाज के यहाँ वह घड़ी ठीक करवाने गया। इस वक्त घड़ीसाज करीब बैठे हुए एक नौजवान की घड़ी की मरम्मत करने में व्यस्त था।

'बैठो,' घड़ीसाज ने अबूतालिब से कहा।

'देख रहा हूँ कि तुम्हारे पास लोग बैठे हैं। मैं फिर कभी आ जाऊँगा।'

'तुम्हें लोग कहाँ दिखाई दे गए?' घड़ीसाज ने हैरान होकर पूछा।

'यह नौजवान?'

'अकर यह सही मानी में इनसान होता तो तुम्हारे यहाँ आते ही उठकर खड़ा हो जाता और अपनी जगह पर तुम्हें बिठा देता... दागिस्तान को इस बात से क्या लेना-देना है कि इस निकम्मे की घड़ी ठीक वक्त बताती है या नहीं, लेकिन तुम्हारी घड़ी ठीक ढंग से चलनी चाहिए।' अबूतालिब ने बाद में बताया कि जब उसे दागिस्तान के जन-कवि की उपाधि दी गई तो उस वक्त उसे इतनी खुशी नहीं हुई थी जितनी इस घड़ीसाज की दुकान पर।

दागिस्तान में तीस जातियों के लोग रहते हैं, किंतु कुछ बुद्धिमान यह दावा करते हैं कि दागिस्तान में सिर्फ दो आदमी रहते हैं।

'यह कैसे मुमकिन है?'

'बिल्कुल मुमकिन है। एक अच्छा आदमी और एक बुरा आदमी।'

'अगर इसी दृष्टिकोण से देखा जाए,' दूसरे ने उसकी भूल सुधारी, 'तो दागिस्तान में सिर्फ एक आदमी रहता है, क्योंकि बुरे आदमी तो आदमी नहीं होते।'

कुशीन के कारीगर समूर की टोपियाँ बनाते हैं। किंतु कुछ लोग तो उन्हें सिरों पर पहनते हैं, जबकि दूसरे खूँटियों पर टाँगते हैं।

अमगूजिन के लुहार खंजर बनाते हैं। लेकिन कुछ तो उन्हें अपनी पेटियों में लटकाते हैं और कुछ कीलों पर।

आंदी के कारीगर लबादे बनाते हैं। मगर कुछ तो उसे बुरे मौसम में पहनते हैं, जबकि दूसरे संदूकों में छिपाते हैं।

लोगों के बारे में भी यही सही है। कुछ तो हमेशा काम-काज में जुटे रहते हैं, धूप और हवा का सामना करते हैं, जबकि दूसरे संदूक में बंद लबादे, खूँटी पर लटकी समूर की टोपी और कील पर लटके खंजर के समान हैं।

एक प्रकार से यों कहा जा सकता है मानो तीन प्रकार के बुद्धिमान बुजुर्ग दागिस्तान पर नजर टिकाए हुए हैं। वे मानो कई सदियों तक जी चुके हैं, उन्होंने सब कुछ देखा है और वे सब कुछ जानते हैं। उनमें से एक इतिहास की गहराई में जाकर, प्राचीन कब्रों पर नजर डालकर और आकाश में उड़ते पक्षियों के बारे में सोचते हुए कहता है - 'दागिस्तान में कभी असली इनसान थे।' दूसरे बुजुर्ग आज की दुनिया पर नजर डालते, दागिस्तान में जगमगाती बत्तियों की ओर इशारा करते और दिलेरों-बहादुरों के नाम लेते हुए कहता है - 'हाँ, दागिस्तान में इनसान हैं।' तीसरे ढंग का बुजुर्ग मन ही मन भविष्य पर नजर डालते, उस नींव का मूल्यांकन करते हुए जो हमने भविष्य के लिए आज रखी है, यह कहता है - 'दागिस्तान में कभी इनसान होंगे।'

संभवतः तीनों प्रकार के बुजुर्ग सही हैं।

कुछ समय पहले विख्यात अंतरिक्ष-नाविक आंद्रियान निकोलायेव दागिस्तान में पधारा। वह मेरे घर भी आया। मेरी छोटी बिटिया ने पूछा -

'क्या दागिस्तान का अपना अंतरिक्ष-नाविक नहीं है?'

'नहीं है,' मैंने जवाब दिया।

'होगा?'

'हाँ, होगा!'

इसलिए होगा कि बच्चे जन्म लेते हैं, कि हम उन्हें नाम देते हैं, कि वे बड़े होते हैं और हमारे देश के साथ कदम मिलाकर चलते हैं। हर कदम के बढ़ने पर वे अपने वांछित लक्ष्य के करीब पहुँचते जाते हैं। हमारी तो यही कामना है कि दूसरी जगहों पर दागिस्तान के बारे में वैसा ही कहा जाए, जैसा हम उस गाँव के संबंध में कहते हैं जिसमें व्यवस्था और शांति है - वहाँ इनसान है।

जनगण

'यह बताओ कि क्या अमरीका हमारे देश जितना ही बड़ा है? वहाँ ज्यादा आबादी है या हमारे यहाँ?' 1959 में अमरीका से लौटने पर मेरी माँ ने मुझसे पूछा।

शोर किए बिन बहलाए जो मन अपना
बिना आँसुओं के ही जो रो सकता है,
आह भरे बिन जो चुपके से मर जाए
ऐसा व्यक्ति पहाड़ी, ऐसी जनता है।

रात के सन्नाटे और सो रहे गाँव में चाहे पानी बरस रहा हो या अच्छा मौसम हो, खिड़की पर हल्की-सी दस्तक होती है।

'अरे, यहाँ कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो!'

'तुम कौन हो?'

'अगर यह पूछ रहे हो कि 'कौन' हूँ तो घर पर ही रहो। तुमसे कोई फायदा नहीं होगा।'

फिर दूसरी खिड़की पर दस्तक होती है - ठक, ठक।

'अरे, इस घर में क्या कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो!'

'कहाँ जाने को? किसलिए?'

'अगर 'कहाँ' और 'किसलिए' पूछते हो तो घर पर ही रहो। तुमसे कोई फायदा नहीं होगा।'

तीसरी खिड़की पर दस्तक होती है।

'अरे, इस घर में क्या कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो!'

'अभी। मैं तैयार हूँ।'

तो यह मर्द है, यह पहाड़ी आदमी है! और ये दोनों चल देते हैं। फिर ठक, ठक। 'यहाँ कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो।' और अब वे दो नहीं, तीन नहीं, दस नहीं, बल्कि सैकड़ों और हजारों हैं। उकाब के पास उकाब उड़ आया, एक व्यक्ति के पीछे दूसरा व्यक्ति चल दिया। ऐसे दागिस्तान के जनगण, इसकी जनता ने रूप ग्रहण किया। घाटी से आनेवाली हवाएँ पालने झुलाती हैं, पहाड़ी नदियाँ लोरियाँ गाती हैं -

तुम कहाँ गए थे, डिंगीर-डांगारचू?
वन में गया था डिंगीर-डांगारचू।

बेटे का जन्म हुआ - उसके तकिये के नीचे खंजर रख दिया गया। खंजर पर यह लिखा था - 'तुम्हारे पिता का ऐसा हाथ था कि जिसमें तुम नहीं काँपते थे। क्या तुम्हारा हाथ भी ऐसा ही होगा?'

बिटिया का जन्म हुआ, पालने के ऊपर एक घंटी लटका दी गई जिस पर लिखा था - 'सात भाइयों की बहन होगी।'

एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर फैलाई गई रस्सियों के सहारे घाटी में पालने झूलते हैं। बेटे बड़े हो रहे हैं, बेटियाँ भी बड़ी हो रही हैं। दागिस्तान के जनगण बड़े हो गए, उनकी मूँछें भी बड़ी हो गईं, अब उन पर ताव दिया जा सकता है।

दागिस्तान में सोलह लाख 72 हजार लोग हो गए। दूर-दूर के पहाड़ों तक उनकी ख्याति फैल गई, इस ख्याति से कभी न तृप्त होनेवाले विजेताओं के मुँह में पानी भर आया और उन्होंने दागिस्तान की तरफ अपने लालची हाथ बढ़ाए।

दागिस्तानियों ने कहा - 'हमें हमारे घरों में माता-पिताओं और पत्नियों के साथ चैन से रहने दो। हमारी संख्या तो यों ही कम है।'

लेकिन दुश्मनों ने जवाब दिया - 'अगर तुम्हारी संख्या कम है तो हम तुम्हारे दो-दो टुकड़े कर देंगे और तुम्हारी संख्या दुगुनी हो जाएगी।'

लड़ाइयाँ शुरू हो गईं।

दागिस्तान में ज्वालाएँ भड़कने लगीं, दागिस्तान धू-धू करके जलने लगा। पहाड़ी ढालों, घाटियों-दर्रों में और चट्टानों पर दागिस्तान के सबसे अच्छे एक

लाख सपूत, एकदम जवान, मजबूत और दिलेर बेटे खेत रहे।

लेकिन दस लाख दागिस्तानी जिंदा बच गए। हवाएँ पहले की तरह ही पालनों को झुलाती रहीं, लोरियाँ गाई जाती रहीं। एक लाख नए दागिस्तानी बेटे बड़े हो गए। उन्हें खेत रहे वीरों के नाम दे दिए गए। तभी दागिस्तान पर हमला कर दिया गया।

बहुत बड़ी लड़ाई हुई, लड़ाई का बहुत बड़ा शोर-गुल रहा। कटे हुए सिर पत्थरों की भाँति दर्रों-घाटियों में लुढ़कते रहे। दागिस्तान के सबसे अच्छे एक लाख सपूत शहीद हो गए। एक लाख सैनिक, एक लाख हलवाहे, एक लाख वर, एक लाख पिता।

किंतु दस लाख जिंदा रह गए। पालने झूलते रहे, गाने गाए जाते रहे, जवान सूरमा अपनी प्रेयसियों को भगाकर ले जाते रहे, एक ही लबादे के नीचे तन गर्माते और आलिंगन करते रहे, दागिस्तान की वंश-वृद्धि करते रहे। एक लाख नए बेटे-बेटियों का जन्म हुआ, एक लाख हँसिए, खंजर, पंदूरे और खंजड़ियाँ सामने आ गईं।

तब एक नया युद्ध आरंभ हुआ। घाटियों में और पहाड़ी रास्तों पर तोपें दनदना उठीं। पहाड़ी वनों की ढालों पर कुल्हाड़े चलने की आवाजें होने लगीं। संगीनें चमक उठीं, गोलियाँ ठाँय-ठाँय करने लगीं।

तब उराल से, रे डेन्यूब तक
चौड़े-चौड़े नदी-पाट तक
बढ़ती जाती थीं सेनाएँ
संगीनों की चमक दिखाएँ।
श्वेत टोपियाँ लहराती थीं
हरी घास-सी बल खाती थीं।
घोड़े जिनके धूल उड़ाते
वे उलान भी बढ़ते जाते
सजी-धजी वे, सटी-सटी वे
कदम मिला चलतीं सेनाएँ,
झंडे उनके आगे फहरें
और ढोलची ढोल बजाएँ।
तोपें उनकी शोर मचाएँ
वे दनदन गोले बरसाएँ।

वहाँ पलीते भी जलते हैं
धाँय-धाँय गोले चलते हैं
पके हुए बालोंवाला वह
जनरल करता है अगुआई
उसकी आँखों में शोले हैं
आग नजर में पड़े दिखाई।
बढ़ती जाती हैं सेनाएँ
जैसे तेज, प्रबल धाराएँ,
वे मेघों-सी उमड़ रही हैं
घोर घटा-सी घुमड़ रही हैं,
वे पूरब को बढ़ती जाएँ
वे मंसूबे बुरे बनाएँ।
कज्बेक दुख, चिंता में डूबा
दुश्मन को देखे, घबराए,
गिनती करना चाहे इनकी
किंतु नहीं इनको गिन पाए।

हाँ, उनकी गिनती करना कठिन था। हमारे गीतों में यह गाया जाता है कि हमारे एक व्यक्ति को एक सौ शत्रुओं का सामना करना पड़ा। 'एक हाथ कट जाता तो वह दूसरे हाथ से लड़ता, सिर कट जाता तो उसका धड़ लड़ता रहता,' बूढ़े उस युद्ध के बारे में ऐसा बताते थे। मरे हुए घोड़ों से रास्ते और दर्रे रोक दिए जाते थे, सैनिक ऊँची-ऊँची चट्टानों से संगीनों पर कूदते थे। हमसे यह कहा जाता था कि खून बहाना बंद करो। विरोध करने में काई तुक नहीं। कहाँ जाओगे तुम? तुम्हारे पंख नहीं हैं कि आसमान में उड़ जाओ। तुम्हारे ऐसे नाखून नहीं हैं कि धरती को खोदकर उसमें समा जाओ।

लेकिन शामिल जवाब देता था।

'मेरी तलवार-पंख है। हमारे खंजर और तीर - हमारे नाखून हैं।'

पचीस साल तक पहाड़ी लोग शामिल के नेतृत्व में लड़ते रहे। इन सालों के दौरान न केवल दागिस्तान का बाहरी रंग-रूप बदला, बल्कि स्थानों और नदियों के नाम भी बदल गए। अवार-कोइसू का नाम कारा-कोइसू यानी काली नदी हो गया। 'घायल चट्टानें' और 'मौत का दर्रा' प्रकट हो गया, वालेरिक नदी विख्यात हो

गई, शामिल की पगडंडी, शामिल का मार्ग और शामिल का नाच लोगों की स्मृति में अंकित होकर रह गए।

गुनीब पर्वत उस युद्ध के अपार दुख का चरमबिंदु बनकर रह गया है। इमाम ने इसी की चोटी पर आखिरी बार इबादत की। इबादत के वक्त ऊपर उठे हुए हाथ में गोली लग गई। शामिल सिहरा नहीं और उसने अपनी नमाज जारी रखी। इमाम शामिल के घुटनों और उस शिला पर, जिस पर वह खड़ा था, खून गिरता रहा। घायल इमाम ने अपनी नमाज पूरी की। जब वह उठकर खड़ा हुआ तो लोगों ने कहा -

'तुम घायल हो, इमाम।'

'यह घाव तो मामूली-सा है। ठीक हो जाएगा।' शामिल ने मुट्ठी भर घास तोड़ी और हाथ से बह रहा खून पोंछने लगा। 'दागिस्तान लहूलुहान हो रहा है। इस घाव का इलाज कहीं ज्यादा मुश्किल है।'

इसी कठिन घड़ी में इमाम ने सहायता के लिए अपने उन वीरों का आह्वान किया जो बहुत पहले ही कब्रों में जा चुके थे। उसने उनसे अपील की जिन्होंने अखूल्गो में अपने प्राण दिए, उनसे जो खूँजह में अपने प्राण दे चुके थे, उनसे जो साल्टी गाँव के करीब पथरीली धरती पर मृत पड़े रहे, उनसे जो गेर्गोबिल में दफन हैं, उनसे जो दार्गो में वीरगति को प्राप्त हुए।

इमाम शामिल ने अपने ही गाँववासी और अग्रज, पहले इमाम काजी-मुहम्मद, लंगड़े हाजी-मुरात, अलीबेकीलाव, अखबेर्दीलाव और अनेक अन्य वीरों को याद किया। इनमें से कोई सिर के बिना, कोई हाथ के बिना और कोई गोलियों से छलनी हुए दिल के साथ दागिस्तान की धरती में दफन पड़ा है। युद्ध का मतलब है मौत। दागिस्तान के एक लाख सबसे अच्छे सपूत।

लेकिन शामिल विशाल रूस की धरती से गुजरते हुए लगातार यही दोहराता रहा -

'दागिस्तान छोटा है, हमारे लोगों की संख्या कम है। काश, मेरे पास एक हजार सूरमा और होते।'

वेर्खनी (ऊपरवाले) गुनीब में वह पत्थर अभी तक सुरखित है जिस पर लिखा है - 'प्रिंस बर्यातीन्स्की ने इसी पर बैठकर बंदी शामिल से बातचीत की थी।'

'तुम्हारी सारी कोशिशें, तुम्हारा सारा संघर्ष बेकार रहा,' प्रिंस बर्यातीन्स्की ने अपने कैदी से कहा।

'नहीं, बेकार नहीं रहा,' शामिल ने जवाब दिया। 'लोगों के दिलों में उसकी याद बनी रहेगी। मेरे संघर्ष ने अनेक जानी दुश्मनों को भाई बना दिया, आपस में शत्रुता रखनेवाले अनेक गाँवों में मित्रता पैदा कर दी, एक-दूसरे से बैर रखने और 'मेरे लोग' 'मेरी जाति' की रट लगानेवाले बहुत-से जनगण को एकजुट कर दिया। मैंने मातृभूमि, अखंड दागिस्तान की भावना पैदा कर दी और उसे अपने वंशजों के लिए छोड़े जा रहा हूँ। क्या यह कम है?'

मैंने पिता जी से पूछा -

'किसलिए दुश्मनों ने हमारे देश पर हमला किया, खून बहाया, द्वेष और घृणा के बीज बोए? किसलिए उन्हें दागिस्तान की जरूरत थी जो प्यार-मुहब्बत से अनजान भेड़िए के बच्चे जैसा है?'

'मैं तुम्हें एक बहुत ही अमीर आदमी का किस्सा सुनाता हूँ। हाँ, वह आदमी बेहद अमीर था। एक टीले पर चढ़कर उसने जब सभी तरफ नजर दौड़ाई तो देखा कि पहाड़ के दामन से सागर-तट तक सारी घाटी में उसी के भेड़ों के रेवड़ चर रहे हैं। उसके मवेशियों और तेज घोड़ों के झुंडों का भी कोई अंत नहीं था। हवा में उसी के मेमनों की आवाजें गूँज रही थीं। इस अमीर आदमी का दिल खुशी से नाच उठा कि सारी जमीन उसकी है और उस जमीन पर सारे पशु भी उसी के हैं।

'लेकिन इस अमीर आदमी को तभी अचानक जमीन का एक ऐसा टुकड़ा दिखाई दिया जो खाली पड़ा था और जिस पर उसके पशुओं का झुंड नहीं था। यह देखकर उसका दिल ऐसे टीस उठा मानो किसी ने उसके दिल में गहरा घाव कर दिया हो। अमीर आदमी गुस्से में आकर भयानक आवाज में चिल्ला उठा - 'अरे! वह बालों से वंचित होनेवाली खाल के समान जमीन का टुकड़ा खाली क्यों पड़ा है? क्या उसे भरने के लिए मेरे यहाँ काफी भेड़ें नहीं हैं? मेरे रेवड़ उधर भेज दो, मेरे पशुओं-घोड़ों के झुंड उधर हाँक दो!'

मगर मेरे पिता जी को खुद शामिल के बारे में बातें सुनाना कहीं ज्यादा पसंद था।

मिसाल के तौर पर यह कि शामिल ने एक दिलेर डाकू पर कैसे जीत हासिल की।

एक बार अपने मुरीदों के साथ इमाम एक गाँव में गया। गाँव के बुजुर्ग-मुखिया लोग उसके साथ कटुता से मिले। वे बोले -

'हम जंग से तंग आ गए हैं। हम अमन-चैन से रहना चाहते हैं। अगर तुम न होते तो हमने बहुत पहले ही जार से सुलह कर ली होती।'

'अरे तुम लोग, जो कभी पहाड़ी होते थे! तुम लोग क्या दागिस्तान की रोटी खाना और उसके दुश्मनों की खिदमत करना चाहते हो? क्या मैंने तुम्हारे अमन-चैन में खलल डाला है? मैं तो उसकी रक्षा कर रहा हूँ।'

'इमाम, हम भी दागिस्तानी हैं, लेकिन देख रहे हैं कि इस लड़ाई से दागिस्तान का कोई भला नहीं हो रहा और आगे भी नहीं होगा। केवल हठधर्मी से तो कुछ हासिल नहीं हो सकेगा।'

'तुम दागिस्तानी हो? रहने की जगह की दृष्टि से तो तुम दागिस्तानी हो, लेकिन तुम्हारे दिल खरगोशों जैसे हैं। तुम्हें अपने चूल्हों में उस वक्त कोयले हिलाना अच्छा लगता है, जब दागिस्तान खून से लथपथ हो रहा है। अपने गाँव का फाटक खोल दो वरना हम अपनी तलवारों से उसे खोल लेंगे!'

गाँव के बुजुर्ग-मुखिया बहुत देर तक इमाम से बातचीत करते रहे और आखिर उन्होंने उसे अपने गाँव में आने की अनुमति देने और एक सम्मानित मेहमान के रूप में उसका स्वागत-सत्कार करने का निर्णय किया। इसके बदले में शामिल ने उन्हें वचन दिया कि वह इस गाँव के एक भी व्यक्ति की हत्या नहीं करेगा और पुराने मनमुटावों-झगड़ों को अपनी जबान पर नहीं लाएगा। इमाम शामिल अपने एक वफादार दोस्त के पहाड़ी घर में ठहरा और गाँव के बुजुर्ग-मुखियों के साथ बातचीत करते हुए उसने यहाँ कुछ दिन बिताए।

इसी वक्त इस गाँव और इसके आस-पास के क्षेत्रों में दो मीटर से भी अधिक लंबे कद का एक महाबली, एक भयानक डाकू लूट-मार करता था। वह किसी भेद-भाव के बिना सभी को लूटता था, लोगों से उनका अनाज, ढोर-डंगर और घोड़े छीन लेता था, गाँववालों की हत्याएँ करता था और उन्हें डराता-धमकाता था। उसके लिए कुछ भी पावन-पवित्र नहीं था। अल्लाह, जार और इमाम - इन शब्दों का उसके लिए कोई अर्थ नहीं था।

चुनांचे गाँव के बुजुर्ग-मुखियों ने शामिल से अनुरोध किया -

'इमाम, किसी तरह हमें इस लुटेरे से मुक्ति दिला दो।'

'किस तरह मुक्ति दिलाऊँ मैं तुम्हें इससे?'

'इसे मार डालो, इमाम, मार डालो। इसने तो खुद बहुत-से लोगों की हत्या की है।'

'मैंने तो तुम्हारी पंचायत को इस गाँव में एक भी व्यक्ति की हत्या न करने का वचन दिया है। मुझे अपना वचन निभाना चाहिए।'

'इमाम, हमें इस दुष्ट से मुक्ति दिलाने का कोई उपाय सोच निकालिए!'

कुछ दिनों के बाद शामिल के मुरीदों ने इस लुटेरे को घेर लिया, पकड़कर उसकी मुश्कें बाँध दीं और गाँव में लाकर तहखाने में बंद कर दिया। इस अपराधी को इसके भयानक अपराधों के अनुरूप दंड देने के लिए एक खास अदालत-दीवान-बैठी। यह तय किया गया कि इस शैतान को फिर से तहखाने में बिठा दिया गया और दरवाजे पर ताला लगा दिया गया।

कुछ दिन बीत गए। एक रात को जब पौ फटनेवाली थी और शामिल गहरी नींद सो रहा था, उसके कमरे में शोर और खट-पट सुनाई दी। इमाम उछलकर बिस्तर से उठा और उसने अपने इर्द-गिर्द नजर डाली। उसने देखा कि कुल्हाड़े से दरवाजे के छोटे-छोटे टुकड़े करके एक पर्वत जैसा, जंगली दरिंदे और राक्षस जैसा व्यक्ति चीखता-चिल्लाता तथा कोसता हुआ उसकी तरफ बढ़ रहा है। इमाम समझ गया कि यह लुटेरा किसी तरह तहखाने का ताला तोड़कर निकलने में सफल हो गया है और अब बदला लेने को यहाँ आया है।

दाँत पीसता हुआ यह दानव बढ़ता आ रहा था। उसके एक हाथ में बहुत बड़ा खंजर और दूसरे में कुल्हाड़ा था। इमाम ने भी अपना खंजर ले लिया। उसने मुरीदों को पुकारा, मगर इस बदमाश ने उन्हें तो पहले ही दूसरी दुनिया में पहुँचा दिया था। गाँव के लोग सो रहे थे। किसी ने भी इमाम की पुकार नहीं सुनी।

शामिल पीछे हटते हुए शत्रु पर वार करने का अचछा मौका ढूँढ़ रहा था। अंधा बदमाश इधर-उधर उछल-कूद रहा था और कुल्हाड़ा चला रहा था। कमरे में जो कुछ भी था, उसने वह सब तोड़-फोड़ डाला।

'कहाँ हो तुम सूरमा, जिसकी किताबों में चर्चा की जाती है?' वह लंबा-तड़ंगा लुटेरा चिल्ला रहा था। 'कहाँ छिपे हुए हो तुम? इधर आओ, मेरे हाथ बाँधो, मुझे पकड़ो, मेरी आँखें निकालो!'

'मैं यहाँ हूँ!' इमाम ने जोर से चिल्लाकर जवाब दिया और उसी क्षण उछलकर एक तरफ को हट गया। कुल्हाड़ा उसी जगह पर दीवार में गहरा जा घुसा, जहाँ एक क्षण पहले शामिल खड़ा था। तब इमाम इसी क्षण का लाभ उठाते हुए अपने दुश्मन पर झपटा। लुटेरा ज्यादा ताकतवर और प्रचंड था। वह शामिल को इधर-उधर फेंकने और उछालने-पटकने लगा और उसे कई बार घायल करने में भी

सफल हो गया। लेकिन शामिल की चुस्ती-फुरती ने हर बार ही उसकी मदद की और वह घातक रूप से घायल होने से बच गया। यह संघर्ष कोई दो घंटे तक चलता रहा। आखिर उस बदमाश ने शामिल को पकड़ लिया, सिर के ऊपर पठा लिया, उसे जोर से फर्श पर पटकना और फिर उसका सिर काट डालना चाहा। किंतु हवा में ऊपर उठा हुआ शामिल फुरती से काम लेते हुए इस लुटेरे के सिर पर कई बार खंजर से वार करने में सफल हो गया। बदमाश डाकू अचानक झुक गया, उसका शरीर ढीला पड़ गया, लड़खड़ाया और वह ईंटों की मीनार की तरह नीचे गिर गया। उसके हाथों से खंजर छूट गया। सुबह होने पर लोगों ने उन दोनों को खून के डबरे में पड़ा पाया। शामिल के बदन पर नौ घाव लगे थे और उसे एक महीने तक इसी गाँव में इलाज करवाना पड़ा।

शक्तिशाली बाहरी दुश्मन के विरुद्ध शामिल का संघर्ष इस भिड़ंत के समान ही था। बाहर से आनेवाला दुश्मन उसके लिए अपरिचित पहाड़ों में अंधे जैसी हरकतें करता था। शामिल बड़ी फुरती से उसके हमलों से बच निकलता था और फिर अचानक कभी बगल तथा कभी पीछे से उस पर हमला करता था।

हर पहाड़ी आदमी के दिल में संभवतः शामिल का अपना एक बिंब है। मैं भी उसे अपने ही ढंग से देखता हूँ।

वह अभी जवान है। अखूल्गो नामक समतल चट्टान पर घुटनों के बल होकर वह अवार जाति के क्षेत्र में बहनेवाली कोइसू नदी की लहर में अभी-अभी धोए गए अपने हाथ ऊपर उठाता है। उसके चेर्केस्का की आस्तीनें ऊपर चढ़ी हुई हैं। उसके होंठ कोई शब्द फुसफुसा रहे हैं - कुछ लोगों का कहना है कि इबादत के वक्त जब वह 'अल्लाह' शब्द फुसफुसाता था तो लोगों को 'आजादी' सुनाई देता था और जब 'आजादी' फुसफसाता था तो 'अल्लाह' सुनाई देता था।

वह बूढ़ा हो गया है। कास्पी सागर के तट पर वह हमेशा के लिए दागिस्तान से विदा लेता है। वह गोरे जार का बंदी है। एक पत्थर पर चढ़कर उसने कास्पी की फेन उगलती लहरों पर नजर डाली। उसके होंठ 'अल्लाह' और 'आजादी' की जगह 'विदा' फुसफसा रहे हैं। लोगों का कहना है कि इस क्षण उसके गालों पर नमी की बूँदें दिखाई दी थीं। लेकिन शामिल तो कभी भी रोता नहीं था। शायद ये बूँदें सागर की फुहारें थीं।

किंतु सबसे अधिक प्रखर रूप में मैं पिता जी द्वारा सुनाए गए किस्से के अनुरूप ही उसकी कल्पना करता हूँ - एक तंग पहाड़ी घर में गुस्से से पागल हुए

डाकू के साथ अकेले ही हाथापाई करते, लंबे और खूनी संघर्ष में उलझे हुए।

हाजी-मुरात के साथ शामिल की कभी तो शांति से निभी और कभी उनके बीच झगड़ा होता रहा। इन दोनों के बारे में बहुत-सी दंत-कथाएँ और किस्से-कहानियाँ हैं।

हाजी-मुरात को अपना नायब बनाकर शामिल ने उसे हाइदाक और ताबासारान गाँवों में भेजा ताकि वहाँ के लोगों को अपने पक्ष में कर ले या शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि उन्हें युद्ध में खींच ले। उसे आशा थी कि हाजी-मुरात लोगों को समझा-बुझाकर अपने पक्ष में करेगा, लेकिन नए नायब ने ऐसा करने के बजाय हाइदाक तथा ताबासारान में कोड़े और बंदूक से काम लिया। अगर कोई कानून के बारे में मुँह से शब्द निकालने की हिम्मत करता तो हाजी-मुरात उसे घूँसा दिखाकर कहता - 'यह है तुम्हारा कानून। मैं खूँजह का रहनेवाला हाजी-मुरात हूँ। तुम्हारे लिए मैं ही सबसे बड़ा कानून हूँ।'

हाजी-मुरात की क्रूरता की खबरें शामिल तक पहुँचीं। उसने हरकारे को भेजकर नायब को अपने पास बुलवाया। हाजी-मुरात लूट का काफी बड़ा माल लिए हुए लौटा। उसका फौजी दस्ता मवेशियों का झुंड, भेड़ों के रेवड़ और घोड़ों के झुंड अपने आगे-आगे हाँकता ला रहा था। खुद हाजी-मुरात अगवा की गई एक हसीना को अपने घोड़े पर बिठाए ला रहा था।

'अससलामालेकुम, इमाम!' हाजी-मुरात ने घोड़े से नीचे उतरते हुए अपने सेनापति का अभिवादन किया।

'वालेकुम सलाम, नायब। खुश आमदीद क्या खुशखबरी लाए हो?'

'खाली हाथ नहीं लौटा हूँ। चाँदी लाया हूँ, भेड़ों के रेवड़, घोड़े और कालीन भी। ताबासारान में बढ़िया कालीन बुने जाते हैं।'

'क्या कोई हसीना नहीं लाए?'

'हसीना भी लाया हूँ। और वह भी बहुत गजब की! तुम्हारे लिए ही लाया हूँ, इमाम।'

दोनों योद्धा कुछ देर तक एक-दूसरे को घूरते रहे। इसके बाद शामिल ने कहा -

'तुम यह बताओ कि क्या मैं इस हसीना को अपने साथ लेकर लड़ने जाऊँगा? मुझे भेड़ों की नहीं, लोगों की जरूरत है। मुझे घोड़े नहीं, घुड़सवार चाहिए। तुम उनके पशु भगा लाए। ऐसा करके तुमने उनके दिलों को ठेस लगाई है और उन्हें

हमारे खिलाफ कर दिया है। उन्हें हमारे सैनिक बनकर वीरगति को प्राप्त और घायल होनेवाले हमारे सैनिकों की जगह लेनी चाहिए थी। अब कौन उनकी जगह लेगा? अगर हाइदाक और ताबासारान के लोग हमारे साथ होते तो क्या हमारे साथ वैसी ही बीत सकती थी, जैसी साल्टी और गेर्गेबिल गाँव के साथ बीती? क्या यह अच्छी बात है कि कुछ दागिस्तानी दूसरे दागिस्तानियों को लूटें?'

'लेकिन इमाम, वे लोग तो दूसरी जबान समझते ही नहीं!'

'क्या तुमने खुद उनकी जबान समझने की कोशिश की? अगर समझ जाते तो कोड़े और बंदूक से काम न लेते। क्या मेरे नायब लुटेरे हैं?'

'इमाम, मैं खूँजह का रहनेवाला हाजी-मुरात हूँ!'

'मैं भी गीमरी का रहनेवाला शामिल हूँ। केबेद-मुहम्मद तेलेतल और हुसैन चिरकेई का रहनेवाला है। इससे क्या फर्क पड़ता है? अवार, हिंदाल्याल, कुमिक, लेज्गीन, लाक और तुम्हारे द्वारा लूटे गए हाइदाक तथा ताबासारान के लोग - हम सब एक ही दागिस्तान के बेटे हैं। हमें एक-दूसरे को समझना चाहिए। हम तो एक ही हाथ की उँगलियाँ हैं। घूँसा बनने के लिए सभी उँगलियों को बड़ी। मजबूती से एक-दूसरी के साथ जुड़ जाना चाहिए। बहादुरी के लिए तुम्हारा शुक्रिया। बहादुरी के लिए तुम किसी भी इनाम के हकदार हो। पगड़ी तुम्हारे सिर की शोभा बढ़ा रही है। लेकिन इस बार तुमने जो कुछ किया है, मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता।'

'जब ऐसी ही पगड़ियाँ बाँधे दूसरे लोगों ने लूट मचाई तब उनसे तो तुमने कुछ नहीं कहा, इमाम। लेकिन अब सभी का दोष मेरे मत्थे जा रहा है।'

'मैं जानता हूँ तुम किसकी तरफ इशारा कर रहे हो, हाजी-मुरात, तुम्हारा अभिप्राय अखबेर्दीलाव से है, मेरे बेटे काजी-मुहम्मद या खुद मुझसे है। लेकिन अखबेर्दीलाव ने मोज्दोक में हमारे दुश्मन को लूटा था। मैंने उन खानों की दौलत लूटी थी जो हमारा साथ नहीं देना चाहते थे और जिन्होंने हमारा विरोध तक करने की कोशिश की। नहीं, हाजी-मुरात। नायब बनने के लिए दिलेर दिल और तेज खंजर ही काफी नहीं। इसके लिए अच्छा दिमाग भी होना चाहिए।'

शामिल और हाजी-मुरात के बीच इस तरह की बहसें अक्सर होती रहती थीं। अफवाहों के कारण ये झगड़े बढ़ते और अधिक उग्र रूप लेते गए और आखिर द्वेषपूर्ण शत्रुता ने उन्हें अलग कर दिया। हाजी-मुरात शामिल को छोड़कर शत्रु-पक्ष में चला गया और उसका सिर काट दिया गया। उसका शरीर नूखा में दफन

है। उसके शरीर का यह बँटवारा भी बड़ा अर्थपूर्ण है - उसका सिर दुश्मन के पास चला गया और दिल दागिस्तान में रह गया। कैसा भाग्य था उसका।

हाजी-मुरात का सिर

कटा हुआ सिर देख रहा हूँ
बहें खून की धाराएँ,
मार-काट का शोर मचा है
लोग चैन कैसे पाएँ।

तेज धारवाली तलवारें
ऊँची-ऊँची लहराएँ,
टेढ़ी और कठिन राहों पर
अब मुरीद बढ़ते जाएँ।

रक्त-सने सिर से यह पूछा -
'मुझे कृपा कर बतलाओ,
कीर्तिवान, तुम गए किस तरह
बेगानो में, समझाओ?'

'मैं तो सिर हाजी-मुरात का
भेद न मुझे छिपाना है
भटका कभी, कटा सिर मेरा
यही मुझे बतलाना है।

गलत राह पर चला कभी मैं
मैं घमंड का था मारा...'
देख रहा था यह भटका सिर
कटा पड़ा जो बेचारा।

पुरुष पर्वतों में जो जन्मे
बेशक दूर-दूर जाएँ,
हम जिंदा या बेशक मुर्दा
आखिर लौट यही आएँ।

इमाम शामिल को दागिस्तान से ले जाया गया। सभी ओर तोपें और बंदूकें चलाने के झरोखोंवाले दुर्ग बना दिए गए। इन झरोखों में से तोपों और बंदूकों के मुँह बाहर निकले रहते थे। यद्यपि वे गोले-गोलियाँ नहीं चलाती थीं, तथापि यह कहती प्रतीत होती थीं - 'शांति से बैठे रहो, पहाड़ी लोगो, ढंग से बर्ताव करो, किसी तरह का ऊधम नहीं मचाओ।'

दुख में डूबे हुए यहाँ के पर्वतवासी
दुख में डूबी नदियाँ, पक्षी, सभी जानवर
ऐसे लगता नहीं कहीं विस्तार यहाँ पर
सिर्फ मौत ही काल-कोठरी से है बाहर।

'जंगलियों की धरती,' एक गवर्नर ने दागिस्तान से जाते हुए कहा। 'ये धरती पर नहीं, खड्ड में रहते हैं,' दूसरे ने लिखा।

'इन असभ्य आदिवासियों के पास जो धरती है, वह भी फालतू है,' तीसरे ने पुष्टि की।

किंतु उस बुरे वक्त में भी दागिस्तान के पक्ष में लेर्मोंतोव, दोब्रोल्यूबोव, चेर्नीशेव्स्की, बेस्तूजेव-मारलीन्स्की और पिरोगोव की आवाजें सुनाई दीं... हाँ, जारकालीन रूस में भी ऐसे लोग थे जो पहाड़ी लोगों की आत्मा को समझते थे, जिन्होंने दागिस्तान के जनगण के बारे में कुछ अच्छे शब्द कहे। काश, पहाड़ी लोग उस वक्त उनकी भाषा समझ सकते!

शाश्वत हिम की चादर पर्वतमाला पर
शाश्वत रात, अँधेरा है उनके ऊपर, -

अपनी मातृभूमि को देखते हुए सुलेमान स्ताल्स्की ने कभी कहा था।

'दागिस्तान को जबसे काल-कोठरी में बंद कर दिया गया है, साल के हर महीने के इकतीस दिन होते हैं,' मेरे पिता जी ने कभी लिखा था।

'पर्वतो, हम तुम्हारे साथ तहखाने में बंद हैं,' अबूतालिब ने कभी कहा था।

'ऐसे दुख से तो पहाड़ों में पहाड़ी बकरा भी उदास हो रहा है,' अनखील मारीन ने कभी गाया था।

'इस दुनिया के बारे में तो सोचना ही व्यर्थ है। जिसका भोजन ज्यादा घीवाला है, उसी की अधिक ख्याति है,' महमूद ने निराशा से कहा था।

'सुख कहीं नहीं है,' कुबाची के रहनेवाले अहमद मुंगी ने सारी दुनिया का चक्कर लगाने के बाद यह निष्कर्ष निकाला।

किंतु इसी समय इरची कजाक ने लिखा - 'दागिस्तान के मर्द को तो हर जगह दागिस्तान का मर्द होना चाहिए।'

मरने से पहले बातिराय ने यह लिखा - 'बहादुरों के यहाँ बुजदिल बेटे न पैदा हों।'

उसी महमूद ने यह गाया -

> अगर पहाड़ी बकरा तम में और पहाड़ों में खो जाए
> वह या तो पगडंडी ढूँढ़े या फिर मृत्यु को गले लगाए।

उसी अबूतालिब ने यह भी कहा था - 'इस दुनिया में अब धमाका हुआ कि हुआ। यही अच्छा है कि यह धमाका ज्यादा जोर से हो।'

और वह वक्त आया - जोर का धमाका हुआ। धमाका तो दूर हुआ, उसी समय दागिस्तान तक उसकी गूँज नहीं पहुँची, फिर भी सब कुछ स्पष्ट दिखाई देनेवाले लाल निशान से वह दो हिस्सों में बँट गया था - उसका इतिहास, भाग्य, हर व्यक्ति का जीवन, पूरी मानवजाति! क्रोध और प्यार, विचार और सपने - सभी कुछ दो भागों में बँट गया।

'धमाका हो गया!...'

'कहाँ हुआ धमाका?'

'पूरे रूस में।'

'किस चीज का धमाका हुआ?'

'क्रांति का।'

'किसकी क्रांति का?'

'मेहनतकशों की क्रांति का।'

'उसका लक्ष्य?'

'जो थे खाली हाथ, अब सब चीजों के नाथ।'

'उसका रंग कौन-सा है?'

'लाल।'

'उसका गाना क्या है?'

'यह जंग आखिरी और निर्णायक जंग है।'

'उसकी सेना?'

'सभी भूखे और दीन-दुखिया। श्रम की महान सेना।'

'उसकी भाषा, उसकी जाति? '

'सभी भाषाएँ, सभी जातियाँ।'

'उसका नेता?'

'लेनिन।'

'दागिस्तान के पहाड़ी लोगों से क्रांति क्या कहती है? अनुवाद करके हमें बताइए।'

नायकों और गायकों ने दागिस्तान की सभी भाषाओं-बोलियों में अनुवाद कर दिया -

'सदियों से उत्पीड़ित दागिस्तान के जनगण! टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी पगडंडियों से हमारे घरों, हमारे खेतों में क्रांति आई है। उसे सुनिए और अपने को उसकी सेवा में अर्पित कीजिए। वह आपसे ऐसे शब्द कहती है जो आपने कभी नहीं सुने। वह कहती है -

'भाइयो! नया रूस आपकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाता है। उस हाथ को थाम लीजिए, बड़े तपाक से अपना हाथ उसके हाथ से मिलाइए, उसी में आपकी शक्ति और विश्वास निहित है।

'घाटियों और पर्वतों के बेटे-बेटियो! बड़ी दुनिया की ओर खिड़कियाँ खोलिए। नया दिन नहीं, बल्कि नए भाग्य का श्रीगणेश हो रहा है। इस भाग्य का स्वागत

कीजिए।

'अब आपको शक्तिशालियों के लिए अपनी कमर नहीं तोड़नी होगी। अब से पराये लोग आपके घोड़ों पर सवारी नहीं करेंगे। अब आपके घोड़े-आपके घोड़े होंगे, आपके खंजर - आपके खंजर होंगे, आपके खेत - आपके खेत होंगे, आपकी आजादी - आपकी आजादी होगी।'

'अव्रोरा' जहाज पर अक्तूबर क्रांति के आरंभ का संकेत देनेवाली तोप की गरज का दागिस्तान के जनगण की भाषाओं में उपर्युक्त अनुवाद किया गया। इसे अनूदित किया मखाच, उल्लूबी, ओस्कार, जलाल, काजी-मुहम्मद, मुहम्मद-मिर्जा, हारूँ और क्रांति के अन्य मुरीदों ने जो दागिस्तान के दुख-दर्दों से भली-भाँति परिचित थे।

और दागिस्तान अपने भाग्य के स्वागत के लिए बढ़ा। पहाड़ी लोगों ने क्रांति के रंग और उसके गीतों को अपना लिया। किंतु क्रांति के शत्रु भयभीत हो उठे। यह तो उन्हीं के सिरों के ऊपर बिजली कड़क उठी थी, उन्हें के पाँवों तले धरती हिल गई थी, उन्हीं के सामने सागर में भयानक तूफान आ गया था, उन्हीं की पीठों के पीछे चट्टानें टूट पड़ी थीं। पुरानी दुनिया जोर से काँपी और ढह गई। एक बहुत गहरी खाई बन गई।

'अपना हाथ हमारी ओर बढ़ाओ।' क्रांति के दुश्मनों ने अपने को दागिस्तान के दोस्त बताते हुए कहा।

'आपके हाथ खून से सने हुए हैं।'

'जरा रुको, तुम उधर नहीं जाओ, पीछे मुड़कर देखो, दागिस्तान।'

'जिस चीज को पीछे मुड़कर देखा जाए, क्या है पीछे देखने को? गरीबी, झूठ, अँधेरा और खून।'

'छोटे-से दागिस्तान। किधर चल दिए तुम?'

'कुछ बड़ा खोजने को।'

'महासागर में तुम एक छोटी-सी नाव जैसे होगे। तुम कहीं के नहीं रहोगे। तुम्हारी भाषा, तुम्हारा धर्म, तुम्हारा रंग-ढंग, तुम्हारी समूरी टोपी, तुम्हारा सिर - इनमें से कुछ भी तो बाकी नहीं रहेगा।' इन लोगों ने धमकी दी।

'मैं तंग पगडंडियों पर चलने का आदी हूँ। क्या अब चौड़े रास्ते पर अपना पाँव तोड़ लूँगा? बहुत अरसे से मैं इस रास्ते की खोज कर रहा था। मेरा एक बाल भी

बाँका नहीं होगा।'

'दागिस्तान धर्मभ्रष्ट हो गया। वह नष्ट हो रहा है। दागिस्तान को बचाइए।' कौवों ने काँय-काँय की, भेड़िये चीखे-चिल्लाए। खूब शोर मचाया गया, धमकियाँ दी गईं, मिन्नतें और हत्याएँ की गई, छल-कपट किया गया। क्रांति का जो दीप जल उठा था, उसे बुझाने की कितनी कोशिशें नहीं की गईं। इस महान पुल को जला डालने के कितने प्रयास नहीं किए गए। एक के बाद एक झंडा बदला, एक के बाद एक लुटेरा आया। जाड़े की बेहद ठंडी रात में समूर के कोट की भाँति उन्होंने छोटे-से दागिस्तान को अपनी-अपनी तरफ खींचा, उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। और वह जंजीर से मुक्त होनेवाले पहाड़ी बकरे की तरह कभी एक तो कभी दूसरी दिशा में भागता रहा। हर कोई हिंसक जैसी हिंसक जैसी तीव्र चाह से उसे पकड़ने के लिए उस पर झपट रहा था। कैसे-कैसे शिकारियों ने उस पर अपनी गोलियाँ नहीं चलाईं।

'मैं दागिस्तान का इमाम नज्मुद्दीन मोत्सीन्स्की हूँ जिसे आंदी की झील के तट पर लोगों ने चुना है। मेरी तलवार ऐसी समूरी टोपियों की तलाश में है जिन पर लाल कपड़े के टुकड़े लगे हुए हें।' 'एक ही धर्म के माननेवालो, मुसलमान भाइयो। मेरे पीछे-पीछे आइए। मैंने ही इस्लाम का हरा झंडा ऊपर उठाया है।' एक अन्य व्यक्ति बड़े जोर से चिल्लाकर ऐसा कहता था। उसका नाम था उजून-हाजी।

'जब तक मैं आखिरी बोल्शेविक का सिर बाँस पर लटकाकर दागिस्तान के सबसे ऊँचे पर्वत पर उसे प्रदर्शित नहीं कर दूँगा, तब तक अपनी बंदूक को खूँटी पर नहीं लटकाऊँगा। प्रिंस नूहबेक तारकोव्स्की यह शोर मचाया करता था।

इसी साल जार की फौज के कर्नल काइतमाज अलीखानोव ने खूँजह में अपने लिए एक महल बनवाया। उसने एक पहाड़िये को अपना घर दिखाने के लिए अपने यहाँ बुलाया। खुद अपने पर और महल पर मुग्ध होते हुए काइतमाज ने पूछा -

'कहो, बढ़िया है न मेरा महल?'

'मरते आदमी के लिए तो बहुत ही बढ़िया है,' पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया।

'मेरे मरने का भला क्या सवाल पैदा होता है?'

'क्रांति....'

'मैं उसे खूँजह में नहीं आने दूँगा।' कर्नल अलीखानोव ने जवाब दिया और उछलकर तेज, सफेद घोड़े पर सवार हो गया।

'मैं सईदबेई हूँ - इमाम शामिल का सगा पोता। मैं तुर्की के सुलतान की तरफ से यहाँ आया हूँ ताकि उसके बहादुरों की मदद से दागिस्तान को आजाद कराउँ,' बाहर से आनेवाले इस एक अन्य व्यक्ति ने ऐसी घोषणा की और उसके साथ सभी तरह के तुर्क पाशा तथा बेई थे।

'हम दागिस्तान के दोस्त हैं,' हस्तक्षेपकारियों ने चिल्लाकर कहा और दागिस्तान की धरती पर तोड़-फोड़ की कार्रवाइयाँ करनेवाले बर्तानवी फौजी आ धमके।

'दागिस्तान - यह बाकू का फाटक है। इस फाटक पर मैं मजबूत ताला लगा दूँगा।' जार की सेना के कर्नल बिचेराखोव ने डींग हाँकी और पोर्ट-पेत्रोव्स्क को तबाह कर डाला।

बहुत-से बिन बुलाए मेहमान आए। किसके-किसके गंदे हाथ ने दागिस्तान की छाती पर कमीज को नहीं फाड़ा। कैसे-कैसे झंडों की यहाँ झलक नहीं मिली। कैसी-कैसी हवाएँ नहीं चलीं। कैसी-कैसी लहरें पत्थरों से नहीं टकराईं।

'दागिस्तान, अगर तुम हमारी बात नहीं मानोगे, तो हम तुम्हें धकियाकर समुद्र में डुबो देंगे।' बाहर से आने वालों ने धमकी दी।

मेरे पिता जी ने उस वक्त लिखा था - 'दागिस्तान ऐसे जानवर के समान है जिसे सभी ओर से परिंदे नोचते हैं।'

गोलाबारी हुई, आग की लपटें उठीं, खून बहा, चट्टानों से धुआँ उठा, फसलें जलीं, गाँव तबाह हुए, बीमारियों ने लोगों की जानें लीं, दुर्ग कभी एक के हाथ में और कभी दूसरे के हाथ में जाते रहे। यह सब कुछ चार साल तक चलता रहा।

'खेत बेचकर घोड़ा खरीदा, गाय बेचकर तलवार खरीदी,' पहाड़ी लोग उन दिनों ऐसा कहते थे।

सवारों को खोकर घोड़े हिनहिनाते थे। कौवे मुर्दों की आँखें निकालते थे।

मेरे पिता जी ने उस समय के दागिस्तान की ऐसे पत्थर से तुलना की थी जिसके करीब से अनेक नदियाँ शोर मचाती हुई गुजरी हों। मेरी माँ ने अनेक तूफानी धाराओं के प्रतिकूल जानेवाली मछली के साथ उसकी तुलना की थी।

अबूतालिब ने याद करते हुए लिखा था - 'हमारे देश ने कैसे-कैसे जुरनावादकों को नहीं देखा!' खुद अबूतालिब छापामार दस्ते का जुरनावादक था।

अब लेखनियों से उस किस्से, उस कहानी को लिखा जाता है जो तलवारों से लिखी गई थी। अब उन दिनों का अध्ययन करते हुए ख्याति और बहादुरी के कारनामों को तुला पर तौला जाता है। वीरों-नायकों का मूल्यांकन करते हुए विद्वान आपास में बहस करते हैं, हम कह सकते हैं कि वे आपस में जूझते हैं।

पर खैर, वीरों ने लड़ाई लड़ ली। मेरे लिए सचमुच इस बात का कोई महत्व नहीं है कि इनमें से किसको पहला, दूसरा या तीसरा स्थान दिया जाए। अधिक महत्वपूर्ण तो यह चीज है कि क्रांति ने चेर्केस्का के पल्लू से मौत के घाट उतारे गए अपने अंतिम शत्रु का खून पोंछकर खंजर को म्यान में रख लिया। पहाड़ी आदमी ने इससे हँसिया बना लिया। अपनी नुकीली संगीन को उसने पहाड़ी ढाल पर पत्थरों के बीच खोंस दिया। हल में अपनी ताकत लगाते हुए वह अपनी धरती को जोतने लगा, बैलों को हाँकते हुए अपने खेत से घास को बैल-गाड़ी पर लादकर ले जाने लगा।

पहाड़ की चोटी पर लाल झंडा फहराकर दागिस्तान ने अपनी मूँछों पर ताव दिया। नकली इमाम गोत्सीन्स्की की पगड़ी से उसने कौवों-चिड़ियों को डरानेवाला पुतला बनाकर खेत में खड़ा कर दिया और खुद इमाम को तो इन्कलाब ने सजा दी। गोत्सीन्स्की अदालत में गिड़गिड़ाता रहा था - 'गोरे जार ने शामिल को जिंदा छोड़ दिया था। उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा था। आप लोग मुझे क्यों मौत की सजा दे रहे हैं?'

दागिस्तान और क्रांति ने उसे जवाब दिया - तुम्हारे जैसे का तो शामिल ने भी सिर काट डाला होता। वह कहा करता था - 'गद्दार का तो धरती के ऊपर रहने के बजाय उसके नीचे होना कहीं ज्यादा अच्छा है।' हाँ, उसे सजा दी गई, एक भी पहाड़ी नहीं काँपी, किसी ने भी आँसू नहीं बहाए, किसी ने भी उसकी कब्र पर याद का पत्थर नहीं लगाया।

काइतमाज अलीखानोव अपने सफेद घोड़े पर सवार होकर त्सूनती इलाके के वनों में से भाग चला। उसके दो बेटे भी उसके साथ भाग रहे थे। किंतु वे लाल छापेमारों की गोलियों के शिकार हो गए। कर्नल का सफेद घोड़ा उदास होता और एक टाँग से लँगड़ाता हुआ खूँजह के दुर्ग में वापस लौट गया।

'तुम्हें गलत रास्ते पर छोड़ दिया था उन्होंने,' मुसलिम अतायेव ने बेचारे घोड़े से कहा। 'वे तो दागिस्तान को भी उसी रास्ते पर ले जाना चाहते थे।'

बिचेराखोव को भी भगा दिया गया। उसके जहाँ-तहाँ बिखरे हुए सैनिक दस्ते कास्पी की लहरों में डूब गए। 'अमीन,' उन्हें अपने नीचे छिपाते हुए लहरों ने कहा। 'अमीन,' पहाड़ कह उठे, 'अल्लाह करे कि वे जहन्नुम में चले जाएँ जो इस धरती पर जहन्नुम बना रहे थे।'

इस्तंबूल में मैं बाजार में गया। मेरे इर्द-गिर्द जमा भूतपूर्व अवार लोगों ने मुझे भीड़ में से जाता हुआ एक बूढ़ा दिखाया। वह ऐसी बोरी जैसा लगता था जिसमें से अनाज के दाने निकलकर बाहर गिर गए हों।

'यह काजिमबेई है।'

'कौन-सा काजिमबेई?'

'वह, जो तुर्की के सुलतान की सेनाएँ लेकर दागिस्तान गया था।'

'क्या वह अभी तक जिंदा है?'

'जैसा कि देख रहे हैं, उसका जिस्म तो अभी तक जिंदा है।'

हमारा परिचय करवाया गया।

'दागिस्तान... मैं जानता हूँ उस देश को,' बूढ़े खूसट ने कहा।

'आपको भी दागिस्तान में जानते हैं,' मैंने जवाब दिया।

'हाँ, मैं वहाँ गया था।'

'फिर जाएँगे?' मैंने जान-बूझकर पूछा।

'अब कभी नहीं जाऊँगा,' उसने जवाब दिया और जल्दी से अपनी दुकान की तरफ चला गया।

इस्तंबूल के बाजार का यह छोटा-सा दुकानदार क्या यह भूल गया है कि कासूमकेंट में कैसे उसने खेत में ही तीन शांतिप्रिय हलवाहों को मार डाला था? क्या इसे पहाड़ों में वह चट्टान याद नहीं है जहाँ से एक पहाड़ी युवती इसलिए खड्ड में कूद गई थी कि तुर्क सिपाहियों के हाथों में न पड़े? क्या इस दुकानदार को यह याद नहीं कि कैसे बाग में से एक छोकरे को उसके सामने लाया गया था, कैसे उसने उसकी चेरियाँ छीन ली थीं और गुठली को उसकी आँख में थूक दिया था? लेकिन खैर, वह यह तो नहीं भूला होगा कि कैसे अंडरवियर पहने हुए भागा था और एक पहाड़ी औरत ने पीछे से पुकारकर कहा था - 'अरे, आप अपनी समूर की टोपी तो भूल ही गए।'

तोड़-फोड़ की कार्रवाइयाँ करनेवाले दागिस्तान से भाग गए। काजिमबेई भी भाग गया, शामिल का पोता सईदबेई भी भाग गया।

'सईदबेई अब कहाँ है?' मैंने इस्तंबूल में पूछा।

'साउदी अरब चला गया।'

'किसलिए?'

'व्यापार करने के लिए वहाँ उसकी थोड़ी-सी जमीन है।'

व्यापारियो! आपको दागिस्तान में व्यापार करने का मौका नहीं मिला। क्रांति ने कहा - 'बाजार बंद है।' खून में भीगी झाड़ू से उसने पहाड़ी धरती से सारा कूड़ा करकट साफ कर दिया। अब तो दागिस्तान के तथाकथित रक्षकों और बचानेवालो के पंजर ही पराये देशों में भटकते फिरते हैं।

कुछ साल पहले बेरूत में एशिया और अफ्रीका के लेखकों का सम्मेलन हुआ। मुझे भी इस सम्मेलन में भेजा गया। मुझे सम्मेलन में ही नहीं, कभी-कभी उन दूसरी जगहों पर भी बोलना पड़ा, जहाँ हमें बुलाया गया। ऐसी ही एक सभा में मैंने अपने दागिस्तान, अपने यहाँ के लोगों और रीति-रिवाजों की चर्चा की, दागिस्तान के विभिन्न कवियों की और अपनी कविताएँ भी सुनाईं।

इस सभा की समाप्ति पर एक सुंदर और जवान औरत ने मुझे सीढ़ियों के करीब रोक लिया।

'जनाब हमजातोव, मैं आपके साथ कुछ बातचीत कर सकती हूँ, आप अपना कुछ वक्त मुझे दे सकते हैं?'

हम शाम की चादर में लिपटी बेरूत की सड़कों पर चल पड़े।

'दागिस्तान के बार में बताइए। कृपया सभी कुछ,' अचानक ही मेरे साथ चलनेवाली इस औरत ने अनुरोध किया।

'मैं तो अभी पूरे एक घंटे तक यही बताता रहा हूँ।'

'और बताइए, और बताइए।'

'किस चीज में आपकी ज्यादा दिलचस्पी है?'

'हर चीज में! दागिस्तान से संबंधित सभी चीजों में।'

मैंने बताना शुरू किया। हम इधर-उधर घूमते रहे। मेरा वर्णन समाप्त होने के पहले ही वह फिर से अनुरोध करने लगती -

'और बताइए, और बताइए।'

मैं बताता रहा।

'अवार भाषा में अपनी कविताएँ सुनाइए।'

'लेकिन आप तो उन्हें नहीं समझेंगी।'

'फिर भी सुनाइए।'

मैंने कविताएँ सुनाईं। जब सुंदर और जवान औरत किसी बात के लिए अनुरोध करे तो हम क्या कुछ नहीं करते। फिर उसकी आवाज में दागिस्तान के प्रति ऐसी सच्ची दिलचस्पी की अनुभूति हो रही थी कि इनकार करना संभव नहीं था।

'आप कोई अवार गाना नहीं गाएँगे?'

'अजी नहीं। मुझे गाना नहीं आता।'

'अभी यह मुझे नाचने को भी मजबूर करेगी,' मैंने सोचा।

'आप चाहें तो मैं गाऊँ?'

'बड़ी मेहरबानी होगी।'

इसी समय हम सागर-तट पर पहुँच गए थे। उजली चाँदनी में सागर हरी-सी झलक दिखाता हुआ चमक रहा था।

तो सुदूर बेरूत में एक अपरिचित सुंदरी समझ में न आनेवाली भाषा में मुझे दागिस्तानी 'दालालाई' माना सुनाने लगी। किंतु जब वह दूसरा गाना गाने लगी तो मैं समझ गया कि वह कुमिक भाषा में गा रही है।

'आप कुमिक भाषा कैसे जानती हैं?' मैंने हैरान होते हुए पूछा।

'बदकिस्मती से मैं उसे नहीं जानती।'

'लेकिन गाना...'

'यह गाना तो मुझे मेरे दादा ने सिखाया था।'

'वह क्या दागिस्तान गए थे?'

'हाँ, एक तरह से गए थे।'

'बहुत पहले?'

'बात यह है कि नूहबेक तारकोव्सकी मेरे दादा थे।'

'कर्नल? अब कहाँ हैं वह?'

'वह तेहरान में रहते थे। इस साल चल बसे। मरते वक्त वह लगातार मुझसे यही गाना गाने को कहते रहे।'

'किस बारे में है यह गाना?'

'मौसमी परिंदों के बारे में... उन्होंने मुझे एक दागिस्तानी नाच भी सिखाया था। देखिए!'

यह औरत नए चाँद की तरह चमक उठी, उसने बड़ी लोच से हाथ फैलाए और झील में तैरनेवाली हंसिनी की तरह चक्कर काटने लगी।

कुछ देर बाद मैंने उससे मौसमी परिंदों के बार में फिर से गाना सुनाने की प्रार्थना की। उसने मुझे गाने के शब्दों का अर्थ भी बताया। होटल में लौटकर मैंने याददाश्त के आधार पर अवार भाषा में अनुवाद करके इस गाने को लिख लिया।

हाँ, दागिस्तान में बसंत आ गया है। लेकिन मैं लगातार यह सोचता रहता हूँ कि प्रिंस नूहबेक तारकोव्स्की का मौसमी परिंदों के बारे में इस गाने से क्या संबंध हो सकता है? तेहरान में रहनेवाले उस कर्नल को, जो क्रांतिकारी क्षेत्र और दागिस्तान के प्रतिशोध से बचकर भागा था, किसलिए पहाड़ों के क्रांतिकारी लाल सूरज की याद आती थी? उसे कैसे मातृभूमि से जुदाई की तड़प महसूस हो सकती थी?

ईरान में रहते हुए शुरू में तो तारकोव्स्की यह कहता रहा - 'मेरे और दागिस्तान के साथ जो कुछ हुआ है, वह भाग्य की भूल है और इस भूल को सुधारने के लिए मैं वहाँ वापस जाऊँगा।' तारकोव्स्की और उसके साथ अन्य प्रवासी भी हर दिन कास्पी सागर के तट पर जाते थे ताकि दागिस्तान से आनेवाली कोई खबर जान सकें। लेकिन उन्हें हर बार ही यह देखने को मिलता कि कास्पी सागर से आनेवाले जहाजों के मस्तूलों पर लाल झंडे लहरा रहे हैं। पतझर में उत्तर से उड़कर आनेवाले पक्षियों को देखकर मातृभूमि की याद में हूक महसूस करतेहुए उसकी पत्नी गाने गाती। वह मौसमी पक्षियों के बारे में उपर्युक्त गाना भी गाती। शुरू में तो प्रिंस तारकोव्स्की को यह गाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था।

साल बीतते गए। बच्चे बड़े हो गए। कर्नल तोरकोव्स्की बूढ़ा हो गया। वह समझ गया कि अब कभी भी दागिस्तान नहीं लौट सकेगा। उसकी समझ में यह बात आ गई कि दागिस्तान का दूसरा ही भाग्य है, कि दागिस्तान ने खुद ही अपने

लिए यह एकमात्र और सही रास्ता चुना है। तब बूढ़ा प्रिंस भी मौसमी परिंदों के बारे में यह गाना गाने लगा।

पिता जी कहा करते थे -

'दागिस्तान उनका साथ नहीं देगा जिन्होंने दागिस्तान का साथ नहीं दिया।'

अबूतालिब इसमें जोड़ा करता था -

'जो पराये घोड़े पर सवार होता है, वह जल्द ही नीचे गिर जाता है। हमारा खंजर किसी दूसरे की पोशाक के साथ शोभा नहीं देता।'

सुलेमान स्ताल्स्की ने लिखा था -

'मैं जमीन में दबे हुए खंजर के समान था। सोवियत सत्ता ने मुझे बाहर निकाला, मेरा जंग साफ कर दिया और मैं चमक उठा।'

पिता जी यह भी कहा करते थे -

'हम बेशक हमेशा ही पहाड़ी लोग थे, मगर पहाड़ की चोटी पर केवल अभी चढ़े हैं।'

अबूतालिब कहा करता था -

'दागिस्तान, तहखाने से बाहर निकल आ!'

पालना झुलाते हुए मेरी अम्माँ गाया करती थीं -

बड़े चैन से सोओ बेटा, शांति पहाड़ों में आई
कहीं गोलियों की आवाजें देतीं नहीं सुनाई।

'फरवरी का महीना सबसे छोटा, मगर कितना महत्वपूर्ण है,' अबूतालिब का ही कहना था, 'फरवरी में जार का तख्ता उलटा गया, फरवरी में लाल सेना बनी और फरवरी में ही लेनिन पहाड़ी लोगों के प्रतिनिधिमंडल से मिले।'

इसी समय दूरस्थ रूगूजा गाँव में नारियों ने लेनिन के बारे में एक गाना रचा -

तुमने ही तो सबसे पहले आ, इनसान कहा हमको
अस्त्र विजय का तुमने ही तो पहले पहल दिया हमको,
सुन उकाब की चीख जिस तरह उड़ जाते कलहंस कहीं
उदय लेनिनी सूर्य हुआ तो रातें काली नहीं रहीं।

हमारे छोटे-से जनगण का बड़ा भाग्य है। दागिस्तान के पक्षी गाते हैं। क्रांति के सपूतों के शब्द गूँजते हैं। बच्चे उनकी चर्चा करते हैं। उनकी कब्रों के पत्थरों पर उनके नाम खुदे हुए हैं। लेकिन कुछ वीरों की कब्रें अज्ञात हैं।

शांत रात में मुझे दागिस्तान की सड़कों पर घूमना अच्छा लगता है। जब मैं सड़कों के नाम पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि फिर से हमारे जनतंत्र की क्रांतिकारी समिति की बैठक हो रही है। मखाच दाखादायेव। मुझे उसकी आवाज सुनाई देती है - 'हम क्रांति के संघर्षकर्ता हैं। हमारी भाषाएँ, हमारे नाम और मिजाज - अलग-अलग हैं। मगर एक चीज हम सबमें सामान्य है - क्रांति और दागिस्तान के प्रति निष्ठा। क्रांति और दागिस्तान के लिए हममें से कोई भी न तो अपना खून और न जिंदगी कुर्बान करने से ही हिचकेगा।'

प्रिंस तारकोव्स्की के दस्ते के बदमाशों ने मखाच की हत्या कर डाली थी।

उल्लूबी बुइनाकस्की - मुझे उसकी आवाज सुनाई दे रही है - 'दुश्मन मुझे मार डालेंगे। वे मेरे दोस्तों की भी हत्याएँ कर देंगे। किंतु एक घूँसे के रूप में बँधी हुई हमारी उँगलियों को कोई भी अलग नहीं कर सकेगा। यह घूँसा भारी और भरोसे का है, क्योंकि दागिस्तान के दुख-दर्दों और क्रांति के विचारों ने उसे घूँसे का रूप दिया है। वह उत्पीड़कों की शामत ला देगा। यह जान लीजिए।'

देनीकिन के सैनिकों ने दागिस्तान के जवान कम्युनिस्ट, अट्ठाईस वर्ष के उल्लूबी की हत्या कर डाली। उन्होंने उसे दागिस्तान में मारा था। अब वहाँ पोस्त के फूल खिलते हैं।

मुझे ओस्कार लेश्चीन्स्की, काजी-मुहम्मद, अगासीयेव, हारूँ सईदोव, अलीबेक बगातीरोव, साफार दुदारोव, सोल्तन - सईद कज्बेकोव, पिता-पुत्र बातिरमुर्जायेव, ओमारोव-चोखस्की की आवाजें भी सुनाई देती हैं। बहुत बड़ी संख्या है उनकी, जिनकी हत्या की गई। किंतु हर नाम ज्वाला है, चमकता सितारा और गीत है। वे सभी वीर हैं जो चिर युवा बने रहेंगे। वे हमारे दागिस्तान के चापायेव, शोर्सऔर शाउम्यान हैं। आख्ती, आया-काका के दर्रे, कासूमेंट के जलप्रपात, खूँजह दुर्ग की दीवार के पीछे, जला दिए गए हासाव्यूर्त और प्राचीन देर्बेंत में उनकी जानें गईं। अराकान दर्रे में एक भी ऐसा पत्थर नहीं है जो दागिस्तान के कमिसारों के खून से लथ-पथ न हुआ हो। मोचोख पर्वतमाला में ही बगातीरोव को फाँसने के लिए फौजी फंदे की व्यवस्था की गई थी। तेमीरखान-शूरा, पोर्ट-पेत्रोव्स्क और चारों कोइसू नदियों ने भी, जहाँ अब शहीदों की याद में फूल फेंके जाते हैं, खून बहता देखा था। एक लाख दागिस्तानी-कम्युनिस्ट और पार्टीजान या छापामार खेत रहे। किंतु दूसरे जनगण दागिस्तान के बारे में जान गए। लाखों-लाख लोगों ने लाल दागिस्तान की ओर दोस्ती के हाथ बढ़ाए। इन

मैत्रीपूर्ण हाथों की गर्मी अनुभव करके दागिस्तान के लोगों ने कहा - 'अब हमारी संख्या कम नहीं है।'

युद्ध से लोगों का जन्म नहीं होता। किंतु क्रांतिकारी लड़ाइयों की आग में नए दागिस्तान का जन्म हुआ।

13 नवंबर, 1920 को दागिस्तान के जनगण की पहली असाधारण कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में रूसी संघ की सरकार की ओर से स्तालिन ने भाषण दिया। उन्होंने पर्वतीय देश-दागिसतान - को स्वायत्त घोषित किया। नया नाम, नया मार्ग, नया भाग्य।

जल्द ही दागिस्तान के जनगण को एक उपहार मिला। लेनिन ने 'लाल दागिस्तान के लिए' ये शब्द लिखकर अपना फोटो भेजा। कुबाची के सुनारों और उंत्सूकूल के लकड़ी पर नक्काशी करने वालों ने इस छविचित्र के लिए अद्भुत चौखटा बनाया। इसी साल मखाचकला के बंदरगाह से 'लाल दागिस्तान' नाम का नया जहाज पानी में उतरा। किंतु स्वयं दागिस्तान ही अब एक ऐसे शक्तिशाली जहाज जैसा था जो बहुत बड़े और नए सफर पर रवाना हुआ था।

'भारे का तारा' - दागिस्तान की पहली पत्रिका को यही नाम दिया गया था। दागिस्तान में सुबह हो गई थी। विस्तृत संसार की ओर खिड़की खुल गई थी।

गृह-युद्ध के कठिन दिनों में, जब पहाड़ों में गोत्सीन्स्की के फौजी दस्तों का बोलबाला था, मेरे पिताजी को मदरसे के अपने एक सहपाठी का पत्र मिला।

इस पत्र में भूतपूर्व सहपाठी ने नज्मुद्दीन गोत्सीन्स्की और उसकी फौजों की चर्चा की थी। पत्र के अंत में लिखा था - 'इमाम नज्मुद्दीन तुमसे नाखुश है। मुझे लगा कि उसकी बड़ी इच्छा है कि तुम पहाड़ी गरीबों को संबोधित करते हुए कविताएँ लिखो जिनमें इमाम के बारे में सचाई बताओ। मैंने तुम्हारे साथ संपर्क स्थापित करने की जिम्मेदारी ली है और उसे यह वचन दिया है कि तुम ऐसा कर दोगे। तुमसे अपना अनुरोध और इमाम की इच्छा पूरी करने का आग्रह करता हूँ। नज्मुद्दीन तुम्हारे जवाब के इंतजार में है।'

पिता जी ने उत्तर दिया - 'अगर तुमने अपने ऊपर ऐसी जिम्मेदारी ली है तो तुम ही नज्मुद्दीन के बारे में कविता लिखो। जहाँ तक मेरा संबंध है तो मैं उसकी पनचक्की को चलाने के लिए पानी पहुँचाने का इरादा नहीं रखता हूँ। वाससलाम, वाकलाम...'

इसी वक्त बोल्शेविक मुहम्मद-मिर्जा खिजरोयेव ने पिता जी को तेमीरखान-शूरा से निकलनेवाले 'लाल पर्वत' समाचार पत्र के साथ सहयोग करने को बुलाया। इसी समाचार पत्र में पिता जी की कविता 'पहाड़ी गरीबों से अपील' प्रकाशित हुई।

पिता जी नए दागिस्तान के बारे में लिखते रहे, 'लाल पर्वत' समाचार पत्र में काम करते रहे। वक्त बीता। मुहम्मद-मिर्जा खिजरोयेव के यहाँ बेटी का जन्म हुआ। पिताजी को बच्ची का नाम रखने के लिए बुलाया गया। बच्ची को हाथ में ऊँचा उठाकर पिताजी ने उसका नाम घोषित किया -

'जागरा!'

जागरा का अर्थ है - सितारा।

नए सितारों का जन्म हुआ। खेत रहनेवाले वीरों के नामोंवाले बच्चे बड़े हो रहे थे। पूरा दागिस्तान एक बहुत बड़े पालने जैसा बन गया।

कास्पी सागर की लहरें उसके लिए लोरी गाती थीं। विराट सोवियत देश मानो बच्चे जैसे दागिस्तान की चिंता करने के लिए उसके ऊपर झुक गया।

मेरी अम्माँ उस समय अबाबीलों, पत्थरों के नीचे से उगनेवाली घासों, समृद्ध पतझर के बारे में गाने गाती थीं। इन लोरियों की छाया में हमारे घर में तीन बेटे और एक बेटी बड़ी हो रही थी।

दागिस्तान में फिर से एक लाख बेटे-बेटियाँ बड़े हो गए। हलवाहे, पशु-पालक, बागबान, मछुए, संगतराश, पच्चीकार, कृषिशास्त्री, डाक्टर, अध्यापक, इंजीनियर कवि और कलाकार जवान हो गए। जहाज तैर चले, हवाई जहाज उड़ानें भरने लगे तथा अब तक अनदेखी-जनजानी बत्तियाँ जगमगा उठीं।

'अब मैं बहुत बड़ी दौलत का मालिक हो गया हूँ,' सुलेमान स्ताल्स्की ने कहा।

'अब मैं केवल अपने गाँव के लिए नहीं, बल्कि पूरे देश के लिए जवाबदेह हूँ,' मेरे पिता जी कह उठे।

'मेरे गीतो, क्रेमलिन को उड़ जाओ।' अबूतालिब ने उत्साहपूर्वक कहा।

नई पीढ़ियों ने हमारी जनता को नए लक्षण प्रदान किए।

सोवियतों का महान देश - एक बहुत शक्तिशाली पेड़ है। दागिस्तान उसकी एक शाखा है।

इस पेड़ की जड़ खोदने, इसके तने और शाखाओं को जला डालने के लिए फासिस्टों ने हम पर हमला कर दिया।

उस दिन जीवन अपने सामान्य ढंग से चलनेवाला था। खूँजह में इतवार के दिन की पैंठ लगी हुई थी। दुर्ग में कृषि-क्षेत्र की उपलब्धियों की प्रदर्शनी आयोजित थी। युवजन का दल सेद्लो पहाड़ की चोटी पर विजय पाने गया था। अवार थियेटर मेरे पिता जी का नाटक 'मुसीबतों से भरा संदूक' प्रस्तुत करने की तैयारी कर रहा था। उस शाम को उसका प्रथम प्रदर्शन होनेवाला था।

किंतु सुबह को मुसीबतों का ऐसा संदूक खुला कि बाकी सभी मुसीबतें भूल जानी पड़ीं। सुबह को युद्ध आरंभ हो गया।

उसी वक्त विभिन्न गाँवों से मर्दों और नौजवानों का ताँता लग गया। एक दिन पहले तक ये लोग शांतिपूर्ण जीवन बितानेवाले चरवाहे और हलवाहे थे और अब मातृभूमि के रक्षक। दागिस्तान के सभी गाँवों के घरों की छतों पर बुढ़ियाँ, बच्चे और औरतें खड़ी हुई देर तक मोरचे पर जानेवाले इन लोगों को देखती रहीं। ये बहुत समय के लिए और कुछ तो हमेशा के लिए अपने घरों से चले गए। बस, यही सुनने को मिलता था -

'अलविदा, अम्माँ।'

'सुखी रहिए, पिताजी।'

'अलविदा, दागिस्तान।'

'तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, बच्चो, विजयी होकर घर लौटो।'

सागर से पर्वतों को मानो अलग करती हुई गाड़ियों पर गाडियाँ मखाचकला से चली जा रही थीं। वे दागिस्तान की जवानी, शक्ति और खूबसूरती को अपने साथ लिए जा रही थीं। सारे देश को इस शक्ति की आवश्यकता थी। रह-रहकर यही सुनने को मिलता था -

'अलविदा, मेरी मंगेतर।'

'नमस्ते, प्यारी पत्नी।'

'मुझे छोड़कर नहीं जाओ, मैं तुम्हारे साथ जाना चाहती हूँ।'

'विजयी होकर लौटेंगे।'

गाड़ियाँ जा रही थीं। लगातार गाड़ियाँ जा रही थीं।

मुझे अपने प्यारे अध्यापक प्रशिक्षण कालेज की याद आती है। क्रांति शहीदों के बंधु-कब्रिस्तान के करीब दागिस्तान की घुड़-रेजिमेंट तैयार खड़ी थी। लाल छापामार, प्रसिद्ध कारा कारायेव उसकी कमान सँभाले था। घुड़सैनिकों के चेहरे बड़े कठोर और गंभीर थे। रेजिमेंट वफादारी की कसम खा रही थी।

नब्बे साल के पहाड़ी बुजुर्ग ने रेजिमेंट को विदा करते हुए ये शब्द कहे -

'अफसोस की बात है कि मेरी उम्र आज तीस साल नहीं है। फिर भी मैं अपने तीन बेटों के साथ जा सकता हूँ।'

बाद में 'दागिस्तान' नामक लड़ाकू हवाई जहाजों का दस्ता बना, 'शामिल' नाम का टैंक-दल और 'दागिस्तानी कोम्सोमोल' नामक बख्तरबंद मोटरगाड़ी। पिता और पुत्र एक ही कतार में दुश्मन के खिलाफ लड़ रहे थे। पहाड़ों के ऊपर फिर से फौजी शान चमक दिखाने लगी। हमारी औरतों ने अपने कंगन और झुमके, पेटियाँ और और अँगूठियाँ, अपने चुने हुए वरों, पतियों तथा पिताओं के उपहार, सोना-चाँदी, रत्न-हीरे तथा दागिस्तान की प्राचीन कलाकृतियाँ बड़े सोवियत देश को भेंट कर दीं, ताकि वह विजय हासिल कर सके।

हाँ, दागिस्तान मोरचे पर चला गया। उसने पूरे देश के साथ मिलकर युद्ध में भाग लिया। सेना के हर भाग-जहाजियों, प्यादा फौजियों, टेंकचियों, हवाबाजों, और तोपचियों में किसीन किसी दागिस्तानी-निशानेबाज, हवाबाज, कमांडर या छापेमार - को देखा जा सकता था। बहुत दूर-दूर तक फैले मोरचों से छोटे दागिस्तान में शोकपूर्ण पत्र आते थे।

हमारे त्सादा गाँव में सत्तर पहाड़ी घर हैं। लगभग इतने ही नौजवान लड़ाई में गए। युद्ध के वर्षों में अम्माँ कहा करती थीं - 'मैं सपने में अक्सर यह देखती हूँ मानो हमारे त्सादा गाँव के सभी जवान नीज्नी वन-प्रांगण में जमा हो रहे हैं।' कभी-कभी आकाश में तारा देखकर वह कहतीं - 'शायद इस वक्त हमारे गाँव के नौजवान भी लेनिनग्राद के करीब ही कहीं इस तारे को देख रहे हैं।' जब मौसमी पक्षी उत्तर से उड़कर हमारे यहाँ आते तो मेरी माँ उनसे पूछतीं - 'तुमने हमारे त्सादा के नौजवानों को तो नहीं देखा?'

पहाड़ी औरतें पत्र पढ़ते और रेडियो सुनते हुए अपने लिए कठिन तथा समझ में न आनेवाले - केर्च, ब्रेस्त, कोरसून-शेव्चेन्कोव्स्की, प्लोयेष्टी, कोन्स्तान्त्सा, फ्रेंकफोर्ट ओन माइन, ब्रांडेनबर्ग - आदि शब्दों को मुँहजबानी याद करने की कोशिश करतीं। पहाड़ी औरतें खास तौर पर तो दो शहरों के मामले में गड़बड़

करतीं। ये शहर थे - बुखारेस्ट और बुडापेस्ट - तथा हैरान होतीं कि ये दो भिन्न शहर हैं।

हाँ, कहाँ-कहाँ नहीं गए हमारे त्सादा गाँव के नौजवान।

सन 1943 में अपने पिता जी के साथ मैं बालाशोव शहर गया। वहाँ मेरे बड़े भाई का अस्पताल में देहांत हो गया था। छोटी-सी नदी के किनारे हमने उसकी कब्र ढूँढ़ ली और उस पर ये शब्द पढ़े - 'मुहम्मद हमजातोव'।

पिता जी ने इस कब्र पर रूसी बेर्योजा यानी भूर्ज वृक्ष लगाया। पिता जी ने कहा - 'हमारे त्सादा का कब्रिस्तान अब बहुत फैल गया है। हमारा गाँव अब बड़ा हो गया है।'

मातृभाषा

त्सादा का कब्रिस्तान...
श्वेत कफन से, अंधकार-से ढके हुए
प्रिय पड़ोसियो, तुम कब्रों में दफन यहाँ
तुम हो निकट, न फिर भी घर को लौटोगे
लौटा मैं घर, दूर बहुत जा, कहाँ-कहाँ

यहाँ गाँव में दोस्त बहुत कम अब मेरे
रिश्तेदार न अब तो मेरे बहुत रहे,
बड़े बंधु की बेटी, अरे, भतीजी भी
स्वागत मेरा करे न चाचा मुझे कहे।

हँसमुख, अल्हड़ बच्ची, तुम पर क्या बीती?
साल गुजरते जाएँ, ज्यों जलधार बहे,
खत्म पढ़ाई की स्कूल की सखियों ने
किंतु जहाँ तुम, वहाँ न कुछ भी शेष रहे।

मुझे बड़ा ही अजब, बेतुका यहाँ लगा
जहाँ न कोई प्राणी, सब सुनसान पड़ा,
वहीं, गाँव के साथी की है कब्र जहाँ

सहसा उसका जुरना बाजा, झनक उठा।

जैसे कभी पुराने वक्तों में, अब भी
उसके साथी की खंजड़ी भी गूँज उठी,
मुझको लगा कि अपने किसी पड़ोसी की
खुशी मनाते हैं वे, उसकी शादी की।

नहीं... यहाँ जो रहते, शोर नहीं करते
कोई भी तो यहाँ नहीं देता उत्तर...
कब्रिस्तान त्सादा का, नीरव, गुपचुप
मेरे गाँववासियों का यह अंतिम घर।

तुम बढ़ते जाते, सीमाएँ फैल रहीं
तंग तुम्हारा होता जाता हर कोना,
है मुझको मालूम एक दिन आएगा
मुझे यहीं पर जब आखिर होगा सोना।

राहें हमें कहीं ले जाएँ, वे मिलतीं
अंत सभी का एक, सभी आ मिलें यहीं
किंतु त्सादा के कुछ लोगों की कब्रें
नजर नहीं आती हैं मुझको यहाँ कहीं

नौजवान भी, बूढ़े कर्मठ सैनिक भी
घर से दूर, अँधेरी कब्रों में सोते,
जाने कहाँ हसन है, कहाँ मुहम्मद है?
घर से कितनी दूर मरे बेटे-पोते?

अरे बंधुओ, तुम शहीद हो गए कहाँ?
कभी हमारा मिलन न होगा, ज्ञात मुझे
किंतु तुम्हारी कब्रें यहाँ त्सादा में
नहीं मिली, दुख देती है यह बात मुझे।

दूर कहीं पर गोली दिल में तुम्हें लगी
घायल होकर, दूर गाँव से मरे कहीं,
कब्रिस्तान त्सादा के कब्रें तेरी
जाने, कितनी दूर-दूर तक फैल गई।

ठंडे क्षेत्रों में, अब गर्म प्रदेशों में
बरसे आग, जहाँ हिम के तूफान चलें,
बड़े प्यार से लोग फूल लेकर आएँ
शीश झुकाकर अपनी श्रद्धा प्रकट करें।

युद्ध के समय हमारे गाँव की ग्राम-सोवियत में एक बहुत बड़ा नक्शा लटका हुआ था। उस वक्त सारे देश में इस तरह के बहुत-से नक्शे लटके हुए थे। आम तौर पर वहाँ लाल झंडियों के रूप में मोरचे की रेखा अंकित की जाती थी। हमारे नक्शे पर भी झंडियाँ बनी हुई थीं, मगर उनका अभिप्राय दूसरा था। ये झंडियाँ उन जगहों पर गाड़ी गई थीं, जहाँ हमारे त्सादावासी खेत रहे थे। अनेक झंडियाँ थीं नक्शे पर। उतनी ही, जितने मातृ-हृदय इन तीखे बकसुओं से घायल हुए थे।

हाँ, त्सादा का कब्रिस्तान कुछ छोटा नहीं था, यह पता चला कि हमारा गाँव भी कुछ छोटा नहीं था।

बेटों की याद में तड़पनेवाली माताएँ नजूम लगानेवालियों के पास जातीं, नजूम लगानेवालियाँ पहाड़ियों को तसल्ली देतीं - 'देखो, यह है रास्ता। यह है मोरचा। यह है विजय। तुम्हारा बेटा तुम्हारे पास लौट आएगा। शांति और अमन-चैन हो जाएगा।'

नजूम लगानेवालियाँ चालाकी से काम लेती थीं। लेकिन विजय के बारे में उन्होंने गलती नहीं की थी। रेइखस्ताग की दीवार पर अन्य आलेखों के साथ-साथ संगीन से खुदा हुआ यह आलेख भी अंकित है - 'हम दागिस्तानी हैं।'

फिर से बूढ़े, औरतें और बच्चे अपने घरों की छतों पर खड़े होकर दूर तक नजर दौड़ाते थे। किंतु अब वे अपने सूरमाओं को विदा नहीं देते थे, बल्कि उनका स्वागत करते थे। पहाड़ी मार्गों पर लोगों की कतारें नहीं थीं। वे गए तो एक साथ थे, मगर लौट रहे थे एक-एक ही। कुछ औरतें अपने सिरों पर चटकीले और अन्य काले रूमाल बाँधे थीं। लौटनेवाले जवानों से दूसरों की माँएँ पूछती थीं -

'मेरा ओमार कहाँ है?'

'तुमने मेरे अली को तो नहीं देखा?'

'मेरा मुहम्मद जल्द ही वापस आ जाएगा?'

मेरी अम्माँ ने भी अपने सिर पर काला रूमाल बाँध रखा था। उनके दो बेटे, मेरे दो भाई - मुहम्मद और अखील्वी मोरचे से नहीं लौटे थे। उनमें से अनेक वापस नहीं आए थे जिन्हें अम्माँ अपनी खिड़कियों से नीज्नी वन-प्रांगण में खेलते देखती रही थीं। वे नहीं लौटे जिनके बारे में नजूम लगानेवालियों ने जल्द ही लौटने की भविष्यवाणी की थी। हमारे छोटे से गाँव में एक सौ व्यक्ति वापस नहीं आए। पूरे दागिस्तान में एक लाख लोग नहीं लौटे।

मैं नक्शे पर लगी झंडियों को देखता हूँ, जगहों के नाम पढ़ता हूँ और हमवतनों के नाम याद करता हूँ। मुहम्मद गाजीयेव बारेंत्सेव सागर में ही रह गया। टेंकची मुहम्मद जागीद अब्दुलमानापोव सिंफरोपोल में शहीद हुआ। मशीनगन चालक खानपाशा नूरादीलोव, जो चेचेन जाति का, मगर दागिस्तान का बेटा था, स्तालिनग्राद में खेत रहा। बहादुर कामालोव ने इटली में छापेमारों का नेतृत्व करते हुए वीरगति पाई।

हर पहाड़ी गाँव में पिरामिडी स्मारक खड़े हैं और उन पर नाम ही नाम लिखे हैं। उनके करीब पहुँचने पर पहाड़ी लोग घोड़ों से नीचे उतर आते हैं और पैदल चलनेवाले अपने सिरों पर से समूर की टोपी उतार लेते हैं।

पहाड़ों में शहीदों के नामवाले चश्मे बहते हैं। बुजुर्ग लोग चश्मों के करीब बैठते हैं, क्योंकि वे पानी की भाषा समझते हैं। हर घर में बहुत ही आदर के स्थान पर उनके छविचित्र लटके हुए हैं जो चिर युवा और चरि सुंदर बने रहेंगे।

जब कभी मैं दूर-दराज की किसी यात्रा से लौटता हूँ तो कुछ माताएँ दिल में छिपी आशा लिए हुए मुझसे पूछती हैं - 'संयोगवश मेरे बेटे से तुम्हारी कहीं मुलाकात तो नहीं हुई?' इसी तरह मन में आशा और कसक लिए हुए वे सारसों के लंबे-लंबे काफिलों को जाते हुए देखती रहती हैं। मैं भी अपने करीब से उड़े जाते सारसों पर से अपनी नजर नहीं हटा पाता हूँ।

सारस

कभी-कभी लगता है मुझको वे सैनिक
रक्तिम युद्ध-भूमि से लौट न जो आए
नहीं मरे वे वहाँ बने मानो सारस
उड़े गगन में, श्वेत पंख सब फैलाए।

उन्हीं दिनों से, बीते हुए जमाने से
उड़े गगन में, गूँजे उनकी आवाजें
क्या न इसी कारण ही अक्सर चुप रहकर
भारी मन से हम नीले नभ को ताकें?

आज, शाम के घिरते हुए अँधेरे में
देखूँ, धुंध-कुहासे में सारस उड़ते,
अपना दल-सा एक बनाए उसी तरह
जैसे जब थे मानव, भू पर डग भरते।

वे उड़ते हैं, लंबी मंजिल तय करते
और पुकारें जैसे नाम किसी के वे,
शायद इनकी ही पुकार से इसीलिए
शब्द हमारी भाषा के मिलते-जुलते?

उड़ते जाते हैं सारस-दल थके-थके
धुंध-कुहासे में भी, जब दिन ढलता है,
उस तिकोण में उनके जरा जगह खाली
वह तो मेरे लिए, मुझे यह लगता है।

वह दिन आएगा, मैं सारस-दल के संग
हल्के नील अँधेरे में उड़ जाऊँगा,
उन्हें सारसों की ही भाँति पुकारूँगा
छोड़ जिन्हें मैं इस धरती पर जाऊँगा।

सारस उड़ते हैं, घास ऊँची होती है, पालने झुलाए जाते हैं। मेरे घर में भी तीन को पालने में झुलाया गया, मेरे यहाँ तीन बेटियों का जन्म हुआ। किसी अन्य के यहाँ चार, किसी और के दस तथा किसी अन्य के पंद्रह बच्चों ने जन्म लिया। त्सादा गाँव में एक सौ झूले झुलाए जाते हैं, दागिस्तान में एक लाख झूले झुलाए जाते हैं। जन्म-दर की दृष्टि से दागिस्तान का रूसी संघ में पहला स्थान है। हम पंद्रह लाख हो गए। जितने अधिक लोग होते हैं,

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है कि तीन मामलों में कभी देर नहीं करनी चाहिए - जब मुर्दे को दफनाना हो, जब मेहमान को खाना खिलाना हो और जब जवान बेटी की शादी करनी हो।

इन तीनों मामलों में दागिस्तान में कभी देर नहीं होने देते। लीजिए, ढोल ढमढम करने लगा, जुरना झनझना उठा और शादियाँ शुरू हो गई। शराब का पहला जाम उठाकर यह कामना की जाती है - 'बहू बेटे को जन्म दे।'

तीन और चीजें भी हैं जो पहाड़ी लोगों को अवश्य ही पूरी करनी चाहिए - शराब से भरे हुए सींग को पीना चाहिए, अपने नाम को बट्टा नहीं लगने देना चाहिए और कठिन परीक्षा के समय अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिए।

पहाड़ी लोगों को काफी परीक्षाओं-आजमाइशों का सामना करना पड़ा है। किस्मत के हथौड़े ने दागिस्तान के घरों को तोड़ने के लिए कुछ कम चोटें नहीं कीं, मगर उन्होंने उन्हें सहन कर लिया।

वैसे संसार में आज भी शांति नहीं है। हमारी पृथ्वी पर कभी यहाँ तो कभी वहाँ गोलाबारी होने लगती है, बम फटते हैं और हमेशा की तरह आज भी माताएँ

अपने बच्चों को छातियों से चिपका लेती हैं।

जब आकाश में बारिश लानेवाली घटाएँ घिर आती हैं तो किसान कटी हुई फसल को समेटने के लिए खेतों की ओर भागते हैं। जब हमारी पृथ्वी के ऊपर खतरे के बादल मँडराने लगते हैं तो लोग शांति की रक्षा करने, उसे युद्ध के खतरे से बचाने की कोशिश करते हैं।

दागिस्तान में ऐसा कहा जाता है - लड़के साँड़ के सींग काट दिए जाते हैं और काटनेवाले कुत्ते को जंजीर से बाँधकर रखा जाता है। अगर हमारी दुनिया में भी ऐसी ही रीति-परंपरा होती तो जीना आसान होता। अब छोटा-सा दागिस्तान बड़ी दुनिया के बारे में चिंता करता हुआ जीता है।

पहले वक्तों में पहाड़ी लोग जब कभी कहीं धावा बोलने को जाते थे तो बहुत ही जवान सूरमाओं को अपने साथ नहीं लेते थे। लेकिन शामिल ने कहा कि ऐसा करना चाहिए। कानी उँगली बहुत छोटी होती है, मगर उसके बिना मजबूत घूँसा नहीं बनता।

हमारे देश के बड़े और भारी घूँसे में दागिस्तान बेशक कानी उँगली के समान ही हो। तब हमारे दुश्मन अपना एड़ी-चोटी का जोर लगाकर भी इस घूँसे को कमजोर नहीं कर सकेंगे।

यह घूँसा तो दुश्मनों के लिए है, लेकिन दोस्त के कंधे पर तो चौड़ी हथेली ही टिकी रहती है। उस हथेली में भी कानी उँगली होती है।

जब में विदेशों में जाता हूँ तो सबसे पहले कवियों-शायरों से जान-पहचान करता हूँ। गीत गीत को अच्छी तरह से समझता है। इसके अलावा मैं हमवतनों से मिलने की कोशिश करता हूँ, अगर वे वहाँ होते हैं। बेशक यह सही है कि विदेशों में हमवतन भी भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन हमवतनों के प्रति घमंड को मैं इस कारण बर्दाश्त नहीं कर सकता कि वे भिन्न-भिन्न हैं। मेरी उनसे तुर्की, सीरिया और पश्चिमी जर्मनी में तथा कितनी ही दूसरी जगहों पर मुलाकात हुई।

कुछ दागिस्तानी तो शामिल के वक्त में ही अपनी मातृभूमि से दूर चले गए थे। वे अपने घर-बार छोड़कर उस सुख की तलाश में चले गए थे जो उन्हें अपने वतन में नहीं मिला था।

दूसरे इसलिए चले गए कि उन्होंने क्रांति को नहीं समझा या समझ गए, लेकिन डर गए। कुछ ऐसे थे जिन्हें खुद क्रांति ने ही बाहर निकाल दिया। चौथी

किस्म के लोग भी हैं जो एकदम तुच्छ, दयनीय और पथ-भ्रष्ट हैं। इन्होंने महान देशभक्ति के युद्ध में मातृभूमि के साथ गद्दारी की।

भिन्न-भिन्न दागिस्तानियों से मिला हूँ मैं। तुर्की में तो दागिस्तानी गाँव में भी गया था।

'हमारे यहाँ भी एक छोटा-सा दागिस्तान है,' इस गाँव के वासियों ने मुझसे कहा।

'नही, आप ठीक नहीं कह रहे हैं। दागिस्तान तो सिर्फ एक ही है। दो दागिस्तान नहीं हो सकते।'

'तो तुम्हारे ख्याल में हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं?'

'हाँ, आप कौन हैं और कहाँ से आए हैं?'

'हम कारात, बतलूख, खूँजह, आकूश, कुमुख, चोख और सोगरात्ल के रहनेवाले हैं। हम दागिस्तान के भिन्न गाँवों के हैं, ठीक उसी तरह, जिस तरह वे जो हमारे गाँव के कब्रिस्तान में हमेशा के लिए सोए हुए हैं। हम भी एक छोटा-सा दागिस्तान हैं!'

'आप - कभी थे। कुछ अभी भी दागिस्तानी बने रहना चाहते हैं। शायद ये भी दागिस्तानी हैं?' मैंने गोत्सीत्स्की अलीखानोव और उजून-हाजी की तस्वीरों की तरफ इशारा करते हुए पूछा।

'अगर दागिस्तानी नहीं तो कौन हैं ये? ये हमारे ही लोगों में से हैं, हमारी ही भाषा बोलते हैं।'

'दागिस्तान इनकी भाषा नहीं समझ पाया और ये दागिस्तान की भाषा।'

'हर कोई अपने ही ढंग से दागिस्तान को समझाता है। हर किसी के दिल में अपना दागिस्तान है।'

'लेकिन दागिस्तान हर किसी को अपना बेटा नहीं मानता।'

'किसे मानता है?'

'वहाँ हमारे बारे में क्या कहा जाता है?'

'ऐसे पत्थर, जो दागिस्तान के निर्माण के वक्त उसकी इमारत की दीवार में नहीं चुने जो सके और फालतू पड़े रहे। ऐसे पत्ते जिन्हें पतझर की हवा उड़ा ले गई, ऐसे तार, जो पंदूरा के मुख्य तारों के साथ एक ही सुर में नही बज सके।'

तो ऐसे बातें कीं मैंने विदेशों में रहनेवाले हमवतनों से। उनमें अमीर भी हैं, गरीब भी, दयालु भी, क्रोधी भी, ईमानदार और बेईमान भी, धोखे में आनेवाले और धोखा देनेवाले भी। उन्होंने मेरे सामने लेज्गीन्का नाच नाचा, मगर खंजड़ी पराई थी।

जब हम यह कहते हैं कि दागिस्तान में हम पंद्रह लाख हैं तो उन लोगों को नहीं गिनते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

जब मैं सीरिया से रवाना हो रहा था तो एक अवार औरत मुझसे लगातार यह अनुरोध करती रही कि मैं गेर्गेबिल गाँव में खूबानियों के पेड़ को हाथों से छूकर उसे नमस्ते कहूँ।

संगमरमर सागर के तट पर अवार जाति के कुछ बच्चों ने, जिनका बाप हज करने मक्का गया था, मुझसे कहा -

'हमारे लिए तो दागिस्तान ही मक्का है। मक्का हो आनेवाले को हाजी कहा जाता है। लेकिन हमारे लिए तो अब वही हाजी है जिसे दागिस्तान हो आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'

मखाचकला में मेरे पास एक ऐसा ही हाजी आया था जो चालीस साल तक अपनी मातृभूमि से दूर रहा था।

'कहो, कैसा लगा तुम्हें यहाँ?' मैंने उससे पूछा। 'दागिस्तान बदल गया न?'

'अगर मैं वहाँ यह सब कुछ बताऊँगा तो लोग यकीन नहीं करेंगे। लेकिन मैं उनसे एक ही बात कहूँगा - दागिस्तान कायम है।'

मेरा दागिस्तान कायम है। वह जनतंत्र है। उसमें जनगण हैं, भाषा है, नाम हैं, रीति-रिवाज हैं। ऐसा है दागिस्तान का भाग्य। शादियाँ होती हैं, पालने झुलाए जाते हैं, जाम उठाए जाते हैं, गाने गाए जाते हैं।

शब्द

अवार भाषा में 'मिल्लत' शब्द के दो अर्थ हैं - जाति और चिंता। 'जो अपनी जाति की चिंता नहीं करता, वह सारी दुनिया की चिंता नहीं कर सकता,' मेरे पिता जी कहा करते थे।

'क्या जाति को उसकी चिंता करनी चाहिए जो जाति की चिंता नहीं करता?' अबूतालिब ने प्रश्न किया था।

'लगता है कि मुर्गे-मुर्गियों, कलहंसों और चूहों की जाति नहीं होती, किंतु लोगों की जाति होनी चाहिए।' मेरी अम्माँ कहा करती थीं।

एक जाति और दो जनतंत्र होते हैं, जैसे कि हमारे ओसेती पड़ोसियों के यहाँ एक जनतंत्र और उसमें चालीस जातियाँ भी होती हैं।

'भाषाओं और जातियों का पूरा ढेर ही है,' किसी राहगीर ने दागिस्तान के बारे में कहा था।

'एक हजार सिरोंवाला अजगर,' शत्रु दागिस्तान के संबंध में कहते थे।

'अनेक शाखाओंवाला पेड़,' दागिस्तान के बारे में मित्र कहते हैं।

'बेशक दिन के वक्त चिराग लेकर सारी दुनिया में ढूँढ़ आओ, कहीं भी ऐसी जगह नहीं मिलेगी जहाँ इतने कम लोग और इतनी अधिक जातियाँ हो,' पर्यटकों ने यह मत प्रकट किया।

अबूतालिब को यह मजाक करना पसंद था -

'हमने जार्जियाई संस्कृति के विकास में बड़ा योग दिया है।'

'यह तुम क्या कह रहे हो? उनकी संस्कृति हजारों साल पुरानी है। प्रसिद्ध जार्जियाई कवि शोता रूस्तावेली तो आठ सौ साल पहले हुए थे, जबकि हमने तो कुछ ही साल पहले लिखना सीखा है। भला हमने उनकी कैसे मदद की?'

'हमने ऐसे मदद की। हमारे हर गाँव की अपनी भाषा है। हमारे जार्जियाई पड़ोसियों ने इन भाषाओं का अध्ययन और उनकी तुलना करने का निर्णय किया। अनुसंधानकर्ताओं ने इनके बारे में लेख और वैज्ञानिक पुस्तकें लिखीं। वे विद्वान बन गए, उन्होंने पी-एच.डी. और डी.लिट् की उपाधियाँ प्राप्त कर लीं। अगर पूरी दागिस्तान में एक ही भाषा होती तो क्या उनके यहाँ भाषाशास्त्र के इतने डाक्टर हो सकते थे? तो ऐसे हमने उनकी मदद की।'

हाँ, दागिस्तान की भाषाओं के व्याकरण, वाक्य-विन्यास, उच्चारण और शब्द-कोश के बारे में सभी तरह की पुस्तकें लिखी जाती हैं। यहाँ काम करने के लिए बड़ी सामग्री है। विद्वानो, पधारिये, आपके तथा आपके बच्चों के लिए भी काफी काम है।

विद्वान आपस में बहस करते हैं। कुछ कहते हैं कि दागिस्तान में इतनी भाषाएँ हैं, दूसरों का कहना कि इतनी। कुछ कहते हैं कि इन भाषाओं का जन्म इस तरह से हुआ और दूसरों का मत है कि इस तरह से। इनके मतभेदों और प्रमाणों में बहुत-से विरोधाभास हैं।

लेकिन मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि हमारे यहाँ एक बैलगाड़ी में पाँच भाषाएँ बोलनेवाले लोग यात्रा करते देखे जा सकते हैं। अगर किसी चौराहे पर पाँच बैलगाड़ियाँ रुक जाती हैं तो वहाँ तीस भाषाएँ भी सुनी जा सकती हैं।

जब उल्लूबी बुइनाकस्की के नेतृत्व में पार्टी के गुप्त संगठन के सदस्यों को, जिनकी संख्या छह थी, गोलियाँ चलाकर मौत के घाट उतारा गया तो उन्होंने पाँच विभिन्न भाषाओं में दुश्मन को अभिशाप दिया -

उल्लूबी बुइनाकस्की ने कुमिक भाषा में।
सईद अब्दुलगालीमोव ने अवार भाषा में।
अब्दुल-वागाब गाजीयेव ने दारगीन भाषा में।
मजीद अली-ओगली ने कुमिक भाषा में।
अब्दुर्रहमान इसमाईलोव ने लेज्गीन भाषा में।
ओस्कार लेश्चीन्स्की ने रूसी भाषा में।

दागिस्तानी लेखक मुहम्मद सुलीमानोव ने दागिस्तान की पंद्रह विभिन्न जातियों के पंद्रह मुहम्मदों के बारे में पंद्रह दिलचस्प कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों के संकलन का यही शीर्षक है - 'पंद्रह मुहम्मद'।

रूसी लेखक द्मीत्री त्रूनोव ने एक ऐसे सामूहिक फार्म के बारे में शब्दचित्र लिखा है, जहाँ बत्तीस जातियों-उपजातियों के लोग काम करते हैं।

एफ्फंदी कापीयेव की नोटबुक में यह लिखा हुआ है कि कैसे वह और तीन अन्य दागिस्तानी लेखक-सुलेमान स्ताल्स्की हमजात त्सादासा और अब्दुला मुहम्मदोव रेलगाड़ी के एक ही केबिन में सोवियत संघ के लेखकों की पहली कांग्रेस में भाग लेने के लिए मास्को गए। दागिस्तान के ये सभी जन-कवि तीन दिन-रातों तक गाड़ी में यात्रा करते रहे, मगर एक-दूसरे के साथ बातचीत नहीं कर पाए। हर किसी की अपनी भाषा थी। इशारों से एक-दूसरे को अपनी बात समझाते थे और बड़ी मुश्किल से एक-दूसरे को समझ पाते थे।

छापेमारों के साथ अपने जीवन की चर्चा करते हुए अबूतालिब ने लिखा है - 'दलिये के एक देग के गिर्द बीस भाषाएँ बोली जाती थीं। आटे की एक बोरी बीस जन-जातियों में बाँटी जाती थी।'

हमारे यहाँ नीज्नी जेनगुताई और वेर्खनी जेनगुताई नाम के गाँव हैं। उनके बीच तीन किलोमीटर का फासला है। नीज्नी जेनगुताई में कुमिक भाषा बोली जाती है और वेर्खनी जेनगुताई में अवार।

दारगीन जाति के लोगों का कहना है कि मेगेब में दारगीन रहते हैं और अवार जातिवाले कहते हैं कि वहाँ अवार रहते हैं। लेकिन खुद मेगेबवासियों का क्या कहना है? उनका कहना है कि हम न तो दारगीन हैं और न अवार। हम तो मेगेबी हैं। हमारी अपनी मेगेबी भाषा है। मेगेब से सात किलोमीटर दूर जाने पर हम चोख गाँव में पहुँच जाते हैं। मेगेबी भाषा के साथ वहाँ नहीं जाओ, क्योंकि चोख की अपनी विशेष भाषा है।

लोगों का कहना है कि कुबाची के सुनारों की कला इस कारण बहुत अरसे तक विश्वसनीय ढंग से गुप्त बनी रही कि कोई भी उनकी भाषा नहीं समझ सकता था। अगर कोई राज को खोलना भी चाहता तो किसके सामने ऐसा करता?

यह भी कहा जाता है कि खूँजह के खान ने इस उद्देश्य से गीदात्ली में अपना जासूस भेजा कि वह वहाँ की सभाओं और बाजारों में जाकर लोगों की सारी

बातें सुने ताकि यह पता लगा सके कि गीदात्ली के लोग क्या सोचते हैं।

जासूस बहुत ही जल्दी वापस आ गया।

'सब कुछ मालूम कर आए?'

'कुछ भी मालूम नहीं कर सका।'

'क्यों?'

'वहाँ हर कोई अपनी भाषा में बोलता है। उनकी भाषाएँ हमारी समझ में नहीं आतीं।'

एक पहाड़िया अपने लिए लबादा खरीदने के विचार से आंदी गाँव में गया। उसने लबादा पसंद किया, कीमत पूछी और मोल-भाव करने लगा। मोल-भाव होता रहा, होता रहा और अचानक आंदी गाँव के दुकानदार अपनी भाषा में बोलने लगे। गाहक पहाड़िये ने एतराज करते हुए कहा -

'चूँकि मैं गाहक हूँ, इसलिए तुम्हें ऐसी भाषा में बात करनी चाहिए जो मेरी समझ में आ सके।'

'हम तुम्हारी समझ में आनेवाली भाषा में तब बात करेंगे, जब तुम हमारी कीमत मंजूर कर लोगे।'

हाँ, यह सच है कि आंदी गाँव के लोगों ने व्यापार में अभी तक कभी मार नहीं खाई।

किसी पहाड़िये को एक हसीना से मुहब्बत हो गई। उसने इस सुंदरी को ये पावन शब्द 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ' लिखने का निर्णय किया, किंतु पत्र के रूप में नहीं, बल्कि उस जगह, जहाँ वह युवती आती-जाती थी और जहाँ वह उसकी प्रणय-स्वीकृति को देख सकती थी। उसने उक्त शब्दों को किसी चट्टान, चश्मे की ओर जानेवाली पगडंडी, उसके घर की दीवार, अपने पंदूरा बाजे पर लिखने का निर्णय किया। इसमें भी कोई बुरी बात नहीं थी। किंतु इस प्रेमी के दिमाग में यह सनक आ गई कि इन शब्दों को वह दागिस्तान की सभी भाषाओं में लिखे। इसी उद्देश्य से वह अपनी राह पर चल पड़ा। उसका ख्याल था कि उसकी यह यात्रा बहुत लंबी नहीं रहेगी। मगर वास्तव में उसने यह पाया कि हर गाँव में इन शब्दों को अपने ही ढंग से कहा जाता है... अवार भाषा में एक ढंग से, लेज्गीनी में दूसरे ढंग से, लाकस्की में तीसरे ढंग से, दारगीन्स्की में चौथे ढंग से, कुमिकस्की में

पाँचवें ढंग से, ताबासारन्स्की में छठे ढंग से, तात्स्की में सातवें ढंग से, आदि, आदि।

लोगों का कहना है कि यह प्रेमी अभी तक पहाड़ों में भटकता फिर रहा है, उसकी प्रेमिका की शादी हुए एक जमाना बीत गया, वह बूढ़ी भी हो गई, लेकिन हमारा यह आशिक सूरमा अभी तक अपने प्रेम के शब्द लिखता जा रहा है।

'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, इन शब्दों को तुम्हारी भाषा में कैसे कहा जाता है, तुम्हें यह मालूम है या नहीं?' एक बुजुर्ग ने किसी नौजवान से पूछा।

नौजवान ने अपने करीब खड़ी युवती का आलिंगन करते हुए जवाब दिया -

'मेरी भाषा में ये शब्द इस तरह कहे जाते हैं।'

दागिस्तान में हर छोटे-से परिंदे, हर फूल, हर नद-नाले के दसियों नाम हैं।

संविधान के अनुसार हमारे यहाँ आठ मुख्य जातियाँ हैं - अवार, दारगीन, कुमिक, लेज्गीन, लाक, तात, ताबासारान और नोगाई।

हम पाँच भाषाओं में पाँच साहित्यिक संकलन निकालते हैं। उनके नाम हैं - 'दुस्तवाल,' 'दोसलूक', 'गालमागदेश', 'गुदूल्ली', 'दूसशीवू'। वैसे इन सबका एक साझा नाम है 'द्रूज्बा' यानी दोस्ती।

दागिस्तान में नौ भाषाओं में किताबें छपती हैं। लेकिन कितनी भाषाओं में गाने गाए जाते हैं? हर कालीन पर अपने अलग बेल-बूटे होते हैं। हर तलवार पर अपना आलेख होता है।

लेकिन यह कैसे हुआ कि एक हाथ पर इतनी अधिक उँगलियाँ हो गईं? यह कैसे हुआ कि एक दागिस्तान में इतनी अधिक भाषाएँ हो गईं?

विद्वान लोग अपने ढंग से इसे स्पष्ट करते हरें। लेकिन इस संबंध में मेरे पिता जी यह कहा करते थे -

'अल्लाह का भेजा हुआ एक दूत खच्चर पर सवार होकर इस पृथ्वी पर जा रहा था और बहुत बड़ी खुरजी में से भाषाएँ निकाल-निकालकर जनगण और राष्ट्रों को देता जाता था। चीनियों को उसने चीनी भाषा दे दी। अरबों के यहाँ गया और उन्हें अरबी भाषा दे दी। यूनानियों को उसने यूनानी, रूसियों को रूसी और फ्रांसीसियों को फ्रांसीसी भाषा दे दी। भाषाएँ भिन्न-भिन्न थीं - कुछ मधुर थीं तो कुछ कठोर, कुछ लच्छेदार, कुछ कोमल। जनगण ऐसे उपहार से बहुत खुश हुए और उसी वक्त सभी अपनी-अपनी भाषा में बोलने लगे। अपनी भाषाओं की

बदौलत लोग एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह जानने-समझने लगे और जनगण दूसरे जनगण, पड़ोसी जनगण को ज्यादा अच्छी तरह जानने-पहचानने लगे।

'अपने खच्चर पर सवारी करते हुए यह आदमी हमारे दागिस्तान तक पहुँच गया। कुछ ही समय पहले उसने जार्जियाई लोगों को उनकी भाषा दी थी जिस भाषा में बाद में शोता रूस्तावेली ने अपना महाकाव्य रचा, कुछ ही समय पहले ओसेतियों पर कृपा करते हुए उन्हें उनकी भाषा दी थी जिस भाषा में बाद में कोस्ता हेतागूरोव ने साहित्य-सृजन किया। आखिर हमारी बारी भी आ गई।

'लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि दागिस्तान के पहाड़ों में उस दिन बर्फ का तूफान आ रहा था। दर्रों में बर्फ जोर से चक्कर काट रही थी और आकाश तक ऊपर उठ रही थी। कुछ भी नजर नहीं आ रहा था - न रास्ते और न घर-मकान। सिर्फ अँधेरे में हवा जोर से सीटियाँ बजाती सुनाई दे रही थी, कभी-कभी शिला-खंड टूटकर गिरते थे और हमारी चार नदियाँ, हमारी चार कोइसू शोर मचा रही थीं।

'नहीं', भाषाएँ बाँटनेवाले ने कहा, जिसकी मूँछों पर बर्फ जमने लगी थी, 'मैं इन चट्टानों पर नहीं चढ़ूँगा और सो भी ऐसे बुरे मौसम में।'

'उसने अपनी खुरजी ली जिसके तल में दो मुट्ठी भर वे भाषाएँ पड़ी हुई थीं जिन्हें अभी तक बाँटा नहीं गया था और इन सारी भाषाओं को उसने हमारे पहाड़ों पर बिखेर दिया।

'जिसे जो अच्छी लगे, वही भाषा ले ले,' उसने कहा और अल्लाह के पास वापस चला गया।

'इस तरह बिखरा दी गई भाषाओं को बर्फ के तूफान ने झपट लिया और उन्हें दर्रों तथा चट्टानों पर ले जाने और इधर-उधर फेंकने लगा। किंतु इसी समय सारे दागिस्तानी लपककर अपने घरों से बाहर आ गए। हड़बड़ी करते और एक-दूसरे को धकेलते हुए वे भाषाओं की इस सुखद तथा प्यारी सुनहरी वर्षा की ओर भागने लगे जिसका उन्हें एक मुद्दत से इंतजार था। वे अनाज के कीमती दानों को, जिन्हें जो भी मिल गए, बटोरने लगे। हर किसी ने तब अपनी मातृभाषा ले ली। अपनी-अपनी भाषा लेकर पहाड़ी लोग घरों में जाकर बर्फ के तूफान का अंत होने की प्रतीक्षा करने लगे।

'सुबह जब वे जागे तो धूप खिली हुई थी - हिमपात तो जैसे हुआ ही नहीं था। लोगों ने देखा - सामने पहाड़ है! यह तो अब 'पहाड़' था। उसे पहाड़ कहकर पुकारा जा सकता था। लोगों ने देखा - सामने समुद्र है! यह तो अब 'समुद्र' था।

उसे समुद्र कहकर पुकारा जा सकता था। सामने आनेवाली हर चीज को ही अब कोई नाम दिया जा सकता था। कितनी खुशी की बात थी! यह रही रोटी, यह - माँ है, यह - पहाड़ी घर है, यह - चूल्हा है, यह - बेटा है, यह - पड़ोसी है, ये - लोग हैं।

'सभी लोग सड़क पर जमा हो गए, सभी मिलकर चिल्लाए - 'पहाड़।' उन्होंने कान लगाकर प्रतिध्वनि सुनी - सभी ने इस शब्द को अलग-अलग ढंग से कहा था। सभी मिलकर चिल्लाए - 'समुद्र!' सभी ने इस शब्द को अलग-अलग ढंग से कहा था। इसी वक्त से अवार, लेज्गीन, दारगीन, कुमिक, तात और लाक जातियाँ तथा भाषाएँ बन गईं... और उसी समय से यह सब कुछ दागिस्तान कहलाता है। लोग भेड़ों, भेड़ियों, घोड़ों और टिड्डों से अलग हो गए... कहते हैं कि 'घोड़े' के इनसान बनने में जरा-सी ही कसर है।'

लेकिन अल्लाह के भेजे हुए दूत! तुम उस वक्त बर्फ के तूफान और खड़े पर्वतों से क्यों घबरा गए? किसलिए तुमने सोचे-समझे बिना हमारे सामने भाषाएँ बिखरा दीं? यह तुमने क्या किया? जो लोग अपनी भावना, अपने दिल, आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज और जीवन के रंग-ढंग की दृष्टि से एक-दूसरे के इतने ज्यादा करीब हैं, तुमने उन्हें बाँट दिया, भाषाओं के कारण एक-दूसरे से अलग कर दिया।

खैर, इसके लिए भी शुक्रिया। बुरी भाषाएँ नहीं होतीं। बाकी चीजों के मामले में हम खुद ही सोच-समझ लेंगे। एक-दूसरे के निकट होने की राह ढूँढ़ लेंगे, ऐसा करेंगे कि विभिन्न भाषाएँ हमें अलग करने के बजाय सूत्रबद्ध करें।

बाद में लंगड़े तैमूर, अरबों और ईरान के शाह ने हमपर चढ़ाई की तथा हर किसी ने हम पर अपनी भाषा लादने की कोशिश की। लेकिन हमारे हाथ के झकझोरे जाने से हमारी उँगलियाँ टूटकर नहीं गिरीं, हमारे पेड़ के झकझोरे जाने से हमारी शाखाएँ नहीं टूटीं।

'भाषा की मातृभूमि की तरह रक्षा करनी चाहिए,' शामिल ने कहा था।

'शब्द-वे तो गोलियाँ हैं, उन्हें व्यर्थ बरबाद नहीं करो,' हाजी-मुरात ने जोड़ा था।

'जब बाप मरता है तो वह विरासत के रूप में बेटों के लिए घर, खेत, तलवार और पंदूरा छोड़ता है। लेकिन मरनेवाली पीढ़ियाँ आनेवाली पीढ़ियों के लिए विरासत के रूप में भाषा छोड़ती हैं। जिसके पास भाषा है, वह अपने लिए घर

बना लेगा, खेत जोत लेगा, तलवार बना लेगा, पंदूरा को सुर में कर लेगा और उसे बजा लेगा,' मेरे पिता जी कहा करते थे।

मेरी प्यारी मातृभाषा। मैं नहीं जानता कि तुम मुझसे खुश हो या नहीं, लेकिन तुम मेरी हर साँस में बसी हुई हो और मैं तुम पर गर्व करता हूँ। जैसे चश्मे का निर्मल जल अँधेरी गहराइयों में से धूप-नहाए स्थान की ओर, जहाँ हरियाली है, जाने की कोशिश करता है, वैसे ही मातृभाषा के शब्द बड़ी तेजी से मेरे दिल की गहराई से मेरे कण्ठ की ओर बढ़ते हैं। होंठ फुसफसाते हैं। मैं अपनी फुसफुसाहट को बहुत ध्यान से सुनता हूँ, मेरी भाषा, मैं तुम पर कान लगा देता हूँ और मुझे लगता है कि कोई बहुत ही प्रबल पहाड़ी नदी अपने लिए रास्ता बनाने को दर्रे में दहाड़ रही है। मुझे पानी का शोर अच्छा लगता है। जब म्यान से निकले हुए दो खंजर आपस में टकराते हैं तो इस्पात की खनक भी मुझे अच्छी लगती है। मेरी भाषा में यह सब कुछ है। मुझे प्यार की फुसफसाहट भी बहुत अच्छी लगती है।

मेरी मातृभाषा, मेरे लिए यह कर पाना बहुत कठिन है कि सभी तुझे जान जाएँ। कितनी समृद्ध हो तुम ध्वनियों की दृष्टि से, कितनी अधिक ध्वनियाँ हैं तुममें, जो अवार जाति का व्यक्ति नहीं हैं, कितना कठिन है उसके लिए इन ध्वनियों का उच्चारण करना। किंतु जो इनका उच्चारण कर सकता है, उसके लिए वे कितनी मधुर हैं। मिसाल के तौर पर दस तक की मामूली गिनती - त्सो (एक), कीगो (दो), लाबग्गो (तीन), उन्क्गो (चार), श्चूगो (पाँच), अनल्गो (छह), मीक्गो (सात), इच्गो (आठ), अंत्स्गो (नौ)। जब कभी अवार भाषा में दस तक सही उच्चारण करनेवाले किसी व्यक्ति से मेरी भेंट होती है तो मैं उसके बहादुरी से इस कारनामे की उस व्यक्ति की वीरता से तुलना करता हूँ जो कंधे पर भारी पत्थर रखे हुए बाढ़ से उमड़ती नदी को एक तट से दूसरे तट तक पार कर ले। अगर कोई व्यक्ति दस तक सही गिनती कर सकता है तो वह आगे भी बढ़ता जा सकता है। वह तैरना भी जानता है। साहस से आगे बढ़ता जाए।

दूसरी जातियों के लोगों की तो बात ही क्या की जाए। हमारी अवार जाति के बालकों से भी बुजुर्ग लोग कहा करते थे - इस वाक्य को अटके बिना तीन बार दोहराओ तो - 'क्योदा ग्योर्क क्वेर्क क्वाक्वादाना' (पुल के नीचे मेढकी टरटरा रही थी)। अवार भाषा के इस वाक्य में केवल चार शब्द हैं, लेकिन बहुत बार ऐसा होता था कि गाँव के हम बालक इस वाक्य को सही ढंग से और जल्दी-जल्दी कह पाने के लिए सारा-सारा दिन अभ्यास करते रहते थे।

अबूतालिब अवार भाषा बोल लेता था। उसने अपने बेटे को त्सादा गाँव में हमारे यहाँ इसलिए भेजा कि वह भी अवार भाषा सीख ले। बेटे के घर लौटने पर अबूतालिब ने उससे पूछा -

'गधे पर सवारी की?'

'हाँ, की।'

'दस तक गिनती कर सकते हो?'

'कर सकता हूँ।'

'यह वाक्य तीन बार लगातार दोहराओ - क्योदा ग्योर्क क्वेर्क क्वाक्वादाना।'

बेटे ने दोहराया -

'ओह, यह माना जा सकता है कि तुमने असंभव को संभव कर दिखाया है।'

तो ऐसी हैं चट्टानों के बीच दबे हुए हमारे गाँवों की भाषाएँ-बोलियाँ। हमारे उच्चारण, हमारी कंठ्य और श्वास ध्वनियों को लिखने के लिए अर्थात् विद्वानों की भाषा में उनका लिप्यंतरण करने के लिए किसी भी वर्णमाला में अक्षर नहीं मिले। इसीलिए जब हमारी लिपि बनाई गई तो रूसी भाषा की वर्णमाला में विशेष अक्षर और अक्षर-संयोग जोड़ने पड़े। व्यंजनों के मामले में तो खास तौर पर ऐसे ही करना पड़ा।

शायद इन फालतू अक्षरों के कारण अवार भाषा की रूसी में अनूदित हर पुस्तक कहीं अधिक पतली लगती है। उसकी ऐसे पहाड़ी आदमी से तुलना की जा सकती है जिसने लगातार तीन महीनों तक रोजे (व्रत) रखे हों।

शामिल से किसी ने पूछा -

'दागिस्तान को इतनी अधिक जातियों की क्या जरूरत है?'

'इसलिए कि एक के मुसीबत में पड़ जाने पर दूसरी उसकी मदद कर सके। इसलिए कि अगर एक जाति कोई गाना शुरू कर दे तो दूसरी उसका साथ दे सके।'

'तो क्या सभी जातियाँ किसी एक की मदद को सामने आईं?' अब मुझसे पूछा जाता है।

हाँ, आईं। हर जाति ने मदद की।'

'क्या एक ही सुर में गाना गाया गया?'

'हाँ, गाया गया। आखिर हमारी मातृभूमि तो एक ही है।'

अनेक धुनें हैं, किंतु वे मिलकर एक ही गाने का रूप लेती हैं। भाषाओं के बीच सीमाएँ हैं, लेकिन दिलों के बीच सीमाएँ नहीं हैं। विभिन्न लोगों के वीर-कृत्य अंत में एक ही वीर-कृत्य में घुल-मिल गए हैं।

'फिर भी विभिन्न जातियों में कुछ फर्क तो है? क्या फर्क है वह?'

'इस प्रश्न का जवाब देना बड़ा मुश्किल है।'

हमारी जातियों के बारे में कहा जाता है - कुछ लड़ने के लिए बनी हैं, कुछ हथियार बनाने के लिए, कुछ भेड़ें चराने के लिए, कुछ जमीन पर हल चलाने के लिए और कुछ बाग-बगीचे लगाने के लिए... मगर यह बेतुकी बात है। हर जाति के अपने सैनिक-सूरमा, चरवाहे, लुहार और बागवान हैं। हर किसी के अपने हीरो, गायक और कुशल कारीगर हैं।

अवारों के - शामिल हाजी-मुरात, हमजात, महमूद, मखाच।

दारगीनों के - बातीराय, बगातीरोव, अहमद मुंगी, राबादान नूरोव, कारा कारायेव।

लेज्गीनों के - सुलेमान, एमीन, ताहिर, अगासीयेव, अमीरोव।

कुमिकों के - इरची कजाक, अलीम-पाशा, उल्लूबी, सोल्तन-सईद, जाइनुलाबीद बातिरमुर्जायेव, नुखाई।

लाकों के - हारूँ सईदोव, सईद हाबीयेव, सफ्फदी कापीयेव, सुरखाई और मेरा दोस्त अबूतालिब।

अनेक जातियों में से मैंने केवल उन्हीं का उल्लेख किया है जो सबसे पहले मेरे दिमाग में आ गईं। प्रत्येक जाति में से मैंने केवल उन नामों का उल्लेख किया है जो सबसे पहले मुझे याद आ गए। लेकिन वैसे तो हमारे यहाँ अनेक जातियाँ हैं और अनेक जाने-माने नाम हैं।

कुछ जातियों के लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे चंचल स्वभाव के हैं, कुछ के बारे में यह कि बुद्धू-से हैं, कुछ के बारे में यह कि चोरटे हैं, कुछ के बारे में यह कि धोखेबाज हैं। संभवतः यह सब निंदा-चुगली है।

हर जाति में बढ़िया और घटिया, सुंदर और कुरूप लोग होते हैं। उसमें चोर और चुगलखोर भी मिल जाएँगे। लेकिन यह तो जाति नहीं, उसका कूड़ा-करकट होंगे।

मेरा एक अन्य मित्र ऐसे कहा करता था -

'मैं तो हमेशा पहले से ही यह जान लेता हूँ कि कोई व्यक्ति किस जाति का है।'

'यह कैसे?'

'बहुत ही आसानी से। दागिस्तान की एक जाति (हम उसका नाम नहीं लेंगे) के लोग मखाचकला में आते ही सबसे पहले यह ढूँढ़ते हैं कि यहाँ रेस्तराँ कहाँ हैं और किसी खूबसूरत लड़की से कहाँ जान-पहचान हो सकती है। इनके तीन आदमी शोर-गुल मचानेवाली पूरी मंडली या दावत की बड़ी मेज पर जमा होनेवाले लोगों का स्थान ले सकते हैं। दूसरी जाति (हम उसका नाम भी नहीं लेंगे) के लोग सिनेमाघर, थियेटर या कन्सर्ट हॉल की तरफ जाने की उतावली करते हैं। इनके तीन आदमी जहाँ होते हैं, वहाँ आर्केस्ट्रा बन जाता है, जहाँ पाँच होते हैं, वहाँ नाच-गानों की मंडली। तीसरी जाति के लोग पुस्तकालय की ओर दौड़ते हैं, इन्स्टीट्यूट में दाखिला लेने और शोध-प्रबंध का मंडन करने की कोशिश करते हैं। इस जाति के तीन आदमी जहाँ इकट्ठे हो जाते हैं, वहाँ विद्वान-परिषद बन जाती है और जहाँ पाँच जमा हो जाते हैं, वहाँ विज्ञान-अकादमी की शाखा बन जाती है। चौथी जाति (हम उसका नाम भी नहीं लेंगे) के लोग सिर्फ यही सोचते हैं कि किस तरह से कार खरीदी जाए या वे टैक्सी के ड्राइवर बन जाएँ और अगर और कुछ नहीं तो ट्रैफिक-कंट्रोल करनेवाले पुलिसमैन ही बन जाएँ। इस जाति के तीन आदमी जहाँ होते हैं, वहाँ मोटरों का अड्डा और जहाँ पाँच होते हैं, वहाँ टैक्सियों का बड़ा स्टैंड बन जाता है। पाँचवीं जाति के लोग सहकारी संघ, किसी दुकान, व्यापार-केंद्र, भोजनालय या कम से कम स्टाल को तरजीह देते हैं। इस जाति के तीन लोग जहाँ जमा हो जाते हैं, वहाँ डिपार्टमेंट स्टोर बन जाता है और जहाँ पाँच जमा हो जाते हैं, वहाँ कारखाना बन जाता है।

लेकिन यह सब तो मजाक के रूप में कहा जाता है। भला क्या कोई ऐसे जाति भी है जिसके मर्द लोग सुंदर युवतियों को न चाहते हों या रेस्तराँ में बैठने की इच्छा न रखते हों?

सभी जातियों के अपने थियेटर, अपने नाच, अपने गाने हैं। हमारे यहाँ तो सभी जातियों की एक साझी कला-मंडली 'जेज्गीन्का' भी है। सभी जातियों में 'वोल्गा' कार खरीदने या किसी दुकान पर काम करने के इच्छुक लोग भी मिल जाएँगे। किंतु क्या यह कोई जातीय लक्षण है? अबूतालिब ने एक बार एक ऐसी

बीमारी का नाम लिया जिसके बारे में दागिस्तान में पहले किसी ने कभी सुना ही नहीं था। यह बीमारी थी - शराबनोशी।

अबूतालिब ने इस तरह से अपनी बात कही - 'पहले हमारे गाँव में एक शराबी था और वह इसी वजह से मशहूर था कि सारे इलाके में लोग उसे जानते थे। अब हमारे गाँव में शराब न पीनेवाला सिर्फ एक आदमी है। एक अजूबे के तौर पर उसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं।'

इस सिलसिले में अबूतालिब को बहुत-से किस्से-कहानियाँ याद हैं। किंतु यदि हम उसके किस्से-कहानियों के फेर में पड़ेंगे तो मुझे डर है कि पूरी तरह से यह भूल जाएँगे कि किस बात की चर्चा कर रहे थे। हम इस चीज पर विचार कर रहे थे कि किन लक्षणों के आधार पर दागिस्तान की एक जाति के व्यक्ति को दूसरी जाति के व्यक्ति से अलग किया जा सकता है। शायद पोशाक के आधार पर? समूरी टोपी की बनावट और उसे पहनने के ढंग के आधार पर? लेकिन अब तो सभी एक जैसे कोट, एक जैसे पतलून, एक जैसे बूट और एक जैसी छज्जेदार टोपी या टोप पहनते हैं। अगर कोई ऐसी चीज रह गई है जो निर्णायक रूप से किसी जाति का विशेष लक्षण प्रस्तुत करती है और उसे दूसरी जाति से भिन्न बनाती है तो वह भाषा है। इस संबंध में यह बात भी बहुत दिलचस्प है कि जब लेज्गीन या तात, अवार या दारगीन जाति का कोई व्यक्ति रूसी भाषा बोलता है तो उसके लहजे से ही यानी रूसी भाषा के विकृत उच्चारण से ही कुमिक को लाक और लेज्गीन को कुमिक से फौरन अलग रूप में पहचाना जा सकता है।

मिसाल के तौर पर रूसी भाषा का हर शब्द जो 'स' अक्षर से शुरू होता है, अवार जाति के लोग उसका उच्चारण करते वक्त उसमें 'इ' जोड़ देते हैं। वे 'स्तंबूल' को 'इस्तंबूल', 'स्ताकान' (गिलास) को 'इस्ताकान', 'स्ताल्स्की' को 'इस्ताल्स्की', 'सोन' (स्वप्न) को 'इसोन' कहते हैं।

अगर किसी शब्द के मध्य में 'इ' की ध्वनि आ जाती है तो अवार जाति के लोग उसका उच्चारण नहीं करते हैं। इसलिए वे 'सीबीर' (साइबोरिया) की जगह 'स्बीर', 'बेलीबेर्दा' (बकवास) की जगह 'बेलबेर्दा' कहते हैं। 'त' की ध्वनि के बाद हम थोड़ा रुकते हैं मानो जरा ठोकर खाते हैं।

दारगीन जाति के लोगों के उच्चारण में 'ओ' की जगह अक्सर 'ऊ' और 'यू' की जगह भी अक्सर 'ऊ' की ध्वनि सुनाई देती है। वे 'पोचता' (डाकखाना) की जगह

'पूचता' और 'कोश्का' (बिल्ली) की जगह 'कूश्का' तथा ल्युबोव' (प्रेम) की जगह 'लुबोव' कहते हैं। किसी शब्द के अंत में वे 'इ' का तो उच्चारण ही नहीं करते।

इसी प्रकार लाक जाति के लोग 'ख' ध्वनि का कोमल उच्चारण करते हैं।

संक्षेप में यह कि कुछ जातियों के लोग व्यंजनों को लंबा खींचते हैं, दूसरे उन्हें छोटा करते हैं और कुछ छोड़ भी देते हैं, कुछ कठोर तथा कुछ कोमल उच्चारण करते हैं। कुछ कुछ 'फ' की जगह 'प' कहते हैं।

एक बार हम अबूतालिब की उपस्थिति में अपनी भाषाओं की चर्चा कर रहे थे और मेरा सहभाषी हमारे उच्चारणों की नकल करते हुए उनके अंतर को स्पष्ट कर रहा था। अबूतालिब शुरू में तो सुनता रहा, मगर बाद में उसने उसे टोक दिया और कहा -

'चुप होकर बैठ जाओ। तुम बहुत बोल चुके और अब मैं अपनी बात कहता हूँ। किसी एक व्यक्ति के दोषों-त्रुटियों को सारी जाति पर नहीं थोपना चाहिए। एक पेड़ से वन नहीं बनता, तीन पेड़ों से भी ऐसा नहीं होता। एक सौ पेड़ हो जाने पर भी वन नहीं बन जाता। हमारी भाषाओं का सवाल बड़ा पेचीदा सवाल है। यह तीन गाँठोंवाली गाँठ है जो उस वक्त बनती है, जब गीली रस्सी की बाँधा जाता है। एक वक्त ऐसा माना जाता था कि इस सवाल का बहुत सीधा-सादा हल यह दिखावा करना है कि इसका अस्तित्व ही नहीं है। इसकी चर्चा नहीं करो, इसे छुओ ही नहीं - मसला हल हो गया। लेकिन यह मसला कायम तो है। पुराने वक्तों में लोग सबसे ज्यादा तो जातीय या राष्ट्रीय मतभेदों के कारण ही तलवारें निकालकर एक-दूसरे के सामने आ जाते थे।'

मुझे मखाचकला में हुए एक पत्रकार-सम्मेलन की याद आ रही है। मास्को से उनतीस राज्यों का प्रतिनिधित्व करनेवाले अड़तीस प्रत्यावित संवाददाता दागिस्तान आए। शुरू में उन्होंने हमारे गाँवों का दौरा किया, हमारे पहाड़ी मर्दों-औरतों से बातचीत की और इसके बाद पत्रकार-सम्मेलन हुआ। फोटो-कैमरों की खट-खट और सिने-कैमरों की खरखर हुई। संवाददाताओं ने अपनी पेंसिलों की नोकें सँवारीं और कोरे कागज अपने सामने रख लिए।

एक बहुत बड़ी मेज के गिर्द हम सब बैठ गए। अबूतालिब हममें सबसे बुजुर्ग था। उससे ही इस सम्मेलन का उद्घाटन करने को कहा गया। अबूतालिब ने कहना शुरू किया -

'देवियो और सज्जनो, साथियो!... (हमने उसे यह सिखा दिया था कि इन शब्दों के साथ सम्मेलन का उद्घाटन करना चाहिए। इसके बाद उसने जो कुछ कहा, वह खुद ही कहा)। आइए, परिचय कर लें। यह हमारा घर है। ये हम हैं। ये हमारे मशहूर शायर हैं।' अबूतालिब ने दीवार पर लटके हुए छविचित्रों की ओर संकेत किया। दीवार पर बातीराय, कजाक, महमूद, सुलेमान, हमजात और एफ्फंदी के छविचित्र लटके हुए थे।

इन शायरों में से प्रत्येक के बारे में अबूतालिब ने कुछ शब्द कहे - कौन किस जाति का है, किसने किस भाषा में सृजन किया, किन भावनाओं से प्रेरित हुआ और कैसी ख्याति अर्जित की। जब खुद अबूतालिब के छविचित्र की बारी आई तो किसी तरह की झेंप महसूस किए बिना उसने कहा -

'यह मैं हूँ। कृपया यह नहीं सोचिए कि मैं दीवार से उतरकर मेज पर आ गया हूँ। मैं तो यहाँ से, मेज के पीछे से दीवार पर पहुँच गया हूँ।'

इसके बाद अबूतालिब ने अतिथियों को मेज के गिर्द बैठे कवियों का परिचय दिया और साथ ही यह भी कह दिया -

'मुमकिन है कि इनमें से कुछ को इस दीवार पर जगह मिल जाए। लीजिए, परिचय पाइए - अजमद खान अबुबकार, कुबाची के सुनार और दागिस्तान का जन-लेखक।

फाजू और मूसा। पत्नी और पति। एक परिवार में दो लेखक, दो उपन्यासकार, दो कवि, दो नाटककार। कभी-कभी एक साथ और कभी-कभी अलग-अलग लिखते हैं।

मुतालिब मितारोव - अवार जाति का दामाद, ताबासारान जाति का कवि।

शाह-एमीर मुरादोव - 'शांति-कपोत।' लेज्गीन जाति का कवि। हमेशा कपोतों या कबूतरों के बारे में लिखता है।

जामीदीन - हमारा व्यंग्कार, हमारा मार्क ट्वेन।

अनवर - दागिस्तान का जन-कवि, हमारे पाँच साहित्यिक संकलनों का प्रधान संपादक।

त्रूनोव - दागिस्तान में रहनेवाला रूसी लेखक।

हिजगिल अवशालूमोव - तात जाति का लेखक, अपनी मातृभाषा और रूसी में लिखता है।'

अतिथि-पत्रकारों को दागिस्तान के लेखकों का परिचय देना जारी रखते हुए अबूतालिब ने बादावी, सुलेमान, साशा ग्राच, इब्राहिम, अलीरजा, मेदजीद अशुगा रूतूल्स्की को उनके सामने पेश किया। उसने साहित्यिक संकलनों के संपादकों से मेहमानों को परिचित कराया और इसके बाद कहा -

'मेहमाननवाजी के उसूल हमें इस बात की इजाजत नहीं देते कि हम मेहमानों के नाम पूछें...'

मगर अबूतालिब के ऐसा कहने पर सभी मेहमान बारी-बारी से उठकर अपना परिचय देने और यह बताने लगे कि वे किस देश और किस पत्र या पत्रिका का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसके बाद, जैसा कि पत्रकार-सम्मेलन में होना चाहिए। प्रश्नोत्तर आरंभ हो गए।

प्रश्न - 'आपके यहाँ इतनी अधिक भाषाएँ, इतनी अधिक जातियाँ हैं कि उनका पूरा गड़बड़झाला है। आप एक-दूसरे को किस तरह से समझ पाते हैं?'

अबूतालिब का जवाब - 'जो भाषाएँ हम बोलते हैं - भिन्न हैं, किंतु हमारे मुँहों में जो जबानें हैं, वे एक जैसी हैं। (दिल पर हाथ रखकर) यह सब कुछ अच्छी तरह से समझता है। (अपने कानों को खींचते हुए) लेकिन ये बुरी तरह।'

प्रश्न - 'मैं बल्गारिया के अखबार का संवाददाता हूँ। यह बताइए कि दागिस्तान की विभिन्न भाषाओं में उसी तरह की निकटता है जैसे, उदाहरण के लिए बल्गारियायी और रूसी भाषा में?'

अबूतालिब का जवाब - 'बल्गारियायी और रूसी भाषा - सगी बहनों जैसी हैं। लेकिन हमारी भाषाएँ तो बहुत दूर के रिश्ते की चचेरी-ममेरी बहनों जैसी भी नहीं हैं। इनमें समान शब्द तो हैं ही नहीं। हमारे लेखकों में तो कुछ दलबंदी है, मगर हमारी भाषाओं में किसी तरह की दलबंदी नहीं। हर भाषा का अपना अलग रूप है।'

प्रश्न - 'आपकी भाषाएँ किन अन्य भाषाओं के साथ घनिष्ठता और किन भाषा-दलों से संबंध रखती हैं?'

अबूतालिब का जवाब - 'तात जाति के लोगों का कहना है कि वे ताजिक भाषा समझते हैं और हफीज का साहित्य पढ़ सकते हैं। लेकिन मैं उनसे पूछता हूँ कि अगर आप शेख सादी और उमर खय्याम की जबान समझते हैं तो उनके समान ही सृजन क्यों नहीं करते?

'पुराने वक्तों में सगाई करने के समय वर की प्रशंसा करते हुए कहा जाता था - 'वह कुमिक भाषा जानता है' - इसका मतलब यह होता था कि वर बहुत ही जानने-समझनेवाला व्यक्ति है, ऐसे व्यक्ति की पत्नी बड़ी सुखी रहेगी।

'वास्तव में ही कुमिक भाषा जाननेवाला आदमी तुर्की, आजरबाइजानी, तातारी, बल्कार, कजाख, उज्बेक, किर्गिज, बश्कीरी और आपस में मिलती-जुलती बहुत-सी ऐसी अन्य भाषाएँ भी समझ सकता है। अनुवाद के बिना हिकमत, काइसीन कुलीयेव और मुस्ताइ करीम की रचनाएँ पढ़ सकता है... लेकिन मेरी भाषा! हम लाकों के सिवा इसे वे विद्वान ही समझते होंगे जिन्होंने डी.लिट्. की उपाधि पाने के लिए इसके अध्ययन में अनेक साल लगाए होंगे।

'लाक जाति का एक प्रसिद्ध व्यक्ति सारी दुनिया में घूमकर इथोपिया पहुँच गया और वहाँ मंत्री बन गया। उसने इस बात पर जोर दिया कि अपनी इतनी लंबी यात्रा के दौरान उसका हमारी लाक भाषा से मिलती-जुलती एक भी भाषा से परिचय नहीं हुआ।'

ओमार-हाजी - 'हमारी अवार भाषा भी किसी अन्य भाषा के समान नहीं है।'

अबूतालिब - 'दारगीन, लेज्गीन और ताबासारान भाषाओं से मिलती-जुलती भाषाएँ भी नहीं हैं।'

प्रश्न - 'एक-दूसरी से कोई समानता न रखनेवाली ये सारी भाषाएँ आपने कैसे सीख लीं?'

अबूतालिब - 'किसी वक्त मैं दागिस्तान में बहुत घूमता रहा था। लोगों को गीतों-गानों और मुझे रोटी की जरूरत थी। जब कोई आदमी पराये गाँव में जाता है और वहाँ की भाषा नहीं जानता तो कुत्ते भी उस पर ज्यादा गुस्से से भूँकते हैं। जरूरत ने मुझे सारे दागिस्तान की भाषाएँ सीखने को मजबूर किया।'

प्रश्न - 'फिर भी क्या दागिस्तान की भाषाओं की समानता और असमानता के लक्षणों की अधिक विस्तार से चर्चा करना संभव नहीं? भला यह कैसे हुआ कि इतने छोटे-से देश में इतनी भिन्न भाषाएँ हैं?'

अबूतालिब - 'हमारी भाषाओं की समानता और असमानता के बारे में अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। मैं विद्वान या भाषाशास्त्री नहीं हूँ, किंतु जिस रूप में मैं इस समस्या की कल्पना करता हूँ, उसे आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ। हम यहाँ बैठे हुए हैं। हममें से कुछ का पहाड़ों में और कुछ का मैदानों में जन्म हुआ तथा हम वहीं बड़े हुए। कुछ गर्म क्षेत्रों और कुछ ठंडे क्षेत्रों में, कुछ नदी के तट

और कुछ सागर के तट पर जन्मे और बड़े हुए। कुछ ने वहाँ जन्म लिया, जहाँ खेत है, मगर बैल नहीं, कुछ वहाँ जन्मे, जहाँ बैल है, मगर खेत नहीं। कुछ वहाँ जन्मे, जहाँ आग है, मगर पानी नहीं और कुछ वहाँ जन्मे, जहाँ पानी है, किंतु आग नहीं। एक जगह मांस है, दूसरी जगह अनाज और तीसरी जगह फल। जहाँ पनीर रखा जाता है, वहाँ चूहे हो जाते हैं, जहाँ भेड़ें चराई जाती हैं, वहाँ भेड़ियों की भरमार हो जाती है। इसके अलावा-इतिहास, युद्ध, भूगोल, विभिन्न पड़ोसियों और प्रकृति को भी ध्यान में रखना चाहिए।

'हमारे यहाँ 'प्रकृति शब्द के दो अर्थ हैं। इसका एक अर्थ तो है - भूमि, घास, पेड़, पर्वत और दूसरा अर्थ है - मानव का स्वभाव। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकृति ने विभिन्न नामों, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रकट होने में योग दिया।

'अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से समूरी टोपी पहनी जाती है, अलग-अलग ढंग से कपड़े पहने जाते हैं और मकान बनाए जाते हैं। पालने के करीब अलग-अलग लोरियाँ गाई जाती हैं। महमूद ने दो तारोंवाले पंदूरे पर अपने गाने गाए, इरची कजाक के पंदूरे में तीन तार थे। लेज्गीन जाति का सुलेमान स्ताल्स्की तारा नामक बाजा बजाता था। कुछ बाजों के लिए बकरी की अँतड़ियों और कुछ के लिए लोहे के तार बनाए जाते हैं।

'जातियाँ या जनगण अनेक हैं और हरेक के अपने रस्म-रिवाज हैं। सभी जगह पर ऐसा ही है। बच्चे का जन्म होता है। एक जाति में बच्चे को बपतिस्मा दिया जाता है, दूसरी में उसकी सुन्नत की जाती है और तीसरी में उसके जन्म का प्रमाणपत्र तैयार किया जाता है। लड़का जब बालिग होता है तो दूसरे रीति-रिवाज सामने आते हैं। किसी लड़की से उसकी सगाई की जाती है... वैसे, सगाई करना - यह भी एक रीति-रस्म ही है। मैं यह कहना चाहता था कि कोई नौजवान शादी करता है तो तीसरे ढंग के रीति-रिवाजों से वास्ता पड़ता है। दागिस्तान में विवाह के रीति-रिवाजों की चर्चा करने के लिए तो पूरा एक दिन भी नाकाफी रहेगा। अगर आपमें से कोई उनके बारे में जानना चाहेगा तो उसे हम 'दागिस्तान के जनगण के रीति-रिवाज' पुस्तक भेंट कर देंगे। आप घर लौटकर उसे पढ़ लीजिएगा।'

प्रश्न - 'रीति-रिवाज भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में कौन-सी चीज आपके लोगों को निकट लाती है, सूत्रबद्ध करती है?'

अबूतालिब - 'दागिस्तान।'

प्रश्न - 'दागिस्तान... हमें यह बताया गया है कि दागिस्तान का अर्थ 'पर्वतों का देश' है। इसका मतलब तो यह हुआ कि दागिस्तान एक जगह का नाम है?'

अबूतालिब - 'जगह का नाम नहीं, बल्कि मातृभूमि, जनतंत्र का नाम है। जो पहाड़ों में रहते हैं और जो घाटियों में - सभी के लिए यह शब्द समान अर्थ रखता है। नहीं, दागिस्तान - यह केवल भौगोलिक धारणा नहीं है। दागिस्तान का अपना रंग-रूप है, उसकी अपनी इच्छाएँ-आकांक्षाएँ और सपने हैं। उसका साझा इतिहास, साझा भाग्य, साझे सुख-दुख हैं। क्या एक उँगली का दर्द दूसरी उँगली महसूस नहीं करती? हमारे यहाँ 'अक्तूबर क्रांति', 'लेनिन' और 'रूस' जैसे साझे शब्द भी हैं। इन शब्दों का हर भाषा में अनुवाद करने की भी जरूरत नहीं। अनुवाद के बिना ही वे तो समझ में आ जाते हैं। हम लेखकों के बीच बहुत-से वाद-विवाद होते हैं। किंतु इन तीन शब्दों के बारे में हमारे बीच कोई मतभेद नहीं। आप समझ गए?'

प्रश्न - 'यह तो हम समझ गए। लेकिन मैं एक और बात पूछना चाहता हूँ। एक समाचारपत्र में मैंने आज अदाल्लो अलीयेव की कविता पढ़ी। अनातोली जायत्स ने उसका रूसी में अनुवाद किया है। वहाँ कहा गया है कि अनुवाद दागिस्तानी भाषा से किया गया है। यह कौन-सी भाषा है?'

अबूतालिब - 'यह भाषा तो मैं भी नहीं जानता। अदाल्लो अलीयेव से मेरी कल मुलाकात हुई थी और मैंने उससे बातचीत की थी। कल तक तो वह अवार था। मालूम नहीं कि उसमें ऐसा क्या परिवर्तन हो गया है। लेकिन आप इस मामले की तरफ कोई खास ध्यान नहीं दें, यह तो महज गलती है।'

प्रश्न - 'हमारे संयुक्त राज्य अमरीका में भी अनेक जातियाँ और भाषाएँ हैं। किंतु मूलभूत, राजकीय भाषा अंग्रेजी है। सारे काम-काज, उत्पादन के सभी मामलों और दस्तावेजों में इसी भाषा का उपयोग होता है। लेकिन आपके यहाँ? आपके यहाँ कौन-सी मूलभूत भाषा है?'

अबूतालिब - 'हर व्यक्ति के लिए उसकी मूलभूत भाषा उसकी माँ की भाषा है। जो आदमी अपने पहाड़ों को प्यार नहीं करता, वह पराये मैदानों को भी प्यार नहीं कर सकता। जो सुख घर पर नहीं मिला, वह बाहर सड़क पर भी नहीं मिलेगा। जो अपनी माँ की चिंता नहीं करता, वह परायी औरत की भी चिंता नहीं करेगा। जब हाथ में मजबूती से तलवार पकड़नी हो या किसी दोस्त के साथ तपाक से हाथ मिलाना हो तो हाथ की सभी उँगलियाँ मूलभूत होती हैं।'

प्रश्न - 'मैंने मुतालिब मितारोव की लंबी कविता पढ़ी है। उसमें उसने इस बात पर जोर दिया है कि वह न तो अवार, न तात, न ताबासारान और न दागिस्तानी ही है। आप इसके बारे में क्या कह सकते हैं?'

अबूतालिब (मितारोव को नजरों से ढूँढ़ते हुए) - 'सुनो मितारोव, तुम अवार, कुमिक, तात, नोगाई, लेज्गीन नहीं हो, यह तो मैं बहुत अरसे से जानता हूँ। लेकिन तुम ताबासारान भी नहीं हो, यह मैं पहली बार सुन रहा हूँ। आखिर तुम कौन हो? कल तुम शायद यह लिख दो कि मुतालिब भी नहीं हो और मितारोव भी नहीं। मिसाल के तौर पर मैं अबूतालिब गफूरोव हूँ। मैं सबसे पहले तो लाक जाति का हूँ, दूसरे दागिस्तानी हूँ, तीसरे सोवियत देश का शायर हूँ। या इसके उलट इस तरह कहा जा सकता है - सबसे पहले मैं सोवियत शायर हूँ, दूसरे यह कि मैं दागिस्तान-जनतंत्र में रहता हूँ और तीसरे यह कि लाक जाति का हूँ और लाक भाषा में लिखता हूँ। यह सब कुछ मेरे साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यह मेरा सबसे कीमती खजाना है। मैं इनमें से किसी भी चीज से इनकार नहीं करना चाहता। इनके लिए मैं अपनी जान की बाजी भी लगा दूँगा।'

प्रश्न (जर्मन जनवादी जनतंत्र का संवाददाता) - 'मेरे हाथों में चिकित्साशास्त्र के पी-एच.डी. साथी अलीकिशीयेव की पुस्तक है। इसका शीर्षक है - 'दागिस्तान में लंबी उम्र'। इसमें लेखक ने एक सौ साल से ज्यादा उम्र के लोगों के बार में लिखा है और यह साबित किया है कि लंबी उम्र की दृष्टि से दागिस्तान का सोवियत संघ में पहला स्थान है। किंतु आगे उसने इस बात की भी पुष्टि की है कि यहाँ की जातियों में धीरे-धीरे एक-दूसरी के निकट होने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और अंततः दागिस्तान में एक ही जाति हो जाने की भी संभावना है। कुछ सालों के बाद अवार, दारगीन और नोगाई जाति के लोग अपने को दागिस्तानी मानने लगेंगे और पासपोर्ट में भी ऐसा ही लिखेंगे। मैंने आपके एक अन्य विद्वान के लेख भी पढ़े हैं जो इस बात की पुष्टि करता है कि आपका साहित्य जातियों की सीमाएँ तोड़कर पूरे दागिस्तान का साहित्य बनता जा रहा है। अगर विज्ञान के पी-एच.डी. और डी.लिट्. अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे प्रश्न उठाते हैं तो इसका मतलब है कि ये प्रश्न महत्वपूर्ण और गहन हैं?'

अबूतालिब - 'साथी अलीकिशीयेव से भी मैं परिचित हूँ। वह हमारे ही इलाके का रहनेवाला है। यह विद्वान अनेक बुजुर्गों से इसलिए मिला कि वे उसे अपने जीवन के बारे में बताएँ। लेकिन सभी जातियों की एक जाति बनाने का विचार शायद ही किसी सम्मानित बुजुर्ग ने प्रकट किया हो। यह उसके अपने ही दिमाग

की उपज है। मैं बहुत-से ऐसे 'मिचूरिनों' को जानता हूँ जिन्होंने अपनी 'प्रयोगशालाओं' में विभिन्न भाषाओं को मिलाकर तथा उन पर खरगोशों की भाँति तरह-तरह के प्रयोग करके एक संकरण भाषा बनाने की कोशिश की है। दागिस्तान के सात जातीय थियेटरों को मिलाकर एक थियेटर बनाने की कोशिश की गई। दागिस्तान के पाँच जातीय समाचार-पत्रों को मिलाकर एक पत्र बनाने का प्रयास किया गया। हमारे लेखक-संघ के अनेक विभागों को एक विभाग में मिलाने का यत्न किया गया, लेकिन ये सारी कोशिशें तो वैसी ही हैं जैसे कि अनेक शाखाओंवाले पेड़ को एक सीधे तने में बदलने की कोशिशें।'

प्रश्न - 'मैं भारतीय समाचार-पत्र का संवाददाता हूँ। हमारे भारत में भी अनेक भाषाएँ हैं - हिंदी, उर्दू, बंगाली... कुछ राष्ट्रवादियों ने यह चाहा कि उनकी भाषा ही सारे भारत की राजकीय भाषा बन जाए। इसके कारण वाद-विवाद और खूनी दंगे-फसाद भी हुए। आपके यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं हुआ?'

अबूतालिब - 'एक बार दो लड़कों के बीच इस तरह का झगड़ा हुआ था। अवार और कुमिक जाति के दो लड़के एक गधे पर जा रहे थे। अवार जाति का लड़का चिल्ला रहा था - 'ख्आ! ख्आ! ख्आमा!' और कुमिक लड़का चिल्ला रहा था - 'एश! एश! एशेक!' इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ था - गधा। लेकिन लड़कों का झगड़ा इतना ज्यादा बढ़ गया कि दोनों ही गधे से नीचे गिर गए और 'ख्आमा' तथा 'एशेक' के बिना रह गए। संभवतः यह तो बच्चों का वाद-विवाद है। हम अपनी भाषाओं को भेड़िये नहीं बनाते हैं। वे हमें चीरते-फाड़ते नहीं हैं। हमारे यहाँ तो यह भी कहा जाता है - 'घरेलू मूर्ख अपने पड़ोसियों की निंदा करता है, गाँव का मूर्ख पड़ोस के गाँवों की निंदा करता है और राष्ट्रीय मूर्ख दूसरे देशों की निंदा करता है।' जो आदमी किसी दूसरी भाषा के बारे में कुछ बुरा कहता है, उसे हमारे यहाँ आदमी ही नहीं माना जाता।'

प्रश्न - 'तो आप यह कहना चाहते हैं कि इस सवाल को लेकर आपके यहाँ वाद-विवाद और किसी तरह की गलतफहमियाँ नहीं हुईं?'

अबूतालिब - 'वाद-विवाद तो हुए। किंतु हमारी भाषाओं के मामले में कभी और किसी ने भी गंभीर हस्तक्षेप नहीं किया। हमारे नामों के मामले में भी। हर कोई उस भाषा में लिख, पढ़, गा और बातचीत कर सकता है जिसमें चाहता है। यह साबित करते हुए बहस तो की जा सकती है कि फलाँ चीज अच्छी या बुरी, सही या गलत और सुंदर या कुरूप है। किंतु क्या पूरी की पूरी जातियाँ अथवा

अल्प जातियाँ गलत, बुरी या कुरूप हो सकती हैं? इस विषय पर यदि वाद-विवाद हुए भी तो उनमें न तो किसी की जीत और न किसी की हार ही हुई।'

प्रश्न - 'फिर भी क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि दागिस्तान में एक ही जाति और एक ही भाषा हो?'

अबूतालिब - 'अनेक लोग ऐसे कहते हैं - 'काश, हमारी एक ही भाषा होती!' लंगड़े राजबादिन ने जार्जिया पर अपनी एक चढ़ाई के वक्त जार इराकली से यह कहा - 'इस सारी मुसीबत की जड़ यह है कि हम एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते।' हाजी-मुरात ने हाइदाक-ताबासारान से अपने इमाम को यह लिखा - 'हम एक-दूसरे को नहीं समझे।'

'बेशक यह ज्यादा अच्छा रहता है, जब लोग आसानी और पहले ही शब्द से एक-दूसरे को समझ जाते हैं। तब बहुत कुछ अधिक आसान हो जाता, कहीं कम श्रम से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता। लेकिन अगर परिवार में बहुत बच्चे हों तो इसमें भी कुछ बुराई नहीं। परिवार को हर बच्चे की चिंता करनी चाहिए। बहुत कम माता-पिता ही बाद में इस चीज के लिए पछताते हैं कि उनके बहुत बच्चे हैं।

'कुछ लोग कहते हैं - 'देर्बेंत की सीमाओं से परे हमारी भाषा की किसे जरूरत है? हमें तो वहाँ कोई भी नहीं समझ पाएगा।'

'दूसरे कहते हैं - 'अराकान दर्रे के आगे हमारी भाषा किस काम की है?'

'कुछ अन्य शिकायत करते हैं - 'हमारे गीत तो सागर तक भी नहीं पहुँच सकेंगे।'

'लेकिन ऐसे लोग अपनी भाषाओं को अभिलेखागारों में भेजने की बहुत ही जल्दी कर रहे हैं।'

प्रश्न - 'समेकन या एकजुटता के बारे में आपकी क्या राय है?'

अबूतालिब - 'समेकन की पराये और बेगाने लोगों को जरूरत होती है। भाइयों को समेकन से क्या लेना-देना है।'

प्रश्न - 'फिर भी इसलिए कि भाई से बात कर सके, उनकी एक ही भाषा होनी चाहिए।'

अबूतालिब - 'हमारे यहाँ ऐसी एक भाषा है।'

प्रश्न - 'कौन-सी?'

अबूतालिब - 'वह भाषा जिसमें हम इस समय आपसे बातचीत कर रहे हैं। वह रूसी भाषा है। उसे अवार, दारगीन, लेज्गीन, कुमिक, लाक और तात, सभी जातियों के लोग समझते हैं। (अबूतालिब ने लेर्मोंतोव, पुश्किन और लेनिन के चित्रों की ओर संकेत किया।) इनके साथ तो हम एक-दूसरे को बहुत अच्छी तरह से समझते हैं।'

प्रश्न - 'मैंने रसूल हमजातोव की दो खंडों में प्रकाशित रचनाएँ पढ़ी हैं। पहले खंड में 'मातृभाषा' नामक कविता में उन्होंने अवार भाषा का गुणगान किया है, लेकिन दूसरे खंड में इसी शीर्षक की कविता में उन्होंने रूसी भाषा की स्तुति की है। क्या एक साथ दो घोड़ों पर सवार हुआ जा सकता है? हम किस हमजातोव पर विश्वास करें - पहले या दूसरे खंडवाले हमजातोव पर?'

अबूतालिब - 'इस प्रश्न का स्वयं रसूल हमजातोव ही उत्तर दें।'

रसूल - 'में भी यही समझता हूँ कि एक साथ दो घोड़ों पर सवार नहीं हुआ जा सकता। लेकिन दो घोड़ों को एक ही गाड़ी या बग्घी में जरूर जोता जा सकता है। दोनों बग्घी को खींचें। दो घोड़े - दो भाषाएँ दागिस्तान को आगे ले जाती हैं। उनमें से एक रूसी है और दूसरी हमारी - अवार जातिवालों के लिए अवार, लाकों के लिए लाक। मुझे अपनी मातृभाषा प्यारी है। मुझे अपनी दूसरी मातृभाषा भी प्यारी है जो मुझे इन पर्वतों, इन पहाड़ी पगडंडियों से पृथ्वी के विस्तार, बहुत बड़ी और समृद्ध दुनिया में ले गई। सगे को ही मैं सगा कहता हूँ। मैं दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता।'

प्रश्न - 'इस संबंध में मैं रसूल हमजातोव से कुछ और भी पूछना चाहता हूँ। अपनी कविता में उन्होंने लिखा है - 'अगर अवार भाषा के भाग्य में कल मरना बदा है तो मैं दिल के दौरे से आज ही मर जाऊँ।' लेकिन आपके यहाँ तो यह भी कहा जाता है कि 'जब बड़ा आए तो छोटे को उठकर खड़ा हो जाना चाहिए।' रूसी भाषा आ गई। क्या छोटी, स्थानीय भाषा को उसके लिए अपनी जगह नहीं छोड़नी चाहिए? आप लोगों के शब्दों में ही सिर पर दो टोपियाँ एक साथ नहीं ओढ़नी चाहिए। या किसलिए एक साथ ही दो सिगरेटें मुँह में ली जाएँ?'

रसूल - 'भाषाएँ न तो टोपियाँ हैं और न सिगरेटें। भाषा की भाषा से दुश्मनी नहीं होती। एक गीत दूसरे गीत की हत्या नहीं करता। पुश्किन के दागिस्तान में आ जाने पर महमूद को अपनी मातृभूमि नहीं छोड़नी चाहिए। लेर्मोंतोव किसलिए बातीराय की जगह ले। अगर कोई अच्छा दोस्त हमसे हाथ मिलाता है तो हमारा

हाथ उसके हाथ में गायब नहीं हो जाता। वह अधिक गर्म और मजबूत ही हो जाता है। भाषाएँ सिगरेटें नहीं, जीवन के दीपक हैं। मेरे दो दीपक हैं। एक ने पैतृक घर की खिड़की से मेरा मार्ग रोशन किया। उसे मेरी माँ ने जलाया था ताकि मैं रास्ते से भटक न जाऊँ। अगर यह दीपक बुझ जाएगा तो सचमुच मेरा जीवन-दीप भी बुझ जाएगा। अगर मैं शारीरिक रूप से नहीं मरूँगा तो भी मेरा जीवन गहरे अँधेरे में डूब जाएगा। दूसरा दीपक मेरे महान देश, मेरी बड़ी मातृभूमि रूस ने जलाया है, ताकि मैं बड़ी दुनिया में अपनी राह न भूल जाऊँ। उसके बिना मेरा जीवन अंधकारमय और तुच्छ हो जाएगा।'

अबूतालिब - 'पत्थर को उठाना कैसे ज्यादा आसान है - एक हाथ से कंधे पर से या दो हाथों से छाती पर से?'

प्रश्न - 'फिर भी पहाड़ी लोग अपने उन घरों को छोड़कर जा रहे हैं जहाँ उनकी माताओं ने दीपक जलाए और जाकर मैदानों में बस रहे हैं?'

अबूतालिब - 'किंतु दूसरी जगहों पर जाकर बसने के समय वे अपनी भाषा और अपने नाम भी अपने साथ ले जाते हैं। वे अपनी समूरी टोपी ले जाना भी नहीं भूलते। उनकी खिड़कियों में रोशनी भी वही जगमगाती है।'

प्रश्न - 'लेकिन नई जगहों पर नौजवान लोग अक्सर दूसरी जातियों की युवतियों से शादियाँ कर लेते हैं। वे किस भाषा में बात करते हैं? और बाद में उनके बच्चे किस भाषा में बात करते हैं?'

अबूतालिब - 'हमारे यहाँ एक पुराना किस्सा है। एक नौजवान को किसी दूसरी जाति की युवती से मुहब्बत हो गई और उसने उससे शादी करने का फैसला किया। युवती ने कहा - 'मैं तुम्हारे साथ तब शादी करूँगी, जब तुम मेरी सौ इच्छाएँ पूरी कर दोगे।' नौजवान उसकी सनकें पूरी करने लगा। सबसे पहले तो उसने नौजवान को ऐसी चट्टान पर चढ़ने को मजबूर किया जिसमें पाँव टिकाने के लिए आगे को बढ़ा हुआ एक भी हिस्सा नहीं था। इसके बाद इस चट्टान से नीचे कूदने को कहा। नौजवान कूदा और उसकी टाँग में चोट आ गई। युवती ने तीसरी इच्छा यह प्रकट की कि वह लँगड़ाए बिना चले। खैर, नौजवान ने लँगड़ाना बंद कर दिया। युवती ने उसे तरह-तरह के कार्य भार सौंपे, जैसे कि खुरजी को भीगने न देकर तैरते हुए नदी को पार करे, सरपट दौड़े आते घोड़े को रोक दे, घोड़े को घुटने टेकने को मजबूर करे, यहाँ तक कि उस सेब को भी काट डाले जिसे युवती ने अपनी छाती पर रख लिया था... नौजवान ने युवती के निन्यानवे आदेश पूरे

कर दिए। सिर्फ एक ही बाकी रह गया। तब युवती ने कहा - 'अब तुम अपनी माँ, पिता और भाषा को भूल जाओ।' यह सुनते ही नौजवान उछलकर घोड़े पर सवार हो गया और हमेशा के लिए उससे नाता तोड़कर चला गया।'

प्रश्न - 'यह सुंदर किस्सा है। मगर हकीकत क्या है?'

अबूतालिब - 'हकीकत तो यह है कि कोई नौजवान और युवती जब दांपत्य जीवन आरंभ करते हैं तो अपने ऊपर बहुत-सी जिम्मेदारियाँ लेते हैं। लेकिन कोई भी दूसरे से अपनी भाषा भूल जाने को नहीं कहता। इसके विपरीत, हर कोई दूसरे की भाषा जानने की कोशिश करता है।

'हकीकत तो यह है कि हम बड़ी उदासी से और भर्त्सना करते हुए ऐसे बच्चों की तरफ देखते हैं जो अपनी माता-पिता की भाषा नहीं जानते। खुद बच्चे ही माता-पिता की इसलिए भर्त्सना करने लगते हैं कि उन्होंने उन्हें अपनी भाषा नहीं सिखाई। ऐसे लोगों पर तरस आता है।

'हकीकत यह है कि हम आपके सामने बैठे हैं। ये रहीं हमारी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यासिकाएँ और पुस्तकें। ये हैं हमारी पत्र-पत्रिकाएँ। ये विभिन्न भाषाओं में छपती हैं और हर साल अधिकाधिक संख्या में छापी जाती हैं। विराट देश ने हमारी भाषाओं को पीछे नहीं धकेल दिया है। उसने उन्हें कानूनी मान्यता दी है, उनकी पुष्टि की है और वे सितारों की तरह जगमगा उठी हैं। 'और तारक तारिका से बात करता।' हम दूसरों को देखते हैं और दूसरे हमें देखते हैं। अगर ऐसा ने होता तो आपने भी हमारे बारे में कुछ न सुना होता, हममें कोई दिलचस्पी न ली होती। हमारी यह मुलाकात भी न हुई होती। तो हकीकत ऐसी है...'

प्रश्न - उत्तर, प्रश्न - उत्तर। अगर वक्त होता तो लगता है कि हमारा यह सम्मेलन कभी समाप्त न होता। सभी जनगण में लगातार भाषा के बारे में बातचीत होती रही है और हो रही है, किंतु इस बातचीत का कभी अंत होता नजर नहीं आता।

'हमारा यह पत्रकार-सम्मेलन झूमर नृत्य-गान के खेल के समान है जिसमें कुछ लोग प्रश्न पूछते हैं और दूसरे उत्तर देते हैं,' इस तरह के सम्मेलन के आदी न होने के कारण बुरी तरह से थके-हारे अबूतालिब ने अंत में कहा।

प्रश्न - वह तो कमान से छोड़ा हुआ तीर है जो कहीं भी जा गिरे। जवाब - वह तो निशाने पर जा लगनेवाला तीर है। प्रश्न - उत्तर। प्रश्नसूचक चिह्न - विस्मयबोधक चिह्न। अतीत - प्रश्न है, वर्तमान - उत्तर है।

पुराना दागिस्तान पत्थर पर बैठी हुई बुढ़िया के समान था। वह प्रश्नसूचक चिह्न था। आज का दागिस्तान - विस्मयबोधक चिह्न है। वह म्यान से बाहर निकली और तनी हुई तलवार है।

जब दागिस्तान में क्रांति पहुँची तो उससे आतंकित लोगों ने कहा कि जल्दी ही जातियाँ, भाषाएँ, नाम और रंग लुप्त हो जाएँगे। हमारी औरतों का मेसेदा नाम मारूस्या बन जाएगा और मर्दों का मूसा नाम वास्या हो जाएगा। यह भी कहा गया कि आदमी को यह तक सोचने की फुरसत नहीं होगी कि वह किस जाति और किस जगह का है। सभी को एक साझे कंबल के नीचे लिटा दिया जाएगा। बाद में अधिक शक्तिशाली लोग कंबल को अपनी ओर खींच लेंगे और अधिक दुर्बल लोग ठिठुरते रह जाएँगे।

दागिस्तान ने ऐसे लोगों की बातों पर कान नहीं दिया। पर्वतीय सरकार के सदस्य, गाइदार बामातोव ने उसे विदेश ले जानेवाले जहाज पर चढ़ते हुए कहा था - 'उनकी आत्माओं ने मेरे शब्दों को स्वीकार नहीं किया। देखेंगे कि आगे क्या होता है।'

आगे क्या हुआ, यह सभी देख रहे हैं। इसे पुस्तक में लिखा जा चुका है, गीतों में गाया जा चुका है। जिनके कान हैं - वे सुन लेंगे, जिनकी आँखें हैं - वे देख लेंगे।

एक पहाड़िये ने साझे कंबल से डरकर दागिस्तान छोड़ दिया और तुर्की चला गया। पचास साल बात वह दागिस्तान में यह देखने आया कि हमारे यहाँ जिंदगी का रंग-ढंग कैसा है। मैंने उसे मखाचकला में, जो पहले पोर्ट-पेत्रोव्स्क कहलाता था, घूमने के लिए आमंत्रित किया। रूसी जार का नामवाला शहर अब दागिस्तान के क्रांतिकारी मखाच का नाम धारण किए हुए है। मैंने मेहमान को दागिस्तान के सपूतों - बातीराय, उल्लूबी, कापीयेव - के सम्मान में उनके नामोंवाली सड़कें दिखाई। मेहमान सागर तटवर्ती चौक में सुलेमान स्ताल्स्की के स्मारक को देर तक देखता रहा। लेनिन सड़क पर उसने मेरे पिता-हमजात त्सादासा का स्मारक देखा। पता चला कि दागिस्तान छोड़कर जाने से पहले वह मेरे पिता जी से परिचित था।

विज्ञान अकादमी की शाखा के विद्वानों ने उससे भेंट की। उसने इतिहास, भाषा तथा साहित्य के वैज्ञानिक-अनुसंधान इन्स्टीट्यूट के सहकर्मियों से बातचीत की। उसने दागिस्तान के इतिहास और कला-संग्रहालय के हॉलों को देखा। वह

विश्वविद्यालय में भी गया जहाँ पहाड़ी युवक-युवतियाँ पंद्रह विभागों में शिक्षा पाते हैं। शाम को हम राजकीय अवार थियेटर में गए। अवार जाति के नामवाले थियेटर में अवार लोग अवार लेखक का अवार युवती के बारे में लिखा हुआ नाटक देख रहे थे। यह हाजी जालोव द्वारा लिखा गया 'अनखील मारीन' नाटक था। जब रूसी संघ की जन-कलाकार पातीमात हिजरोयेवा ने, जो मारीन की भूमिका निभा रही थी, एक पुराना अवार गाना गाया तो हमारा मेहमान अपनी भावनाओं को वश में नहीं रख सका और उसकी आँखें छलछला आईं।

चौक में वह देर तक लेनिन के स्मारक के सामने खड़ा रहा। इसके बाद बोला -

'मैं यह सपना तो नहीं देख रहा हूँ?'

'इस सपने के बारे में आप तुर्की में रहनेवाले अवार जाति के लोगों को बताइए।'

'वे यकीन नहीं करेंगे। अगर मैंने अपनी आँखों से यह सब न देखा होता तो खुद भी यकीन न करता।'

अबूतालिब ने ऐसे कहा था - 'पहली बार मैंने नरकट काटा, उसकी मुरली बनाई और उसे बजाया। मेरे गाँव ने मेरी मुरली की आवाज सुनी। इसके बाद मैंने पेड़ की मोटी टहनी काटी, उसकी तुरही बनाई और उस पर दूसरा गाना बजाया। मेरी आवाज दूर पहाड़ों तक सुनी गई। इसके बाद मैंने पेड़ काटकर उसका जुरना बनाया और उसकी आवाज सारे दागिस्तान में गूँज गई। इसके बाद मैंने छोटी-सी पेंसिल लेकर कागज पर कविता लिख दी। वह दागिस्तान की सीमाओं से कहीं दूर उड़ गई।'

तो भाषाएँ बाँटनेवाले भगवान के दूत, तुम्हारा एक बार फिर से शुक्रिया, इस चीज के लिए शुक्रिया कि तुमने हमारे पर्वतों, हमारे गाँवों और हमारे दिलों की अवहेलना नहीं की।

उन सबका भी शुक्रिया जो अपनी मातृभाषाओं में गाते और सोचते हैं।

गीत

'बाक्अन।' अवार भाषा के इस शब्द के दो अर्थ हैं - धुन, लय-सुर और तबीयत, किसी व्यक्ति का हालचाल, संसार का कुशल-मंगल। जब कोई व्यक्ति यह अनुरोध करना चाहता है - 'मेरे लिए एक धुन बजा दो', तो 'बाक्अन' शब्द कहा जाता है। जब यह पूछा जाता है - 'तुम्हारी तबीयत कैसी है या तुम्हारा कैसा हालचाल है?' - तब भी 'बाक्अन' शब्द कहा जाता है। तो इस तरह हालचाल और गीत - एक ही शब्द में घुल-मिल जाते हैं।

पंदूरे पर आलेख -

मृत्यु-सेज पर खंजर हँसता-गाता व्यक्ति सुलाए
पंदूरा तो मरे हुए को, जीवित करे, उठाए।

शब्दों, बातचीत को छलनी में से छान लो - गीत बन जाएगा। घृणा, क्रोध और प्यार को छलनी में से छान लो - गीत बन जाएगा। घटनाओं, लोगों के काम-काज, पूरे जीवन को छलनी में से छान लो - गीत बन जाएगा।

पहाड़ी लोगों का एक गाना तो विशेष रूप से अबूतालिब का मन छूता था। उसमें शब्द तो इने-गिने थे और उसका सारा सौंदर्य उसकी कारुणिक टेक 'आई! दाई, दालालाई!' में ही निहित था। येरोश्का ने गाने के शब्दों का अनुवाद किया - 'एक नौजवान भेड़ों को चराने के लिए उन्हें गाँव से पहाड़ पर ले गया, रूसी आ गए, उन्होंने गाँव जला दिया, सारे मर्दों को मौत के घाट उतार दिया और सारी औरतों को बंदी बना लिया। नौजवान पहाड़ से लौटा - जहाँ गाँव था, वहाँ अब

वीराना था, माँ नहीं थी, भाई नहीं थे, घर नहीं था, सिर्फ एक पेड़ रह गया था। नौजवान पेड़ के नीचे बैठ गया और फूट-फूटकर रोने गला। वह अकेला, अकेला रह गया और दुखी होते हुए गाने लगा - 'आई, दाई! दालालाई!' (लेव तोलस्तोय, 'कज्जाक')।

...आई, दाई, दाल्ला-लाई, दाल्ला, दाल्ला, दुल्ला-लाई-दुल्लालाई! पहाड़ों के प्यारे और दर्द भरे गीतो, तुम्हारा कब, कहाँ तथा कैसे जन्म हुआ? कहाँ से आ गए तुम इतने अद्भुत और इतने प्यारे?

पंदूरे पर आलेख -

तुम्हें लगता है कि ये धुनें तारों का ही कमाल हैं
किंतु ध्वनियों में गूँजता हमारे दिल का हाल है।

खंजर पर आलेख -

दो गीत, दो तेज फल, दो पक्ष, दिशाएँ हैं
उनमें शत्रु की मृत्यु, आजादी की सदाएँ हैं।

पालने पर आलेख -

व्यक्ति न कोई इस दुनिया में
अरे, पालने पर जिसके
प्यारी, प्यारी, मधुर लोरियाँ
गीत न माँ के हों गूँजें।

सड़क-किनारे के पत्थर पर आलेख -

मार्ग और गाना, बस, ये ही बनते भाग्य जवान के
साथ सदा ही दोनों रहते, उसके जीवन-प्राण के।

कब्र के पत्थर पर आलेख -

वह गाता था, लोग उसे तब सुनते थे
अब वह सुनता, लोग यहाँ जब गाते हैं।

पुराने गीत, गए गीत... लोरियाँ, शादी के गीत, जुझारू गीत। लंबे और छोटे गीत। कारुणिक और विनोदपूर्ण गीत। सारी पृथ्वी पर तुम्हें गाया जाता है। शब्द तो माला की तरह रुपहले धागे में पिरोए जाते हैं। शब्द तो कील की तरह मजबूती से गड़ जाते हैं। शब्द तो मानो किसी सुंदरी के आँसुओं की तरह सहजता से जन्म लेते और उभरते आते हैं। शब्द किसी सधे, अनुभवी हाथ द्वारा छोड़े गए तीर की तरह ठीक निशाने पर जाकर लगते हैं। शब्द तेजी से उड़ते हैं

और पहाड़ी पगडंडियों की तरह, जिनपर आखिर तो पृथ्वी के छोर तक जाया जा सकता है, दूर ले जाते हैं।

पंक्तियों के बीच का स्थान मानो सड़क है जिस पर तुम्हारी प्रियतमा का घर खड़ा है। यह स्थान तो पिता के खेत की मेंड़ है। यह तो दिन को रात से अलग करनेवाली उषा और सन्ध्या है।

कागज पर लिखे और कागज पर न लिखे हुए गीत। किंतु चाहे कोई भी गीत क्यों न हो, उसे गाया जाना चाहिए। गाया न जानेवाला गीत तो मानो उड़ न सकनेवाला परिंदा है, मानो स्पंदित न होनेवाला, न धड़कनेवाला दिल है।

हमारे पहाड़ी इलाकों में कहा जाता है कि चरवाहे जब गीत नहीं गाते हैं तो भेड़ें घास चरना बंद कर देती हैं। किंतु जब पहाड़ की हरी-भरी ढलान के ऊपर गीत गूँजता है तो कुछ ही समय पहले जन्मे और घास चरना न जाननेवाले मेमने भी घास चरने लगते हैं।

एक पहाड़िये ने अपने पहाड़ी दोस्त से कहा कि वह अपनी मातृभाषा में कोई गीत गाए। या तो मेहमान एक भी गाना नहीं जानता था, या उसे गाना नहीं आता था, लेकिन उसने यह जवाब दिया कि उसके जनगण में एक भी गाना नहीं है।

'तब तो यह देखना होगा कि आप स्वयं तो हैं या नहीं? गीत-गाने के बिना जनगण का अस्तित्व नहीं हो सकता!'

आई, दाई, दाल्लालाई! दाला-दाला, दुल्ला-लाई! गीत-ये तो वे चाबियाँ हैं जिनसे भाषाओं के निषिध संदूक खोले जाते हैं। आई, दाई, दाल्ला-लाई! दाला-दालादुल्ला-लाई!

मैं यह बताता हूँ कि गीत का जन्म कैसे हुआ। इसके बारे में मैंने बहुत पहले ही एक कविता रची थी। यहाँ प्रस्तुत है।

खंजर और कुमुज

युवक एक दर्रे के पीछे
रहता था जो पर्वत पर,
अंजीरों का पेड़, और था
उसकी दौलत, बस, खंजर।

एक अकेली बकरी जिसे
चराता था वन-प्रांगण में

किसी खान की बेटी सहसा
समा गई उसके मन में।

युवक साहसी, समझदार भी
शादी का प्रस्ताव किया,
खान हँसा सुन बात युवक की
रूखा उसे जवाब दिया -

'एक पेड़, खंजर के मालिक
तुम अपना मुँह धो रखो,
जाओ, अपने घर जाकर तुम
बकरी अपनी रोज दुहो।'

बेटी की शादी की उससे
सोने की जिसके मुहरें,
ढेरों भेड़-बकरियाँ जिसकी
चरागाह में वहाँ चरें।

युवक निराशा-दुख में डूबा
राख हुआ दिल भी जलकर,
विरह-वेदना में ही उसने
लिया हाथ में तब खंजर।

बलि बकरी की उसने दे दी
और पेड़ भी काट दिया,
बड़े प्यार से जिसको रोपा
और खींचकर बड़ा किया।

पेड़-तने से कुमुज बनाया
बाजा यों तैयार किया,
अँतड़ियाँ लेंकर बकरी की
उस पर उनको तान दिया।

तार छेड़ते ही बाजे के
उनसे ऐसा स्वर निकला,
पावन-पुस्तक शब्द कि जैसे
जैसे कोई स्वर्ग-कला।

तब से कभी न बूढ़ी होकर
पास प्रेयसी है उसके,
कुमुज और खंजर - ये दो ही
सिर्फ खजाने हैं जिसके।

घिरा धुंध में, चट्टानों से
सदा गाँव ऊँचाई पर,
वहीं सामने लटक रहे हैं
कुमुज साथ में ही खंजर।

कुमुज और खंजर। लड़ाई और गीत। प्यार और वीरता। मेरी जनता का इतिहास। इन दो चीजों को हमारे पहाड़ी लोग सर्वाधिक सम्मानित स्थान देते हैं।

पहाड़ी घरों में दीवारी कालीनों पर ये दोनों निधियाँ एक-दूसरी के सामने ऐसे टँगी रहती हैं जैसे कुल चिह्न। पहाड़ी लोग बड़ी सावधानी, आदर और प्यार से इन्हें हाथों में लेते हैं। आवश्यकता के बिना तो बिल्कुल हाथ में नहीं लेते। जब कोई व्यक्ति खंजर को कालीन पर से उतारने लगता है तो पीछे से कोई बुजुर्ग जरूर यह कह उठता है - 'सावधानी से, कहीं पंदूरे के तार नहीं तोड़ देना।' जब कोई पहाड़िया पंदूरे को दीवार पर से उतारता है तो पीछे से कोई बुजुर्ग जरूर यह कह उठता है - 'सावधानी से, उँगलियाँ न काट लेना।' खंजर पर पंदूरे और पंदूरे पर खंजर की पच्चीकारी की जाती है। युवती की चाँदी की पेटी और वक्ष के चाँदी के गहनों पर कुमुज और खंजर को उसी तरह से साथ-साथ चित्रित किया जाता है, जैसे वे दीवारी कालीन पर साथ-साथ लटकते रहते हैं। पहाड़ी लोग युद्ध-क्षेत्र में जाते वक्त खंजर और कुमुज को अपने साथ ले जाते थे। पहाड़ी घर की सम्मानित दीवार सूनी और नंगी-बुच्ची हो जाती थी।

'किंतु युद्ध-क्षेत्र में पंदूरा किसलिए ले जाया जाए?'

'अरे वाह! जैसे ही तारों को झनझनाया जाता है, जैसे ही उन्हें छुआ जाता है, वैसे ही बाप-दादों का क्षेत्र, प्यारा गाँव और माँ की स्मृतियोंवाला पहाड़ी घर - वह सभी कुछ हमारे पास आ जाता है। इसी के लिए तो लड़ने और मरने में कोई तुक है।'

'जब तलवारों की टनकार होती है तो गाँव नजदीक आ जाते हैं,' हमारे सूरमा कभी कहा करते थे। किंतु प्यारे गाँवों की राहें पंदूरे की झनक से अधिक तो कोई कम नहीं करता।

'आई, दाई, दाल्ला-लाई। दाल्ला-दाल्ला-दुल्ला-लाई!'

महमूद कार्पेथिया के पहाड़ों में गाता था और अपने गाँव, अपने प्यारे पर्वतों को अपने नजदीक महसूस करता था। उसकी मरियम भी मानो उसके निकट होती थी। बाद में महमूद ने वसीयत की -

मेरी कब्र जहाँ हो उस पर, मिट्टी तुम कम डालना
ताकि न ढेले मिट्टी के, सुनने में बाधा बन पाएँ
ताकि हृदय औ कान सुन सकें
गीत गाँव में जा गाएँ।
मेरे प्यारे पंदूरे को, तुम दफनाना मेरे साथ
ताकि न मेरे गीतों से, वे गहरी निद्रा सो जाएँ,
ताकि दर्द से भरी हुई आवाज गाँव की सुंदरियाँ
सब ही मेरी सुन पाएँ।

महमूद ने मानो ऐसे भी कहा था -

पर्वत तक भी झुक जाते हैं, मेरे पंदूरे को सुनकर
किंतु तुम्हारे दिल को कैसे द्रवित करूँ, मरियम प्यारी?
साँप-नाग तक लगें नाचने, मेरे पंदूरे की धुन पर
किंतु तुम्हारे दिल को कैसे द्रवित करूँ, मरियम प्यारी?

आप यह जानना चाहते हैं कि पहाड़ी गीत का कैसे जन्म हुआ?

जनता के सपनों में इसने जन्म लिया
नहीं किसी को ज्ञात कि कब था यह जन्मा,
यह तो चौड़ी छाती में मानो पिघला
गर्म रक्त की धाराओं में यह उबला।
यह तो तारों की ऊँचाई से आया

दागिस्तानी गाँवों ने इसको गाया,
सुना सैकड़ों, बहुत पीढ़ियों ने इसको
उससे पहले, जब तुम सुन पाए इसको।

गीत - ये तो पहाड़ी जल-धाराएँ हैं। गीत - ये तो लड़ाई के मैदान से सरपट घोड़े दौड़ाते हुए समाचार लेकर आनेवाले हरकारे हैं। गीत - ये तो अचानक मेहमान के रूप में आ जानेवाले दोस्त हैं, मित्र हैं। आप अपने तरह-तरह के बाजे-पंदूरा, चोंगूर, चागान, तुरही, केमांचू, जुरना, खंजड़ी, हार्मोनियम, ढोल हाथों में ले लें या चिलमची अथवा ताँबे-काँसे की थाली ही ले लें। ताली से ही ताल दें। फर्श पर एड़ियाँ ही बजाएँ। सुनिए, तलवारें कैसे तलवारों से टकराती हैं। सुनिए, प्रेयसी की खिड़की में फेंका हुआ कंकड़ कैसे तलवारों से टकराता है। हमारे गीतों को गाइए और सुनिए। ये गम और खुशी के दूत हैं। ये इज्जत-आबरू और बहादुरी के पासपोर्ट हैं, विचारों और कार्यों के प्रमाणपत्र हैं। ये जवानों को साहसी और बुद्धिमान तथा बूढ़ों और बुद्धिमानों को जवान बनाते हैं। ये घुड़सवार को घोड़े से उतरने और इन्हें सुनने को विवश करते हैं। ये पैदल जानेवाले को उछलकर घोड़े पर सवार होने और पक्षी की तरह उड़ने को मजबूर करते हैं। नशे में धुत को ये नशा दूर करके गंभीर बनाते हैं और अपने भाग्य के बारे में सोचने को विवश करते हैं और नशे में न होनेवाले को जाँबाज दिलेर तथा मानो नशे में धुत्त करते हैं। इस दुनिया में किस-किस चीज के बारे में गीत नहीं हैं! पहाड़ी आदमी को अपने गर्म चूल्हे के पास बैठाइए, उसके लिए घरेलू, फेनवाली बियर से भरा सींग लाइए और उससे गाने का अनुरोध कीजिए। वह गाने लगेगा। अगर आप चाहेंगे तो वह सुबह तक गाता रहेगा, सिर्फ आप उससे जोरदार अनुरोध करें और यह भी बता दें कि वह किस बारे में गाए। प्यार के बारे में? आप प्यार के बारे में भी गीत सुन सकेंगे।

आई, दाई, दालालाई!
प्यार रक्त-सा लाल, लाल गुललाला-सा
प्यार रात-सा, छल-फरेब-सा, काला-सा।
वह सफेद है, रिबन कि जैसे हो सिर का
वह सफेद है, कफन कि जैसे चादर का।
आसमान के जैसा, वह नीला हिम-सा
वह तो प्यारा तारों जैसी झिल-मिल-सा।

हिम गिर जाता और सूखती जल-धारा
प्रेम-पुष्प का रंग सदा रहता प्यारा।

- इस दुनिया में सबसे सुंदर क्या है?

- पहाड़ों में बनफशा का फूल।

- पहाड़ों में बनफशा के फूल से अधिक सुंदर क्या है?

- प्रेम।

- दुनिया में सबसे ज्यादा उज्ज्वल क्या है?

- प्रेम।

- आई, दाई, दालालाई! आपको और किस चीज के बारे में गीत सुनाएँ?

- प्रेम के कारण मरनेवाले प्रेमियों के बारे में।

- रोमियो और जूलियट, ताहिर और जुहरा, त्रीस्तान और इजोल्डा....

क्या कुछ कम संख्या थी उनकी हमारे दागिस्तान में! कितने थे हमारे यहाँ ऐसे प्रेमी जो एक-दूसरे के नहीं बन सके! उनके सपने साकार नहीं हुए, उनके होंठ और हाथ नहीं मिल सके। अनेक जवानों को जंग निगल गई और अनेक प्रेम के कारण मौत के मुँह में चले गए। वे उसकी आग में जल गए, ऊँची चट्टानों से नीचे कूद गए, तूफानी नदियों की लहरों में समा गए। अजाइनी गाँव की युवती और कुमुख गाँव का युवक। तो यह है उनका किस्सा, उनके प्यार का किस्सा। मैं आपको उनके प्यार का अंत बताता हूँ जिसे दागिस्तान में सभी जानते हैं।

कुमुख गाँव का युवक अपनी प्रेमिका को एक नजर देख लेने के लिए अजाइनी गाँव में गया। किंतु वह नजर नहीं आई। युवक ने चार दिन और चार रातों तक राह देखी। पाँचवें दिन वह अपने घर लौटने के लिए घोड़े पर सवार हो गया।

उसने नीचे देखा - सूखी धरती पड़ी नजर
था नीला आकाश कि उसने जब देखा ऊपर।
अरे, कहाँ से बारिश आई, यह पानी बरसा
नौजवान का अरे, लबादा, जिसने भिगो दिया?
वहाँ प्रेयसी मेसेदा थी खड़ी हुई छत पर
आँसू बहते यों आँखों से ज्यों निर्झर झरझर।
- 'चार दिनों-रातों तक मैंने तेरी राह तकी।

किस कारण तुम रहीं कि मुझसे ऐसे छिपी-छिपी?'
- 'बहुत दूर से ही घोड़े की टापों को सुनकर
चार द्वार, तालों का पहरा बिठा दिया मुझ पर,
मेरे भाइयों ने ही मुझ पर ऐसा जुल्म किया,
चार दिनों तक मैंने अपने मन को मार लिया।
किंतु पाँचवें दिन घोड़े पर जब तुम बैठ गए
मेरे धीरज और सब्र के बंधन टूट गए,
मैंने चारों दरवाजे भी, ताले तोड़ दिए
ऐसा प्यार प्रबल है मेरा, वह तूफान लिए!
मुझे माल की तरह, यहाँ पर बेचा जाता है
सब सौदागर, नहीं किसी से मेरा नाता है।
उससे शादी करना चाहें, जिसे न प्यार करूँ
तुम मत जाओ, रुको यहीं पर, तुमसे यही कहूँ।'

...लेकिन कुमुख से आनेवाला नौजवान अब रूकना नहीं चाहता था।

- 'जीन कसा मैंने घोड़े पर, क्या उतार सकता?
क्या कुछ कहें पड़ोसी, साथी, यह भी जरा बता?
मंगलमय पथ कहा मित्र ने मुझको विदा किया
फिर से लौटूँ उसके घर को, यह संभव है क्या?
मैं जाता हूँ हृदय तुम्हारे पास छोड़ जाता।'
- 'भाई उसको यों नोचें ज्यों कौवा, नोच खाता।'
- 'बड़ी खुशी से अपनी आँखें छोड़ यहाँ जाऊँ।'
- 'भाई चूसें उन्हें दाख सम, मैं यह बतलाऊँ।
हर हालत में मुझे छोड़ना ही यदि चाह रहे
गाँव-छोर तक घोड़ा ले जाओ धीरे-धीरे,
तुम लगाम को थाम, गाँव के बाहर तक जाओ
घूम वहाँ तुम, नजर जरा फिर मुझ पर दौड़ाओ।
घाटी में अपने घोड़े को, घास खिलाना तुम
और नदी पर ठंडा पानी, उसे पिलाना तुम,
जब हो जाए रात, लबादा ढककर सो जाना
जब जागो तो याद हृदय में मेरी तुम लाना,

जब बारिश हो यही समझना, आँसू जल बरसे
बर्फ गिरे तो समझो, मेरा दिल तड़पे, तरसे।'

गर्वीले नौजवान ने घोड़े पर तीन बार चाबुक बरसाया, तीन बार पीछे मुड़कर देखा और गाँव से चला गया। तीन सप्ताह बीत गए। हिम ने पर्वतों को ढक दिया। किस्मत की मारी मेसेदा ने उस व्यक्ति से शादी नहीं करनी चाही जिसे प्यार नहीं करती थी और इसलिए चट्टान से गिरकर आत्महत्या कर ली। उसी शाम को पिता और भाइयों ने आज्ञा का उल्लंघन करनेवाली मेसेदा को बर्फ के तूफान में बाहर सड़कर पर निकाल दिया था।

उस रात को वह यह गाती रही थी -
यही चाहती, सौ दुहिताएँ जन्म पिता के घर में लें
पिता उन्हें जल्दी से बेचें, धन लेकर शादी कर दें।
ताकि शादियों में वह उनकी, जी भर मौज करें
वह इतनी दौलत, सोना लें, लेकर उसे मरें।
यही कामना, धनी दुलहनें भाई भी ढूँढ़ें
उनके साथ बिताएँ जीवन, प्यार न जिन्हें करें।
वे होंठों को नहीं कि अपनी दौलत को चूमें
हिमकण जो तन मेरा काटें, चाँदी में बदलें
पाँव छू रही नद-धाराएँ, रूपा रूप धरें,
पिता, भाइयों के लालच को, वे कुछ तृप्त करें।
मेरे प्रियतम, हिम का अंधड़, उसका शोर सुनो
रात बिताने को तुम कोई अच्छी जगह चुनो।
प्रियतम, पाँव-तले हिम-परतें, पाँव संभल, रखो
तुम मत पीछे नजर घुमाओ, आगे को देखो।

या तो नौजवान को मौत के मुँह में जाती अपनी मेसेदा की आहें सुनाई दे गई या उसके दिल ने उसे सब कुछ बता दिया, लेकिन वह पसीने से तर-ब-तर अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ कुमुख से यहाँ पहुँच गया। उसे शोकपूर्ण घटना का पता चला। उसने लगामें फेंक दीं, घोड़े को छोड़ दिया। उसने पेटी खोली और बंदूक उतारकर फेंक दी। बंदूक पत्थर से टकराकर टूट गई। इस दुनिया से कूच कर चुकी अपनी प्रेयसी के पिता और भाइयों को संबोधित करते हुए नौजवान ने कहा -

- 'नहीं चाहता भंग करूँ मैं चैन आपके घर का
और यहीं पर तेज करूँ मैं फल अपने खंजर का।
नहीं चलाना गोली चाहूँ और न मैं तो खंजर
सिर्फ चाहता, देखूँ उसका प्यारा मुखड़ा पल भर।
यौवन से मदमाती गोरी छाती मुझे दिखाएँ
मेरी आँखें, झलक एक बस, अंतिम उसकी पाएँ।'
यह सुन वृद्ध पिता ने उसके मुँह से कफन हटाया
चेहरा पीला हुआ युवक का, घिरी मौत की छाया।
गोरी छाती देखी उसने, सिर उसका चकराया
गिरा लड़खड़ा धरती पर वह, यों अंतिम क्षण आया।

भाग्य ने उन्हें मिलाकर एक कर दिया था, सिर्फ उनके जिस्म ही अलग-अलग पड़े हुए थे। इन दोनों का कैसे अंतिम संस्कार किया जाए, इन्हें कैसे दफनाया जाए? तब एक बहुत बड़ी सभी हुई। पूरे दागिस्तान से बुद्धिमान लोग आए, सब मिलकर सोच-विचार करने लगे।

प्रेम के जाने-माने पैगंबरों ने कहा -

जीवन-दीप बुझ गया इनका, रुका रक्त-संचार
किंतु बहुत ही सच्चा, असली था दोनों का प्यार।
बेशक तन थे दो, लेकिन थी प्रीत एक ही पाई
दो जीवन थे, किंतु इन्हें तो मौत एक ही आई।

इन दोनों के लिए बड़ी-सी कब्र एक ही खोदें
ताकि वहाँ पर किसी तरह भी, जगह न कम हो जाए,
जीवन ने कुछ क्षण को बेशक इनको अलग किया है
लेकिन इनकी मौत, इन्हीं दोनों को पुनः मिलाए।

एक लबादे में दोनों को, हम तो साथ लपेटें
एक ढेर से इन दोनों पर मिट्टी हम बिखराएँ,
सोएँगे जिस एक कब्र में ये दोनों ही प्रेमी
उसके ऊपर हम दोनों का पत्थर एक लगाएँ।

जैसा कहा गया, सब कुछ वैसे ही किया गया। इन दोनों प्रेमियों की कब्र पर लगे पत्थर के करीब एक लाल फूल खिल उठा। उसकी पंखुड़ियाँ तो बर्फ के नीचे

भी नहीं मुरझाती थीं। बर्फ इस फूल को छूते ही पिघल जाती थी मानो यह लाल फूल आग हो। कब्र के नीचे एक चश्मा फूट निकला। लोग उसका पानी पीते हैं। कब्र के दोनों तरफ दो पेड़ उग आए। ऐसे सुंदर पेड़ तो किस्से-कहानियों में भी नहीं होते। जब ठंडी हवा चलती तो वे अपनी शाखाओं को इधर-उधर हिलाते-डुलाते हुए अलग हो जाते और जब गर्म हवा चलती तो फिर से मिल जाते मानो दो प्रेमी - कुमुख का नौजवान और अजाइनी की युवती एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे हों।

मैंने अली के बारे में भी एक गीत गा दिया होता, लेकिन वह बहुत ही लंबा है। इसलिए मुझे इस बात की अनुमति दीजिए कि पहले गीत की भाँति उसे कहीं तो गा दूँ और कहीं अपने शब्दों में बयान कर दूँ।

किसी गाँव में अली रहता था। उसकी खूबसूरत और जवान बीवी तथा बूढ़ी माँ थी। अली भेड़ें चराने के लिए लंबे अरसे तक पहाड़ों में चला गया।

एक दिन कोई आदमी माँ का यह हुक्म लेकर अली के पास आया कि वह अपनी भेड़ें छोड़-छाड़कर जल्दी से घर पहुँच जाए।

अली के दिल में बुरे-बुरे ख्याल आने लगे। कोई बड़ी मुसीबत तो नहीं आ गई? घर पर उसकी क्या जरूरत हो सकती थी? लेकिन अगर कोई बड़ी मुसीबत आ गई है तो जवान बीवी के सिवा किससे इसकी उम्मीद की जा सकती है।

अली ने संदेशवाहक से पूछा, मगर वह चुप रहा। अली बहुत जोर देने, उस पर बिगड़ने और खंजर दिखाकर धमकाने लगा। तब इस संदेशवाहक ने उससे यह कहा -

- 'अली, तुम्हारी बीवी बेहद सुंदर है
रात मौन, जब घर में सब सो जाते हैं,
मुझे बताओ मित्र, अँधेरे में धीरे
खिड़की के दरवाजे क्यों खुल जाते हैं?

अली, तुम्हारी बीवी यौवन-मदमाती
हिम से ढकी हुई लेकिन उस धरती पर,
मुझे बताओ, मीत भला क्यों पाँवों के
चिह्न किसी के आते हैं यों वहाँ उभर?

नहीं हवा से खिड़की के पट खुलते हैं
उन्हें खोलती बीवी, जब हो प्रेम-मिलन,
नहीं अँगूठी पहने, जो थी तुमने दी
और न पहने मीत तुम्हारा यह कंगन।'

जाहिर है कि अली जल्दी-जल्दी गाँव की तरफ चल दिया। फौरन माँ के पास न जाकर वह सुंदर जवान बीवी के पास गया। बीवी ने पति का लबादा और समूर की टोपी उतारकर नीचे रखनी चाहि, घर की बनी बियर पिलानी चाही, यह चाहा कि वह सफर की थकान मिटा ले।

- 'अपना कोट उतारो कपड़े
अभी बियर मैं ले आती,'
- 'जब मैं यहाँ नहीं था किसको
रही लबादा पहनाती?'

- 'मेरे स्वामी, फर की टोपी
अब उतार लो तुम, प्यारे,'
- 'किसे पिलाती रही बियर,
जब रहा दूर मैं मन मारे?'

अली ने खंजर निकाला और दो बार बीवी पर वार किया।

- 'अरे सुरमा अली, रहो किस्मतवाले
बरस तीन सौ जियो हमारी धरती पर,
मगर सूरमा अली, कि देखो जरा इधर
पड़ी खून में मैं अपने लथपथ होकर।
तुम पर अल्लाह अपनी रहमत बरसाए

दुनिया भर की खुशियाँ प्रियतम तुम पाओ,
केवल यह अनुरोध, उठाकर बाँहों में
मुझे पलंग पर साजन मेरे ले जाओ।'
- 'यह अनुरोध करूँ पूरा, यदि बतलाओ

नहीं छिपाओ कुछ भी, कह दो सब खुलकर,
नहीं पहनती हो तुम कहो अँगूठी क्यों?

और कीमती कंगन आता नहीं नजर।'
- 'तुम खोलो संदूक, सूरमा अली जरा

उसके तल में मिलें अँगूठी औ' कंगन,
पास नहीं थे जब तुम ही मेरे साजन
साज-सिंगार दिखाऊँ किसे रूप, चितवन?'
अली भागकर माँ के पास गया -

'किसलिए तुमने मुझे बुलवाया है, क्या बात हो गई है?'

'तुम्हारे बिना तुम्हारी बीवी बहुत उदास हो गई थी, बच्चे भी उदास हो रहे थे। फिर मैंने यह भी सोचा कि तुम भेड़ का ताजा-ताजा गोश्त अपने साथ ले आओगे। बहुत दिनों से नहीं खाया।'

अली ने अपना सिर थाम लिया और वह भागकर पत्नी के पास गया।

ज्योति बुझी जाती थी उसके नयनों की
ठंडे हाथ हुए पत्नी के, साँस नहीं आए,
आँसू-धारा बहे अली की आँखों से
पर पत्नी परलोक-धाम बढ़ती जाए।

खंजर लिया निकाल अली ने तब अपना
तेज धार का, और खून से सना हुआ,
अपने ऊपर खूब जोर से वार किया
और निकट पत्नी के, वह भी वहीं गिरा।

तो ऐसे अंत हुआ इस घटना का। इन दोनों को एक-दूसरे की बगल में दफनाया गया। इनकी कब्र के नजदीक दो पेड़ उग आए।

तो मैं और किसकी दास्तान गाऊँ? शायद कामालील बाशीर की? कौन था यह कामालील बाशीर? वह हमारे दागिस्तान का, यों कहा जा सकता है, डॉन-जुआन था। लोगों का कहना है कि जब वह पानी पीता था तो उसके गले से निर्मल जल साफ तौर पर नीचे उतरता दिखाई देता था। इतनी कोमल थी उसकी त्वचा। उसकी इसी गर्दन को तो उसके पिता ने काट डाला था। किस कारण? इस कारण कि बेटा बहुत ही ज्यादा खूबसूरत था।

कामालील बाशीर तो मर गया, लेकिन प्यार के बारे में तो उसी तरह गाया जाता है, जैसे पहले गाया जाता था।

बच्चा तो पालने में ही होता है, लेकिन प्रेम का गीत उसके ऊपर गूँजने लगता है।

फिर से मैं हमारे एक सीधे-सादे लोक-खेल की याद दिलाना चाहता हूँ।

यह खेल गीतिमयता, हाजिरजवाबी, आवश्यक और जल्दी से ठीक शब्द ढूँढ़ पाने की क्षमता का मुकाबला होता है। ऐसा खेल है यह। दागिस्तान के हर गाँव में लोग इसे जानते हैं। जाड़ों की लंबी रातों में गाँव के किशोर-किशोरियाँ किसी पहाड़ी घर में जमा हो जाते हैं। वे न तो वोदका पीते है, न ताश खेलते हैं, न बीज छीलकर खाते हैं और न बेहूदा हरकतें करते हैं, बल्कि कविता का खेल खेलते हैं यानी बेंतबाजी करते हैं। यह बहुत बढ़िया बात है न!

एक छोटी-सी छड़ी लाई जाती है। कोई किशोरी उसे हाथ में ले लेती है। किशोरी इस छड़ी से किसी किशोर को छूती है और गाती है -

ले लो तुम यह छड़ी, सभी से जो सुंदर
चुनो सुंदरी, जो सबसे हो बढ़-चढ़कर।

किशोर किसी किशोरी को चुन लेता है और वह स्टूल पर बैठ जाती है। इन दोनों के बीच कविता में बातचीत शुरू होती है -

अरी हसीना, अरी हसीना
नाम तुम्हारा क्या है? यह तो बतलाओ,
अरी हसीना, अरी हसीना
किस कुल की, किस मात-पिता की, समझाओ।

बाकी सभी किशोर तालियाँ बजाते हुए गाते हैं - 'आई, दाई, दालालाई!'

अपना नाम बताया मैंने
किसी और को, नहीं तुम्हें,
वचन प्यार का दे बैठी हूँ
किसी और को, नहीं तुम्हें।
बाकी सभी तालियाँ बजाते हुए गाते हैं - 'आई, दाई, दालालाई!'

किशोरी स्टूल से उठती है, छड़ी से किसी किशोर को चुनती है जो उसकी जगह बैठ जाता है। यह नया जोड़ा नया काव्य-वार्तालाप आरंभ करता है -

किशोरी -

हिम से पर्वत ढके जा रहे
राह न कहीं नजर आए,
ढूँढ़े, घास मेमना प्यारा
कहाँ उसे, पर, वह पाए?

किशोर -

हिम तो हर क्षण पिघला जाता
बहे रुपहली हिम-धारा,
घास वक्ष पर तेरे पाए
अरे, मेमना वह प्यारा।

'आई, दाई, दालालाई!' नया जोड़ा सामने आता है।

किशोरी -

शीतल जल का कुआँ जहाँ पर
निकट वहीं रहता अजगर,
बकरे का पानी पी लेना
वह कर देता है दूभर।

किशोर -

बेशक रहे वहाँ पर अजगर
नहीं किसी को उसका डर,
तेरी आँखों के प्यालों से
वह जल पी लेगा जी भर।

'आई, दाई, दालालाई!' नया जोड़ा सामने आता है।

किशोर -

दर्रे में तूफान गरजता
बिछी नदी पर हिम-चादर,
तुमसे शादी करना चाहूँ
और बसाना अपना घर।

किशोरी -

किसी दूसरी गली, गाँव में
ढूँढ़ो तुम अपनी दुलहन,

नहीं तीतरी अपना सकती
मुर्गीखाने का बंधन।

'आई, दाई, दालालाई!' सभी तालियाँ बजाते और हँसते हैं। ऐसे बीतती हैं जाड़े की लंबी रातें।

प्यार के बारे में दागिस्तानी गीत-गाने! जब तक इस किशोर ने इस चीज के लिए मिन्नत की कि यह किशोरी उससे शादी कर ले, दूसरे किशोर किसी तरह की औपचारिकता के बिना उसे चुरा ले जाते हैं।

जब तक इस किशोरी के दरवाजे पर शिष्टतापूर्वक दस्तक दी जाती रही, दूसरे किशोर खिड़की में से कूदकर उसके पास जा पहुँचे।

सदियाँ बीतती रहती हैं, लेकिन गाने ऐसे ही जीते रहते हैं, जिंदा रहते हैं। गायक उन्हें रचते हैं, लेकिन गीत सभी गायकों को जन्म देते हैं।

क्या गीत-गाने के बिना शादी हो सकती है, क्या गाने के बिना एक दिन भी बीत सकता है, क्या कोई आदमी गाने के बिना जिंदगी बिता सकता है?

हमारे यहाँ यह कहा जाता है कि जो गाना नहीं जानता, उसे पशुओं के बाड़े में रहना चाहिए।

यह भी कहा जाता है कि प्यार से अपरिचित महाबली किसी प्रेम-दीवाने की कमर तक भी नहीं पहुँचता।

महमूद के बारे में यह किस्सा सुनाया जाता है। प्रथम विश्व-युद्ध के वक्त वह दागिस्तानी घुड़सवार रेजिमेंट के साथ कार्पेथिया के मोरचे पर था। उसने अपना प्रसिद्ध गीत 'मरियम' वहीं रचा और महमूद के फौजी साथी उसे पड़ावों पर गाने लगे। इस गाने की कहानी यह है।

एक घमासान लड़ाई में रूसी फौजों ने आस्ट्रियाई फौजों को खदेड़कर एक गाँव पर कब्जा कर लिया। भागते दुश्मनों का पीछा करते हुए महमूद एक गिरजे के करीब पहुँच गया। एक डरा-सहमा हुआ आस्ट्रियाई गिरजे के दरवाजे से लपककर बाहर आया, लेकिन गुस्से से धधकते एक पहाड़ी घुड़सवार को अपने सामने देखकर फिर से गिरजे में भाग गया।

इस घटना के कुछ दिन पहले महमूद का भाई लड़ाई में मारा गया था और वह बदला लेने को बेकरार था। अधिक सोच-विचार किए बिना वह घोड़े से कूदा,

खंजर निकालते हुए यह इरादा बना लिया कि अंदर जाकर फौरन इस आस्ट्रियाई की जान ले लेगा। लेकिन भागते हुए गिरजे में जाने पर महमूद स्तंभित रह गया।

उसने आस्ट्रियाई को घुटने टेके हुए ईसा की माँ मरियम की प्रतिमा के सामने प्रार्थना करते पाया।

दागिस्तान में तो घुटने टेक देनेवाले पर यों भी हाथ नहीं उठाया जाता और प्रभु ईसा की माँ की प्रतिमा के सामने प्रार्थना करनेवाले पर हाथ उठाने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था। इसके अलावा महमूद उस औरत के सौंदर्य से भी स्तंभित रह गया था जिसकी आस्ट्रियाई पूजा कर रहा था।

महमूद ने अचानक यह देखा कि उसके सामने उसकी प्रेयसी मूई है, उसी की आँखें हैं, आँखों में उसी की पीड़ा है, उसी का चेहरा-मोहरा, उसी की पोशाक है। महमूद के हाथ से खंजर गिर गया। यह तो मालूम नहीं कि इस घटना के बारे में आस्ट्रियाई ने बाद में क्या कहा, लेकिन गुस्से से उबलता महमूद भी उसके करीब ही घुटने टेककर ईसाइयों के ढंग से प्रार्थना करने, अटपटे ढंग से माथे, कंधों और छाती से अपनी उँगलियाँ छुआने लगा। आस्ट्रियाई कब वहाँ से खिसक गया, महमूद ने यह नहीं देखा। होश-हवास ठिकाने होने पर उसने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मरियम' यानी मरीया के बारे में कविता रची। महमूद के लिए मूई और मरीया एक ही बिंब में घुल-मिल गईं। उसने मरीया के बारे में कविता रची, लेकिन सोचता रहा मूई के बारे में, सृजन किया मूई के संबंध में, किंतु सोचता रहा मरीया के संबंध में।

इसके बाद तो महमूद प्रेम के सिवा किसी दूसरी चीज को इस दुनिया में मान्यता ही नहीं देता था। उसकी आत्मा दूसरे गीतों को ग्रहण ही नहीं करती थी। दागिस्तान के कवियों में अन्य कोई भी ऐसा नहीं था जो उसकी भावनाओं के आवेग की ऊँचाई को छू सकता, उसके गीतों की गहराई तक जा सकता। उसे तो इस बात की चेतना ही नहीं रही थी कि वह कविता रच रहा है, कि कविता में बात कर रहा है, कि बोल नहीं रहा है, बल्कि गा रहा है। मानो कोई दूसरा ही उसकी जगह बोल और गा रहा हो। वह मूई और उसके प्रति अपनी भावनाओं को ही अपनी सारी सफलताओं का श्रेय देता था। अगर उसका कोई दोस्त उससे मूई की बात नहीं करता था तो वह उसकी बात ही सुनना बंद कर देता था।

महमूद के बारे में मेरे पिता जी ने मुझे यह बताया था।

महमूद के पास बहुत से लोग आने लगे, लेकिन केवल प्रेम-दीवाने ही आते थे। वे महमूद के शब्दों की शक्ति को समझते थे और उससे अपने लिए कविता रचने का अनुरोध करते थे। ऐसा प्रेमी भी आता जिसे पहली बार किसी लड़की से प्रेम होता था और वह नहीं जानता था कि उससे इस बात की चर्चा कैसे करे। ऐसा प्रेमी भी आता था जिसकी प्रेयसी ने किसी दूसरे से शादी कर ली थी और यह बेचारा यह नहीं जानता था कि अपने विरह-व्यथित हृदय का क्या करे। ऐसा व्यक्ति भी आता जिसे किसी विधवा से प्रेम हो जाता जो अपने दिवंगत पति के प्रति ही निष्ठावान बनी रहती और प्रेमी यह नहीं जानता था कि उस विधवा के दिल को कैसे मोम करे।

महमूद के पास ऐसे प्रेमी भी आते जिनकी प्रेयसियों ने उनके साथ बेवफाई की थी। ऐसे भी आते जिनके दिल प्रेम का प्रतिदान न मिलने के कारण तड़पते थे। ऐसे भी आते जिनका अपनी प्रेयसियों से झगड़ा हो जाता था। ऐसे भी आते जो बिछुड़ जाते थे।

जितने लोग हैं, उतने ही प्रेम-दीवाने हैं। जितने प्रेम-दीवाने हैं, उनके प्रेम के रूप भी उतने ही भिन्न हैं। दो प्रेमी एक जैसे नहीं होते।

महमूद प्रत्येक विशेष प्रेम-समस्या के अनुरूप कविता रचता। प्रेमी आपस में मिल जाते, जिनके बीच झगड़ा हो गया था, उनमें सुलह हो जाती, कठोर और दुख में डूबी विधवा का दिल मोम हो जाता, झिझकते-घबराते युवक के दिल में साहस का संचार हो जाता, बेवफाई करनेवाले शर्म से पानी-पानी हो जाते, धोखा खानेवाले क्षमा कर देते।

एक बार महमूद से पूछा गया -

'तुम बहुत ही अलग-अलग लोगों की मनःस्थिति के अनुरूप कविताएँ कैसे रच लेते हो?'

'सब लोगों का भाग्य एक मानव के हृदय में ही समा सकता है। क्या मैं उनके बारे में कविता रचता हूँ? उनके प्यार? उनकी वेदनाओं के बारे में? नहीं, मैं तो अपने बारे में कविता रचता हूँ। लकड़ी का कोयला बनानेवाले एक गरीब आदमी के बेटे को यानी मुझे चढ़ती जवानी के दिनों में ही बेलता गाँव की रहनेवाली मूई से प्रेम हो गया था। बाद में मूई की किसी दूसरे से शादी हो गई। मेरा दिल खून के आँसू रो दिया। साल बीते और मूई के पति का देहांत हो गया। मेरी आत्मा को

पहले की तरह ही चैन नहीं मिला... नहीं, मैं प्रेम के बारे में सभी कुछ जानता हूँ और मुझे दूसरों के संबंध में कविता रचने की कोई जरूरत नहीं।'

कहते हैं कि महमूद के पास युद्ध में खेत रहे या वीरगति पाने वालों के बारे में कविता रचने का अनुरोध लेकर भी लोग आते थे। बेटों की माताएँ, भाइयों की बहनें, पतियों की पत्नियाँ और वरों की मंगेतरें ऐसी प्रार्थनाएँ लेकर आतीं। किंतु महमूद एक भी ऐसी कविता न रच पाता। वह उत्तर देता -

'अगर युद्ध में भी मैंने प्रेम की कविताएँ रचीं तो मैं शांतिपूर्ण गाँव में युद्ध के बारे में कैसे लिख सकता हूँ?'

लेकिन पहाड़ी लोग इस सिलसिले में यह भी कहते हैं - 'शांति के गीत का असली महत्व तभी समझ में आता है जब लड़ाई होती है।' वे यह भी कहते हैं - 'अपने प्रेम की परीक्षा लेनी हो तो युद्ध-क्षेत्र में जाइए।'

खंजर दुधारी होता है - उसकी एक धार है - मातृभूमि के प्रति प्यार, दूसरी - शत्रु के प्रति घृणा। पंदूरे के दो तार होते हैं - एक तार घृणा का गीत गाता है, दूसरा प्यार का।

हमारे पहाड़ी लोगों के बारे में कहा जाता है कि जब वे एक हाथ से प्रेयसी का आलिंगन किए हुए लेटे होते हैं तो उनका दूसरा हाथ खंजर को थामे रहता है। अकारण ही तो हमारे बहुत-से गीत और पुराने किस्से-कहानियाँ खंजर के वार के साथ समाप्त नहीं होते हैं। लेकिन बहुत-से किस्से-कहानियाँ इस तरह भी खत्म होते हैं कि पहाड़ी आदमी अपनी प्रेमिका को जीन पर अपने आगे बिठाए हुए गाँव लौटता है।

पहाड़ों में जब पुरानी कब्रों को खोदा जाता है तो उनमें खंजर और तलवारें मिलती हैं।

'वहाँ पंदूरा क्यों नहीं मिलता?'

'पंदूरे जीवितों के लिए रह जाते हैं, ताकि जीवित दिवंगत वीरों के बारे में गाने गाएँ। इसलिए अगर हमारी पृथ्वी पर सारे शस्त्रास्त्र लुप्त हो जाएँगे, एक भी खंजर बाकी नहीं रहेगा, तो गीत तो तब भी लुप्त नहीं होगा।'

मेरे पिता जी कहा करते थे कि साधारण मेहमान तो तुम्हारे घर का मेहमान होता है। लेकिन गायक-अतिथि, संगीतज्ञ-अतिथि - यह सारे गाँव का अतिथि होता है। सारा गाँव उसका स्वागत और उसे विदा करता है। मिसाल के तौर पर,

महमूद का हर जगह पर गवर्नर से भी बढ़कर स्वागत-सत्कार किया जाता था। शायद इसीलिए गवर्नरों को स्वतंत्र कवि-गायक अच्छे नहीं लगते थे?

पिता जी ने यह किस्सा दुनिया कि कैसे दो मुसाफिर दागिस्तान में से जा रहे थे। जब शाम का झुटपुटा हो गया तो एक मुसाफिर ने दूसरे से कहा -

'क्या हमारे लिए, आराम करने का वक्त नहीं हो गया? जल्द ही रात हो जाएगी। में देख रहा हूँ कि तुम थक और ठिठुर गए हो। देखो, वह सामने गाँव नजर आ रहा है। हम उधर ही चले जाते हैं और वहाँ रात बिताने की कोई जगह ढूँढ़ लेते हैं।'

'मैं तो सचमुच ही थक और ठिठुर गया हूँ। शायद मैं तो बीमार भी हो गया हूँ। लेकिन इस गाँव में मैं नहीं ठहरूँगा।'

'क्यों?'

'क्योंकि यह गाँव उदासी भरा है। यहाँ आज तक किसी ने किसी को गाते नहीं सुना।'

बहुत मुमकिन है कि मुमकिन है कि मुसाफिरों के रास्ते में ऐसा गाँव आ गया हो। लेकिन पूरे दागिस्तान के बारे में तो कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह ऐसा देश है, जहाँ गाने सुनाई नहीं देते और इसलिए वह इससे बचकर निकल जाएँ।

बेस्तूजेव-मारलीन्स्की ने अपनी पुस्तक में दागिस्तानी गीतों को स्थान दिया है और बेलीन्स्की ने इनके बारे में यह कहा था कि वे स्वयं पुस्तक से अधिक मूल्यवान हैं। उन्होंने कहा था कि पुश्किन को भी उन्हें अपना कहते हुए शर्म महसूस न होती।

तरुण लेर्मोंतोव भी तेमीरखान - शूरा में पहाड़ी गीत-गाने सुनते रहे थे। बेशक वह हमारी भाषा नहीं समझते थे, फिर भी उनसे आनंद-विभोर होते थे।

प्रोफेसर उस्लार ने कहा था कि गुनीब गाँव की धुनें - मानवजाति के लिए अद्भुत उपहार हैं।

किसने हमें ये धुनें और ये गीत-गाने दिए? पहाड़ी लोगों में किसने ऐसी भावनाएँ पैदा कीं? उकाबों और घोड़ों ने, तलवारों और घास ने, पालने तथा चार कोइसू नदियों ने, कास्पी सागर की लहरों और महमूद की प्रेमिका मरियम ने,

दागिस्तान के पूरे इतिहास और उसमें विद्यमान सभी भाषाओं ने, पूरे दागिस्तान ने।

अबूतालिब से एक बार पूछा गया -

'दागिस्तान में कितने कवि हैं?'

'कोई तीस-चालीस लाख होंगे।'

'यह कैसे? हमारी कुल आबादी ही दस लाख है!'

'हर आदमी की आत्मा में तीन-चार गीत-गाने होते हैं। हाँ, यह सही है कि न तो सभी और न हमेशा ही लोग उन्हें गाते हैं। सभी को यह मालूम भी नहीं होता।'

'फिर भी सबसे अच्छे गायक-कवि कौन-से हैं?'

'हमेशा ही अच्छे से भी अच्छा गायक-कवि मिल जाएगा। लेकिन एक का मैं उल्लेख कर सकता हूँ।'

'कौन है वह?'

'दागिस्तानी माँ। कुल मिलकार पहाड़ी लोगों के यहाँ तीन गाने माने जाते हैं।'

'कौन-से?'

'पहला गाना तो पहाड़िन-माँ तब गाती है, जब उसके यहाँ बेटे का जन्म होता है और वह उसके पालने के करीब बैठती है।'

'और दूसरा?'

'दूसरा गाना पहाड़िन-माँ तब गाती है, जब बेटे से वंचित हो जाती है।'

'और तीसरा?'

'तीसरा गाना - बाकी सभी गाने हैं।'

हाँ, माँ... वही खिलने और मुरझाने, जन्म लेने और मरने, इस दुनिया में आने तथा यहाँ से जानेवाले की सच्ची और अनुरागमयी साक्षी होती है। माँ, जो पालना झुलाती है, बच्चे को गोद में लिए रहती है और जो हमेशा के लिए छोड़कर जानेवाले बेटे को गले लगाती है।

यही है सौंदर्य, सत्य और गौरव।

अच्छे-बुरे लोग होते हैं, यहाँ तक कि अच्छे-बुरे गीत-गाने भी होते हैं। किंतु माँ तो हमेशा अद्भुत होती है और माँ का गाना भी अद्भुत होता है।

मेरे पालने के ऊपर जो गाने गाए गए, जाहिर है, मुझे वे याद नहीं। लेकिन बाद में मैंने विभिन्न गाँवों में बहुत-से अच्छे गाने, अच्छी लोरियाँ सुनीं। उदाहरण के लिए उनमें से एक प्रस्तुत है -

शक्ति बटोरोगे तुम बेटे और बड़े हो जाओगे
विकट भेड़िये के दाँतों से, मांस छीन तुम लाओगे।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, फुरती ऐसी आएगी
चीते के पंजों से वह तो, झपट परिंदा लाएगी।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, तुमको सब फन आएँगे
बात बड़ों की तुम मानोगे, मीत बहुत बन जाएँगे।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, समझदार बन जाओगे
तंग पालना हो जाने पर, पंख लगा उड़ जाओगे।

जन्म दिया है मेंने तुमको, मेरे पूत रहोगे तुम
जो दामाद बनाए तुमको, उसको सास कहोगे तुम।

मेरे बेटे, तुम जवान हो पत्नी प्यारी लाओगे
प्यारे देश, वतन की खातिर, गीत मधुरतम गाओगे।

कितना विश्वास है इस लोरी में! पिता जी कहा करते थे कि एक भी ऐसी माँ नहीं है जो गा न सकती हो। ऐसी माँ नहीं है जिसकी आत्मा में कवि न बसा हो।

खुश्क, गर्म मौसम में बारिश - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
बरसाती गर्मी में सूरज - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
होंठ शहद से मीठे-मीठे - मेरे बच्चे, वे तुम हो।
काले अंगूरों-सी आँखें - मेरे बच्चे, वे तुम हो।
नाम शहद से बढ़कर मीठा - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
चैन नयन को जो मुख देता - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
धड़क रहा है जो सजीव दिल - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
स्पंदित दिल की चाबी जैसे - मेरे बच्चे, वह तुम हो।

जो संदूक मढ़ा चाँदी से - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
जो संदूक भरा सोने से - मेरे बच्चे, वह तुम हो।
अब तुम धागे के गोले से
गोली फिर तुम बनो मगर,
बनो हथौड़ा ऐसा भारी जो
तोड़े पर्वत, पत्थर।
तीर बनोगे ऐसे जो तो
बैठे ठीक निशाने पर,
नर्तक तुम तो सुघड़ बनोगे
गायक जिसका मधुमय स्वर।
गली-मुहल्ले के लड़कों में
तेज सभी से दौड़ोगे,
घुड़दौड़ों में सब युवकों को
तुम तो पीछे छोड़ोगे।
घाटी में से तेज तुम्हारा
घोड़ा उड़ता जाएगा,
बादल बन नभ में जा पहुँचे
वह जो धूल उड़ाएगा।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि जिसने माँ की लोरी नहीं, सुनी वह बालक तो मानो अनाथ के रूप में ही बड़ा हुआ है। लेकिन जिसके पालने के ऊपर हमारे दागिस्तानी गाने गाए गए हैं, वह तो माँ-बाप के बिना बड़ा होने पर भी अनाथ नहीं है। किंतु यदि उसकी न तो माँ है और न बाप तो किसने ये गान गाए? खुद दागिस्तान, ऊँचे-ऊँचे पर्वतों ने ये गाने गाए, ऊँचे पर्वतों से बहनेवाले नद-नालों ने गाए, पहाड़ों में रहनेवाले लोगों ने गाए -

स्वर्ण-सुनहरे धागों के गोले जैसी - बिटिया है मेरी।
रजत-रुपहले चमचम करते फीते-सी - बिटिया है मेरी।
ऊँचे पर्वत पर जो चमके चंदा-सी - बिटिया है मेरी।
पर्वत पर जो कूदे नन्ही बकरी-सी - बिटिया है मेरी।
कायर, बुजदिल दूर हटो तुम
नहीं मिलेगी कायर को - बिटिया मेरी
झेंपू फाटक पर मत घूमो

नहीं मिलेगी झेंपू को - बिटिया मेरी।
वासंती, चटकीले सुंदर फूलों-सी - बिटिया है मेरी।
वासंती, सुंदर फूलों की माला-सी - बिटिया है मेरी।
हरित तृणों के कोमल कालीनों जैसी - बिटिया है मेरी।
रेवड़ तीन अगर भेजोगे भेड़ों के
नहीं भौंह तक बेटी की तुमको दूँगी,
तीन थैलियाँ सोने की यदि भेजोगे
नहीं गाल तक बेटी का तुमको दूँगी,
तीन थैलियों के बदले में मैं तुमको
नहीं गाल का गुल तक बेटी का दूँगी,
काले कौवे को मैं उसे नहीं दूँगी
और दयालु मोर, न उसको मैं दूँगी
अरी, तीतरी तुम मेरी
नन्ही-सी सारस मेरी।
दूसरी माँ दूसरे ढंग से गाती है -
मार गिराए डंडे से जो चीते को
बेटी उसको दे दूँगी,
घूँसे से चट्टान तोड़ दे जो पत्थर
बेटी उसको दे दूँगी,
कोड़े से जो दुर्ग जीत ले, साहस से
बेटी उसको दे दूँगी,
जो पनीर की तरह काट दे चंदा को
बेटी उसको दे दूँगी,
जो रोके नदिया की बहती धारा को
बेटी उसको दे दूँगी,
किसी फूल की तरह सितारा जो तोड़े
बेटी उसको दे दूँगी,
पंख पवन के आसानी से जो बाँधे
बेटी उसको दे दूँगी,
सेब सरीखे लाल-लाल गालोंवाली
प्यारी बिटिया तू मेरी।

या फिर इच्छा को व्यक्त करनेवाला यह गीत -

जब तक फूल कहीं पर कोई खिल पाए
मेरी बिटिया उससे पहले खिल जाए।
जब तक नदियाँ उमड़ें पानी से भरकर
घनी वेणियाँ बिटिया की गूँथूँ सुंदर।
नहीं गिरा है हिम तो अब तक धरती पर
आए लोग सगाई-संदेसा लेकर।
लोग सगाई करने को ही यदि आ जाएँ
शहद भरा पीपा वह अपने संग लाएँ।
भेड़-बकरियाँ और मेमने वे लाएँ
है दुलहन का बाप, उन्हें हम बतलाएँ।
पास पिता के चुस्त, तेज, घोड़े भेजें
और पिता का वे ऐसे सम्मान करें।

पालने के ऊपर गाया जानेवाला यह कामना-गीत -

इससे पूर्व कि गीत भोर का पहला पक्षी गाए
गेहूँ के खेतों में कोई बिटिया को बहलाए।
इससे पहले, दूर कहीं पर कोयल कूके वन में
मेरी बिटिया खेले-कूदे चरागाह-आँगन में।
सुंदरियाँ सिंगार करें औ' निकलें जब तक सजकर
मेरी बिटिया ले आएगी चश्मे से जल भरकर।

अगर लोरियाँ न होतीं तो दुनिया में शायद दूसरे गीत भी न होते। लोगों की जिंदगी में रंगीनी न होती, वीर-कृत्य कम होते, जीवन में कविता कम होती।

माताएँ - वही पहली कवयित्रियाँ होती हैं। वही अपने बेटों-बेटियों की आत्मा में कविता के बीज रोपती हैं जो बाद में अंकुर बनकर फूटते हैं, फूलों के रूप में खिलते हैं। पुरुष अपने जीवन के सबसे कठिन, बोझिल और भयानक दिनों में इन लोरियों को याद करते हैं।

एक डरपोक सैनिक से हाजी-मुरात ने कहा था - 'शायद तुम्हारे पालने के ऊपर तुम्हारी माँ ने लोरी नहीं गाई थी।'

किंतु जब खुद हाजी-मुरात शामिल के साथ गद्दारी करके उसके दुश्मनों से जा मिला तो शामिल ने तिरस्कारपूर्वक कहा था - 'वह माँ की लोरी भूल गया है।'

और हाजी-मुरात की माँ की लोरी यह थी -

मुख पर ला मुस्कान सुनो तुम
मैं जो गीत सुनाती हूँ,
एक वीर का किस्सा तुमको
बेटे वीर, बताती हूँ।

खड्ग बगल में बड़े गर्व से
वह अपनी लटकाता था,
सरपट घोड़े पर वह उछले
वश में उसको लाता था

तेज पहाड़ी नदियों सम वह
लाँघा करता सीमाएँ
तेज खड्ग से काटे वह तो
ऊँची पर्वत-मालाएँ।

सदी पुराने शाह बलूत को
एक हाथ से वह मोड़े,
तू भी वीर बने वैसा ही
वीरों से नाता जोड़े।

माँ बेटे के मुस्कराते हुए प्यारे-से चेहरे को देखती थी और अपनी लोरी के शब्दों पर विश्वास करती थी। वह नहीं जानती थी कि उसके बेटे, हाजी-मुरात को कैसी-कैसी कठिन परीक्षाओं का सामना करना होगा।

यह मालूम होने पर कि हाजी-मुरात अपने अगुआ शामिल को छोड़कर उसके दुश्मनों के साथ जा मिला है, माँ ने दूसरा गाना गाया -

तुम चट्टानों से भी खड्डों में कूदे
नहीं किसी ऊँचाई से तुम घबराए,
किंतु गिरा है अब जितने गहरे तल में
उससे निकल न तू वापस घर को आए।

हमले जब-जब हुए पर्वतों पर तेरे

घने अँधेरे कभी न आड़े आ पाए,
तू शिकार खुद बना, किंतु अब दुश्मन का
नहीं लौटकर अब तो तू घर को आए।

मेरे, माँ के दिन भी अब तो काले हैं
उनमें कटुता, सूनेपन के हैं साए,
उन फंदों से, उन फौलादी पंजों से
निकल न सकता कभी न वापस घर आए।

तिरस्कार यदि करे जार का, शामिल का
बात समझ में सबकी यह तो आ जाए,
किया निरादर अरे, पर्वतों का तूने
कभी न वापस अब तो तू घर को आए।

जैसा कि सर्वविदित है, बाद में हाजी-मुरात ने रूसियों का साथ छोड़कर फिर से अपने लोगों के पास आना चाहा था। लेकिन भागने के वक्त ही वह मारा गया था और मृत हाजी-मुरात का सिर काट दिया गया था। तब पहाड़ों में माँ के एक अन्य गाने का जन्म हुआ -

चले हाथ भरपूर खड्ग के, कंधों पर सिर नहीं रहा,
यह तो झूठी बात है,
बहुत जरूरत युद्ध-परिषदों और भिड़ंतों में उसकी
यह हम सबको ज्ञात है।
सड़क-किनारे दफन कहीं पर, सिर के बिना धड़ उसका है
ये बातें निस्सार हैं,
घिरे किलों, युद्धों में उसके, हाथ और कंधे अब तक
हम सबके आधार हैं।
तुम यह तलवारों से पूछो, तेज खंजरों से पूछो
क्या अब हाजी नहीं यहाँ?
चट्टानों से क्या बारूदी, गंध नहीं अब आती है?
और न उड़ता वहाँ धुआँ?

उसका नाम गरुड़-सा उड़कर, पहुँचा ऊँचे श्रृंगों पर
किंतु अंत में धुँधलाया,
तलवारें सीधी कर देंगी, सब बल साथ मिटाएँगी
धब्बा जो उस पर आया।

माँ का गाना - वह मानव के सभी गीतों का आरंभ-बिंदु, उनका स्रोत है। प्रथम मुस्कान और अंतिम आँसू - ऐसा है माँ का गीत।

गीतों का जन्म दिल में होता है, फिर दिल उन्हें जबान तक पहुँचाता है, इसके बाद जबान उनको सभी लोगों के दिलों तक पहुँचाती है और सभी लोगों के दिल गीत को आनेवाली सदियों को सौंप देते हैं।

ऐसे गीतों की चर्चा करना भी यहाँ उचित ही होगा।

शामिल की माँ का गीत

'गीत-गानों में दो में से कोई एक चीज हो सकती है - या तो हँसी या आँसू। इस वक्त हम पहाड़ी लोगों को इन दोनों में से एक भी जरूरत नहीं। हम युद्धरत हैं। साहस को चाहे कैसी भी कठिन परीक्षाओं का सामना क्यों न करना पड़े, उसे न तो शिकवा-शिकायत करना चाहिए और न ही रोना-धोना चाहिए। दूसरी ओर, हमारे लिए खुश होने की भी कोई बात नहीं। हमारे दिल गम और दुख-दर्द से भरे हुए हैं। कल मैंने उन जवान लोगों को सजा दी जो मसजिद के करीब नाच और गा रहे थे। वे मूर्ख हैं। फिर कभी ऐसा देखूँगा तो फिर सजा दूँगा। अगर आप लोगों को कविता चाहिए तो कुरान पढ़िए। पैगंबर द्वारा रची गई कविताओं को रटिए। उनकी कविताएँ तो काअबा के फाटकों पर भी खुदी हुई हैं।'

तो इमाम शामिल ने इस तरह दागिस्तान में गाने की मनाही कर दी। गानेवाली औरत को झाड़ू से पीटा जाता और मर्द को कोड़े से। हुक्म तो हुक्म ठहरा। उन सालों में बहुत-से गायकों को कोड़े लगाए गए।

लेकिन क्या गीत-गाने को खामोश होने के लिए मजबूर किया जा सकता है? गायक को चुप रहने को विवश किया जा सकता है, किंतु गाने को कभी नहीं। हम कब्रों पर बहुत-से पत्थर लगे देखते हैं, वहाँ लोग दफन हैं। लेकिन गीत-गानों की कब्रें किसने देखी हैं?

एक कब्र के पत्थर पर मैंने यह पढ़ा - 'मर गया, मरते हैं, मरेंगे।' गीत के बारे में कहा जा सकता है - 'नहीं मरा, नहीं मरता है, नहीं मरेगा।' इस्लामी जिहाद के उस

जमाने में गीतों-गानों के साथ चाहे कैसा भी बुरा बर्ताव क्यों नहीं किया गया, फिर भी वे न केवल जिंदा रहे और हमारे वक्तों तक पहुँच गए, बल्कि भाग्य की विडंबना देखिए कि उन्हें 'शामिल के गाने' कहा जाता है।

हाँ तो शामिल की माँ के गाने के बारे में... उन दिनों में दुश्मन की फौजों ने अखूल्गो गाँव पर कब्जा कर लिया। इस लड़ाई ने अनेक वीरों को जन्म दिया, किंतु वे सभी वहाँ युद्ध-क्षेत्र में ही खेत रहे। उन घायलों ने; जो शत्रु के अधीन नहीं होना चाहते थे, अवार क्षेत्र की कोइसू नदी में कूदकर जान दे दी। दुश्मन के घेरे में आनेवालों में बच्चों सहित शामिल की बहन भी थी।

इस बहुत ही कठिन समय में थका-हारा और घायल इमाम शामिल अपने जन्म-गाँव गीमरी में आया। उसने अपने मुरीदों को घोड़े की लगामें पकड़ाई ही थीं कि उसे एक गाना सुनाई दिया। अधिक सही तौर पर कहा जाए तो विलाप सुनाई दिया -

शोक मनाओ, अश्रु बहाओ, गाँव-गाँव में तुम लोगो

तुम यश गाओ, उन वीरों का, रहे नहीं जो धरती पर,

अब अखूल्गो पर दुश्मन ने, कर अपना अधिकार लिया

रहा न कोई जीवित, सबने प्राण किए हैं न्योछावर।

इस गाने में आगे उन सभी वीरों के नाम गिनाए गए थे जिन्होंने वीरगति पाई थी। गीत के रचयिता ने सभी से यह अनुरोध किया था कि वे मातमी पोशाक पहन लें। यह भी कहा गया था कि ऐसे शोक-दुख के बारे में सुनकर सभी पहाड़ी चश्मे सूख गए थे। इस गाने में अल्लाह से यह प्रार्थना की गई थी कि वह पहाड़ी लोगों की रक्षा करे, इमाम शामिल को शक्ति दे और शामिल के आठ वर्षीय बेटे जमालुद्दीन की जान बचाए जो पीटर्सबर्ग में गोरे जार के बंधकों में से एक था।

शामिल एक पत्थर पर बैठ गया, उसने मेहँदी से रँगी हुई अपनी घनी दाढ़ी में उँगलियाँ खोंस लीं, अपने इर्द-गिर्द खड़े लोगों को पैनी नजर से देखा और फिर एक से पूछा -

'यूनुस, इस गाने में कितनी पंक्तियाँ हैं?'

'एक सौ दो पंक्तियाँ हैं, इमाम।'

'इस गाने के रचयिता को ढूँढ़ो और उसे एक सौ कोड़े लगाओ। दो कोड़े मेरे लिए छोड़ देना।'

मुरीद ने फौरन कोड़ा निकाल लिया।

'किसने यह गीत रचा है?'

सब खामोश रहे।

'मैं पूछता हूँ, किसने यह गीत रचा है?'

इसी वक्त शामिल की झुकी कमरवाली और दुख में डूबी माँ उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसके हाथ में झाड़ू थी।

'मेरे बेटे, यह गीत मैंने रचा है। हमारे घर में आज मातम है। तुम यह झाड़ू ले लो और अपना हुक्म पूरा करो।'

इमाम सोच में डूब गया। इसके बाद उसने माँ के हाथ से झाड़ू ले ली और दीवार का सहारा ले लिया।

'माँ, तुम घर चली जाओ।'

मुड़कर बेटे की ओर देखते हुए माँ घर की ओर चल दी। जैसे ही वह कूचे में गायब हुई, वैसे ही शामिल ने तलवार और कमरबंद तथा अपना चेर्केस्का उतार फेंका।

'माँ का पीटा नहीं जा सकता। उसके कुसूर की मुझे, उसके बेटे शामिल को सजा भुगतनी होगी।'

कमर तक नंगा होकर वह जमीन पर लेट गया और उसने अपने मुरीद से कहा -

'तुमने कोड़ा छिपा क्यों लिया? उसे निकालो और जो मैं कहता हूँ, वह करो।'

मुरीद दुविधा में पड़ गया। इमाम की त्योरी चढ़ गई और मुरीद तो दूसरों से यह ज्यादा अच्छी तरह जानता था कि इसका क्या नतीजा हो सकता है।

मुरीद अपने इमाम को कोड़े मारने लगा, लेकिन बहुत हल्के-हल्के हाथ से मानो सजा न देकर पुचकार रहा हो। शामिल अचानक उठकर खड़ा हुआ और चिल्लाया -

'मेरी जगह पर लेटो!'

मुरीद बेंच पर लेट गया। शामिल ने उसका कोड़ा लेकर तीन बार खूब जोर से उस पर बरसाया। मुरीद की पीठ पर लाल लकीरें उभर आईं।

'ऐसे मारने चाहिए कोड़े। समझ गए? अब शुरू करो और फिर से चालाकी करने की बात नहीं सोचना।'

मुरीद जोर-जोर से कोड़े मारने और गिनने लगा।

'अट्ठाईस, उनतीस...'

'नहीं, अभी तो सत्ताईस हुए हैं। बीच में से छोड़ो नहीं, छलाँगें नहीं लगाओ।'

मुरीद पसीने से तर हो रहा था और वह बाएँ हाथ से उसे पोंछता जाता था। इमाम शामिल की पीठ ऐसी पहाड़ी चोटी के समान लग रही थी जिस पर एक-दूसरे को काटते हुए अनेक रास्ते और पगडंडियाँ बनी हों अथवा टीले की उस ढाल जैसी जिसे घोड़ों के अनेक झुंडों ने रौंद डाला हो।

आखिर यह यातना समाप्त हुई। मुरीद हाँफता हुआ एक तरफ को हट गया। शामिल ने कपड़े पहने, हथियार बाँध लिए। लोगों को संबोधित करते हुए उसने कहा -

'पहाड़ी लोगो, हमें लड़ना है। हमारे पास गीत रचने और उन्हें गाने तथा किस्से-कहानियाँ सुनाने का वक्त नहीं है। यही ज्यादा अच्छा होगा कि दुश्मन हमारे बारे में गीत गाएँ। हमारी तलवारें उन्हें यह सिखा देंगी। आँसू पोंछ लो और तलवारों की धारें तेज करो। हमने अखूल्गो खो दिया, लेकिन दागिस्तान तो अभी कायम है, लड़ाई तो खत्म नहीं हुई।'

इस दिन के पच्चीस साल बाद तक दागिस्तान दुश्मन से लोहा लेता रहा, उस वक्त तक जबकि आखिरी लड़ाई खत्म नहीं हो गई और गुनीब दुश्मन के हाथों में नहीं चला गया।

गुनीब की लड़ाई, जो कई दिनों तक जारी रही, जब अपने पूरे जोर पर थी, तो एक दिन इमाम मसजिद में इबादत कर रहा था।

'ऐसी मुसीबत तो दागिस्तान ने पहले कभी नहीं जानी थी।' शामिल की पहली, बड़ी बीवी ने कहा।

'तुम गलती कर रही हो, पातीमात, दागिस्तान इससे पहले भी एक मुसीबत जान चुका है।'

'वह कौन-सी?'

'जब मैंने तुम्हारे जैसी बीवी के होते हुए भी एक और बीवी बना ली थी यानी शुआइनात से शादी कर ली थी।'

शामिल हँस पड़ा। इसी मसजिद में लेटे हुए उसके घायल मुरीद भी हँस पड़े। ऐसे लगा मानो इमाम को पहली बार हँसते सुनकर सारा दागिस्तान हँस पड़ा हो।

वह दागिस्तान की सबसे मुश्किल घड़ी में हँसा था, जब वह सब कुछ नष्ट हो रहा था जिसका उसने निर्माण किया था और जिस पर उसे गर्व था। वह अपने कैदी बनाए जाने के कुछ घंटे पहले हँसा था।

शामिल अचानक खामोश और संजीदा हो गया। अपनी तीनों बीवियों को उसने गुरीब के पत्थरों पर अपने करीब बिठा लिया और उनसे अनुरोध किया -

'मुझे वह गाना सुनाओ जो अल्लाह को प्यारी हो गई मेरी माँ ने रचा था।'

पातीमात, नापीसात और शुआइनात ने गाना शुरू किया -

शोक मनाओ, अश्रु बहाओ

गाँव-गाँव में तुम लोगो...

गाने की अंतिम ध्वनियाँ शांत हो रही थीं। आसमान में चाँद चमक रहा था। इमाम उदास हो गया...

'इसे फिर से गाओ।'

पातीमात, नापीसात और शुआइनात इसी गाने को फिर से गाने लगीं। इस बार यह गाना दूर तक पहुँच गया। इसे चाँदनी में चमकती और दुख में डूबी चट्टानों, बेदमजनूं और गुनीब के चिनारों ने सुना।

'इसे तीसरी बार गाओ!' शामिल ने ऊँची आवाज में कहा।

गाने की ध्वनियाँ और आगे पहुँच गईं। इसे अब गुनीब के करीब जलते गाँवों और दूर के पहाड़ों में खामोश सभी गाँवों तथा दिवंगत मुरीदों ने अपनी कब्रों में सुना। किंतु इसी समय पौ फट गई, फिर से घमासान लड़ाई होने लगी, आखिरी लड़ाई। जब हथियारों का शोर और गूँज खत्म हुई तो गाने की ध्वनियाँ नहीं रही थीं।

इमाम शामिल सम्मानित बंदी बन चुका था। उसके शस्त्रास्त्र और घोड़े लौटा दिए गए थे, उसकी बीवियाँ भी उसके पास ही छोड़ दी गई थीं, लेकिन उसका दागिस्तान उसके पास नहीं छोड़ा गया था, वे उसे कहीं दूर उत्तर में ले गए थे। दागिस्तान का तो एक गीत ही बाकी रह गया था जिसे उसकी बूढ़ी माँ ने कभी रचा था। शुरू में सम्मानित बंदी को उसकी तीन बीवियाँ यह गाना सुनाती रहीं। बाद में नापीसात और शुआइनात रह गईं। कुछ और अरसे बाद, दूरस्थ अरब

रेगिस्तान में आखिरी साँस लेते हुए शामिल को उसकी दोनों बड़ी बीवियों के बाद जिंदा रह जानेवाली उसकी अंतिम बीवी शुआइनात यह अंतिम गाना सुनाती रही।

जब शुआइनात की चर्चा चलती तो मेरे पिता जी कहते -

'शामिल के घर में वह सबसे ज्यादा खूबसूरत औरत थी। वह इमाम की आखिरी बीवी और उसका पहला प्यार थी। सभी पहाड़ी लोगों की तरह इमाम भी हमारे रस्म-रिवाजों के मुताबिक शादियाँ करता था। लेकिन यह बीवी तो संयोग से मिलनेवाला पुरस्कार थी। जब शामिल के एक बहुत ही बहादुर नायब अखबेर्दिल मुहम्मद ने मोज्दोक पर धावा बोला तो वह आर्मीनी सौदागर की बेटी, बहुत ही खूबसूरत आन्ना को वहाँ से उड़ा लाया। आन्ना की शादी होने के कुछ दिन पहले ही ऐसा हुआ था। मुरीद अपने इस शिकार को लबादे में लपेटे हुए इमाम के महल में ले गया। जब लबादा उतारा गया तो इमाम को दो बड़ी-बड़ी, नीली आँखों के सिवा, जो मानो दागिस्तान के नीले आकाश से बनाई गई हों, और कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। ये आँखें किसी भी तरह के डर-भय के बिना इमाम को एकटक देख रही थीं। वे पतले, नर्म चमड़े के बूट, इमाम के हथियार, उसकी दाढ़ी और आँखों को देख रही थीं। आर्मीनी युवती ने अपने सामने ऐसा आदमी देखा जिसे किसी तरह भी जवान या सुंदर नहीं कहा जा सकता था। लेकिन उसकी शक्ल-सूरत में कुछ तो ऐसा था जो अपनी तरफ खींचता था, आकर्षित करता था। उसके व्यक्तित्व में रोब-दाब और शक्ति के साथ-साथ कोमलता तथा उदारता की भी अनुभूति होती थी। इन दोनों की आँखें मिलीं। कठोर सैनिक ने अपने दिल में कुछ कमजोरी महसूस की। वह ऐसी कमजोरी का आदी नहीं था और इसलिए डर गया। इसी वक्त उसकी रोबीली आवाज गूँज उठी -

'इस लड़की को फौरन वहीं छोड़ आओ, जहाँ से लाए हो।'

'किसलिए इमाम? इतनी हसीन लड़की है। इसमें तो कहीं कोई कमी ही नहीं है।'

'मैं जानता हूँ कि किसलिए ऐसा करना चाहिए और तुम्हारा काम तो घोड़े पर जीन कसना है।'

'इसे वापस लौटाने के बदले में क्या लिया जाए?'

'बदले में कुछ भी लिए बिना ही लौटा देना।'

अखबेर्दिल मुहम्मद को बड़ी हैरानी हुई। शामिल ने बदले में कुछ लिए बिना कभी कोई कैदी रिहा नहीं किया था। लेकिन वह इमाम के सामने एतराज करने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

अपनी इस कैदी से उसने कहा -

'मैं अभी तुम्हें तुम्हारे माँ-बाप के पास वापस छोड़ आता हूँ। उन्हें बहुत खुशी होगी। तुम उनसे कह देना कि शामिल डाकू-लुटेरा नहीं है।'

जब मुरीद के उक्त शब्दों का अनुवाद किया गया तो आन्ना ने हैरानी से शामिल की तरफ देखा। सभी ने यह समझा कि उसे अपनी इस खुशकिस्मती पर यकीन नहीं हो रहा है।

उससे दूसरी बार यह कहा गया -

'इमाम को उसका बहुत अफसोस है, जो हुआ है। वह बदले में कुछ भी लिए बिना तुम्हें मुक्त कर रहा है।'

तब खूबसूरत आन्ना ने शामिल को संबोधित करते हुए कहा -

'ओ, दागिस्तान के रहनुमा। मुझे तो कोई भी भगाकर नहीं लाया है। मैं तो तुम्हारी बंदी बनने के लिए खुद ही यहाँ चली आई हूँ।'

'यह कैसे, किसलिए?'

'ताकि उस सूरमा को अपनी आँखों से देख सकूँ जिसकी सारा काकेशिया, सारी दुनिया चर्चा करती है। तुम्हारे मन में जो भी आए, तुम वह कर सकते हो, लेकिन अपनी मर्जी से चुनी हुई इस कैद को मैं किसी भी हालत में नहीं बदलूँगी। मैं यहाँ से कहीं भी नहीं जाऊँगी।'

'नहीं, तुम्हारा यहाँ से आना ही ज्यादा अच्छा होगा।'

'यह तुम कह रहे हो, यह शामिल कह रहा है जिसे सभी बहादुर मर्द मानते हैं।'

'ऐसा अल्लाह कह रहा है।'

'खुदा ऐसा नहीं कह सकता।'

'मेरा अल्लाह और तुम्हारा खुदा अलग-अलग जबान बोलते हैं।'

'दागिस्तान के रहनुमा, आज से मैं तुम्हारी बंदी, तुम्हारी दासी हूँ। आज से तुम्हारा अल्लाह ही मेरा खुदा होगा। बचपन में ही मैंने तुम्हारे बारे में गाने सुने थे। उनमें से एक मुझे याद रह गया है। उसने मेरे दिल में घर कर लिया है।'

आर्मीनी युवती अचानक किसी की भी समझ में न आनेवाली भाषा में एक प्यारा गाना गाने लगी। ऊँचे पर्वतों के पीछे से आसमान में चाँद निकल आया। और आर्मीनिया की बेटी अभी भी शामिल के बारे में गाना गाती जा रही थी।

मुरीद अंदर आया।

'इमाम, घोड़े पर जीन कसा जा चुका है। मैं इस लड़की को ले जा सकता हूँ?'

'इसे यहीं रहने दो। इसे यह गाना अंत तक गाना होगा, बेशक इसके लिए उसे पूरी जिंदगी ही दरकार हो।'

कुछ दिनों बाद दागिस्तान में दबी-दबी कानाफूसी होने लगी। सड़क पर एक आदमी दूसरे के कान में, एक गाँव के लोग दूसरे गाँव के लोगों के कानों में फुसफुसाते -

'सुना तुमने? शामिल ने एक और बीवी बना ली है।'

'धर्म-ईमान को माननेवाले इमाम ने एक आर्मीनी लड़की से शादी कर ली है।'

'एक काफिर लड़की अब इमाम की पगड़ी धोती है। प्रार्थना की जगह वह उसे गाने सुनाती है।'

सारे दागिस्तान में यह कानाफूसी होने लगी। लेकिन ये अफवाहें सच्ची थीं। इमाम ने तीसरी बीवी से शादी कर ली। आन्ना ने इस्लाम कबूल कर लिया, पहाड़ी ढंग से दुपट्टा ओढ़ लिया और अवार जाति का नाम ग्रहण करके आन्ना से शुआइनात बन गई। इमाम को वही खाना सबसे ज्यादा लजीज लगता था जो शुआइनात पकाती थी, वही बिस्तर सबसे ज्यादा नर्म लगता था जो वह बिछाती थी। उसी का कमरा सबसे ज्यादा रोशन और सुखद लगता था, उसी की बोली सबसे अधिक प्यारी लगती थी। इमाम का कठोर चेहरा नर्म, स्नेहपूर्ण और दयालु हो गया। मोज्दोक से अनेक बार शुआइनात के माता-पिता द्वारा भेजे गए संदेशवाहक यह अनुरोध लेकर शामिल के पास आए कि वह बदले में कोई भी कीमत लेकर, जो खुद ही तय करे, उसे वापस घर भेज दे। शामिल यह सब शुआइनात को बताता, लेकिन उसका एक ही जवाब होता -

'इमाम, तुम मेरे पति हो। बेशक मेरी गर्दन काट डालो, लेकिन मैं घर नहीं जाऊँगी।'

इमाम मोज्दोक से आनेवाले संदेशवाहकों को बीवी का यही जवाब सुना देता। एक बार शुआइनात का सगा भाई इमाम के पास आया। इमाम ने उसका

प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार किया, उसे शुआइनात से मिलने और उससे बातचीत करने की इजाजत दे दी। बहन-भाई दो घंटे तक एकांत में रहे। भाई ने बहन से पिता के दुख और माँ के आँसुओं की चर्चा की, यह कहा कि घर पर उसकी जिंदगी कितनी खुशी भरी होगी, उस बदकिस्मत, जवान वर का जिक्र किया जो अभी तक उससे मुहब्बत करता था।

सब बेसूद रहा। शुआइनात ने इनकार कर दिया और भाई अपना-सा मुँह लेकर वापस चला गया।

इमाम की पहली बीवी पातीमात ने अच्छा-सा मौका पाकर शामिल से कहा -

'इमाम, चारों तरफ खून बह रहा है, लोग मर रहे हैं। तुम प्रार्थना की तरह शुआइनात के गाने कैसे सुन सकते हो? तुमने तो दागिस्तान में गाने की मनाही कर दी है। तुमने तो अपनी माँ के गाने से भी इनकार कर दिया था।'

'पातीमात,' इमाम ने जवाब दिया, 'शुआइनात वे गाने गाती है जो हमारे दुश्मन हमारे बारे में गाते हैं। अगर मैं आँसुओं से भरे गानों के प्रचार की इजाजत दे देता तो वे दुश्मन तक पहुँच जाते और दुश्मन हमारे बारे में दूसरे ही ढंग से सोचने लगता। तब मुझे उन माताओं से आँखें मिलाते हुए शर्म आती जिनके बेटे मेरे साथ जंग के मैदानों में जाकर खेत रहे हैं। लेकिन दुश्मन हमारे बारे में बेशक गाने गाते रहें। मैं खुशी से उन्हें सुनूँगा और उन्हें सुनने के लिए दूसरों को भी अपने पास बुला लूँगा।'

पातीमात के दुख का कारण यह नहीं था कि इमाम जवान बीवी के गाने सुनता था, बल्कि यह कि अपनी पहली दोनों बीवियों को वह पहले की तरह अपने दुख-सुख का भागी नहीं बनाता था। जल्द ही निम्न घटना घट गई।

एक बार इमाम को यह सूचना दी गई कि रूस का गोरा जार उसके बेटे जमालुद्दीन को, जो उस वक्त पीटर्सबर्ग के सैनिक विद्यालय में शिक्षा पा रहा था, शुआइनात के बदले में लौटाने को तैयार है। ऐसा करना तो बड़ा मुश्किल था। इमाम ने इनकार कर दिया। इस तरह की संभावना के बारे में शामिल ने किसी को नहीं बताया, लेकिन यह खबर किसी तरह पातीमात तक पहुँच ही गई।

एक दिन वह अपनी जवान प्रतिद्वंद्विनी के पास गई।

'शुआइनात, मुझे यह वचन देती हो कि अल्लाह के सिवा हमारी बातचीत और कोई नहीं जान पाएगा?'

'वचन देती हूँ।'

'तुम तो मुझसे कहीं बेहतर यह जानती हो कि पिछले कुछ अरसे से शामिल को नींद नहीं आती है, वह बहुत परेशान और व्यथित रहता है।'

'हाँ, मैं यह देख रही हूँ, पातीमात, देख रही हूँ।'

'तुम्हें मालूम है कि ऐसा क्यों है?'

'मुझे मालूम नहीं।'

'मुझे मालूम है। अगर तुम चाहो तो उसका इलाज कर सकती हो।'

'तो वह इलाज मुझे बताओ, मुझे बताओ, मेरी प्यारी।'

'तुमने मेरे और शामिल के बेटे जमालुद्दीन के बारे में तो जरूर सुना होगा?'

'हाँ, सुना है।'

'उसका यहाँ लौट आना तुम पर निर्भर करता है। तुम अपनी माँ को याद करती रहती हो। मैं भी माँ हूँ। मैंने दस साल से अपने बेटे को नहीं देखा है। मदद करो! मेरी खातिर नहीं, शामिल की खातिर ही ऐसा करो।'

'शामिल की खातिर मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ लेकिन कैसे मदद करूँ?'

'अगर तुम अपने माँ-बाप के यहाँ वापस चली जाओ तो जार हमें हमारा बेटा जमालुद्दीन लौटा देगा। मुझे मेरा बेटा लौटा दो। इसके लिए अल्लाह तुम्हें जन्नत में जगह देगा। मैं तुम्हारी मिन्नत करती हूँ।'

शुआइनात की आँखों में आँसू चमक उठे।

'सब कुछ करूँगी, पातीमात, सब कुछ करूँगी,' उसने कहा और चली गई।

अपने कमरे में जाकर वह कालीन पर गिर गई। शुरू में देर तक रोती रही, फिर दर्द भरा गीत गाने लगी। शामिल घर आया।

'क्या माजरा है, शुआइनात?'

'इमाम, मुझे मेरे माता-पिता के यहाँ जाने की इजाजत दे दो।'

'यह तुम क्या कह रही हो?'

'मुझे उनके पास लौटना ही चाहिए।'

'किसलिए? कैसी बात कह रही हो? तुमने तो खुद ही इनकार किया था और अब मैं तुम्हें इसकी इजाजत नहीं दे सकता।'

'शामिल, मुझे मेरे घर भेज दो। दूसरा कोई चारा नहीं है।'

'लगता है कि तुम बीमार हो।'

'मैं चाहती हूँ कि तुम जमालुद्दीन से मिल सको।'

'ओह, तो यह मामला है! तुम कहीं नहीं जाओगी, शुआइनात। अगर मैं उसे तुम्हारे बदले में ही हासिल कर सकता हूँ तो मैं हमेशा के लिए उसके बिना रहना बेहतर समझूँगा। अगर वह मेरा बेटा है तो खुद ही अपनी माँ, अपने वतन तक पहुँचने की राह खोज लेगा। मैं तुम्हारे बनाए रास्ते पर अपने बेटे के पास नहीं जाऊँगा। मैं उसके पास पहुँचने का ऐसा रास्ता खोजूँगा जो मेरी और उसकी शान के लायक होगा। यही ज्यादा अच्छा कि तुम मेरा घोड़ा ले आओ।'

शुआइनात फाटक से इमाम का घोड़ा ले आई। उसने खूँटी से चाबुक उतारकर उसे दे दिया।

शामिल के सभी अभियानों, उसकी सभी यात्राओं में - वे चाहे दागिस्तान, पीटर्सबर्ग, कालूगा या अरब धरती से संबंधित थीं - उसकी बीवी शुआइनात इमाम की जिंदगी की आखिरी घड़ी तक हमेशा उसके साथ रही। आज भी, हमारे जमाने में भी इस अद्भुत औरत के बारे में किस्से-कहानियाँ सुनाए जाते हैं। आखिर तो उसने इस चीज में भी मदद की कि इमाम का बेटा जमालुद्दीन उसके पास लौट आया। लेकिन यह एक अलग कहानी है।

जमालुद्दीन का गाना

आठ वर्ष की उम्र में बंधक बनाया गया जमालुद्दीन चौबीस वर्षीय जवान के रूप में दागिस्तान लौटा। बेटे को वापस लाने के लिए इमाम शामिल को बहुत-सी शक्ति लगानी पड़ी, बहुत सब्र और चालाकी से काम लेना पड़ा। शामिल ने जार के सामने बंदी बनाए गए अनेक रूसी सैनिकों को बेटे के बदले में देने के प्रस्ताव पेश किए, लेकिन जार राजी नहीं हुआ। जार को दागिस्तान के किशोर की पीटर्सबर्ग में जरूरत थी। उसे मौत के घाट उतार देने की धमकी देकर जार शामिल को व्यर्थ की लड़ाई खत्म करने को मजबूर करना चाहता था। इमाम ने इन धमकियों की कोई परवाह नहीं की। बेटे की तरफ से (शायद खुद बेटे ने) इमाम को यह लिखा कि जार बहुत शक्तिशाली है और उस पर जीत हासिल करने की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। दागिस्तान में खून बह रहा है और जार के विरुद्ध जूझते रहने से हानि तथा दुख-दर्द के सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा।

हठी इमाम ने किसी भी बात पर कान नहीं दिया।

ऐसा हुआ कि कुछ मुरीदों के साथ हाजी-मुरात रूसियों से जा मिला। किंतु अपने परिवार-माँ, बीवी, बहन और बेटे को उसने पहाड़ों में ही छोड़ दिया। जाहिर है कि वे सब शामिल के हाथों में आ गए। 'अगर तुम वापस नहीं आओगे,' शामिल ने हाजी-मुरात को लिखा, 'तो तुम्हारे बेटे बूलिच का सिर काट डालूँगा और तुम्हारी माँ, बहन तथा बीवी को उनकी मिट्टी पलीद करने के लिए फौजियों के हवाले कर दूँगा।'

उधर हाजी-मुरात भी अपने परिवार को बचाने के रास्ते ढूँढ़ रहा था और इस तरह जिद्दी इमाम के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपने को आजाद कर लेना चाहता था। उन दिनों में उसने यह कहा था - 'मैं रस्सी से बँधा हुआ हूँ और रस्सी का सिरा शामिल के हाथ में है।' बदले में धन-दौलत देकर परिवार छुड़ाने का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता था। शामिल को जब यह मालूम हुआ कि उसका भूतपूर्व मुरीद धन-दौलत देकर अपना परिवार छुड़ा लेना चाहता है तो उसने कहा - 'लगता है कि और सब चीजों के अलावा, हाजी-मुरात का दिमाग भी चल निकला है।'

लेकिन अगर शामिल के हाथों में हाजी-मुरात को बाँधनेवाली रस्सी का सिरा था तो हाजी-मुरात के हाथों में वह धागा था जो सीधा शामिल के दिल तक पहुँचता था। यह धागा जमालुद्दीन था। हाजी-मुरात ने वोरोंत्सोव से अनुरोध किया - 'जार से कहिए कि वह जमालुद्दीन को उसके पिता को लौटा दें। तब यह मुमकिन है कि शामिल मेरे परिवार के लोगों को आजाद कर दे। जब तक मेरा परिवार शामिल के हाथों में है, मेरे लिए उसके विरुद्ध लड़ने का मतलब है - अपने ही हाथों से अपनी माँ, बेटे और बीवी यानी पूरे कुनबे को कत्ल कर डालना।'

वोरोंत्सोव ने जार को यह सब कुछ बताया और जार इसके लिए राजी हो गया। शामिल को यह लिखा गया - 'अगर तुम हाजी-मुरात के परिवार को छोड़ दोगे तुम्हें तुम्हारा बेटा मिल जाएगा।'

शामिल के सामने अब यह यातनापूर्ण चुनाव था। तीन रातों तक न तो वह खुद और न उसका परिवार ही सोया। चौथे दिन इमाम ने हाजी-मुरात के बेटे बुलिच को अपने पास बुलवाया।

'तुम हाजी-मुरात के बेटे हो?'

'हाँ, मैं हाजी-मुरात का बेटा हूँ, इमाम।'

'तुम जानते हो कि उसने क्या किया है?'

'जानता हूँ, इमाम।'

'इसके बारे में तुम क्या कहोगे?'

'इसके बारे में क्या कहा जा सकता है?'

'उससे मिलना चाहते हो?'

'बेहद चाहता हूँ।'

'मैं तुम्हें तुम्हारी माँ, दारी, पूरे परिवार के साथ उसके पास जाने को आजाद करता हूँ।'

'नहीं, मैं पिता के पास नहीं जा सकता। मेरा स्थान दागिस्तान में है। लेकिन वहाँ तो दागिस्तान नहीं है।'

'तुम्हें जाना चाहिए, बूलिच। यह मेरा हुक्म है।'

'मैं नहीं जाऊँगा, इमाम! यही बेहतर होगा कि आप यहीं और इसी वक्त मेरी जान ले लें।'

'मैं देख रहा हूँ कि अपने बाप की तरह तुम भी हुक्म मानना नहीं जानते।'

'हम सब आपका हुक्म मानने को तैयार हैं, इमाम। लेकिन मुझसे यह नहीं कहिए कि में वहाँ जाऊँ। यही ज्यादा अच्छा होगा कि आप मुझे जंग में भेज दें। मैं अपनी जान की परवाह नहीं करूँगा।'

'पिता के खिलाफ लड़ने को?'

'दुश्मनों के खिलाफ।'

उस दिन शामिल ने अपना एक सबसे अच्छा खंजर बूलिच को भेंट किया।

'अपने पिता की तरह ही इसके इस्तेमाल में कमाल हासिल करो। लेकिन हमेशा यह ध्यान रखना कि इससे कि पर वार करना है।'

हाजी-मुरात की सौदेबाजी कामयाब नहीं हुई। उसका बेटा उसके पास नहीं गया। जमालुद्दीन भी इमाम के पास वापस नहीं आया।

लेकिन इसी बीच शामिल ने अपने दूसरे उपाय किए। उसने अपने दूसरे बेटे, काजी-मुहम्मद को जार्जियाई रियासत त्सिनानदाली पर धावा बोलने को भेज दिया। इसके फलस्वरूप प्रिंसेस चावचावाद्जे, प्रिंसेस ओर्बेलियानी और इनके साथ उनकी फ्रांसीसी शिक्षिका भी बंदी बना ली गईं। नीना ग्रिबोयेदोवा की बहन येकातेरीना चावचावाद्जे को मुरीदों ने पेड़ के कोटर में छिपा पाया और उन्होंने उसे वहाँ से निकालकर कैदी बना लिया।

अब तो शामिल जार को अपनी शर्तें मानने के लिए मजबूर कर सकता था।

कारण कि जार हर हालत में जार्जियाई प्रिंसेसों को बचाना चाहेगा।

'अपने बेटे के बदले में ही प्रिंसेसों को लौटाऊँगा,' शामिल ने अपना आखिरी फैसला सुना दिया।

तो वह दिन आया। चौड़ी नदी बह रही थी। उसके तट पर बंदी बनाकर लाई गई प्रिंसेसें अपने आजाद होने की राह देख रही थीं। दूसरे तट पर रूसी फौजियों के साथ इमाम का बेटा सामने आया। शामिल भी अपने घोड़े पर सवार होकर नदी-तट पर आ गया। वह दूसरे तट पर अन्य लोगों के बीच अपने बेटे को देखने-पहचानने की कोशिश कर रहा था। उन्होंने इतने बरसों तक एक-दूसरे को देखा जो नहीं था। क्या बाप और बेटा अब एक-दूसरे को पहचान सकेंगे?

इमाम को सुनहरी फीतियोंवाला फौजी ओवरकोट पहने हुए एक सुघड़-सुडौल रूसी फौजी अफसर दिखाया गया। यह अफसर दूसरे रूसी अफसरों से बातचीत कर रहा था, उसने उनसे विदा ली और उन्हें गले लगाया। इसके बाद वह एक ओर को अलग खड़ी हुई एक युवती के पास गया और उसने उसका हाथ चूमा। जब-तब वह सफेद घोड़े पर सवार अपने पिता की तरफ भी देख लेता था।

'क्या यही है मेरा बेटा?' इमाम ने इस अफसर को टकटकी बाँधकर देखते और उसकी किसी भी गतिविधि को नजर से न चूकने देने की कोशिश करते हुए पूछा।

'हाँ, यही है जमालुद्दीन।'

'चेर्केस्का और हमारे हथियार उस तट पर ले जाकर उसे दे दो। इस क्षण से वह जार की फौज का अफसर नहीं, बल्कि दागिस्तान का सैनिक है। जो कपड़े वह इस वक्त पहने है उन्हें नदी में फेंक दो। वरना मैं बेटे को अपने करीब नहीं आने दूँगा।'

जमालुद्दीन ने पिता की इच्छानुसार अपने कपड़े बदल लिए। पहाड़ी चेर्केस्का के ऊपर उसने पहाड़ी लोगों के हथियार बाँध लिए। लेकिन चेर्केस्का और समूर की बड़ी टोपी के नीचे जमालुद्दीन का दिल तथा सिर तो जहाँ के तहाँ रह गए थे और उन्हें तो किसी तरह भी बदलना मुमकिन नहीं था।

आखिर वह नदी पार करके अपने पिता के पास आया।

'मेरा प्यारा बेटा!'

'मेरे अब्बा!'

जमालुद्दीन को घोड़ा दे दिया गया। वेदेनो तक के पूरे रास्ते में बाप और बेटा साथ-साथ सवारी करते रहे। इमाम शामिल कभी-कभी पूछता -

'जमालुद्दीन यह बताओ, तुम्हें यह जगहें याद हैं? तुम इन चट्टानों को भूल तो नहीं गए? तुम्हें हमारे गीमरी गाँव की याद है? अखूल्गो याद है?'

'अब्बा, तब तो मैं बहुत छोटा था।'

'यह बताओ कि तुमने दागिस्तान के लिए कभी एक बार भी अल्लाह के दरबार में इबादत की? तुम हमारी इबादत तो नहीं भूल गए, कुरान की नज्में तो नहीं भूल गए?'

'वहाँ, जहाँ मैं रहता था, कुरान नहीं था, जमालुद्दीन ने मन मारकर जवाब दिया।

'क्या तुमने एक बार भी सर्वशक्तिमान अल्लाह के सामने सिर नहीं झुकाया? उसकी इबादत नहीं की? रोजे नहीं रखे? नमाज अदा नहीं की?'

'अब्बा, हमें कुछ बातें करनी चाहिए।'

लेकिन शामिल ने कोई बात न करके घोड़े को एड़ लगा दी।

अगले दिन इमाम ने बेटे को अपने पास बुलवा भेजा।

'देखो, जमालुद्दीन पहाड़ों के पीछे से सूरज ऊपर उठ रहा है। बहुत खूबसूरत नजारा है न?'

'हाँ खूबसूरत है, अब्बा।'

'तुम इन पहाड़ों, इस सूरज के लिए अपनी जिंदगी कुर्बान करने को तैयार हो?'

'अब्बा, हमें कुछ बातें करनी चाहिए।'

'तो कर लो।'

'अब्बा, जार महान है, बहुत अमीर है, बड़ा ताकतवार है। हमें इन पहाड़ों की गरीबी, खस्ताहाली और जहालत की रक्षा करने की क्या जरूरत है? रूस में महान साहित्य, महान संगीत और महान भाषा है। ये सब हमारे हो जाएँगे। रूस के साथ मिल जाने पर दागिस्तान का भला ही होगा। आँखें खोलकर सचाई को देखने, हथियार फेंकने और घावों को भरने का वक्त आ गया है। यकीन मानिए कि मैं दागिस्तान को आपसे कुछ कम प्यार नहीं करता हूँ...'

'जमालुद्दीन...!'

'अब्बा जान, दागिस्तान में एक भी तो ऐसा गाँव नहीं है जो कम से कम एक बार न जला हो। एक भी तो ऐसी चट्टान नहीं है जो घायल न हुई हो। एक भी तो

ऐसा पत्थर नहीं है जो खून से न रंगा गया हो।'

'मैं देख रहा हूँ कि तुम न तो इन घायल चट्टानों की हिफाजत करने को तैयार हो और न ऐसा करने के लायक ही हो।'

'अब्बा जान!'

'मैं तुम्हारा अब्बा नहीं हूँ। और तुम मेरे बेटे साबित नहीं हुए। तुम्हारे लफ्ज सुनकर तो मुर्दों को कब्रों से निकल आना चाहिए। लेकिन जब मैं तुम्हारे मुँह से यह सब कुछ सुनता हूँ तो मैं जिंदा आदमी क्या करूँ? देखते हो, चट्टानें कैसे काली हो गई हैं?'

शामिल ने अपने सबसे वफादार लोगों और घरवालों को बुलवा भेजा।

'लोगो, मैं आपको वह बताना चाहता हूँ जो मेरा बेटा कहता है। वह कहता है कि गोरा जार महान है, कि दुश्मन बहुत ताकतवर है, कि जार का राज्य बहुत बड़ा है और हम बेकार ही उसके खिलाफ लड़ रहे हैं। उसका कहना है कि हमें अपने हथियार फेंककर बड़ी नम्रता से जार के सामने अपना सिर झुका देना चाहिए। मैं यह मानता था कि जो आदमी न केवल ऐसा कहने, बल्कि ऐसा सोचने की भी हिम्मत करेगा, मैं उसे एक घंटे तक भी दागिस्तान में नहीं रहने दूँगा। आज ये शब्द सुनाई दे रहे हैं और वह भी कहाँ? हमारे घर में। कौन कह रहा है ये शब्द? मेरा बेटा! इसके साथ, ऐसे आदमी के साथ क्या किया जाए जिसे जार ने दागिस्तान और मुझे बेइज्जत करने के लिए यहाँ भेजा है? आप लोग बहुत अच्छी तरह से यह जानते हैं कि दुश्मन की संगीनों ने कितनी बार दागिस्तान और खुद मेरी छाती को भी जख्मी किया है। लेकिन जो संगीन मैंने खुद बनाई थी, जार ने उसे तेज करके उससे मेरे ही दिल को निशाना बनाया है। बताइए, अब क्या किया जाए?'

इमाम के नजदीकी लोगों ने बड़े दुखी मन से उसके ये शब्द सुने। सिर्फ माँ ही इस सब पर यकीन करने को तैयार नहीं थी।

शामिल ने जमालुद्दीन को संबोधित करते हुए कहा -

'ओ, पहाड़ों के दुश्मन! तुम वहाँ रहोगे, जहाँ से मुझे तुम्हारी आवाज सुनाई न दे। न तो अब तुम्हारा कोई बाप है, न दागिस्तान है। मैंने जार्जियाई प्रिंसेसों से तुम्हें बदल लिया, लेकिन तुम्हें किससे बदलूँ? मैं तुम्हारा क्या करूँ?'

'अपने बेटे के साथ आप जो भी चाहें, वही कर सकते हैं। बेशक जान ले लीजिए, लेकिन पहले मेरी बात सुन लीजिए।'

'रहने दो अपनी बात। मैं हमेशा अल्लाह की बात सुनता रहा हूँ, लेकिन आज उसे भी नहीं सुन रहा हूँ। अल्लाह कह रहा है - 'इस दुश्मन को कत्ल कर डालो!' मगर मैं उसे जवाब देता हूँ कि यह दुश्मन नहीं, गुमराह हो जानेवाला बेटा है। मैं उससे कहता हूँ कि मुझमें अपने हाथ की उँगली काटने की हिम्मत नहीं है। इसलिए तुम जिंदा रहो, लेकिन खंजर उतार दो। हथियार की उसे जरूरत होती है जो दुश्मन से लोहा लेने को तैयार हो।'

शामिल ने अपने बेटे को दूर के एक गाँव में भेज दिया। जमालुद्दीन वहाँ पेड़ से अलग हुए पत्ते की तरह रहता था। अवसादपूर्ण विचारों से क्षीण होने, बुरी खुराक और ऐसे जलवायु के कारण, जिसका वह आदी नहीं था, जमालुद्दीन को तपेदिक हो गया। इमाम दुश्मन से मोरचा ले रहा था और उधर बेटे के लिए साँस लेना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया गया था। इसी वक्त इमाम से चोरी-छिपे जमालुद्दीन की माँ, पातीमात, उसके पास गई। वह रोटी से बनाए गए खिलौने अपने साथ ले गई थी। ऐसे एक खिलौने की शक्ल खंजर जैसी थी, दूसरे की उकाब और तीसरे की तलवार जैसी। इसके बाद उसने अहाते से उपले लाकर आग जलाई। पातीमात ने रोटी के खिलौने गर्म किए, अपने घुटनों पर रगड़कर उनकी राख साफ की और उनमें से एक खिलौने को तोड़कर जमालुद्दीन को ऐसे दिया मानो वह बच्चा हो।

'जब माँ का अपना दूध नहीं उतरता तो वह बच्चे को पहाड़ी बकरी के दूध का आदी बनाने की कोशिश करती है,' पातीमात ने कहा।

जमालुद्दीन हैरत से माँ को देख रहा था। उसे लगा मानो वह उसे पहली बार देख रहा हो। अचानक वह जवान और सुंदर नारी के रूप में उसे याद हो आई। बचपन में वह उसे ऐसी ही रोटियाँ खिलाया करती थी। घोड़े की शक्लवाले पालने के करीब बैठकर वह उसे शेरनी का दूध पिलाकर पाले-पोसे गए तरुण के बारे में गाना सुनाया करती थी। उसके सिरहाने, छोटे-से तकिये के नीचे लकड़ी का छोटा-सा खंजर रखा रहता था।

'अम्माँ!' जमालुद्दीन बचपन के वक्त की तरह ही चिल्ला उठा।

'जमाल, मेरे बेटे, तुम फिर से मेरा बेटा बन जाओ!' पातीमात ने कहा।

जमालुद्दीन ने अपनी माँ को पहचान लिया। चूल्हे की बुझती आग के करीब बैठकर और बीमार बेटे के ऊपर झुककर माँ उसे उसी तरह से लोरियाँ सुना रही थी, जिस तरह उसके जीवन की उषा बेला में।

बेटा अपने जिस बाप को समझ नहीं पाया था, वह मुरीदों के साथ कहीं दूर मोरचे पर जूझ रहा था। और उसकी बीवी पातीमात आखिरी साँसें गिनते हुए अपने पहलौठे के लिए चिर विदा-गान गा रही थी।

जमालुद्दीन को लगा कि कहीं नजदीक ही चट्टानों के बीच कोई दरिया कराह रहा है। उसे ऐसा आभास हुआ कि दरवाजे के पास कटी और सूखी घास पर बछड़ा लेटा हुआ है।

उसे गीमरी में अपने घर, अपने पिता, अपने पहले घोड़े की याद आ गई। माँ खुशमिजाज डिंगीर-डंगारचू के बारे में गाना गा रही थी जो बारिश की धार के सहारे आकाश में चढ़ गया था।

- 'कहाँ गए थे यह बतलाओ, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'वन में जरा गया था मैं, तो, डिंगीर-डंगारचू।'
- 'तुम क्या करने वहाँ गए थे, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'लकड़ी लाने वहाँ गया था डिंगीर-डंगारचू।'
- 'तुम्हें जरूरत क्या लकड़ी की, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'ताकि बनाऊँ मैं घर अपना, डिंगीर-डंगारचू।'
- 'तुम्हें जरूरत है क्या घर की, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'शादी करना चाह रहा मैं, डिंगीर-डंगारचू।'
- 'चाह रहा क्यों शादी करना, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'ताकि जन्म दूँ मैं वीरों की, डिंगीर-डंगारचू।'
- 'तुम्हें जरूरत क्या वीरों की, डिंगीर-डंगारचू?'
- 'ताकि गर्व हो जग को उन पर, डिंगीर-डंगारचू?'

जमालुद्दीन की नजरों के सामने उसके अपने, प्यारे पर्वत उभर आए। हिम पिघल रहा है, जल-धाराओं में कंकड़-पत्थर शोर मचा रहे हैं। पर्वतमाला पर बादल रेंग रहे हैं। पराये क्षेत्र में रहते हुए वह जिस दागिस्तान को भूल गया था, उसने उसे सभी ओर से घेर लिया। और माँ गाती जा रही थी, गाती जा रही थी। उनमें वे गीत भी थे जो शिशु के जन्म पर गाए जाते हैं और वे भी जो बेटों के मरने पर गाए जाते हैं। उनमें यह भी कहा गया था कि बेटों के मर जाने पर उनके बारे में गीत बने रहते हैं। माँ गा रही थी शामिल के संबंध में, हाजी-मुरात, काजी-मुहम्मद, हमजात-बेक, बहादुर खोचबार, पार्तू-पातीमात, नादिरशाह के छक्के छुड़ाए जाने और उन बहादुरों के बारे में जो युद्ध के अभियानों से वापस नहीं आए।

चूल्हे में आग बुझती जा रही थी। दागिस्तान युद्ध की ज्वालाओं में जल रहा था। जमालुद्दीन की आँखों में अब ये दोनों लपटें प्रतिबिंबित हो रही थीं। माँ के गीत ने उसे उद्वेलित कर दिया। बेटे के दिल में दागिस्तान के प्रति प्रेम ने पलक खोल ली, वह भड़क उठा। वह उसे पिता की बगल में खड़ा होने के लिए पुकारने लगा।

'माँ, मैं तो अभी दागिस्तान में लौटा हूँ। अपने अब्बा से अभी मिला हूँ। मुझे हथियार ला दो। मैं - शामिल का बेटा हूँ। मुझे घर के चूल्हे के पास दम नहीं तोड़ना चाहिए। मुझे वहाँ जाने दो, जहाँ गोलियाँ चलती है।'

तो इस तरह माँ के गीत ने वह कर दिखाया जो कुरान और पिता के हुक्म नहीं कर पाए थे।

लेकिन यह तो शोले के भड़क उठने के समान था। माँ की लोरियाँ और गाने जमालुद्दीन के दिल में बसे हुए दूसरे गानों को मूक नहीं बना सकते थे। वह पीटर्सबर्ग को नहीं भूल सकता था, जहाँ बड़ा हुआ था। वह दागिस्तान के पहाड़ी लोगों की समझ में न आनेवाली भाषा और उनकी समझ में न आनेवाली पंक्तियाँ सुनाता था -

प्यार तुम्हें बेहद करता हूँ, ओ, तुम पीटर की रचना
प्यारा मुझको रूप तुम्हारा, सुघड़, धीर-गंभीर बना,
नेवा की संयत धारा भी
प्यारी पत्थर तट-कारा भी,
प्यारे लोहे के जंगले भी, जिन पर नक्काशी सुंदर,
चिंतन में डूबी रातें भी
पारदर्श झुटपुटे शाम के
तम-प्रकाश की घातें भी,
और चाँद के बिना चमक जो
छाई रहती है नभ पर,
अपने कमरे में मैं इससे बिना दीप के भी पढ़ता
ऊँचे-ऊँचे भवन ऊँघते, सड़कें निर्जन, नीरवता,
मुझे स्पष्ट सब कुछ दिखता
और 'एडमिरल्टी' के ऊपर इस्पाती छड़-डंड चमकता।

धुएँ से भरे हुए पहाड़ी घर में इन शब्दों की गूँज अजीब-सी लगती। जमालुद्दीन को रातों को सपने आते मानो वह फिर से जार के सैनिक-विद्यालय में शिक्षा पा

रहा है, मानो ग्रीष्मकालीन उद्यान के जंगले के करीब वह जार्जियाई सुंदरी नीना से मिल रहा है...

जमालुद्दीन के दिल में दो उकाब साथ-साथ जी रहे थे और दोनों उसे अपनी-अपनी तरफ खींचते थे। उसकी आत्मा में दो गीत गूँजते रहते थे। उसकी प्यारी नीना बहुत दूर थी। उनके बीच प्रबल नदी की धारा थी। इस नदी के पार डाक भी नहीं जाती थी। रूसी अफसर, दागिस्तान के इमाम का बेटा मानो इस नदी में डूब गया। यह नदी उसके सारे सपनों को बहा ले गई और उन सपनों में उसका एक सबसे बड़ा सपना भी था।

जमालुद्दीन का एक सबसे प्यारा सपना इस प्रबल नदी के ऊपर एक पुल बनाना था, दोनों तटों को जोड़ना था, युद्ध की क्रूरता, अर्थहीन मार-काट की जगह दोस्ती, प्यार और जिंदगी के सुखद सूत्र स्थापित करना था। वह पहाड़ों में गाए जानेवाले गीतों, माँ के गीतों को समझता था, लेकिन साथ ही पुश्किन के गीतों को भी। उसके दिल में दो गीत एक-दूसरे के साथ घुल-मिल गए थे। काश, उसके पिता यह समझ पाते! काश, सभी यह समझ पाते! काश, गीत एक-दूसरे को समझ लेते और प्यार करते!

किंतु गीत तो तलवारों के समान थे। वे हवा में टकराते थे, उनसे चिनगारियाँ निकलती थीं। खून से लथपथ होता हुआ दागिस्तान खून, बहादुरों, कौवों द्वारा नोची जानेवाली आँखों, घोड़ों की हिनहिनाहट, खंजरों की खनक और उस घोड़े के बारे में ही गीत गाता था जो अपने सवार को युद्ध-क्षेत्र में खोकर घर वापस आ जाता था।

और जब गीत एक-दूसरे को समझ पाते थे, जब एक तट के लोग दूसरे तट के लोगों को समझ जाते थे तो गोलियाँ चलनी बंद हो जाती थीं, खंजरों की खनक शांत हो जाती थी, खून बहना बंद हो जाता था, हाथ बदला लेने को नहीं उठता था और हृदय में क्रोध के बजाय प्यार हिलोरें लेने लगता था।

वालेरिक नदी के तट पर हुई लड़ाई में शामिल का जख्मी हो जानेवाला मुरीद मोल्ला-मुहम्मद रूसियों के हाथों में पड़ गया। गाँव के लोगों ने यह मानते हुए कि वह लड़ाई में मारा गया, उसका मातम भी मना लिया। लेकिन एक महीने बाद वह जीता-जागता और बिल्कुल स्वस्थ व्यक्ति के रूप में घर वापस आ गया। आश्चर्यचकित लोग उससे पूछने लगे कि उसे आजाद होने में कैसे कामयाबी मिल गई। मुरीद को यह बात बुरी लगी और उसने कहा -

'यह मत सोचिए कि मोल्ला-मुहम्मद झूठ या खुशामद की बदौलत आजाद होकर आ गया है। मैं बुजदिल नहीं हूँ।'

'हम जानते हैं कि तुम बहादुर मुरीद हो। शायद तुमने तलवार की मदद से आजादी हासिल की है।'

'मेरे पास तलवार नहीं थी। और अगर होती भी तो वह मेरी मदद न कर पाती।'

'तो तुम कैसे बचकर निकल आए?'

'मुझे तहखाने में बंद कर दिया गया। दरवाजे पर ताला लगा दिया गया।'

'तो वहाँ तुमने अपने को कैसे महसूस किया?'

'फंदे में फँस गए पहाड़ी बकरे की तरह। लेकिन इस तहखाने में मुझे अचानक अली के बारे में, जिसे उसके मक्कार भाइयों ने ऊँची चट्टान पर अकेला छोड़ दिया था, गाना याद आ गया। मैंने यह गाना गाया। इसके बाद मैं दूसरे गीत गाने लगा। मैंने वसंत में लौटनेवाले मौसमी परिंदों, पतझर में उड़ जानेवाले सारसों के बारे में गाने गाए, उस हिरन के संबंध में भी गाना गाया, जिसे अकुशल शिकारी ने नौ बार घायल किया था, पतझर और जाड़े के बारे में भी गाने गाए। में ऐसे गाने गाता रहा जिन्हें अभी तक किसी ने नहीं गाया था। तीन दिन तक मैंने गीत गाने के सिवा और कुछ भी नहीं किया। पहरेदारों ने कोई बाधा नहीं डाली। अगर गाने के शब्द सभी की समझ में न आएँ तो भी गाना तो गाना ही होता है। गाने को सभी सुनते हैं। एक दिन एक जवान अफसर पहरेदारों के पास आया। मैंने सोचा कि अब मेरा काम तमाम हुआ। इस अफसर के साथ एक और आदमी भी था जो हमारी भाषा जानता था। उस आदमी ने मुझसे कहा - 'अफसर जानना चाहता है कि तुम किस बारे में गाना गा रहे हो। तुम्हारे गीत का क्या विषय है? तुम हमारे लिए इसे एक बार फिर गाओ।' मैं आग की लपटों में जलते दागिस्तान के बारे में गाने लगा। मुझसे और गाने का अनुरोध किया गया। मैंने बेचारी माँ और प्यारी पत्नी के बारे में गाया। अफसर सुनता और पहाड़ों की तरफ देखता जाता था। पहाड़ बादलों से ढके हुए थे। उसने पहरेदारों से कहा कि मुझे छोड़ दिया जाए। हमारी भाषा जाननेवाले आदमी ने मुझे बताया - 'यह अफसर तुम्हें रिहा करते हैं। इन्हें तुम्हारे गीत बहुत अच्छे लगे हैं और इसलिए वह तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि जाने की इजाजत देते हैं।' इसके बाद मैं कभी-कभी यह सोचता हूँ कि शायद खून बहाने के बजाय दागिस्तान को हमेशा अपने गाने ही गाने चाहिए।'

लेकिन शामिल ने दुश्मन की कैद से रिहा होकर आनेवाले मुरीद से पूछा -

'मैंने तो गाने की मनाही कर दी है, फिर तुम किसलिए गाते रहे?'

'इमाम, तुमने दागिस्तान में गाने की मनाही की है, लेकिन वहाँ गाने की तो नहीं।'

'तुम्हारा जवाब मुझे पसंद आया है,' शामिल ने कहा। और कुछ देर सोचने के बाद इतना और जोड़ दिया - 'तुम्हें गाने की आजादी देता हूँ, मोल्ला-मुहम्मद।'

इस वक्त से लोग मोल्ला-मुहम्मद को ऐसा मुहम्मद कहने लगे जिसे गाने ने बचा लिया।

दागिस्तान को बचाने के लिए भी गाने की जरूरत थी। लेकिन क्या सभी ने उसे उसी तरह से समझ लिया होता जैसे उस अफसर ने समझा? और कौन था वह फौजी अफसर? क्या लेफ्टिनेंट लेर्मोंतोव नहीं? उसने भी तोवालेरिक की लड़ाई में हिस्सा लिया था।

एक अन्य घटना प्रस्तुत है। तेमीरखान-शूरा पर कामयाबी से धावा बोलने के बाद हाजी-मुरात अपने फौज के साथ वापस लौट रहा था। सड़क से कुछ दूर एक जंगल में उसे दो रूसी सैनिक दिखाई दिए। वे अलाव के करीब चैन से बैठे हुए गाने गा रहे थे। हाजी-मुरात ने थोड़ी-बहुत रूसी समझनेवाले अपने एक सैनिक से पूछा -

'ये किस बारे में गा रहे हैं?'

'अपनी माँ, अपनी प्रेमिका और दूरस्थ मातृभूमि के बारे में।'

हाजी-मुरात देर तक रूसी गाना सुनता रहा। इसके बाद धीरे से बोला -

'ये लोग दुश्मन नहीं हैं। इन्हें परेशान नहीं करना चाहिए। गाते रहें माँ के बारे में अपना गाना।'

इस तरह गाने ने लोगों को गोलियों का निशाना बनने से बचा लिया। अगर लोग एक-दूसरे को समझ सकते तो कितनी ही ऐसी गोलियाँ चलने से रुक जातीं, लोगों की जानें बच जातीं!

तीसरी घटना। दागिस्तान की क्रांतिकारी समिति के अध्यक्ष मखाच ने मशहूर शायर महमूद को एक बहुत महत्वपूर्ण रुक्का देकर खूँजह के छापेमारों के पास भेजा और उससे कहा -

'खंजर से नहीं, बल्कि पंदूरे से अपने लिए रास्ता बनाना।'

त्सादा गाँव में महमूद को गिरफ्तार करके काल-कोठरी में बंद कर दिया गया। महमूद के पास से उन्हें मखाच का रुक्का भी मिल गया और जाहिर है, कि उसे गोली मार दी गई होती। काल-कोठरी में बैठा हुआ शायर महमूद अपने प्यार के बारे में गाने लगा। सारा गाँव उसका गाना सुनने को जमा हो गया, दूसरे गाँवों तक के लोग भी आ गए। तब नज्मुद्दीन गोत्सीन्स्की यह समझ गया - 'अगर मैं आज इस गायक की जान ले लेता हूँ तो कल सभी पहाड़ी लोग मुझसे मुँह मोड़ लेंगे। शायर महमूद को रिहा कर दिया गया।

इरची कजाक कहा करता था कि साइबेरिया के निर्वासन काल में अगर गाने उसका साथ न देते तो गम से उसकी जान चली गई होती।

ऐसे अनेक किस्से-कहानियाँ हैं। उन पर विश्वास करना चाहिए। गीतों-गानों ने अनेक लोगों की जानें बचाईं, अनेक प्यादों को घुड़सवार बना दिया। बहादुरों के बारे में गाना सुनकर अनेक डरपोक लोगों ने डरना छोड़ दिया।

यह किस्सा मैंने अबूतालिब से सुना।

जब मैं भारत से लौटा तो अबूतालिब ने इस देश के बारे में मुझसे बहुत कुछ पूछा। मैंने उसे बताया कि किसी तरह से भारत में फकीर, साँपों को वश में करनेवाले सपेरे एक खास तरह की बीन बजाते हुए कोबरा नाग को बैले-नर्तकी की तरह नचाते हैं।

'यह तो कोई खास हैरानी की बात नहीं है,' अबूतालिब ने कहा, 'हमारे चरवाहे भी तो ऊँचे पहाड़ों में मुरली बजाकर पहाड़ी बकरों को नाचने के लिए विवश किया करते थे। मैंने अपनी आँखों से यह देखा कि हमारे सबसे डरपोक हिरन भी संगीत की धुन पर कितनी खुशी से उसकी तरफ खिंचे चले आते थे। मैंने जुरने की स्वर-लहरियों पर रज्जु-नर्तकों की तरह भालुओं को रस्से पर नाचते देखा है।' अबूतालिब कुछ क्षण तक चुप रहा और इसके बाद बोला - 'संगीत ने मेरे जीवन में भी मदद की है। तुम तो शायद यह जानते ही हो कि जुरने को ही मैं सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ। उसकी आवाज दूर तक गूँजती है। वह तो बेटे के जन्मदिन, दोस्त के आगमन और शादी-ब्याह की घोषणा करता है। कोई कुश्ती में जीतता है या घुड़दौड़ में - दागिस्तान में जुरना ही सभी खुशियों की सूचना देता है। सभी संगीत-वाद्यों या साजों के बीच उसकी हैसियत दावत के टोस्ट-मास्टर जैसी है। मैं इस कारण भी जुरने को प्यार करता हूँ कि जवानी के दिनों में इसने

मेरा पेट भरा, मुझे रोटी दी। एक बार मेरे साथ जो घटना घटी, मैं तुम्हें वह सुनाना चाहता हूँ।

'यह मेरे जवानी के दिनों की बात है। एक बार मुझे एक दूर के पहाड़ी गाँव में शादी में हिस्सा लेने के लिए बुलाया गया। सर्दियों के दिन थे। खूब जोर से बर्फ गिर रही थी। रास्ता साँप की तरह टेढ़ा-मेढ़ा और बल खाता हुआ था। मैं थककर एक पत्थर पर आराम करने के लिए बैठ गया। गाँव अभी इतना दूर था कि सिगरेट पीते-पीते तंबाकू की पूरी थैली खत्म हो जाती। अचानक मोड़ के पीछे से घंटियों की आवाज सुनाई दी और एक फिटन सामने आई। फिटन में खूब पेट भरकर खाने और शराब पीने के बाद शोर-गुल मचानेवाले तीन आदमी बैठे थे। ये अमीर लोग थे। फिटन में जुते दो घोड़ों में से एक चीनी की तरह सफेद और दूसरा काला था जिसके माथे पर सफेद पद्म था। 'अससलामालेकुम'-'वाससलामालेकुम' सलाम-दुआ हुई। यह मालूम होने पर कि फिटन में सवार ये लोग भी उसी शादी में जा रहे हैं जिसमें मुझे जाना था, मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मुझे अपने साथ बिठा लें। लेकिन उन्होंने उसी तरह, जिस तरह आजकल कारवाले बुरे लोग या टैक्सी-ड्राइवर करते हैं, इनकार कर दिया और इसके अलावा मेरा मजाक भी उड़ाया - 'कोई बात नहीं, तुम अगली शादी तक गाँव पहुँच जाओगे। लगता है कि इसमें तो तुम्हारे बिना ही काम चल जाएगा।'

'मैंने, थके-हारे और उनके उपहास के कारण जले-भुने व्यक्ति ने अपना जुरना निकाला और उसे बजाने लगा। ऐसा बढ़िया जुरना मैंने पहले कभी नहीं बजाया था। बस, कमाल ही हो गया। जुरना सुनकर घोड़े ऐसे रुक गए मानो उनके पैरों में कील ठोंक दी गई हो। फिटन में बैठे लोग आपे से बाहर हो रहे थे, घोड़ों पर चाबुक बरसा रहे थे, लेकिन बेसूद। घोड़े टस से मस नहीं हो रहे थे। शायद उन्हें मेरी धुन अच्छी लगी थी। संभवतः घोड़ों में उनके मालिकों की तुलना में ज्यादा मानवीयता थी। देर तक यह खींचातानी चलती रही। घोड़ों ने मेरा साथ दिया और मालिकों को मजबूर होकर मुझे अपनी फिटन में बैठाना पड़ा। तो मेरे जुरने ने इस तरह मेरी मदद की। गीत ही तो मुझे तहखाने से बाहर निकालकर आदर और सम्मान के बड़े मार्ग पर ले गए।'

'मैंने अबूतालिब से पूछा -

'तुम तो मुरली, जुरना और सभी तरह की बाँसुरियाँ भी बजाते हो। तुम न केवल उन्हें बजाना जानते हो, बल्कि अपने हाथों से उन्हें बनाते भी हो। लेकिन

तुम वायलिन क्यों नहीं बजाते? तुम तो जानते हो कि पहाड़ी लोगों को वायलिन बेहद पसंद है।'

'तुम्हें बताऊँ कि मैं वायलिन क्यों नहीं बजाता? तो सुनो। जब मैं जवान था तो वायलिन बजाता था। एक बार हमारे लाक गाँव में एक बदकिस्मत और थका-हारा अवार आया। उसने अपने एक गाँववासी की हत्या कर दी थी और इसके लिए उसे गाँव से निकाल दिया गया था। इस तरह के निर्वासित व्यक्ति को हमेशा गाँव के छोरवाला पहाड़ी घर रहने को दिया जाता है। लोग उसके यहाँ नहीं आते-जाते हैं। वह भी किसी के यहाँ नहीं आता-जाता है। चूँकि मैं थोड़ी-सी अवार भाषा जानता था तो कभी-कभी उसके यहाँ आने-जाने लगा। एक शाम को मैं अपनी वायलिन लेकर उसके यहाँ गया। वह चूल्हे के करीब बैठा हुआ पतीले के नीचे फूस के अंगारों को हिला-डुला रहा था। पतीले में भी फूस उबल रहा था। मैं वायलिन बजाने लगा और किस्मत का मारा अवार आग को देखता तथा चुपचाप उसे सुनता रहा। इसके बाद उसने अचानक मेरी वायलिन अपने हाथ में ले ली, उसे गौर से देखा, उसे इधर-उधर घुमाया, उसके कुछ तार कसे और बजाने लगा।

'वाह, वाह, कितनी बढ़िया वायलिन बजाता था वह, रसूल! जिंदगी भर उसका वायलिन बजाना नहीं भूल सकूँगा। चूल्हे में फूस जलता जा रहा था। कभी-कभी वह जोर से भड़क उठता और तब उसकी लपट की रोशनी में हमारी आँखें चमक उठतीं। हमारी आँखों से कभी-कभी आँसू बहते होते। मैं अपनी वायलिन इस अवार के यहाँ ही छोड़कर घर चला गया। अगले दिन मैं पहाड़ों में गया, मैंने उसका गाँव खोजा और फिर उसके रक्त-प्रतिशोधियों को ढूँढ़ा। मैं उन्हें उसके गाँव से निर्वासित किए गए अवार के घर लाया। दिन को वे मेरे घर में बैठे रहते और रातों को मेरे साथ यह सुनने जाते कि उनका खूनी दुश्मन कितनी बढ़िया वायलिन बजाता है। लगातार तीन रातों तक यह सिलसिला चलता रहा। चौथे दिन खून का बदला खून से लेने के इच्छुकों ने अपनी इस इच्छा से इनकार कर दिया। उन्होंने अपने गाँववासी से कहा - 'तुम घर लौट आओ, हमने तुम्हें माफ कर दिया।' मुझसे विदा लेते समय उस अवार ने मेरी वायलिन मुझे लौटानी चाही, लेकिन मैंने उसे नहीं लिया। मैंने उससे कहा - 'तुम्हारी तरह वायलिन बजाना मुझे कभी नहीं आ सकेगा और उससे बुरे ढंग से मैं अब इसे बजा नहीं सकता। इसलिए इस वायलिन की अब मुझे जरूरत नहीं।' तब से मैंने कभी वायलिन हाथ में नहीं ली। लेकिन जिस संगीत ने खूनी दुश्मनों के बीच सुलह करवा दी, उसे भी मैं कभी नहीं भूलूँगा। मैं अक्सर यह सोचता हूँ कि अगर सभी लोग वायलिन पर

ऐसा संगीत सुन सकते तो बुराई करनेवाला एक भी आदमी दुनिया में न मिलता और कहीं भी वैर-भाव न होता।'

अब मैं अपने पिता जी से संबंधित दो घटनाओं का उल्लेख करता हूँ।

गोत्साल्ल गाँव के निवासी हाजी नाम के एक व्यक्ति ने खूँजह में एक रेस्तराँ खोला। उसने मेरे पिता जी को बुलाकर उनसे कहा -

'आप पहाड़ी इलाकों में बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। आप मेरे रेस्तराँ के बारे में एक गीत रच दें, उसमें उसकी कुछ प्रशंसा कर दें, ताकि सभी लोग उसके बारे में जान जाएँ। इसके लिए परिश्रमिक देने के मामले में जरा भी देर नहीं होगी।'

पिता जी ने सचमुच ही एक गीत रच दिया और गोत्साल्ल गाँव के निवासी के इस रेस्तराँ को मशहूर भी कर दिया, लेकिन गंदे और बेहूदा रेस्तराँ के रूप में। इसके बाद सभी लोग इस रेस्तराँ और इसके मालिक की तरफ इशारा करते हुए कहते - 'यह है वह आदमी जिसे हमारे हमजात ने धूल में मिला दिया।'

रेस्तराँ के मालिक को जब यह पता चला कि उसके रेस्तराँ के बारे में एक ऐसा गीत है तो वह परेशान हो उठा।

उसने पिता जी से कहा कि अगर वह अपने इस गीत का आम लोगों में प्रचार नहीं करेंगे तो इसके बदले में वह उन्हें जीन समेत घोड़ा देने को तैयार है। किंतु यदि कोई शब्द एक दर्रे को लाँघ जाता है तो वह सारे पहाड़ों में पहुँच जाता है और कोई भी उसे नहीं रोक पाता। किस्मत के मारे इस हाजी के बारे में रचा गया यह गीत जल्द ही सभी गाँवों में पहुँच गया। लोग उसे अभी तक गाते हैं। और हाजी को अपना रेस्तराँ बंद करना पड़ा।

एक बार हमारे घर से भेड़ की बगलों का धूप में सुखाया गया मांस गायब हो गया। उसके वापस आने की कोई उम्मीद नहीं हो सकती थी। लेकिन अचानक गाँव में यह अफवाह फैल गई कि हमजात ने चोर के बारे में एक गीत रचा है। नतीजा यह निकला कि सुखाया हुआ यह मांस उसी दिन हमारे छज्जे में फेंक दिया गया, यद्यपि मेरे पिता जी का ऐसा गीत रचने का जरा भी इरादा नहीं था।

नवदंपतियों में कभी-कभी झगड़ा हो जाता है। ऐसे मौकों पर नवदंपतियों के मित्र, अक्सर तो जवान पति के मित्र घर की खिड़की के नीचे खड़े होकर चोंगूर बाजा बजाने लगते हैं। चोंगूर की ध्वनियाँ नवदंपति को अपने छोटे-से झगड़े के बारे में भूलने को मजबूर कर देती हैं।

मेरा भी अमीन चुतूयेव नाम का एक बहुत अच्छा दोस्त था, फोटोग्राफर और संगीतज्ञ। मेरी शादी के पहले साल में उसे मेरी खिड़कियों के नीचे अक्सर चोंगूर बजाना पड़ा।

अमीन चुतूयेव, तुम अपनी वायलिन लेकर दुनिया की खिड़कियों के नीचे उसे क्यों नहीं बजाते, ताकि हमारे युग के झगड़े सुलझ जाएँ, शांत हो जाएँ?

शिकागो की एक भेंट में एक अमरीकी सहयोगी के साथ मेरी बहुत ही गर्मागर्म बहस हो गई। बहस ने बड़ा ही उग्र रूप ले लिया और ऐसे लगता था कि यह कभी खत्म नहीं हो सकेगी। किंतु बाद में अमरीकी ने अचानक अपने भाई की, जो पहले युद्ध के समय खेत रहा था, कविता सुना दी। मैंने भी उसी समय मौत के मुँह में चले जानेवाले अपने भाई की कविता वहाँ सुनाई। हमारा वाद-विवाद शांत हो गया। केवल कविताएँ ही बाकी रह गईं। काश हम अक्सर ही वीरगति को प्राप्त होनेवालों को याद करते, काश कि हम अक्सर ही कविताओं और गीतों की ओर ध्यान देते!

मेरे पूर्वज पड़ोस के जार्जिया पर अक्सर हमले करते थे। ऐसे ही एक हमले के वक्त वे जवान दविद गुरामिश्वीली को, जो बाद में जार्जिया का क्लासिक कवि बना, वहाँ से भगाकर अवार पर्वतों में ले आए।

ऊँचे पहाड़ी उंत्सूकूल के एक गहरे तहखाने में बंद यह बदकिस्मत बंदी जार्जियाई गाने गाता रहता। वहीं वह कविता रचने लगा। उसे उंत्सूकूल से रूस भागने में सफलता मिल गई और वहाँ से वह उक्रइना चला गया।

इस अनूठे कवि की जयंती के समय मैं त्बिलीसी गया। मुझसे वहाँ बोलने को कहा गया। मैंने मजाक करते हुए कहा कि दविद मुरामिश्वीली जैसे बड़े कवि, के लिए जार्जिया हमारा, हम दागिस्तानियों का आभारी है। अगर हम उसे न भगा ले जाते, गहरे तहखाने में न बंद कर देते तो शायद वह कविता न रचने लगता, रूस और उक्रइना न पहुँच सकता। उसकी जीवनी ने दूसरा ही रूप ले लिया होता। लेकिन इसके बाद मैंने यह भी कहा - 'मेरे पूर्वज जब जवान प्रिंस को भगाकर लाए थे तो यह नहीं जानते थे कि एक कवि को भगाकर ले जा रहे हैं। अगर उन्हें यह मालूम होता तो वे कभी ऐसा न करते। खैर, जो हुआ सो हुआ, लेकिन इतना जरूर है कि अगर पहले दागिस्तान ने दविद गुरामिश्वीली को अपना बंदी बनाया था तो अब दागिस्तान उसके काव्य के जादू में बँधा हुआ है। कितना उलट-फेर हुआ है जमाने में!'

अब नए गीत गाए जाते हैं। लेकिन हम पुराने गीतों को भी नहीं भूले। अब दागिस्तान की जनता अपनी इन बहुमूल्य निधियों को सारी दुनिया को भेंट करती है।

पर्वतों में प्रकृति अपना कठोर रूप दिखाती है। पुराने वक्तों में यहाँ बड़ी संख्या में बच्चे मरते थे। लेकिन जो जिंदा रह जाते थे, वे बहुत लंबी उम्र तक, सौ साल से अधिक समय तक जीते रहते थे।

गाए गए सभी गीत जिंदा नहीं रहे, मगर जो जिंदा रह गए हैं, वे सदियों तक जीवित रहेंगे।

बचपन में अधिकतर लड़के ही मरते थे। लड़कियाँ अधिक शक्तिशाली, अधिक जानदार सिद्ध होती थीं।

गीतों के बारे में भी यही ठीक है। मर्दाना, जवान सूरमाओं के गीत, युद्ध के गीत, हमलों और मार-काट के गीत, कब्रों, प्रतिशोध, खून, साहस तथा वीरता के गीत प्यार के गीतों की तुलना में कहीं कम जीवित रहे हैं।

किंतु सभी पुराने गीत मानो दागिस्तान के नए संगीत की भूमिका हैं। पुराने पंदूरे पर नए तार लगाए जा रहे हैं और जब पहाड़ी औरतों की फुरतीली उँगलियाँ पियानो के सफेद और काले परदों पर भी भागती हैं।

गीतोंवाले घर में मेरा जन्म हुआ और वहीं मैं बड़ा हुआ। मैंने बहुत झिझकते-झिझकते पेंसिल हाथ में ली। मैं कविता से नाता जोड़ते हुए घबराता था, मगर ऐसा किए बिना रह नहीं सकता था। मेरी स्थिति बड़ी विकट थी। हमजात त्सादासा के बाद रसूल त्सादासा (यानी त्सादा गाँव के वासी) की किसे जरूरत हो सकती थी! उसी गाँव, उसी घर और उसी दागिस्तान के रसूल की!

मैं कहीं भी क्यों न गया, किसी भी जगह मुझे लोगों से मिलने और बात करने का मौका क्यों न मिला, अभी भी, जब मेरे अपने बाल पक गए हैं, हर जगह और हमेशा यही कहा जाता है - 'अब हमारे हमजात के बेटे रसूल से अपने विचार प्रकट करने का अनुरोध किया जाता है।' बेशक यह सही है कि हमजात का बेटा होना कुछ कम सम्मान की बात नहीं है, लेकिन मन चाहता है कि मेरी अपनी अलग पहचान हो।

एक बार मैं एक पहाड़ी क्षेत्र में गया। कई गाँवों में जाने के बाद मेरे रास्ते में त्सुमादा नाम का एक ही गाँव बाकी रह गया था। मैंने दूर से देखा कि गाँव के छोर पर बहुत-से लोग जमा हैं। जुरना-वादन और गानों की ध्वनियाँ सुनाई दे रही

थीं। किसी का स्वागत होनेवाला है। लेकिन मेरे सिवा तो वहाँ कोई आनवाला नहीं था। मुझे यह अच्छा भी लगा और कुछ शर्म भी महसूस हुई, क्योंकि मैं तो मानो अभी ऐसे बढ़िया स्वागत-सत्कार के लायक नहीं हुआ था। हमारी मोटर लोगों के नजदीक पहुँची। हम मोटर से बाहर निकले। लोगों ने पूछा -

'बुजुर्ग हमजात कहाँ हैं?'

'हमजात तो मखाचकला में हैं। उनका तो यहाँ आने का कोई प्रोग्राम नहीं था। मैं हमजात का बेटा रसूल आपके पास आया हूँ।'

'लेकिन हमें तो यह बताया गया था कि हमजात आएँगे।'

लोग अपने घरों को जाने लगे। कुछ जवान लोग ही मेरे साथ रह गए। हम गीत गाने लगे। हमने बहुत गाने गाए। वे गाने, जिन्हें जनता ने रचा, जिन्हें मेरे पिता जी ने रचा और यहाँ तक कि मेरे द्वारा रचा गया एक गीत भी।

मेरा यह गीत उस लड़के के समान था जो हाथ में छोटा-सा चाबुक लिए जीन ले जानेवाले पिता के पीछे-पीछे जीने पर चढ़ता जाता है।

हमारे पहाड़ी पंदूरे! ज्यों-ज्यों मेरी आयु बढ़ती जाती है, ज्यों-ज्यों मुझे जीवन, लोगों और दुनिया का अधिकाधिक ज्ञान होता जाता है, त्यों-त्यों मुझे हाथ में लेते हुए अधिकाधिक घबराता हूँ। हजारों सालों से तुम्हारे तारों को कसा और सुर में किया गया है। हजारों गायकों ने तुझमें से अद्भुत ध्वनियाँ निकाली हैं। जब मैं तेरे तार कसने लगता हूँ तो मेरे दिल की धड़कन बंद हो जाती है। अगर इस क्षण तार टूट जाएगा तो, मुझे लगता है, कि मेरे दिल के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। तार तो बहुत आसानी से टूट सकता है। इसका मतलब है कि गीत की हत्या हो जाएगी।

लेकिन चाहे कुछ भी क्यों न हो, मुझे तुझे हाथ में लेना ही होगा, सुर में करना और अपना गीत गाना होगा। बेशक वह दागिस्तान के अन्य गीतों में खो जाए, क्योंकि मेरी आवाज तो पुराने गायकों की आवाज की बराबरी नहीं कर सकती। फिर हमारे गाने भी तो भिन्न हैं।

'क्या महमूद के बाद कभी किसी ने मुहब्बत नहीं की? लेकिन अब प्रेम-गीत सुनाई नहीं देते।'

'मुहब्बत तो की गई है। लेकिन गीतों की क्या जरूरत है? आज की मूई जैसी प्रेमिका को प्रेम-गीत सुनाने और भगाकर ले जाने की जरूरत नहीं रही। वह तो खुद ही चली आती है।'

'क्या शामिल के बाद बहादुरों का नाम-निशान मिट गया? अब तो वीरों के वीर-कृत्यों और शानदार लड़ाइयों के गीत सुनाई नहीं देते।'

'बहादुर तो शायद अभी भी हैं। लेकिन अब लड़ाइयों के गीतों की क्या जरूरत है, जबकि खुद तलवार भी चैन चाहती है।'

इससे भला क्या फर्क पड़ता है कि मेरी आवाज दागिस्तान की दूसरी आवाजों में खो जाएगी। दूसरे गायक आएँगे जो वह गा देंगे जिसे मैं नहीं गा पाया।

बुढ़ापा आदमी को जिंदगी की बहुत-सी खुशियों से वंचित कर देता है। वह इनसान की ताकत, आँखों की तेज रोशनी, अच्छी तरह सुनने की क्षमता छीन लेता है, उसके सामने झुटपुटे का परदा गिराकर उसे दुनिया से अलग कर देता है। कभी-कभी तो उसका हाथ शराब का जाम तक नहीं सँभाल पाता।

लेकिन मैं बुढ़ापे से नहीं डरता हूँ, क्योंकि वह मुझसे सब कुछ छीनकर भी मेरा गीत नहीं छीन पाएगा। वह मुझसे मेरा महमूद, बातीराय, पुश्किन, हाइने, ब्लोक, सभी महान गायकों को, जिनमें दागिस्तान जैसा गायक भी शामिल है, कभी नहीं छीन सकेगा। जब तक दागिस्तान है, हमारे लिए चिंता करने की कोई बात नहीं। वह बना रहेगा तो हमारा बाल भी बाँका नहीं होगा, हम भी बने रहेंगे।

एक पहाड़ी गाँव में बच्चों का एक खेल है जिसे कुछ ऐसा नाम दिया जा सकता है - 'जो खोजता है, उसे मिलता है, जिसे मिलता है, वह उसी का हो जाता है।' एक बार मैंने इस खेल में हिस्सा लिया।

एक लड़के को दूसरे कमरे में भेज दिया जाता है, ताकि वह यह न देख सके कि लड़कियों में से कोई एक कहाँ छिपी है। इतना ही नहीं, लड़के की आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है। कुछ देर बाद यह लड़का उस कमरे में जाकर, जहाँ लड़की छिपी हुई है, उसे ढूँढ़ने लगता है। सभी लड़के-लड़कियाँ मिलकर, 'आई, दाई, दालालाई' गाते हैं। लड़का जब गलत जगह पर ढूँढ़ता है तो गानेवाले धीमी और करुण आवाज में गाते हैं। जब वह ठीक दिशा में बढ़ता है तो वे बड़े उत्साह और खुशी भरी आवाज में गाने लगते हैं। जब वह लड़की को ढूँढ़ लेता है तो सभी तालियाँ बजाते हैं और उन दोनों को नाचने के लिए मजबूर करते हैं। इस तरह से गाना उस लड़के को, जिसकी आँखों पर पट्टी बँधी होती है, सही रास्ता दिखाता है और उसे मनवांछित लक्ष्य पर पहुँचाता है।

गीतोंवाले घर, गीतोंवाले दागिस्तान, गीतोंवाले रूस और गीतोंवाली दुनिया में मेरा जन्म हुआ है। मैं गीत की शक्ति, गीत का महत्व जानता हूँ। अगर दागिस्तान

के पास गीत न होते तो कोई भी उसे ऐसे न जानता, जैसे सब लोग आज जानते हैं। तब दागिस्तान भटके हुए पहाड़ी बकरे जैसा होता। किंतु हमारा गीत हमें खड़ी पहाड़ी पगडंडियों से विराट संसार में ले गया, उसने हमें दोस्त दिए।

'तुम गाना गा दो और मैं तुम्हें बता दूँगा कि तुम कैसे आदमी हो,' अबूतालिब कहा करता था। दागिस्तान ने अपना गाना गाया और दुनिया उसे समझ गई।

पुस्तक

अवार भाषा में त्येह शब्द के दो अर्थ हैं - भेड़ की खाल और पुस्तक।

कहा जाता है कि 'हर किसी को अपना सिर और सिर पर समूरी टोपी को सुरक्षित रखना चाहिए।' जैसा कि सभी जानते हैं, हमारे यहाँ समूरी टोपी भेड़ की खाल से बनाई जाती है। लेकिन पहाड़ी आदमी का सिर सैकड़ों सालों तक वह एकमात्र अलिखित पुस्तक था जिसमें हमारी भाषा, हमारा इतिहास, हमारी दास्तानें, हमारे किस्से-कहानियाँ, आख्यान, रीति-रिवाज और वह सभी कुछ सुरक्षित रहा जिसकी जनता ने कल्पना की। भेड़ की खाल ने सदियों तक दागिस्तान की इस अलिखित पुस्तक - पहाड़ी आदमी के सिर - की रक्षा की, उसे गर्माया, उसे सहेजा। बहुत कुछ तो सुरक्षित रह गया और हम तक पहुँच गया, लेकिन बहुत कुछ खो भी गया, रास्ते में भटक गया और हमेशा के लिए तबाह हो गया।

इस पुस्तक के कई पृष्ठ वैसे ही नष्ट हो गए, जैसे युद्ध की आग में वीर नष्ट हो जाते हैं (समूरी टोपी गोली और तलवार से तो नहीं बचा सकती), लेकिन कुछ उन बदकिस्मत राहगीरों की तरह नष्ट हो गए जो रास्ते से भटक जाते हैं, बर्फीले तूफान में घिर जाते हैं, जिनकी ताकत जवाब दे जाती है, जो खाईं-खड्ड में गिर जाते हैं, हिमानी की लपेट में आ जाते हैं, किसी डाकू-लुटेरे के खंजर के शिकार हो जाते हैं।

कहा जाता है कि भूला और खोया हुआ ही सबसे अच्छा और महान होता है।

क्योंकि जब हम कविता सुनाते हैं और कोई एक पंक्ति भूल जाते हैं तो हमें उसी की सबसे अधिक जरूरत महसूस होती है।

क्योंकि जब मर जानेवाली गाय की याद आती है तो लगता है कि वही दूसरी गउओं से ज्यादा दूध देती थी और उसी का दूध सबसे अधिक गाढ़ा होता था।

महमूद के पिता ने अपने शायर बेटे की पांडुलिपियों से भरा हुआ संदूक जला डाला था। पिता को ऐसे लगा था कि कविताएँ उनके निकम्मे बेटे का सत्यानाश करती हैं। अब सभी यह कहते हैं कि उस संदूक में महमूद की सबसे अच्छी कविताएँ थीं।

बातीराय अपने एक गीत को कभी दो बार नहीं गाता था। वह अक्सर शादी के वक्त नशे में धुत्त लोगों के सामने गाया करता था। ये गीत वहीं रह गए। किसी ने भी उन्हें नहीं सहेजा। अब सभी लोग यह कहते हैं कि वही उसके सबसे अच्छे गीत थे।

इरची कजाक ने शामहाल के दरबार में बहुत-से गीत गाए। लेकिन उसके बहुत कम गीत ही दरबार की सीमा से बाहर आम लोगों तक पहुँचे। इरची कजाक खुद यह कहा करता था - चाहे कितना ही क्यों न गाओ, न तो शामहाल और न गधा ही गीतों को समझता है।

कहा जाता है कि इरची कजाक की दरबार में खो जानेवाली कविताएँ ही सबसे अच्छी थीं।

आग में जला दिए गए पंदूरों की आवाज हम तक नहीं पहुँची। नदी में फेंक दिए गए चोंगूरों की मधुर धुनें हम तक नहीं पहुँच सकीं। मौत के घाट उतार दिए गए और हताहत लोगों के लिए आज मेरा दिल उदास होता है।

किंतु जो कुछ बाकी बच गया है, जब मैं उसे सुनता और पढ़ता हूँ तो मेरा दिल खिल उठता है। मैं सच्चे दिल से गरीब पहाड़ी लोगों को धन्यवाद देता हूँ जो हमारी अलिखित पुस्तकों को अपनी हृदयों में सहेजे रहे और उन्हें हमारे समय तक लाए।

ये दास्तानें, ये किस्से-कहानियाँ, ये गीत-गाने मानो अब कलम से कागज पर लिखे और किताबों के रूप में छपे हुए से कहते हैं - 'हम, जो अलिखित हैं, सैकड़ों सालों तक सभी तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए जिंदा रहे और तुम तक पहुँच गए। लेकिन यह जानना दिलचस्प होगा कि तुम जो इतने सुंदर ढंग से छपे हुए हो, अगली पीढ़ी तक भी पहुँच पाओगे या नहीं? हम देखेंगे,' वे

कहते हैं, 'पुस्तकालय, पुस्तक संग्रहालय या मानवीय हृदय अधिक भरोसे लायक पुस्तक-भंडार हैं।'

बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है। सैकड़ों पंक्तियों में से केवल एक पंक्ति बची रह जाती है और अगर वह बची रह जाती है तो हमेशा के लिए।

कहा जा चुका है कि पहले अनेक बच्चे बहुत ही छोटी उम्र में मर जाते थे।

इमाम शामिल घायलों को नदी में कूदने के लिए मजबूर करता था। लुंज-पुंज सैनिकों की उसे जरूरत नहीं होती थी, क्योंकि वे दुश्मन से लोहा लेने में असमर्थ होते थे, मगर उन्हें खिलाना-पिलाना तो जरूरी होता था।

अब दूसरा जमाना है। बच्चों की बहुत अच्छी देख-भाल की जाती है, डाक्टर उनकी चिंता करते हैं। घायलों की मरहम-पट्टी की जाती है। लँगड़े-लूलों को नकली टाँगें और पाँव दिए जाते हैं। लोगों के मामले में तो इन परिवर्तनों को बहुत ही सराहनीय और मानवीय माना जा सकता है।

किंतु लुंज-पुंज विचारों, कमजोर कविताओं, अधमरी भावनाओं और मुर्दा ही पैदा होनेवाले गीतों के मामले में तो ऐसा नहीं होता? सब कुछ पुस्तक में ही रह जाता है। सब कुछ कागज पर ही रह जाता है।

पहले यह कहा जाता था - 'जबानी कही बात खो जाती है, लिखी हुई बाकी रह जाती है।' कहीं अब इसके उलट ही न हो जाए।

मगर आप यह नहीं समझ लीजिएगा कि मैं पुस्तक और लिखित भाषा की निंदा कर रहा हूँ। वे तो उस सूर्य की भाँति है जिसने पर्वतों के पीछे से ऊपर उठकर घाटी को रोशन कर दिया, अँधेरे और जहालत को छिन्न-भिन्न कर डाला। मेरी माँ ने मुझे एक लोमड़ी और एक पक्षी का किस्सा सुनाया था। वह इस प्रकार था।

किसी पेड़ पर एक विहगी रहती थी। उसका मजबूत और खासा गर्म घोंसला था जिसमें वह अपने बच्चे पालती थी। सब कुछ अच्छे ढंग से चल रहा था। लेकिन एक दिन लोमड़ी आई, पेड़ के नीचे बैठकर गाने लगी -

> से सारी चट्टानें मेरी,
> यह सारा मैदान भी,
> सभी खेत-खलिहान भी।
> अपनी इस धरती पर मैंने
> अपना पेड़ उगाया है,

इसी पेड़ पर लेकिन तूने
अपना नीड़ बनाया है।
इसीलिए तू दे दे मुझको
सिर्फ एक अपना बच्चा
वरना काटूँ पेड़ मरें सब
हाल न कुछ होगा अच्छा।

अपने प्यारे पेड़, प्यारे घोंसले और बाकी बच्चों को बचाने के लिए विहगी ने अपना सबसे छोटा बच्चा लोमड़ी को दे दिया।

अगले दिन लोमड़ी फिर से आ गई, उसने फिर से अपना वही गाना गाया। विहगी को अपना दूसरा बच्चा कुर्बान करना पड़ा। इसके बाद तो विहगी अपने बच्चों का शोक भी नहीं मना पाती थी - हर दिन ही एक बच्चा लोमड़ी के मुँह में चला जाता था।

दूसरे पक्षियों को इस विहगी के दुर्भाग्य के बारे में पता चला। वे सभी उड़कर उसके पास आए, पूछने लगे कि क्या मामला है। बुद्धू विहगी ने अपनी दर्द-कहानी सुनाई। समझदार पक्षियों ने गाते हुए उससे कहा -

तुम तो खुद ही दोषी चिड़िया
तुम भोली हो, बुद्धू हो
धूर्त लोमड़ी ने तो उल्लू
खूब बनाया है तुमको।
पेड़ भला कैसे काटेगी
हमें बताओ, क्या दुम से?
तेरे बच्चों तक पहुँचेगी
हमें बताओ, क्या दुम से?
कहाँ कुल्हाड़ी उसकी, बोलो?
और कहाँ पर आरी है?
रहने लगी चैन से अब तो
चिड़िया वहाँ हमारी है।

लेकिन लोमड़ी तो यह कुछ भी नहीं जानती थी और फिर से डराने-धमकाने और बच्चा माँगने के लिए आई। वह फिर से यह गाने लगी कि पेड़ काट डालेगी, विहगी के सारे बच्चों को मार डालेगी। किंतु वही शब्द, जिनसे विहगी बुरी तरह

भयभीत हो उठती थी, अब उसे हास्यास्पद, अपनी डींग हाँकनेवाले और व्यर्थ प्रतीत हुए। विहगी ने लोमड़ी को जवाब दिया -

जड़ें बहुत गहरी इस तरु की,
हो कुदाल, तब ही काटो।
तना बड़ा मजबूत पेड़ का
कहाँ कुल्हाड़ा, जो काटो।
मेरा नीड़ बड़ा ऊँचा है,
सीढ़ी लाओ तो पहुँचो।

लोमड़ी अपना-सा मुँह लेकर चली गई और उसने वहाँ आना बंद कर दिया। विहगी तो अब भी वहाँ रहती है, बच्चे पैदा करती है, बच्चे बड़े होते हैं और तराने गाते हैं।

दागिस्तान ने अपनी जहालत, पिछड़ेपन और अज्ञान के कारण अपने कितने बच्चों को नष्ट कर डाला है! खुद को जानने के लिए किताब की जरूरत है। दूसरों को जानने के लिए भी किताब की जरूरत है। पुस्तक के बिना कोई भी जाति उस आदमी के समान है जिसकी आँख पर पट्टी बँधी हो, जो इधर-उधर भटकता रहता है और दुनिया को नहीं देख सकता। पुस्तक के बिना कोई भी जाति उस व्यक्ति के समान है जिसके पास दर्पण न हो, वह अपना चेहरा नहीं देख सकती।

'पिछड़े हुए और जहालत के मारे लोग,' दागिस्तान की यात्रा करनेवालों ने हमारे बारे में ऐसा लिखा और कहा। इन शब्दों में श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति या दुर्भावना की तुलना में सचाई ज्यादा है। 'ये - वयस्क बालक हैं,' हमारे संबंध में एक विदेशी ने लिखा।

'इनके पास ज्ञान नहीं है इसका लाभ उठाना चाहिए,' हमारे शत्रुओं का कहना था।

'अगर यहाँ के जनगण युद्धशास्त्र में प्रवीण हो जाएँ तो कोई भी इन पर हाथ उठाने की जुर्रत न करे,' एक सेनापति ने कहा था।

'काश हम हाजी-मुरात की दिलेरी और महमूद की प्रतिभा में अपना आज का ज्ञान जोड़ सकते!' पहाड़ी लोग कहते हैं।

'इमाम, हम रुक क्यों गए?' एक बार हाजी-मुरात ने शामिल से पूछा। 'हमारी छाती में दिल धधक रहा है और हाथ में तेज खंजर है। इंतजार किस बात का है?

हम आगे बढ़कर अपने लिए रास्ता बनाएँगे।'

'जरा सब्र से काम लो, जल्दी नहीं करो, हाजी-मुरात, तेजी से दौड़नेवाली नदियाँ कभी सागर तक नहीं पहुँचतीं। मैं किताब से सलाह लूँगा - वह क्या सलाह देगी। किताब-बड़ी समझदारी की चीज है।'

'इमाम, शायद तुम्हारी किताब समझदारी की चीज हो, लेकिन हमें तो बहादुरी की जरूरत है। और बहादुरी है तेज तलवार तथा घोड़े की सवारी में।'

'किताबें भी बहादुर होती हैं।'

किताब... अक्षर, पंक्तियाँ, पृष्ठ। हाँ, पृष्ठ एक मामूली-सा कागज लग सकता है। लेकिन वह शब्दों का संगीत है, भाषा के सुरीलेपन और विचारों का भंडार है। यह तो मैं हूँ जिसने उसे लिखा, वे दूसरे लोग हैं जिनके बारे में मैंने लिखा, जिन्होंने अपने बारे में लिखा। यह कागज तो तेज गर्मी है, जाड़े का बर्फीला तूफान है, कल की घटनाएँ, आज के सपने, भविष्य का कार्य है।

विश्व-इतिहास और हर आदमी के भाग्य को दो भागों में बाँटना चाहिए - पुस्तक के प्रकट होने के पहले और उसके बाद का भाग। पहला भाग - काली रात है, दूसरा भाग - उजला दिन। पहला भाग - तंग, अँधेरा दर्रा है और दूसरा भाग खुला मैदान या पर्वत-शिखर है।

'शायद जहालत ही वह गुनाह है जिसके लिए इतिहास ने हमें इतनी देर तक और इतनी सख्त सजा दी है,' पिता जी कहा करते थे।

दो कालावधियाँ - पुस्तकवाली और पुस्तक के बिना। इनसान के पास अब बहुत जल्द ही, उसी वक्त जब वह पहला डग भरने लगता है, ककहरे के रूप में किताब आ जाती है। लेकिन दागिस्तान के पास हजारों साल बीतने पर ही पुस्तक आई। दागिस्तान ने बहुत देर से, बहुत ही देर से पढ़ना-लिखना सीखा।

इसके पहले पहाड़ी लोगों के लिए अनेक सदियों तक आकाश पृष्ठ था और तारे वर्णमाला। नीलगूँ बादल दवात थे, बारिश स्याही, पृथ्वी कागज, घास और फूल - अक्षर थे और खुद ऊँचाई ऐसे पृष्ठ पर पढ़ने के लिए झुक जाती थी।

सूरज की लाल किरणें पेंसिलें थीं। उन्होंने चट्टानों पर हमारा भूलों से भरा हुआ इतिहास लिखा।

मर्द का बदन-दवात था, खून-स्याही और खंजर-पेंसिल। तब मौत की किताब लिखी गई, उसकी भाषा हर किसी की समझ में आ जाती थी, उसके अनुवाद की

जरूरत नहीं होती थी।

औरत का दुर्भाग्य-दवात था, आँसू-स्याही, तकिया-कागज। तब दुख-दर्दों की किताब लिखी गई, लेकिन बहुत कम ही किसी ने उसे पढ़ा, पहाड़ी औरतें दूसरों को अपने आँसू नहीं दिखातीं।

पुस्तक, लिखित भाषा... ये हैं वे दो निधियाँ जो भाषाएँ बाँटनेवाला हमें देना भूल गया।

पुस्तकें - वे घर की खुली खिड़कियाँ हैं, लेकिन हम बंद दीवारों के भीतर बैठे रहे... खिड़कियों में से पृथ्वी और सागर का विस्तार तथा लहरों पर तैरनेवाले अद्भुत जहाजों को देखा जा सकता था। हम उन पक्षियों के समान थे, जो, न जाने क्यों, जाड़े में गर्म प्रदेश में न जाकर ठंड में ही रह जाते हैं और ठिठुरने पर खिड़कियों पर अपनी चोंचें मारते हैं, ताकि उन्हें घर के भीतर, गर्माहट में आ जाने दिया जाए।

पहाड़ी लोगों के होंठ सूखे और प्यास के कारण मुरझाए हुए हैं... हमारी आँखें भूखी और जलती हुई हैं।

अगर हम कागज और पेंसिल का इस्तेमाल करना जानते होते तो खंजर से इतना अक्सर काम न लेते।

हम तलवार बाँधने, घोड़े पर जीन कसने, उछलकर घोड़े पर सवार होने तथा युद्ध-क्षेत्र में पहुँचने में कभी देर नहीं करते थे। इस मामले में हमारे यहाँ न तो लँगड़े-लूले, न बहरे और न अंधे होते थे। लेकिन हमने बहुत छोटे-छोटे, मानो नगण्य अक्षरों को जानने में बहुत देर कर दी। यह तो सर्वाविदित है कि जिसके भाव, जिसके विचार लुंज-पुंज हैं, उसकी तो सहारा देनेवाली लाठी भी कोई सहायता नहीं कर सकती।

डेढ़ हजार साल पहले आर्मीनिया के विख्यात योद्धा मेसरोप माशतोत्स के दिमाग में यह ख्याल आया कि लिखित भाषा शस्त्रास्त्र से अधिक शक्तिशाली है और उसने आर्मीनी वर्णमाला की रचना की।

मैं मातेनादारान जा चुका हूँ, जहाँ प्राचीनतम पांडुलिपियाँ सुरक्षित रखी जा रही हैं।

वहाँ बहुत ही दुखी मन से मैं दागिस्तान के बारे में सोचता रहा जिसने किताबों और लिखित भाषा के बिना हजारों साल बिता दिए। समय की छलनी में से इतिहास छनता रहा और उसके जरा भी निशान बाकी नहीं रहे। केवल धुँधले

और ऐसे आख्यान और गीत ही, जो हमेशा प्रामाणिक नहीं होते थे, एक व्यक्ति के मुँह से दूसरे व्यक्ति के मुँह तक, एक हृदय से दूसरे हृदय तक जाते हुए हमारे पास पहुँचते रहे।

है आसान कथा-किस्सों में
विस्मृत को स्मृत रख पाना,
माँ से सुना कभी जो किस्सा
यहाँ चाहता दुहराना।

किसी गाँव में किसी किसी वीर ने
ऊँचा नाम कमाया जब,
बडे खान ने, शक्तिमान ने
पास उसे बुलवाया तब।

नाम सलीम, हमारा हीरो
बड़े महल में जब आया,
एक-एक कर सब दरवाजों
को उसने खुलते पाया।

थे कालीन, झाड़ जगमग थे
और रुपहले फव्वारे,
धनी खान ने माल-खजाने
खोल दिए अपने सारे।

जो कुछ देखा यहाँ वीर ने
मुश्किल वह सब बतलाना,
जो कुछ भी है इस दुनिया में
संभव यहाँ देख पाना।

कहा खान ने - 'सुनो सूरमा,
जो भी चाहो, तुम ले लो,
दिल-दिमाग को जो रुच जाए
दे दूँगा मैं वह तुमको।

'यहाँ सभी चीजें बढ़िया हैं
किंतु याद इतना रखना,
हो अफसोस न तुम्हें बाद में
मत उतावली तुम करना।'

उत्तर दिया वीर ने उसको -
'दो तलवार, मुझे खंजर,
घोड़ा तेज मुझे तुम दे दो
करूँ सवारी मैं जिस पर।

'हीरे-मोती, माल-खजाने
किंतु न मैं ये सब चाहूँ
है तलवार, अगर घोड़ा भी
यह सब तो मैं खुद पाऊँ।'

अरे, पूर्वज मेरे तुमने
कैसी कर डाली गलती,
ली तलवार, लिया घोड़ा भी
किंतु भुला क्यों पुस्तक दी?

क्यों न कहो, थैले में अपने
कागज, पेंसिल भी रक्खी?
भूल गए किसलिए लेखनी?
भूल बड़ी यह तुमने की।

बेशक मन था निर्मल तेरा
किंतु अक्ल की रही कमी,
पुस्तक खंजर से बढ़कर है
बात न दिल में यही जमी।

भाग्य सौंप लोहे को अपना

जान नहीं हम यह पाए,
खंजर, घोड़ों से वह बढ़कर
पुस्तक जो कुछ सिखलाए।

सूझ-बूझ के राज छिपे हैं
सुंदरता के भी उसमें,
हम सदियों तक पिछड़ गए हैं
होकर खंजर के वश में।

यह परिणाम भूल का तेरी
छात्र देर से ज्यों आए,
पाठ कभी का शुरू हुआ यदि
वह तो पीछे रह जाए।

पर्वतमाला के पीछे, हमारे बिल्कुल निकट ही जार्जिया है। अनेक शताब्दियाँ पहले शोता रूस्तावेली ने अपना अमर महाकाव्य 'बाघ की खाल में सूरमा।' रचकर जार्जियाई लोगों को भेंट कर दिया। जार्जियाई लोग बहुत अरसे तक महाकवि की कब्र की खोज करते रहे, उन्होंने पूरब के सभी देश छान मारे। 'महाकवि की कब्र तो कहीं नहीं है, लेकिन उनके जीवित हृदय की धड़कन हर जगह सुनी जा सकती है,' एक औरत ने कहा।

मानव जाति काकेशिया की चट्टान से बँधे हुए प्रोमेथ्यू की दास्तान पढ़ती है।

अरब लोग हजारों सालों से कविताएँ पढ़-पढ़कर सिर धुनते हैं।

हजारों साल पहले हिंदुओं ने ताड़ के पत्तों पर अपने सत्यों और भ्रांतियों को लिखा। मैंने काँपते हाथों से इन पत्तों को छुआ और अपनी आँखों से लगाया।

तीन पंक्तियोंवाली जापानी कविता वास्तव में ही बड़ी लालित्यपूर्ण है! कितनी प्राचीन है चीन की भाषा जिसमें हर अक्षर, अधिक सही तौर पर हर चिह्न के पीछे एक पूरी धारणा छिपी हुई है!

अगर ईरान के शाह आग और तलवार के बजाय फिरदोसी की बुद्धिमत्ता, हफीज की मुहब्बत, शेख सादी का साहस और अबीसिन के विचार लेकर दागिस्तान आते तो उन्हें यहाँ से सिर पर पाँव रखकर न भागना पड़ता।

नीशापुर में मैं उमर खय्याम की कब्र पर गया। वहाँ मैंने सोचा - 'मेरे दोस्त खय्याम! ईरान के शाह की जगह अगर तुम हमारे यहाँ आए होते तो पहाड़ी जनगण ने कितनी खुशी से तुम्हारा स्वागत किया होता!'

बीजगणित का जन्म हो चुका था और हम गिनती करना भी नहीं जानते थे। भव्य महाकाव्य गूँजते थे और हम 'माँ' शब्द भी नहीं लिख सकते थे।

रूसी सैनिकों से ही हमारा पहले वास्ता पड़ा और रूसी कवियों से हमारा बाद में परिचय हुआ।

अगर पहाड़ी लोगों ने पुश्किन और लेर्मोंतेव को पढ़ा होता तो शायद हमारा इतिहास दूसरा ही मार्ग अपना लेता।

जब किसी पहाड़ी आदमी को लेव तोलस्तोय की 'हाजी-मुरात' पुस्तक पढ़कर सुनाई गई तो उसने कहा - 'ऐसी बुद्धिमत्तापूर्ण पुस्तक तो मानव नहीं, भगवान ही लिख सकता था।'

पुस्तक के लिए जो कुछ चाहिए, हमारे यहाँ वह सब कुछ था। दहकता हुआ प्यार, वीर-नायक, दुखद घटनाएँ, कठोर प्रकृति, केवल स्वयं पुस्तक ही नहीं थी।

रहा वास्ता कितने ही दुख-दर्दों से इस धरती का
और ईर्ष्या से जलते मर्दों ने ले अपने खंजर,
कई पहाड़ी देज्देमोना को हाथों से कत्ल किया
निर्दयता से चला दिए थे खंजर उनकी छाती पर।

सदियों के लंबे अरसे में, क्या-क्या यहाँ नहीं बीता
उच्च पर्वतों की इस धरती, मानो दुनिया की छत पर,
यहाँ जूलियट औ, ओफलियाँ, हुए अनेकों ही हेमलेट
हुआ सभी कुछ किंतु यहाँ पर, पैदा हुआ न शेक्सपियर।

यहाँ मधुर संगीत गूँजता, करती हैं नदियाँ कलकल,
यहाँ तराने पक्षी गाएँ, निर्झर झरते हैं झरझर,
किंतु बाख तो फिर भी कोई, इस धरती पर नहीं हुआ
और न गूँजा यहाँ बिथोवन की रचनाओं का ही स्वर।

किसी जूलियट के जीवन का दुखद अंत जब होता था

कौन यहाँ करते थे चर्चा, उसका हाल बताते थे?
वही लोग जो उसे मारकर, बदला अपना लेते थे
और न कवि तो उसके दुख की, गौरव-गाथा पाते थे।

कुमुख गाँव के करीब तैमूर के गिरोहों के साथ भयानक लड़ाई के बाद पहाड़ी लोग जब जीत का माल लूट रहे थे तो एक मुर्दा सैनिक की जेब से उन्हें पुस्तक मिल गई। हमारे सैनिकों ने उसके पृष्ठ उलटे-पलटे, अक्षरों पर झुककर उन्हें बहुत गौर से देखा। लेकिन उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो उन्हें पढ़ सकता हो। तब पहाड़ियों ने उसे जला देना चाहा, उसे फाड़कर उसके पृष्ठों को हवा में उड़ा देना चाहा। लेकिन समझदार और बहादुर पार्तू-पातीमात ने आगे बढ़कर कहा -

'दुश्मन से मिले हथियारों के साथ इसे भी सँभालकर रखिए।'

'हमें इसकी क्या जरूरत है? हममें से तो कोई भी इसे पढ़ नहीं सकता।'

'अगर हम नहीं पढ़ सकते तो हमारे बेटे-पोते इसे पढ़ेंगे। आखिर हम तो यह नहीं जानते कि इसमें क्या लिखा हुआ है। हो सकता है कि इसी में हमारा भाग्य छिपा हो।'

अरबों के साथ सुराकात तानुसीन्स्की की लड़ाई के वक्त एक अरब कैदी ने पहाड़ी लोगों को अपना घोड़ा, हथियार और ढाल भी दे दी, लेकिन किताब को छाती के साथ चिपकाकर छिपा लिया, उसे नहीं देना चाहा। सुराकात ने घोड़ा और हथियार कैदी को लौटा दिए, मगर किताब छीन लेने का हुक्म दिया। उसने कहा -

'घोड़ों और तलवारों की तो खुद हमारे पास भी कुछ कमी नहीं है, मगर किताब एक भी नहीं है। तुम अरबों के पास तो अनेक किताबें हैं। तुम्हें इस एक को देते हुए क्यों अफसोस हो रहा है?'

सैनिकों ने हैरान होकर अपने सेनापति से पूछा -

'हमें इस किताब का क्या करना है? हम तो न केवल इसे पढ़ना ही नहीं जानते, बल्कि हमें तो इसे ढंग से हाथ में लेना भी नहीं आता। घोड़े और हथियारों के बजाय इसे लेना क्या समझदारी की बात है?'

'वह वक्त आएगा, जब इसे पढ़ा जाएगा। वह वक्त आएगा, जब यह पहाड़ी लोगों के लिए चेर्केस्का, समूरी टोपी, घोड़े और खंजर की जगह ले लेगी।'

दागिस्तान पर हमला करनेवाले ईरान के शाह की जब खासी पतली हालत हो गई तो उसने अपना सोना-चाँदी और हीरे-मोती, जिन्हें हमेशा अपने साथ रखता था, जमीन में गाड़ दिए। इस गड्ढे के ऊपर शिला-खंड रखकर उस पर सूचना के अक्षर खोद दिए गए। साक्षियों को शाह ने मरवा डाला। लेकिन मुरताज-अली खान ने फिर भी इस गड्ढे को ढूँढ़ लिया और सोने-चाँदी और हीरे-मोतियों से भरे संदूक - वह सभी कुछ जो ईरान के शाह ने अब तक लूटा था - निकाल लिए। बीस खच्चरों पर शाह की यह सारी दौलत लादकर लाई गई। बाकी कीमती चीजों के अलावा फारसी की कुछ किताबें भी थीं। मुरताज-अली खान के पिता सुरहात ने, जिसके दोनों हाथ कटे हुए थे, यह सारा खजाना देखकर कहा -

'मेरे बेटे, बहुत बड़ा खजाना ढूँढ़ा है तुमने। इसे सैनिकों में बाँट दो, अगर चाहो तो बेच दो। यह तो हर हालत में खत्म हो जाएगा। लेकिन सौ साल बाद भी पहाड़ी लोगों को इन किताबों में छिपे हुए मोती मिल जाएँगे। तुम इन्हें नहीं दो। ये सभी कीमती चीजों से ज्यादा मूल्यवान हैं।'

इमाम शामिल का मुहम्मद ताहिर अल-कारखी नाम का सेक्रेटरी था। शामिल उसे कभी भी खतरनाक जगह पर नहीं जाने देता था। मुहम्मद ताहिर को इस कारण बहुत बुरा लगता था। एक दिन उसने कहा -

'इमाम, शायद तुम मुझपर भरोसा नहीं करते हो? मुझे जंग के मैदान में जाने दो।'

'अगर सब मर जाएँ तुम्हें तो तब भी जिंदा रहना चाहिए। तलवार हाथ में लेकर लड़ तो कोई भी सकता है, मगर इतिहास लिखने का काम हर कोई नहीं कर सकता। तुम हमारे संघर्ष की किताब लिखते रहो।'

मुहम्मद ताहिर अपनी किताब पूरी किए बिना ही इस दुनिया से कूच कर गया। लेकिन उसके बेटे ने पिता के अधूरे छोड़े गए काम को पूरा किया। इस पुस्तक का नाम है - 'कुछ लड़ाइयों में इमाम की तलवार की चमक।'

इमाम शामिल का बहुत बड़ा निजी पुस्तकालय था। पच्चीस सालों तक वह दसियों खच्चरों पर उसे जहाँ-तहाँ ले जाता रहा। उसके बिना तो उसे चैन ही नहीं मिलता था। बाद में, गुनीब पर्वत पर कैदी बनने के वक्त उसने अनुरोध किया कि उसकी तलवार और किताबें उसके पास ही रहने दी जाएँ। कालूगा में रहते हुए वह किताबें पाने के लिए लगातार मिन्नत करता रहा। वह कहा करता था -

'तलवार के कारण तो बहुत लड़ाइयाँ हारी गईं, लेकिन किताब के कारण एक भी नहीं।'

इमाम का बेटा जमालुद्दीन जब रूस से लौटा तो इमाम ने उसे पहाड़ी पोशाक पहनने को मजबूर किया, लेकिन उसकी किताबों को छुआ तक नहीं। जिन लोगों ने इमाम से यह कहा कि 'काफिरों की किताबें' नदी में फेंक दी जाएँ, उसने उन्हें यह जवाब दिया - 'इन किताबों ने हमारी धरती पर, हम पर गोलियाँ नहीं चलाईं। इन्होंने हमारे गाँव नहीं जलाए, लोगों को मौत के घाट नहीं उतारा। जो कोई किताब की बेइज्जती करेगा, वह उसकी बेइज्जती कर देगी।'

काश, अब हम यह जान सकते कि जमालुद्दीन पीटर्सबर्ग से कौन-सी किताबें अपने साथ लाया था?

अपनी लिखित भाषा न होने के कारण दागिस्तान के लोग परायी भाषाओं में कभी-कभार एकाध शब्द लिखते थे। ये पालनों, खंजरों, छत के तख्तों और कब्रों के पत्थरों पर लिखे जानेवाले आलेख होते थे जो अरबी, तुर्की, जार्जियाई और फारसी में लिखे जाते थे। इस तरह के आलेखों, बेल-बूटों की संख्या बहुत बड़ी है, इन सभी को जमा करना संभव नहीं। लेकिन अपनी भाषा में पढ़ने के लिए कुछ भी नहीं। अपना नाम तक न लिखना जाननेवाले पहाड़ी लोग तलवारों, घोड़ों और पर्वतों के रूप में इसे अभिव्यक्त करते थे।

कब्रों पर लिखे गए कुछ आलेखों का अनुवाद किया जा सकता है -

'यहाँ बुग्ब-बाई नाम की औरत दफन है जो अपनी मनपसंद उम्र तक जिंदा रही और दो सौ साल की होने पर मरी', 'यहाँ कूबा-अली दफन है जो अदजारखान के साथ हुई लड़ाई में तीन सौ साल की उम्र में मारा गया।'

बहुखंडीय इतिहास की जगह कुछ दयनीय अंश, बिखरे-बिखराए शब्द और वाक्य।

जब मैं साहित्य-संस्थान का विद्यार्थी था तो पके बालोंवाले दयालु सेर्गेई इवानोविच रादत्सिग हमें प्राचीन यूनानी साहित्य पढ़ाते थे। उन्हें प्राचीन साहित्य मुँहजबानी याद था, वह प्राचीन यूनानी भाषा में बड़े-बड़े खंड सुनाते थे, प्राचीन यूनानियों के दीवाने थे और उन्हें अपने मन पर पड़नेवाली उनकी छापों की चर्चा करना बहुत अच्छा लगता था। प्राचीन कवियों की कविताओं का वह ऐसे पाठ करते थे मानो स्वयं रचयिता कवि उनका पाठ सुन रहे हों, मानो पक्के मुसलमान की तरह डरते हों कि कहीं अचानक कुरान पढ़ते हुए कोई गलती न हो जाए।

उनका ख्याल था कि वह हमें जो कुछ बताते हैं, हम बहुत पहले से और बड़ी अच्छी तरह जानते हैं। वह तो इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे कि कोई 'ओदिसी' या 'इलियाड' से अनजान हो सकता है। वह यही समझते थे कि जंग के मोरचे से अभी-अभी लौटनेवाले ये नौजवान चार साल पहले यानी जब लड़ाई में नहीं गए थे तो बस होमर, एसखील और एवरीपीड को ही पढ़ते रहते थे।

एक बार यह देखकर कि यूनानी साहित्य की हमारी जानकारी कितनी कम है, वह लगभग रो पड़े।

मैंने तो उन्हें खास तौर पर बहुत हैरान किया। दूसरे तो थोड़ा-बहुत जानते ही थे। जब उन्होंने मुझसे होमर के बारे में पूछा तो मैं मक्सिम गोर्की के ये शब्द याद करके कि उन्होंने सुलेमान स्ताल्स्की को बीसवीं सदी का होमर कहा था, उनके बारे में बताना शुरू कर दिया। बड़े दुख के साथ मेरी ओर देखकर प्रोफेसर ने मुझसे पूछा -

'तुम किस जगह बड़े हुए हो कि तुमने 'ओडिसी' भी नहीं पढ़ी?'

मैंने जवाब दिया कि मैं दागिस्तान में बड़ा हुआ हूँ, जहाँ किताब कुछ ही वक्त पहले प्रकट हुई है। अपने अपराध की थोड़ी सफाई देने के लिए मैंने अपने को असभ्य पहाड़िया बताया। तब प्रोफेसर ने वे शब्द कहे जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकूँगा -

'नौजवान, अगर तुमने 'ओडिसी' नहीं पढ़ी तो तुम असभ्य पहाड़ियों से भी गए-बीते हो। तुम तो निरे जंगली और बर्बर हो।'

अब मैं जब कभी यूनान और इटली जाता हूँ तो अपने प्रोफेसर, उनके शब्दों और प्राचीन साहित्य के प्रति उनके रवैये की मुझे अक्सर याद आती रहती है।

लेकिन अगर मैं रूसी भाषा भी बड़ी मुश्किल से बोल और लिख सकता था तो होमर, सोफोकल, अरस्तू और हेसिओड को कैसे जान सकता था? दुनिया में बहुत कुछ ऐसा था जो दागिस्तान की पहुँच के बाहर था, बहुत-से खजाने उसके लिए नहीं थे।

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि हमारे गायक तातम मुरादोव का गाना सुनते हुए माक्साकोवा कैसे रोई थी। मुरादोव ने किसी भी तरह की तालीम हासिल नहीं की थी और उस वक्त उसकी उम्र साठ के करीब थी। सभी ने यह

सोचा था कि गायक की आवाज ने माक्साकोवा के दिल को छू लिया है, लेकिन उसने कहा था -

'में तो अफसोस के कारण रो रही हूँ। कैसी गजब की आवाज है! अगर ठीक वक्त पर इस गायक को शिक्षक मिल जाते तो इसने अपने गाने से दुनिया को हैरत में डाल दिया होता। लेकिन अब कुछ भी नहीं हो सकता।'

दागिस्तान के भाग्य के बारे में सोचते हुए मुझे उक्त शब्द बहुत बार याद आते हैं। वे केवल तातम के बारे में ही नहीं कहे गए हैं। क्या हमारे अनेक गायक, योद्धा, चित्रकार, पहलवान अपने गुणों, अपनी प्रतिभा का परिचय दिए बिना ही कब्रों में नही चले गए हैं? उनके नाम अज्ञात ही रए गए। शायद हमारे भी अपने शाल्यपिन, अपने पोद्दूब्नी थे। अगर ओसमान अब्दुर्रहमानोव को, हमारे हरकुलीस को ताकत के साथ उस कुश्ती की कला की शिक्षा और परंपरागता भी मिल जाती तो शायद कोई भी उससे जीत न सकता। लेकिन उसे शिक्षा देनेवाला कोई नहीं था। हमारे यहाँ संगीत-महाविद्यालय, थियेटर, इन्स्टीट्यूट, अकादमियाँ, यहाँ तक कि स्कूल भी नहीं थे।

> शिला-लेख बीती सदियों की नहीं बताएँ गाथाएँ
> उनसे वंचित, किंतु हमारी राह नहीं रुक जाएगी,
> तलवारों से अरे, बुजुर्गों ने जो किस्से लिखे कभी
> उसे लेखनी ही अब मेरी, आगे और बढ़ाएगी।

पहाड़ी लोग पेंसिल हाथ में लेने, उससे अक्षर लिखने का ढंग नहीं जानते थे। उन शत्रुओं को, जो उनसे घुटने टेकने को कहते थे, वे उन्हें ठेंगा ही दिखाते थे। या फिर कुछ और साफ ढंग से इसे चित्रित करके दुश्मन के पास भेज देते थे।

दागिस्तान के बारे में कहा जाता था - 'यह देश पत्थर के संदूक में एक ऐसे गीत की तरह पड़ा हुआ है जिसको न लिखित रूप दिया गया है और न गाया गया है। कौन इसे निकालेगा, कौन इसके बारे में गाएगा और लिखेगा?'

अक्षर, शब्द, पुस्तकें - यही उस ताले की चाबी हैं जो उस संदूक पर लगा हुआ है। दागिस्तान के भारी और सदियों पुराने तालों की चाबियाँ किनके हाथों में हैं?

विभिन्न लोग इन तालों के पास आए और कभी-कभी तो उन्होंने संदूक के भीतर झाँकने के लिए उसका ढक्कन भी ऊपर उठाया। दागिस्तान के लोग जब खुद तो कलम हाथ में लेना भी नहीं जानते थे, उस वक्त भी अनेक मेहमानों, यात्रियों और विद्वानों-अनुसंधानकों ने दूसरी भाषाओं - अरबी, फारसी, तुर्की,

यूनानी, जार्जियाई, आर्मीनी, फ्रांसीसी और रूसी में दागिस्तान के बारे में लिखा था...

दागिस्तान, मैं पुराने पुस्तकालयों में तुम्हारा नाम खोजता हूँ और उसे विभिन्न भाषाओं में लिखा पाता हूँ। देर्बेंत, कुबाची, चिरके और खूँजह का उल्लेख मिलता है। यात्रियों को धन्यवाद। वे तुम्हारी पूरी गहराई और जटिलता की तह तक नहीं जा सके, फिर भी उन्हीं ने सबसे पहले तुम्हारे नाम को हमारे पर्वतों की सीमाओं से बाहर पहुँचाया।

इसके बाद पुश्किन और लेर्मोंतोव ने अपने शब्द कहे -

तब जलती दोपहरी में मैं दागिस्तानी घाटी में
पड़ा हुआ था निश्चल, सीने में अपने गोली लेकर...

अद्भुत पंक्तियाँ हैं ये! और बेस्तूजेव-मारलीन्स्की ने अपनी 'अम्मालात-बेक' रचना लिखी। देर्बेंत... कब्रिस्तान में अभी तक मारलीन्स्की द्वारा उसकी मंगेतर की कब्र पर लगाया गया पत्थर कायम है।

अलेक्सांद्र द्यूमा दागिस्तान में आए थे। पोलेजायेव ने अपनी लंबी कविताएँ 'एरपेली' और 'चीर-यूर्त' रचीं। हर किसी ने तुम्हारे बारे में भिन्न-भिन्न ढंग से लिखा है, लेकिन किसी ने भी तुम्हें इतनी गहराई में जाकर और इतनी अच्छी तरह से नहीं समझा जितनी अच्छी तरह से जवान लेर्मोंतोव और बुजुर्ग तोलस्तोय ने। तुम्हारे इन गायकों के सामने मैं अपना पके बालोंवाला सिर झुकाता हूँ, ये किताबें मैं वैसे ही पढ़ता हूँ जैसे मुसलमान कुरान को।

बेटे के नामकरण-संस्कार का दिन-बड़ी खुशी का दिन होता है। ऐसा दिन तो वही दिन होना चाहिए, जब दागिस्तान के बेटों ने पहली बार अपनी मातृभाषाओं में उसके बारे में लिखा। मुझे याद है कि जब मेरी पहली अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना ने मुझे ब्लैक बोर्ड के पास बुलाकर तुम्हारा नाम लिखने को कहा था तो मैंने कौन-सी गलती की थी। मैंने 'द' को बड़े अक्षर के रूप में लिखे बिना दागिस्तान लिख दिया था। वेरा वसील्येव्ना ने मुझे समझाया कि दागिस्तान एक व्यक्तिवाचक नाम है और इसलिए इसका पहला अक्षर बड़ा होना चाहिए। तब मैंने बड़ा 'द' लिखकर उसके आगे दागिस्तान यानी 'ददागिस्तान' लिख दिया। मुझे लगा कि बड़ा और छोटा, दोनों 'द' लिखने चाहिए। ऐसा करना भी गलत था। इसके बाद तीसरी बार मैंने सही लिखा।

क्या तुम्हें भी इसी तरह से तुम्हारा नाम लिखना नहीं सिखाया गया, दागिस्तान? क्या तुम्हें भी इसी तरह से अपने बारे में बताना नहीं सिखाया गया है? वर्णमाला चुनी। तुमने अरबी, लातीनी, रूसी अक्षरों में लिखा। बहुत-सी गलतियाँ हुईं। क्योंकि जो कुछ बड़े अक्षर से लिखा जाना चाहिए था, उसे छोटे अक्षर से लिखा गया। क्योंकि जो कुछ छोटे अक्षर से लिखा जाना चाहिए था, वह बड़े अक्षर से लिखा गया। केवल तीसरी बार ही तुम सही ढंग से लिखना सीख पाए, मेरे दागिस्तान। दागिस्तान की कुछ पहली पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के नाम प्रस्तुत हैं - 'भोर का तारा', 'नई किरण', 'लाल पहाड़िया', 'पहाड़ी हिरन', 'पहाड़ी कहावतें', 'कुमिक लोक-कथाएँ', 'लाक-जाति की धुनें', 'दारगीन दास्तानें', 'लेज्गीन कविताएँ', सोवियत दागिस्तान'। ये सभी दागिस्तान की मातृभाषाओं में हैं और केवल नाम ही नहीं, बल्कि पंख हैं।

1921 में दागिस्तान के प्रतिनिधिमंडल के साथ बातचीत करने के बाद लेनिन ने हमारे पहाड़ी प्रदेश को तीन सर्वाधिक अनिवार्य वस्तुएँ भेजीं - अनाज, कपड़ा और छापेखाने के टाइप। घोड़ा और खंजर दागिस्तान के पास थे। लेनिन ने अनाज के साथ उसे पुस्तक दी। अक्तूबर क्रांति ने दागिस्तानी शिशु के पालने की चिंता की। दागिस्तान ने सागर, खुद अपने को देखा, अपने अतीत और भविष्य को देखा और उसने अपने बारे में खुद लिखना शुरू किया।

सुलेमान स्ताल्स्की ने मक्सिम गोर्की से कहा - 'हम दोनों बूढ़े हो चुके हैं। अपनी जिंदगी जी चुके हैं, दुनिया देख चुके हैं। हम दोनों की किताबें हैं। लेकिन तुम कागज पर लिखते हो, तुम पढ़े-लिखे हो। मैं गाता हूँ। कारण कि मुझे लिखना नहीं आता। हम रूस और दागिस्तान के साकार रूप हैं। रूस पढ़ा-लिखा है। दागिस्तान में अधिकांश लोग अभी तक अपना नाम तक लिखना नहीं जानते। वे हस्ताक्षर करने के बजाय अँगूठा लगाते हैं। क्या तुम ऐसे पढ़े-लिखे लेखकों का दल यहाँ नहीं भेज सकते ताकि वे सारे सोवियत देश, सारी दुनिया को हम दागिस्तानियों के बारे में बता सकें?'

सुलेमान स्ताल्स्की और गोर्की की बातचीत का एफ्फंदी कापीयेव अनुवाद कर रहा था। गोर्की ने सुलेमान का अनुरोध पूरा करने का वचन दिया, किंतु कापीयेव की ओर इशारा करते हुए यह भी कहा कि अब दागिस्तान में पढ़े-लिखे और प्रतिभाशाली युवजन की पीढ़ी तैयार हो गई है। और यह कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि इस जनतंत्र की सभी भाषाओं में अपनी धरती के बारे में खुद दागिस्तानी ही

लिखें। कारण कि, जैसा कि आपके यहाँ कहा जाता हे, 'घर की हालत के के बारे में उसकी दीवारें ही सबसे ज्यादा अच्छी तरह जानती हैं।'

गोर्की ने जिन युवजन का उल्लेख किया था, वे अब बड़े और बूढ़े भी हो चुके हैं। वे दागिस्तान के बारे में पुस्तकें लिख चुके हैं, और भी लिखेंगे। पहले वक्तों में पिता अपने बेटों के लिए विरासत में तलवार और पंदूरा छोड़ते थे। अब-लेखनी और पुस्तक। दागिस्तान में ऐसा दिन नहीं होता, जब किसी के यहाँ बेटे का जन्म न होता हो। यहाँ ऐसा दिन भी नहीं होता जब कोई नई पुस्तक प्रकाशित न हो। हर कोई अपने ही दागिस्तान के बारे में लिखता है। पचास से अधिक सालों तक मेरे पिता जी लिखते रहे। पूरी जिंदगी ही काफी नहीं रही। अब मैं लिखता हूँ। लेकिन मैं भी वह सब नहीं लिख पाऊँगा जो लिखना चाहता हूँ। इसलिए मैं बच्चों के सिरहाने खंजर के बजाय लेखनी और कोरी कापी रखता हूँ। मेरे पिता जी का और मेरा एक ही दागिस्तान है। लेकिन हमारी लेखनियों की भाषाओं में वह कितना भिन्न है। हमारी अपनी-अपनी लिखावट, अपने-अपने अक्षर, अपना-अपना ढंग और अपना तराना है। अपने लंबे रास्ते पर बोझ ढोनेवालों को बदलते हुए यह बैलगाड़ी इसी तरह से चलती जा रही है।

पिता जी कहा करते थे - 'वही लिखो जो जानते हो और लिख सकते हो। और जो नहीं जानते, उसे दूसरों की किताबों में पढ़ो।'

किताब

प्यार करो तुम तो पुस्तक को जिसके पृष्ठ उदार बड़े
इंतजार है उसको तेरा, कभी न जो धोखा देती,
चाहे तुम हो धनी खान या चाहे हो निर्धन, कंगले
हर हालत में वफादार वह, नजर न कभी फेर लेती।

बड़े जतन से, बड़ी लगन से, पुस्तक के पन्ने पलटो
उसकी तो प्रत्येक पंक्ति में सूझ-बूझ का शब्द भरा,
ज्ञान-पिपासा तीव्र रहे चिर, बेटे, तुम इतना जानो
पाओगे संतोष उसी से, ज्ञान उसी में जो बिखरा।

यह तो है वह अस्त्र, हाथ से नहीं गँवाना तुम जिसको
वार न बेशक करो, रहेगा, साथी यह फिर भी सच्चा,
बुरा न मानेगा यदि फेंको, इससे यदि तुम मुँह मोड़ो

इतना बढ़िया मीत चही है, दोस्त यही इतना अच्छा।

करो दोस्ती सदा ज्ञान से, उसके घर में सब कुछ है
उसके फल हैं मीठे-मीठे, हरे-भरे उसके उपवन,
स्वागत वहाँ सदा ही होगा, तुम वांछित मेहमान वहाँ
जाओ, वहाँ बटोरो तुम फल, जितने चहो, आजीवन।

तुम जीवन, अपने सपनों का, पुस्तक से नाता जोड़ो
और समझ लो, अनजाने ही, कवि अंतर में छाएगा,
जो मन में, कह दो कविता से, उसकी ही मुस्कान मधुर
देगी सब प्रश्नों के उत्तर, हृदय सांत्वना पाएगा।

जब जवान कवि अपनी कविताएँ, लेकर पिता जी के पास आते तो सबसे पहले तो वह उनकी लिखावट की तरफ ध्यान देते। क्योंकि 'जैसी हलरेखा, वैसा ही खेत का मालिक।' इसके बाद वह गलतियाँ ठीक करते, विरामचिह्न लगाते। अफसोस से अपना सिर हिलाते हुए वह मानो कहते - सही ढंग से लिखना सीखो। कुछ जवान लोग दबी जबान से यह ख्याल जाहिर करते - '20 वीं शताब्दी के होमर' अनपढ़ थे। 'मुझे तो यह मालूम नहीं था!' पिता जी जवान 'होमर' को जवाब देते। दागिस्तान में अभी भी ऐसे अनेक 'होमर' हैं। कविता में व्याकरण की गलती से भी पिता जी को बड़ी झुँझलाहट होती थी। जब पिता जी की एक कविता छापे की अनेक भूलों के साथ समाचारपत्र में छपी थी तो उन्होंने यह कविता लिखी थी -

अचानक गीत पर मेरे
मुसीबत आज आई है,
उसे अखबार में भेजा
छपाने को, दुहाई है!

बिगाड़ा इस तरह उसको
बुरा यों हाल कर डाला,
कि जैसे बेंत, लाठी से
कहीं उसका पड़ा पाला।

नशे में धुत लोगों ने
दबोचा हो उसे जैसे,
पिटाई खूब कसकर की
नजर आता है कुछ ऐसे।

कि शायद राह में उस पर
पड़े मुक्के, पड़े घूँसे,
न जाने किस तरह निकला
बचाकर जान दुश्मन से?

चौपाई को पकड़कर
इस तरह गर्दन मरोड़ी हे,
हुआ है अर्थ ही गायब
कि ऐसे टाँग तोड़ी है।

कि दोहों पर पड़े कोड़े
नजर कुछ इस तरह आता,
भरे आहें, कराहें वे
न उनको चैन मिल पाता।

बिचारी खोपड़ी घायल
न गिनना घाव संभव है,
अजब यह बात है सचमुच
भयानक खेल यह सब है।

न अँतड़ियाँ दिखाई दें
नजर है गीत की धुँधली,
पियक्कड़ की सिपाही ने
कि जैसे हो पिटाई की।

अगर हर अंक में हों
गलतियाँ इस ढंग की दसियों,

तुम्हारी ख्याति फैलेगी
अरे हीरो, दूर कोसों।

करें आलोचना अपनी
सुधरती भूल है तब ही,
कि यह आलोचना छापो
यही अनुरोध है अब भी।

मेरे पिता जी... उन्हें जाननेवाला हर व्यक्ति शायद अपने ढंग से उनकी कल्पना करता था।

जाहिर है कि वह जमीन जोतते थे, घास काटते थे, बैल-गाड़ी पर घास लादते थे, घोड़े को घास खिलाते थे और ऊस पर सवारी करते थे। लेकिन मैं उन्हें हाथ में किताब लिए हुए ही देखता हूँ। वह किताब को हमेशा इस तरह से हाथ में लिए रहते थे मानो वह हाथों से निकलकर किसी भी क्षण उड़ सकती हो। मेहमानों को बहुत चाहते हुए भी वह उवस वक्त बेचैनी और घबराहट अनुभव करते थे, जब कोई अचानक आकर उनके अध्ययन में बाधा डाल देता था, मानो कोई उनकी महत्वपूर्ण प्रार्थना को भंग कर देता हो। पिता जी जब कुछ पढ़ते होते तो माँ दबे पाँव चलतीं, होंठों पर लगातार उँगली रखे हुए सबको चुप रहने का संकेत करतीं और हमें फुसफुसाकर बात करने को विवश करतीं -

'शोर नहीं करो, तुम्हारे पिता जी काम कर रहे हैं।'

वह ठीक ही समझती थीं कि लेखक के लिए किताबें पढ़ना - यह उसका काम ही है।

खुद वह कभी-कभी हिम्मत बटोरकर यह जानने के लिए उनके कमरे में चली जाती थीं कि उन्हें किसी चीज की जरूरत तो नहीं, उनकी दवात में स्याही तो खत्म नहीं हो रही। पिता जी की दवात पर माँ कड़ी नजर रखती थीं और उसमें कभी भी स्याही नहीं सूखने देती थीं।

पिता जी के जीवन में अगर खुशी के दो दिन भी आए तो उन्हें ये किताबों की बदौलत ही नसीब हुए थे।

पिता जी के जीवन में अगर गम के दो दिन भी आए थे तो ये भी उन्हें किताबों ने ही दिए।

उन किताबों ने, जिन्हें वह पढ़ते थे और जिन्हें वह लिखते थे।

लोग उनसे जो कुछ भी माँगते, वह उन्हें उसे देने से कभी इनकार नहीं कर सकते थे। किसी चीज के अपने पास होते हुए उससे इनकार करने को पिता जी सबसे बड़ा झूठ और सबसे बड़ा पाप मानते थे। जब कोई उनसे उनकी कोई प्यारी पुस्तक माँगता था, तब तो उनकी हालत सचमुच दयनीय हो जाती थी। पुस्तक दे दी गई थी, वह पराये हाथों में थी, लेकिन पिता जी के हाथ अभी भी उसकी तरफ फैले हुए थे।

जब पुस्तक माँगकर ले जानेवाला व्यक्ति बहुत देर तक उसे नहीं लौटाता था तो पिता जी उसे लिखते थे - 'मैं अपने उस दोस्त के लिए बहुत उदास हो रहा हूँ जिसे तुम पिछली बार अपने साथ ले गए थे। क्या तुम उसे लौटाने की नहीं सोच रहे हो?'

मेरे पिता जी सात बहनों के एकमात्र भाई थे (परिवार में एकमात्र पुरुष) और ये सभी छोटी उम्र में ही यतीम हो गए थे। पिता जी ने अपना जन्म-गाँव भी जल्द ही छोड़ दिया था। यतीमों की सरपरस्ती करनेवाले चाचा ने यह कहकर उन्हें दूसरे गाँव के मदरसे में पढ़ने भेज दिया कि बड़े गाँव में अक्ल भी बड़ी होती है। तब से पिता जी कंधे पर ख़ुरजी रखे या झोला लटकाए एक गाँव से दूसरी गाँव में जाते रहे - उनके एक थैले में किताबें होती थीं और दूसरे में भुना हुआ आटा। कहना चाहिए कि वह धनी होकर वहाँ से लौटे। गाँव-गाँव भटकने के सालों में उनका ज्ञान बहुत समृद्ध हो गया। गाँव-पंचायत में उस वक्त उनसे कहा गया कि अगर तुम अपने ज्ञान और प्रतिभा को एक बैलगाड़ी में जोत दोगे तो बहुत लंबी यात्रा करोगे।

पंचायत की भविष्यवाणी ठीक निकली। पिता जी का नाम प्रसिद्ध हो गया। उनकी बहुत-सी कविताएँ तो लोकोक्तियाँ बन गईं।

पिता जी ने बड़ों और बच्चों की लिए, जो इस दुनिया में आते और इस दुनिया से जाते है, उन सभी के लिए बहुत कुछ लिखा। उन्होंने कविताएँ, खंड-काव्य, नाटक, गल्पें और कथाएँ लिखीं। उनकी लिखावट सीधी और अच्छी थी। उनकी भाषा भी ऐसी ही थी। हमजात की अच्छी लिखावट के कारण ही उनकी जवानी के दिनों में उनसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों - निर्णयों और जनता के नाम अपीलों - की नकल करने का अनुरोध किया जाता था। वह विभिन्न लिपियों - अरबी, लातीनी और रूसी - का उपयोग करते थे। वह दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ लिखते थे।

उनसे यह पूछा जाता -

'बाएँ से दाएँ क्यों लिखते हो?'

'क्योंकि बाईं ओर दिल है, प्रेरणा है। हम जिस चीज को भी बहुत ज्यादा प्यार करते हैं, उसे अपनी छाती के बाईं ओर चिपका लेते हैं।'

'दाएँ से बाएँ क्यों लिखते हो?'

'क्योंकि आदमी में दाईं ओर ताकत होती है, दायाँ हाथ है। हम दाईं आँख से ही निशाना साधते हैं।

जाहिर है कि ये शब्द मजाक से कहे गए थे, किंतु विभिन्न लिपियाँ सीखना कुछ मजाक नहीं था। हाँ, यह सही है कि कविताएँ तो वह लगभग सदा ही अपनी मातृभाषा यानी अवार भाषा में लिखते थे।

पिता जी ने कुछ कविताएँ अरबी में भी रचीं। मुख्यतः अंतरंग कविताएँ। परिवार का कोई भी सदस्य उन्हें नहीं पढ़ सकता था। किंतु ऐसी कविताएँ बहुत कम हैं। हमजात तो सिद्धांत के रूप में ही ऐसी कविताओं के विरोधी थे। वह कहा करते थे -

'कविताएँ ऐसी नहीं होनी चाहिए कि माँ, बेटी या बहन उसे न पढ़ सके। मुझे वे फिल्में बिलकुल पसंद नहीं हैं जिन्हें सोलह साल तक के बच्चों को देखने की इजाजत न हो।'

पिता जी अक्सर अरबी लिपि का उपयोग करते थे। उन्हें उसके अक्षर, उनकी बनावट बहुत पसंद थी, उन्हें उनमें सुंदरता दिखाई देती थी। घसीटवाली और भद्दी लिखावट तो उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। एक बार उन्हें अपने एक पुराने साथी का अरबी में लापरवाही से लिखा हुआ खत मिला और उन्होंने एक कविता में उसका इस प्रकार मजाक उड़ाया -

एक तुम्हारा अक्षर ऐसे, जैसे फटी हुई खंजड़ी
बिंदु बनाया ऐसे, जैसे भारी, गोल-गोल पत्थर
छत गिर जाए ज्यों छप्पर की, लगे दूसरा यों अक्षर,
नजर आ रहे केवल खंभे, हैं अवशेष टिके जिन पर।
इस बदकिस्मत अक्षर पर तो, शिला-खंड मानो रक्खा
कैसे इसे दबाया तुमने, कैसे ऐसा गजब किया?
चौथे अक्षर की भौंहों तक, टोपी की नीचे खींचा
पूरा-पूरा पृष्ठ पंक्ति में, तुमने ही मानो भींचा।
शायद नहीं कलम से, बिल्ली के पंजे से लिखते हो?

हर अक्षर है पेड़ की झाड़ी, बिखरी जिसकी शाखाएँ
जंगल-सा हर पृष्ठ कि जिसमें प्रबल बवंडर आ जाएँ
जिसमें चारों ओर कुल्हाड़े, जोर-जोर से चल जाएँ,
सीखा कहाँ इस तरह लिखना, समझ न हम तो यह पाएँ?

इस कविता ने अपने वक्त में बहुत-से लोगों को नाराज किया। कुछ इसलिए नाराज हो गए कि उन्होंने इस कविता को ठीक ढंग से नहीं समझा था और दूसरे इस कारण कि इसे बहुत ही अच्छी तरह समझ गए थे। कुछ लोगों ने ऐसा माना कि हमजात भद्दे ढंग से लिखे गए अरबी के अक्षरों का नहीं, बल्कि अरबी लिपि का मजाक उड़ाते हैं।

लेकिन पिता जी के दिमाग में पूरी लिपि की आलोचना करने का तो ख्याल तक नहीं आया था। उन्होंने तो उन पर चोट की थी जो अपनी लापरवाही के कारण इस लिपि को बिगाड़ते थे, इसका इस्तेमाल करना नहीं जानते थे। पिता जी ने कभी किसी लिपि की बुराई नहीं की थी। जो लोग किसी भी लिपि को बिगाड़ते थे, वह उनको तिरस्कार की नजर से देखते थे।

'यह सही है कि अरबों ने दागिस्तान पर हमला किया था,' पिता जी कहा करते थे, 'लेकिन इसके लिए अरबी लिपि और अरबी भाषा की किताबों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।'

दोपहर के भोजन के बाद गाँव के लोग हमारे घर की छत पर जमा हो जाते थे। पिता जी उन्हें अद्भुत उपन्यासिकाएँ, कहानियाँ और कविताएँ पढ़कर सुनाते थे। अरबी की कविताओं के अनेक छंदों का लयबद्ध संगीत गूँजता रहता था।

पिता जी रूसी भाषा नहीं जानते थे। उन्हें अरबी भाषा में ही चेखोव, तोलस्तोय और रोमेन रोलां को पढ़ना पड़ा। उस समय इनमें से किसी के बारे में भी पहाड़ी लोग कुछ नहीं जानते थे। दूसरे लेखकों की तुलना में पिता जी को चेखोव ज्यादा पसंद थे, चेखोव की 'गिरगिट' कहानी तो उन्हें खास तौर पर बहुत अच्छी लगती थी और उन्होंने उसे कई बार पढ़ा था।

कुल मिलाकर अरबी भाषा का काफी चलन था। कुछ लेखक तो इसलिए अरबी में लिखते थे कि दागिस्तान की कोई अपनी लिपि नहीं थी, कुछ इसलिए कि उन्हें दागिस्तानी भाषाओं की तुलना में अरबी अधिक समृद्ध और सुंदर प्रतीत होती थी। सभी सरकारी कागजात और दस्तावेज अरबी में ही लिखे जाते थे।

सब मकबरों पर अरबी में ही सारे आलेख अंकित किए जाते थे। पिताजी इन आलेखों को बहुत अच्छी तरह पढ़ और समझ सकते थे।

बाद में ऐसे साल आए, जब अरबी भाषा को बुर्जुआ अवशेष घोषित कर दिया गया। अरबी में लिखने और पढ़नेवाले लोगों को बहुत हानि पहुँची, पुस्तकों को भी बहुत हानि पहुँची। दागिस्तान के प्रबोधकों, ज्ञान-प्रचारकों अली बेक ताखो-गोदी और जलाल कोर्कमासोव द्वारा बड़ी मेहनत से जमा किए गए पूरे के पूरे पुस्तकालयों को नष्ट कर दिया गया। जलाल ने सोर्बोना में शिक्षा प्राप्त की थी, वह बारह भाषाएँ जानते थे और अनातोल फ्रांस से उनकी मित्रता थी। पहाड़ी गाँवों में वह पुरानी किताबें जमा करते थे, उनके बदले में हथियार, घोड़ा और गाय तथा बाद में मुट्ठी भर आटा और कपड़े का टुकड़ा देते थे। बहुत-सी पांडुलिपियाँ भी गुम हो गईं। यह ऐसी अक्षम्य हानि थी जिसकी कभी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती।

बहुत दुख-दर्दों से भरी हुई हो तुम, दागिस्तान की क़िताब, तुम्हें विभिन्न लिखावटों, विभिन्न लिपियों में लिखा गया है। इसलिए लिखा गया है कि लेखक ऐसा किए बिना रह नहीं सकते थें, उन्होंने इसे निःस्वार्थ भावना से लिखा है, बदले में किसी प्रकार के पारिश्रमिक की माँग नहीं की। क्रांति ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया है।

'लाल पर्वत' समाचार पत्र निकलने लगा जिसे बाद में 'पहाड़िया' और फिर 'बोल्शेविक पहाड़िया' नाम दिया गया। इसी अखबार में सबसे पहले मेरे पिता जी की कविताएँ छपी थीं। उन्होंने इस समाचार पत्र के साथ अनेक वर्षों तक न केवल सहयोग ही किया, बल्कि वह इसके सेक्रेटरी के रूप में भी काम करते रहे। तब मुझे इस बात से हैरानी हुआ करती थी कि अखबार इतनी जल्दी कविताएँ छाप देता था। सचमुच मैं हैरान हुए बिना रह भी नहीं सकता था। कारण कि पिता जी ने एक दिन पहले जो कविता मेरे सामने लिखी होती थी, अगले दिन उसे अखबार में पढ़ा जा सकता था। बाद में ये कविताएँ पुस्तक का रूप ले लेती थीं। मोटे-मोटे चार खंडों में पिता जी का सारा जीवन, उनका पूरा सृजन संगृहीत है।

पिता जी का उनके अध्ययन-कक्ष में, उनकी पुस्तकों, कलमों, पेंसिलों, लिखे हुए और बिना लिखे कागजों के करीब ही, जिन्हें वह लिख नहीं पाए, देहांत हुआ। खैर, कोई बात नहीं, कुछ दूसरे लोग उन कागजों को लिख देंगे। दागिस्तान अब शिक्षा प्राप्त कर रहा है, दागिस्तान पढ़ता है, दागिस्तान लिखता है।

अब मैं आपको यह बताता हूँ कि खुद मैंने कैसे पढ़ना-लिखना सीखा। यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि कैसे मुझे पढ़ना-लिखना सीखने के लिए मजबूर किया गया।

मैं तब पाँच साल का था। सारा दागिस्तान ही पढ़ने-लिखने लगा था। एक के बाद एक स्कूल, कालेज और तकनीकी कालेज खुलते जा रहे थे। बच्चे और बूढ़े, औरतें और मर्द - सभी पढ़ने थे। निरक्षरता-उन्मूलन-केंद्र और शिक्षा-अभियान आयोजित किए जाते थे। मुझे पहला ककहरा, पहली कापी भी याद है जो पिता जी ने मुझे खरीद कर दी थी। वह खुद गाँव-गाँव जाकर लोगों से पढ़ने की अपील करते थे।

नई लिपि सामने आई। पिता जी ने बड़े उत्साह से उसका स्वागत किया। उन्हें हमेशा इस बात का अफसोस होता रहता था कि लिपि के अभाव के कारण दागिस्तान महान रूसी संस्कृति से कटा हुआ है। वह कहा करते थे - 'दागिस्तान हमारे महान देश का अंग है। उसके लिए उसे जानना, पूरी मानवजाति को जानना, उसके जीवन की पुस्तक पढ़ना उसकी लिखावट को समझना-पहचानना जरूरी है।'

'नया पथ', 'नूतन प्रकाश', 'नए लोग' - ये थे उन दिनों के नारे। वक्त की इस पुकार पर पिता जी ने अपने बच्चों को भी आगे भेजा। नए जीवन के लिए अपना मार्ग प्रशस्त करना आसान नहीं था। नए जीवन के मार्ग पर पत्थर फेंकने वालों की संख्या बहुत थी। पहले स्कूलों की बहूत-सी खिड़कियाँ तोड़ी गईं। शिक्षा और ज्ञान-प्रचार के शत्रु कहते थे - 'यह भला कैसी दुनिया है जिसमें चरवाहा किताब पढ़ता है और आटे की चक्की का मालिक पाठ तैयार करता है? उन्हें तो भेड़ें चराना आटा पीसना चाहिए।' यों तो और भी ज्यादा बुरी बातें होती थीं। मुझे याद है कि कैसे अध्यापक को मारने के लिए चलाई गई गोली स्कूल की दीवार पर लटकनेवाले नक्शे पर जा लगी और कैसे इस संबंध में पिता जी ने ये शब्द कहे थे - 'इस बदमाश ने एक ही गोली से लगभग सारी दुनिया को ही छलनी नहीं कर दिया।'

उन प्रारंभिक वर्षों में अनेक गाँव में नई शिक्षा का पुरानी, धार्मिक शिक्षा के साथ ताल-मेल बैठाने की कोशिश की गई थी। ऐसा भी हुआ कि ये दोनों आपस में घुल-मिल गईं। यह जान पाना मुश्किल था कि कहाँ दुकान है और कहाँ बाजार, कहाँ अली है और कहाँ ओमार। मेरे बड़े भाई युवजन के स्कूल में पढ़ने जाते थे। मुझे उनसे बड़ी ईर्ष्या होती थी, लेकिन कुछ भी नहीं कर सकता था और

हर दिन बड़ी बेचैनी से उनका इंतजार करता था।, मैं पढ़ने को बहुत उत्सुक था। मगर तब मैं सात साल का नहीं हुआ था।

इसी वक्त हमारे गाँव में उनके लिए स्कूल खुल गया जो अपने बच्चों को खूँजह के दुर्ग में पढ़ने के लिए नहीं भेजना चाहते थे। यह अर्ध-धार्मिक स्कूल था। इसे 'हसन का स्कूल' कहा जाता था।

1. हसन और कैदी

छापेमारों ने एक प्रतिक्रांतिकारी सैनिक बंदी बना लिया। उसे रक्षक की निगरानी में मुसलिम अतायेव के मुख्य सैनिक कार्यालय में पहुँचाना था। यह काम हसन को सौंपा गया। शुरू में तो सब कुछ ठीक रहा। लेकिन आखिर नमाज अदा करने का वक्त आ गया। हसन एक छोटी-सी नदी के पास रुककर नमाज पढ़ने लगा और क़ैदी को उसने अपने नजदीक पत्थर पर बिठा दिया। कैदी ने उससे विनती की कि वह उसके हाथ खोल दे, ताकि वह भी नमाज अदा कर ले। हसन ने आश्चर्य से पूछा -

'तुम किसलिए इबादत करना चाहते हो? तुम तो सफेद गार्डों का साथ दे रहे हो। तुम तो बेशक कितनी ही इबादत क्यों न करो, हर हालत में जहन्नुम में जाओगे।'

'फिर भी मैं हूँ तो मुसलमान। मुसलिम अतायेव तो मुझ पर रहम नहीं करेगा, फौरन दूसरी दुनिया को रवाना कर देगा। इसलिए मुझे आख़िरी बार अल्लाह की इबादत कर लेनी चाहिए।'

हसन ने यह कहते हुए उसके हाथ खोल दिए -

'तुम तो सोवियत सत्ता को कोसते थे, यह कहते थे कि वह मुसलमानों को अल्लाह पर यकीन करने से मना करती है। अब तुम जितनी भी चाहो, जी भरकर इबादत कर सकते हो।'

इसके बाद हसन इबादत में इतना खो गया कि जब उसने मुड़कर देखा तो कैदी गायब था, वह भाग गया था। तब गुस्से से लाल-पीला होता हुआ हसन चिल्लाया -

'अल्लाह और इन्कलाब की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें जरूर ही ढूँढ़कर पकड़ लूँगा !'

और उसने सचमुच ही उसे एक गाँव में जा पकड़ा तथा वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ पहुँचाना था।

2. इबादत और गाना

सोवियत सत्ता के शुरू के सालों में हसन ग्राम-सोवियत का सेक्रेटरी था। इन सालों के दौरान ग्राम-सोवियत की मुहर पूरी तरह से घिस गई और एकदम सपाट हो गई, क्योंकि हसन उस पर जरा भी रहम नहीं करता था और हर तरह के कागज या दस्तावेज पर मुहर लगा देता था।

अगर कोई कठिन और महत्वपूर्ण सवाल सामने आ जाता तो वह कहता -

'सलाह-मशविरा करना होगा।'

प्रसंगवश यह भी बता दूँ कि उसने इतवार की जगह शुक्रवार को यानी रमजान के दिन को छुट्टी का दिन बनाने की भी कोशिश की थी। वह सोवियत सत्ता की हिदायतों और निर्णयों का अथक रूप से लोगों में प्रचार करता, उन्हें समझाता और अमली शक्ल देता। इसके साथ ही उसने उस मसजिद की मरम्मत भी करवाई जो गृह-युद्ध के दिनों में टूट-फूट गई थी।

मसजिद की मरम्मत हो जाने पर उसके समारोही उद्घाटन का दिन नियत किया गया। इसी वक्त इस क्षेत्र में संस्कृति-कर्मियों - लेखकों, चित्रकारों, कलाकारों, गायकों, और स्वरकारों-संगीतज्ञों का एक बड़ा दल आ गया। क्षेत्रीय केंद्र से इस पूरे दल को उस गाँव में भेज दिया गया, जहाँ हसन ने मसजिद के समारोही उद्घाटन की तैयारी की थी।

गाँव में मेहमानों का जोरदार स्वागत किया गया। उन्हें घुड़दौड़ें, कुश्तियाँ और मुर्गों की लड़ाई दिखाई गई। मेहमान भी पीछे नहीं रहे - उनमें से किसी ने भाषण दिया, निकट भविष्य के आर्थिक कार्यभारों की चर्चा की और फिर उन्होंने कन्सर्ट पेश किया।

कन्सर्ट जब अपने पूरे रंग पर था तो मुअज्जिन ने मसजिद की मीनार पर चढ़कर बाँग दी और इस तरह सच्चे मुसलमानों को शाम की नमाज के लिए बुलाया। तब हसन उठकर खड़ा हुआ और उसने अतिथियों को संबोधित करते हुए कहा -

'बहुत शुक्रिया कि आपने हमें यह इज्जत बख्शी और ऐसे महत्वपूर्ण दिन पर, हमारी मसजिद के उद्घाटन के दिन यहाँ तशरीफ लाए। कन्सर्ट के लिए भी शुक्रिया। अब हम नमाज पढ़ने जाते हैं। आप चाहें तो कन्सर्ट जारी रख सकते हैं, चाहें तो हमारे लौटने तक इंतजार कर सकते हैं, चाहें तो हमारे साथ चल सकते हैं।'

गाँव के कुछ लोग मसजिद में चले गए, कुछ मेहमानों के गाने सुनने को रुके रहे, कुछ दुविधा में पड़कर खड़े रह गए, उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। मेहमान भी उलझन में पड़ गए। लेकिन बाद में छत पर, जो एक तरह से रंगमंच का काम दे रही थी, प्रसिद्ध गायक अराशील, ओमार, गाजी-मुहम्मद और केगेर की गायिका पातीमात सामने आए। दो मर्दाना समूरी टोपियाँ, एक दुपट्टा, दो पंदूरे और एक खंजड़ी। और पर्वतों के ऊपर एक नया गाना गूँज उठा। यह लेनिन, लाल सितारे और दागिस्तान के बारे में गाना था। वे कभी तो पंदूरों और खंजड़ी को सिर के ऊपर ऊँचा उठाकर तथा कभी उनको छाती से लगाकर गाते थे।

इस गाने को सुनकर नमाज पढ़नेवाले कुछ लोग मसजिद से बाहर आ गए और कुछ, इसके विपरीत, मसजिद में चले गए।

यह दिलचस्प घटना हसन के गाँव में आज तक सुनाई जाती है।

संस्कृति-कर्मियों के दल में मेरे पिता हमजात त्सादासा भी थे और उनके आगे घोड़े पर मैं बैठा हुआ था। जो उस वक्त कुछ भी नहीं समझता था।

गाँव से विदा लेने के समय मेहमानों ने ग्रामोफोन और लाउडस्पीकर भेंट किया।

3. लाउडस्पीकर और हसन

मुझे यह मालूम नहीं कि किसने ऐसा करने का आदेश दिया, शायद खुद हसन ने ही, लेकिन मेहमानों द्वारा भेंट किए गए लाउडस्पीकर को मसजिद के करीब टेलीफोन के खंभे दिया गया। गाँव में अब सुबह से शाम तक रेडियो का प्रोग्राम चलता रहता। यह आस-पास के पहाड़ों पर कभी तो पायोनियरों के बिगुलों की आवाज, कभी कोई गाना, कभी संगीत गुँजाता रहता, कभी कोई वार्ता सुनाता रहता और कभी सिर्फ खड़-खड़, गड़-गड़ करता रहता।

कभी-कभी मसजिद की मीनार से मुअज्जिन की बाँग और रेडियो की आवाज आपस में घुल-मिल जातीं और उस वक्त कुछ भी समझ पाना असंभव होता।

एक दिन क्या हुआ कि मुअज्जिन के बाँग देने के लिए मीनार पर जाने के कुछ ही पहले लाउडस्पीकर खामोश हो गया। किसी ने चालाकी से खंभे पर तार काट दिया। धर्म-ईमान को माननेवाले मुसलमानों के नमाज अदा कर लेने के फौरन बाद हसन ने खंभे पर चढ़कर तार जोड़ दिया और लाउडस्पीकर फिर से काम करने लगा।

अगले दिन भी नमाज के पहले लाउडस्पीकर फिर से चुप हो गया। नमाज खत्म हो जाने के बाद हसन को फिर से खंभे पर चढ़ना पड़ा।

यह किस्सा कई दिनों तक चलता रहा। सभी हैरान होते थे कि हसन इस मामले की तरफ क्यों ध्यान नहीं देता और 'तोड़-फोड़' की ऐसी हरकत करनेवाले का पता क्यों नहीं लगाता।

जब यह मालूम हुआ कि खुद हसन ही रेडियो को हर दिन खराब कर देता था तो गाँव के सभी लोगों की हैरानी का कोई ठिकाना न रहा।

हसन के मन में दो शक्तियों - इबादत और गाने-के बीच संघर्ष होता रहता था। वह इन दोनों में समझौता करवाने की कोशिश करता था। वह नवदंपति का मसजिद में विवाह करवाता और इसके बाद उन्हें ग्राम-सोवियत में रजिस्ट्री कराने ले जाता।

प्रकृति के अध्ययन का भी उसका अपना ही तरीका था। वह खड़ा होकर किसी तारे या चट्टान को ताकता रहता। घंटे बीत जाते और हसन वहीं खड़ा रहता। अगर उसे किसी काम-काज से कहीं जाना होता तो वह अपनी बीवी या कभी-कभी हम छोकरों से वहाँ खड़े अनुरोध करता।

स्कूल में वह हमें नक्षत्रों की गति के नियम समझाता। वह हमें भूकंपों, चाँद और सूर्यग्रहण, ज्वार और भाटों के बारे में बहुत कुछ बताता। यह सब कुछ वह मानो दिलचस्प, मगर कुछ ऐसे अजीब ढंग से बताता कि अब उसकी बातों में से मेरे दिमाग में कुछ भी बाकी नहीं रहा।

उसके शिक्षाक्रम में सभी कुछ - अरबी, रूसी और लातीनी-गड्डमड्ड हो गया था।

वह प्लाईवुड के बहुत बड़े टुकड़े पर अरबी में अक्षर लिखता और कहता -

'इन अक्षरों को लिखना सीखो। तुम्हारे पिता जिंदगी भर इन्हीं अक्षरों को लिखते और पढ़ते रहे।'

इसके बाद वह रूसी भाषा के इतने ही बड़े-बड़े अक्षर लिखता और कहता -

'इन्हें सीखो। तुम्हारे पिता ने उस उम्र में, जब चश्मा लगाया जाता है, इन अक्षरों को सीख लिया था। ये तुम्हारे काम आएँगे।'

कभी-कभी वह हमें कुछ याद करने का काम देकर खुद मसजिद में नमाज पढ़ने चला जाता।

जब वह हमें अरबी लिपि सिखाता तो उसके हाथ में डंडा होता और गलतियों या लापरवाही के लिए उसी से हमारी पिटाई करता।

जब रूसी वर्णमाला सिखाने का वक्त आता तो वह अपने हाथ में लकीरें खींचने का रूल ले लेता। इस तरह कभी तो डंडे और कभी रूल से हमारी पिटाई होती।

मेरी पिटाई का कारण यह था। हमारा घर मसजिद के बिल्कुल करीब था। इन दोनों के बीच एक कदम से ज्यादा का फासला नहीं था। मुझे एक छत से दूसरी छत पर कूदने की आदत पड़ गई थी। इसके लिए हसन ने मेरी कसकर पिटाई की। इसके बाद मसजिद बंद करके वहाँ एक तरह का ग्राम-क्लब बना दिया गया। मैंने पहले की तरह ही अपनी छलाँगें लगाना जारी रखा। हसन ने इसके लिए फिर से मुझे सजा दी।

पिता जी ने हसन का पक्ष लिया और मुझसे कहा -

'तुम टिड्डे तो नहीं हो कि कूदते-फाँदते रहो। धरती पर चलना सीखो।'

कुछ समय बाद मेरी उम्र सात साल की हो गई और मेरी उछल-कूद, मेरी छलाँगें अपने आप ही खत्म हो गईं। मैं खूँजह दुर्ग के स्कूल में पढ़ने लगा।

हसन के स्कूल की पढ़ाई कोई भी खत्म नहीं कर सका, उसे बंद कर दिया गया। हसन सामूहिक फार्म में काम करने लगा, उसे अखिल संघीय कृषि प्रदर्शनी में भेजा गया और वहाँ से वह तमगा लेकर लौटा। दो अन्य पदक उसे मोरचे पर मिले। युद्ध के बाद वह कहता रहता था -

'मैं बेशक किसी भी जगह पर क्यों न रहा, हर हालत में, यहाँ तक कि पूरे युद्ध के दौरान नियमित रूप से नमाज पढ़ता रहा। अगर मैं ऐसा न करता तो क्या जिंदा और पूरी तरह से सही-सलामत घर लौट सकता था?'

थोड़े में यह कि हसन जैसा था, अब भी वैसा ही है। अब वह अवार खान सुराकात के बारे में सामग्री जमा कर रहा है। वह पहले की तरह ही खुशमिजाज, बेहद ईमानदार, बेशक कुछ सनकी आदमी है।

जब कभी मैं अपने गाँव जाता हूँ तो उससे जरूर मिलता हूँ, क्योंकि उसे अपना पहला अध्यापक मानता हूँ।

मुझे सामान्य स्कूल में अपना दूसरा अध्यापक भी याद है। वह हमें हर दिन अपने बारे में ही किस्से-कहानियाँ सुनाता रहता था। अब तो मैं इस बात को

अच्छी तरह समझता हूँ कि वह असली अवार म्यूनखगाउजन था। वह अपना हर पाठ इन सामान्य शब्दों से ही शुरू करता -

'तो बच्चो, तुम्हें अपने जीवन की एक घटना सुनाऊँ?'

'सुनाइए!' हम सब मिलकर चिल्लाते।

'एक बार मैं अवार कोइसू के ऊपर रज्जु-मार्ग से जा रहा था। सामने से एक विशालकाय भालू आ रहा था। हमारे लिए अलग-अलग दिशाओं में जाना किसी तरह भी संभव नहीं था। भालू भी पीछे नहीं हटना चाहता था और मैं भी। रज्जु-मार्ग के मध्य में हम गुत्थमगुत्था हो गए। यह भालू उन सभी भालुओं से कहीं ज्यादा ताकतवर था जिनसे मेरा पहले वास्ता पड़ा था। फिर भी मैंने बड़ी फुरती दिखाई, उसे अयाल से पकड़कर नदी में फेंक दिया।'

हम मुँह बाए हुए अपने अध्यापक की गप्पें सुना करते थे।

'पिछले सप्ताह मैं अपने खेत में जाकर बड़े इतमीनान से वहाँ हल चलाने लगा। मेरे बैल बहुत अच्छे हैं, तगड़े हैं। लेकिन वे अचानक रुक गए और उन्होंने हल आगे बढ़ाना बंद कर दिया। क्या बात हो गई? मैंने गीर से देखा तो यह पाया कि बाँह जितने मोटे-मोटे नौ साँप मेरे हल के साथ लिपटे हुए हैं। उनमें से दो मेरे हाथों की तरफ रेंग रहे थे। अपने होश-हवास ठिकाने रखते हुए मैंने पिस्तौल निकाली और सारे के सारे साँपों को गोलियों से उड़ा दिया। इतना अधिक खून बहा कि पूरे खेत की सिंचाई हो गई। मैं चैन से हल चलाकर घर चला गया। कभी-कभी यह चिंता जरूर होती है कि खेत में अनाज की जगह साँप ही न पैदा हो जाएँ?

'तुम्हें यह बताऊँ कि कैसे मैं अपने लिए बीवी भगाकर लाया था? उन दिनों मैं त्सूनती के जंगलों में डाकुओं को पकड़ा करता था। एक दिन मैं सबसे ज्यादा खतरनाक एक डाकू के घर पहुँचा। वह खुद तो भागने में कामयाब हो गया, लेकिन उसकी चाँद जैसी बेटी पीछे घर में ही रह गई थी। हम दोनों की आँखें चार हुईं और हमें फौरन ही एक-दूसरे से मुहब्बत हो गई। मैंने उसे गोद में उठाकर घोड़े के जीन पर बिठाया और सरपट घोड़ा दौड़ा ले चला। अचानक मैंने क्या देखा कि बहुत ही खतरनाक चालीस डाकू मेरा पीछा कर रहे हैं। उनमें से प्रत्येक दाँतों तले खंजर दबाए था, प्रत्येक के एक हाथ में तलवार और दूसरे में पिस्तौल थी। मैंने मुड़कर देखा और बड़े सधे हुए निशानों से गोलियाँ चलाकर सभी को दूसरी दुनिया में पहुँचा दिया। यह किस्सा तो दागिस्तान में हर कोई जानता है।'

एक दिन पाठ के वक्त में डेस्क पर अपने साथ बैठनेवाले बसीर से बातें कर रहा था। अध्यापक ने मुझे अपने पास बुलाकर बड़ी कड़ाई से पूछा -

'तुम पढ़ाई के वक्त बातें क्यों कर रहे हो? बसीर के साथ तुम घंटे भर से क्या बक-बक कर रहे हो?'

'हमारे बीच बहस हो रही थी। बसीर कह रहा था कि उस दिन खेत में हल चलाते वक्त आपने आठ साँप मारे थे, लेकिन मैं कह रहा था कि अठारह।'

'तुम बसीर से कह दो कि उसकी नहीं, तुम्हारी बात सही है।'

उस दिन के बाद से मेरे माता-पिता हमेशा ही इस बात से हैरान होते रहते थे कि मैं कुछ भी पढ़े-लिखे बिना स्कूल में अच्छे अंक कैसे पा लेता हूँ।

बड़ा दयालु व्यक्ति था वह, किंतु एक ही जगह पर देर तक टिककर नहीं रहता था। उसे बहुत दूर-दूर के सुनसान गाँवों में भेजा जाता था - कभी सीलूख तो कभी अरादेरीख में, लेकिन वहाँ भी वह कुछ अधिक समय तक नहीं रुकता था।

कुछ ही समय पहले वह लेखक-संघ के कार्यालय में मेरे पास आया और बोला कि मैं उसे कोई काम दे दूँ।

'तुम क्या काम करना चाहोगे?'

'मैं युद्ध के बारे में संस्मरण लिख सकता हूँ। बात यह है कि सभी मार्शल मेरे दोस्त थे। उनमें से कुछ को तो मैंने मौत के मुँह से भी बचाया।'

मेरे कई अध्यापक रहे, पहला, दूसरा, तीसरा। लेकिन अपना असली पहला अध्यापक मैं दयालु रूसी अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना को ही मानता हूँ। उन्होंने मुझे रूसी भाषा के सौंदर्य और रूसी साहित्य की महानता से अवगत किया।

अवार अध्यापक - प्रशिक्षण कालेज के प्राध्यापक और मास्को के साहित्य-संस्थान के प्रोफेसरगण!

मनसूर हैदरबेकोव और पोस्पेलोव, मुहम्मद हैदारोव और गालीत्स्की, शांबीनागो, रादत्सीग, असमूस, फोख्त, बोंदी, रेफोरमात्स्की, वसीली सेम्योनोविच सिदोरीन... बेशक यह सही है कि परीक्षाओं के समय मैंने आपके प्रश्नों के अच्छी तरह से उत्तर नहीं दिए, क्योंकि तब रूसी भाषा भी अच्छा तरह से नहीं जानता था। किंतु मुझे ऐसा लगता है कि मेरी परीक्षाएँ अभी तक समाप्त नहीं हुईं। कभी-कभी मुझे लगता है कि मानो मैं अपने लिए अभी भी कठिन परीक्षाएँ दे रहा हूँ, उनमें असफल हो रहा हूँ और फिर से पहले वर्ष का ही विद्यार्थी बना हुआ हूँ।

वास्तव में तो जब कभी मेरी कोई नई पुस्तक निकलती है तो मैं कामना करता रहता हूँ कि शायद वह मेरे अध्यापकों के हाथों में पहुँच जाए और वे उसे पढ़ें। उस समय मैं भाषाशास्त्र या प्राचीन यूनानी साहित्य की परीक्षाओं की तुलना में भी अपने दिल में कहीं ज्यादा घबराहट महसूस करता हूँ। हो सकता है कि मेरे किन्हीं अध्यापकों को मेरी वह पुस्तक पसंद न आए, उसे अंत तक पढ़े बिना ही वे उसे एक तरफ रख दें और यह कहें - 'रसूल ने अच्छी किताब नहीं लिखी, लगता है कि जल्दबाजी की है।' यही तो मेरी सबसे कठिन परीक्षा है।

दागिस्तान! तुम्हारे भी भिन्न-भिन्न अध्यापक थे। तुम्हारे भी हसन और म्यूनखगाउजन थे। उनमें से कुछ तो उसमें विश्वास नहीं रखते थे जिसकी शिक्षा देते थे, कुछ धोखा देते थे, कुछ मार्ग से भटक जाते थे। लेकिन बाद में एक महान और न्यायप्रिय, साहसी और दयालु अध्यापक आया। यह अध्यापक था - रूस, सोवियत संघ, अक्तूबर समाजवादी क्रांति। नई जिंदगी, नया स्कूल, नई किताब।

पहले तो पूरे गाँव में केवल एक मुल्ला ही खत या किताब पढ़ सकता था। अब मुल्ला को छोड़कर बाकी सभी किताबें पढ़ते हैं।

छोटी जाति का बड़ा भाग्य निकला। दागिस्तान के बारे में अभी भी किताब लिखी जा रही है। उसका न तो अंत हुआ है और न कभी होगा ही। अगर इस स्वर्णिम और शाश्वत पुस्तक में मेरे द्वारा लिखा हुआ एक पृष्ठ भी होगा तो मैं अपने को सौभाग्यशाली मानूँगा। मैं अपना गीत गा रहा हूँ, तुम इसे स्वीकार करो, दागिस्तान!

मिला मुझे जो कुछ लोगों से, दागिस्तान!
है समान अधिकार तुम्हारा भी उस पर,
अपने सारे पदक, सभी तमगे अपने
मीत, सजाऊँ तुम पर, चमकें श्रृंग-शिखर।
स्तुति-गान मैं तुमको, अपने भेंट करूँ
मैं अपने शब्दों से कविताएँ बुनकर,
मुझे वनों का सिर्फ लबादा अपना दो
हिम से ढकी चोटियों की टोपी सुंदर।

तो बस, अब लेखनी रखता हूँ। हमारी जुदाई का समय आ गया। अगर अल्लाह ने चाहा तो फिर मिलेंगे।

दूसरा खण्ड समाप्त

यह भिन्न स्थानों पर - त्सादा गांव में, मास्को, मखाचकला, दिलीजान और अनेक अन्य नगरों में लिखा गया। मैंने इसे कब लिखना शुरू किया, याद नहीं। हां, समाप्त 25 सितंबर 1970 को किया।

वासससलाम, वाकलाम।

मानचित्र पर दाग़िस्तान

Republic of Dagestan

कास्पियन सागर के पास काकेशिया के पर्वतों की ऊंचाइयों पर इस पुस्तक के लेखक की जन्मभूमि – दाग़िस्तान अवस्थित है। यहीं पहाड़ी गांव त्सादा में १६२३ में दाग़िस्तान के लोक-कवि हमज़ात त्सादासा के परिवार में पुत्र रसूल का जन्म हुआ। १६३७ में छपी हमज़ातोव की प्रथम कविताओं ने पाठकों का मन मोह लिया। तब से लेखक की कविताओं के दर्जनों संग्रह छप चुके हैं। लेनिन पुरस्कार विजेता, दाग़िस्तान के लोक-कवि रसूल हमज़ातोव का नाम सोवियत देश ही में नहीं बल्कि विदेशों तक में प्रसिद्ध है। बहुजातिक सोवियत संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में हमज़ातोव सभी महाद्वीपों की यात्रा कर चुके हैं, विभिन्न देशों के पाठकों से उन्होंने भेंट की। अपने पाठकों और श्रोताओं को संबोधित करते हुए वह पूर्ण अधिकार के साथ कहते हैं: "तेरी तरह ही, मेरे समकालीन, मैं शताब्दी के मध्य में, विश्व के केन्द्र में, महान घटनाओं के भंवर में रहा... घटनाओं के दुःख और उल्लास से चितेरे को अछूता नहीं रहना चाहिए। वे बर्फ़ पर निशान नहीं, पत्थर पर नक़्क़ाशी हैं। और मैं अतीत के अपने साक्ष्यों और भविष्य के अपने विचारों को एक ही पोटली में बांधकर तेरे पास आ रहा हूं, तेरा दर खटखटाता हूं और कहता हूं: मेरे भले मित्र, यह मै हूं। अंदर आने दो।"